Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वायु पुराण

प्रथम खण्ड

(सरल हिन्दी भाष्य सहित)

3590

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन,

२० स्मृतियों और १८ पुराणों

के भाष्यकार

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, बरेली (उ० प्र०)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वायु-पुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित)

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राज्य संग्रहालय कालय
क्रम 3590
प्रा० तिथि 18-3-81
State Museum, Library, Lko.

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान,
बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

सर्वाधिकार सुरक्षित

★

प्रथम संस्करण
१९६७

★

मुद्रक :
बम्बई भूषण प्रेस,
मथुरा

★

मूल्य :
७) रुपया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य अपने ढङ्ग की अनोखी रचना है। संसार के अन्य प्राचीन देशों—जैसे यूनान, ईरान आदि में भी कुछ ग्रन्थ ऐसे पाये जाते हैं, जिनको वहाँ का पुराण कहा जाता है, पर वे प्रायः वीर लोगों के अद्भुत साहस तथा भयंकर संकटों का सामना करके कोई महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करने की कथायें-मात्र हैं। पर भारतीय पुराणों का मुख्य उद्देश्य साधारण जन-समाज में धार्मिक भावों का संचार करना है। यद्यपि उनमें भी सत्य, अर्द्ध सत्य और काल्पनिक कथायें हैं, रूपक, अलंकार और अतिशयोक्तियों का भी बाहुल्य है, पर लेखकों का लक्ष्य लोगों को सदैव धर्म-प्रेरणा देने का ही रहा है। यह ठीक है कि उनकी अतिशयोक्तियाँ अनेक स्थानों पर सीमा को पार कर जाती हैं, उन्होंने असम्भव कल्पनायें भी की हैं, अनेक जगह परस्पर विरोधी बातें भी लिख दी हैं, पर इस सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यों के हृदय में धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो और चाहे सांसारिक सुखों के लालच से ही सही, वे धर्माचरण को अपनावें। उनका सिद्धान्त है कि जो धर्म का पालन करेगा उसकी रक्षा भी धर्म करेगा। संसार में जितनी उन्नति, उत्कर्ष, कल्याण है वह सब धर्म पर ही आधारित है। इसलिए लोगों को किसी भी प्रकार से धर्म की प्रेरणा देना शुभ कर्म ही माना जायगा।

जन-साधारण को धर्म-प्रेरणा—

पुराणों के मुख्य विषय सर्ग (सृष्टि रचना) प्रलय, मन्वन्तर और युगों का वर्णन, देव, ऋषि तथा राजाओं के वंशों का वर्णन कहा गया है। पर इनका विस्तार करते हुए मोक्ष-निरूपण, भगवत भजन, देवोपासना को भी उनमें सम्मिलित किया और प्रत्येक कथा, आख्यान, उपाख्यान, गाथामें एक यही दृष्टि-बिन्दु रक्खा है कि लोगों को धर्म के प्रति आकर्षण हो और वे अपनी बुद्धि, शक्ति, रुचि के अनुसार न्यूनाधिक अंशों में धार्मिकता की तरफ अग्रसर हों। हो सकता है कि जिन लोगों ने अपने धर्म-विषयक विचार बहुत ऊँचे तथा तर्क और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरे उतरने वाले बना रक्खे हैं,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनको पुराणों के धर्म-सम्बन्धी विवेचन से निराशा हो, उनमें त्रुटियाँ नजर आवें, पर जो लोग समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के लिये उत्तम-मध्यम धर्माचरण की आवश्यकता को व्यवहारिक समझते हैं, वे पुराणों के मत को ठीक ही बतलावेंगे, एक धर्मशास्त्र में कहा गया है—

"अप्सु देवता बालानाम, दिव देवता मनीषिणाम् ।"

"बालकों का अथवा बाल-बुद्धि वाली अशिक्षित जनता का देवता गङ्गा-यमुना आदि तीर्थ-स्थान हैं। विद्वानों के देवता, भगवान की दैवी शक्तियाँ जैसे—सूर्य, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि हैं और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनका देवता केवल 'आत्मा' ही होता है।"

समाज में सभी श्रेणियों के व्यक्ति पाये जाते हैं। उसमें वेद और उपनिषदों के अध्यात्म-ज्ञान को समझने वाले आत्मज्ञानी और योगी भी होते हैं, यज्ञ और अन्य कर्मकाण्डों में संलग्न पण्डितजन भी होते हैं और केवल जीवन निर्वाह के कार्यों में ही लगे रहने वाले व्यापारी, किसान मजदूर आदि भी होते हैं। यद्यपि पहली दो श्रेणियाँ समाज में अधिक प्रभावशाली और प्रतिष्ठित मानी जाती है, पर अधिकता सदैव तीसरी श्रेणी की ही होती है। तो अब प्रश्न होता है कि इन अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित जन-साधारणके लिये धार्मिक नैतिक, चारित्रिक नियमों की जानकारी कराने और उन पर आचरण कराने की क्या व्यवस्था की जाय ? पुराण ऐसे ही लोगों को धार्मिक शिक्षा देने के साधन हैं। इन लोगों को यदि उपनिषदों के निराकार ब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश दिया जाय अथवा किसी बड़े कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाय तो वे उसे क्या समझ सकते हैं और कहाँ तक उस पर आचरण कर सकते हैं ? पर पुराणों की सरल कथाओं और रोचक दृष्टान्तों को वे भी कौतूहलपूर्वक सुनते रहते हैं और अन्त में इतना निष्कर्ष निकाल ही लेते हैं कि धर्म, पुण्य, सत्कर्म करने से मनुष्य को इहलोक और परलोक में सुख मिलता है, इसलिये जहाँ तक बन पड़े मनुष्य को वैसा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुराणों का प्रक्षिप्त भाग—

यह ठीक है कि मध्यकाल में पुराणों की कथा बांचने वाले 'पुराणी' और 'व्यासों' ने उनमें बहुत मिलावट की है। इसके कई कारण [illegible] हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन देश-काल के प्रभाव से हुये हैं। राज्यों में, शासन-संस्था में जैसे-जैसे परिवर्तन होते गए उसके प्रभाव से लोगों के रहन-सहन और विचारों में परिवर्तन हुये और कथा वाचकों ने उनके अनुकूल बातें बढ़ादीं। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की परिस्थितियों के प्रभाव से जिन पुराणों का जहाँ अधिक प्रचार था उनमें वहाँ की बातों को विशेष स्थान दे दिया गया। साम्प्रदायिकता के बढ़ने पर उनके आचार्यों और विद्वानों ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करने वाले उपाख्यान और विवरण पुराणों में सम्मिलित कर दिये। अन्तिम पर एक बड़ा कारण कथावाचकों की स्वार्थपरता का भी हुआ जिससे उन्होंने व्रत, तीर्थ, श्राद्ध, दान के प्रकरणों को खूब बढ़ाया और अधिक से अधिक दान देने की महिमा का प्रतिपादन किया। इस श्रेणी की मिलावट क्रमशः इतनी अधिक बढ़ गई और विभिन्न प्रकार के दानों के परिमाण तथा उनके पुण्य फल को इतना बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया कि श्रोताओं को उससे विरक्ति होने लगी। पुराणों में जिन ब्रह्मांडदान, मेरु-दान, धरा-दान, सप्त-सागर दान, रत्नमयी धेनुदान आदि का जो वर्णन किया गया उनकी सामग्री की लागत कई लाख रुपये तक पहुँचती है। हर दान में सोने की मूर्तियों और रत्नों का विधान बतलाया गया है। एक लेखक के कथनानुसार "इन दानों के वर्णनों को पढ़कर कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई आधुनिक काल का घटिया विज्ञापनदाता अपनी किसी वस्तु की तारीफों का पुल बाँध रहा हो।"

इस मिलावट तथा हीन मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान समय में अधिकांश शिक्षित व्यक्तियों ने पुराण-साहित्य को कोरी गप्पों का खजाना मान लिया है और वे बिना देखे सुने ही एक सिरे से समस्त पुराणों को और उनकी तमाम बातों को निरर्थक और बेकार घोषित कर देते हैं। यह अवस्था समाज तथा धर्म के लिये अवांछनीय ही कही जायगी। इसके फल-स्वरूप हम उस लाभकारी और जन-कल्याणकारी साहित्य वंचित रह जायेंगे जो पुराणों में पर्याप्त परिमाण में सन्निहित है। इस समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करके एक पुराणों के ज्ञाता विद्वान ने निम्न उद्गार व्यक्त किये हैं—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

"पुराणों में इन अनेक गुणों के होते हुये भी अनेक लोकोपकारियों ने, जिन्हें वास्तव में देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची लगन थी, पुराणों को सर्वथा त्याज्य माना है, उनकी भरपेट निन्दा की है, मार्मिक दुष्ट स्थलों को तर्क के चाकू से चीरफाड़ कर जनता के सामने खोलकर रख दिया है। हम मानते हैं कि उन्होंने यह कार्य किसी द्वेषवश नहीं किया है वरन् 'त्याज्यः दुष्टः प्रियोऽप्यासीदंगुली वोरगदक्षता' (अर्थात् साँप की काटी हुई उङ्गली की तरह दोषपूर्ण वस्तु अत्यन्त प्रिय होने पर भी त्याज्य है)

इस सूक्ति के अनुसार पुराणों को सर्वथा वहिष्कृत बतलाया है। उनकी धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के लायक नहीं रह गये हैं, सामान्य जनता इन में वर्णित आदर्शों पर चलकर सुखी नहीं हो सकेगी, अपना वास्तविक कर्तव्य भूल जायगी। उनकी धारणा कुछ अंश में सत्य है, पर यदि औषधि करने से सर्वथा विष उतर जाय तो अँगुली को काटकर फेंक देना समीचीन नहीं लगता। सभी औषधियों के अभाव और एक विशेष परिस्थिति में अँगुली का काट देना भी एक अन्तिम कर्तव्य है, पर जिस अँगुली ने इतने जीवन तक अनेक दुःखों एवं सुखों में साथ दिया है यथासंभव उसकी रक्षा करनी ही चाहिये। पुराणों ने चिरकाल से हिन्दू समाज का बहुत उपकार किया है। हमारी वंश परम्परागत पवित्र भावनायें उनके साथ जुड़ी हुई है, इन सब बातों को देखते हुये उनको एक दम वहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित है, जब कि थोड़ी-सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र बना देती हैं। नितान्त अनर्गल कथाओं तथा स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणों से अलग करके आप उनकी उपादेयता से इनकार नहीं कर सकते। सुनारों की दुकानों की मिट्टी को बटोरकर धोने वालों को भी जीवन-यापन के लिये पर्याप्त सोना-चाँदी मिल जाता है, फिर पुराण तो अनेक रत्नों के भण्डार हैं, दृष्टि फैलाइये, विवेक के जल से उन मृत्तिका मिश्रित अनपेक्षित प्रसङ्गों को, जिनमें निन्दा-कुत्सा आदि के सिवा दूसरी चीज नहीं है स्वच्छ कीजिये, सहानुभूति एवं विश्वास का सम्बल रखिये, उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।"

हमने इसी नीति का अनुसरण करके पुराणों की बहुमूल्य सामग्री को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिमार्जित संस्करण के रूप में प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उपर्युक्त प्रक्षिप्त अंशों के अतिरिक्त पुराणों के अनावश्यक रूप से बड़े हो जाने का एक कारण यह भी है कि कितने ही विषयों की उनमें पुनरुक्ति की गई है। जो पाठक को खटकती है जैसे श्राद्ध, नर्क, चारों वर्णों और चारों आश्रमों के आचार-विचार, पुराण सुनने का फल आदि अनेक विषय सब में एक से ही दिये गये हैं। कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली भी एक ही है और अध्याय के अध्याय एक दूसरे मिलते हुये हैं। बार-बार एक ही विषय को मिलते-जुलते शब्दों में पढ़ने से पाठक को सन्देह होने लगता है कि यह विषय तो पहले भी पढ़ा था, फिर ज्यों का त्यों कैसे आ गया ? ऐसे विषयों को एक जगह पूरे रूप में दिया जाय तो यह पुरुरक्ति दोष कम खटकने वाला हो सकता है। निस्सन्देह पुराणों में बहुसंख्यक जीवनोपयोगी और उच्चकोटि के धार्मिक विषयों की शिक्षा दी गई है, पर इस मिलावट और नकलखोरी की भीड़भाड़ में वे खो जाते हैं और सामान्य पाठक या श्रोता की दृष्टि उन पर नहीं पड़ती। इसलिए जैसा उपर्युक्त उद्धरण में संकेत किया गया है यदि पुराणों में पक्षपात या स्वार्थवश जो अनुचित मिलावट कर दी गई है उसे पृथक करके और अनावश्यक रूप से बढ़ाये गये अंशों को सूक्ष्म करके पुराणों को प्रकाशित और प्रचारित किया जाय तो यह हिन्दू धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा होगी।

'वायु-पुराण' सम्बन्धी विवाद—

पौराणिक-साहित्य की दृष्टि से 'वायु पुराण' में वर्णित पाठ्य-सामग्री पर विचार करने से पूर्व, हमको अनेक विद्वानों द्वारा उठाई इस शंका पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि 'वायु-पुराण' की गणना '१८ महापुराणों' में है या नहीं ? इस सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में भी मतभेद पाया जाता है। कुछ आलोचकों ने इसे 'शिव महापुराण' में 'वायवीय संहिता' नामक एक खण्ड होने से इसे उक्त पुराण का एक अंश बतलाया है, जब कि अन्य विद्वानों ने दोनों पुराणों की विषय-सूची तथा पाठ्य-सामग्री के महान् अन्तर के आधार इसको स्वतन्त्र 'महापुराण' ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में हमने विविध पुराणों के अन्तर्गत पाई जाने वाली १८ पुराणों की सूचियों का जब मिलान किया तो उनसे हमको यही प्रतीत हुआ कि 'वायु-पुराण' को अधिकांश ने १८ पुराणों में ही माना है। पाठकों की जानकारी के लिये हम उन सूचियों को नीचे देते हैं—

(१) नारद पुराण की पुराण सूची सबसे बड़ी है। उसमें प्रत्येक पुराण के लिए एक दो पृष्ठ का स्वतन्त्र अध्याय दिया है और प्रत्येक पुराण के मुख्य-मुख्य विषयों की सूची के साथ उनकी दान करने की विधि भी बतलाई है। उसमें दिये गये अठारह पुराणों की नामावली इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मपुराण १०००० श्लोक, (२) पद्मपुराण ५५००० (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण २४००० (५) भागवत पुराण १८०००, (६) नारदपुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ६०००, (८) अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्यपुराण १४०००, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण १८००० (११) लिङ्गपुराण ११०००, (१२) बाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १७०००, (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड़ पुराण १९०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(२) मत्स्य पुराण में भी पुराण सूची काफी विस्तार से दी गई है। उसमें विभिन्न पुराणों के श्लोकों की जो संख्या दी गई है वह कई स्थानों पर नारद पुराण की अपेक्षा कम या ज्यादा है। इसमें भी पुराणों के दान की विधि संक्षेप में दी गई है—

(१) ब्रह्म पुराण १३०००, (२) पद्मपुराण ५५०००, (३) वैष्णव [विष्णु] पुराण २३०००, (४) वायवीय पुराण २४००० (५) भागवत पुराण १८०००, (६) नारद पुराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९००० (८) अग्निपुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण, १४५००, (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण १८०००, (११) लिङ्ग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८१०००, (१४) वामन पुराण १००००, (१५) कूर्म-पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १४०००, (१७) गरुड़ पुराण १९०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२२००।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(३) स्वयं वायु पुराण के अध्याय १०४ में पुराण-सूची दी गई है। पर उसमें अठारह पुराणों का उल्लेख करने पर भी वास्तव में १६ पुराणों के ही नाम मिलते हैं। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि एक श्लोक किसी तरह लिखने से रह गया है। इसकी क्रम संख्या भी अन्य पुराणों से बहुत भिन्न है—

(१) मत्स्य पुराण १४०००,(२)भविष्य पुराण १४५००, (३)मार्कण्डेय पुराण ९०००, (६) ब्रह्मवैवर्त पुराण १२०००, (७) ब्रह्म पुराण १००००, (८) वामनपुराण १००००, (९) आदि पुराण १०६००, (१०) वायु पुराण २३००० (११) नारदीय पुराण २३०००, (१२) गरुड़ पुराण १९०००, (१३) पद्म पुराण ५५०००, (१४) कूर्म पुराण १७०००, (१५) सौकर (वाराह) पुराण २४०००, (१६) स्कन्द पुराण ८१०००।

इस सूची में बिष्णु, अग्नि और लिङ्ग पुराणों के नाम नहीं हैं। लेखक की भूल मानकर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक श्लोक के छूट जाने से दो पुराणों का नाम रह गया है। तो भी इस सूची में आदि पुराण को शामिल किया गया है, इससे यह स्पष्ट है, वायु-पुराण के रचयिता ने प्रचलित १८ पुराणों में से किसी एक को अवश्य ही हटा दिया है।

(४) अग्नि-पुराण की सूची की क्रम-संख्या अन्य पुराणों से मिलती है, पर इसमें जो श्लोक संख्या दी है उसमें अन्य पुराणों से बहुत अधिक अन्तर है। पाठक स्वयं मिलान करके देखें—

(१) ब्रह्म पुराण २५०००, (२) पद्मपुराण १२०००, (३) विष्णु-पुराण २३०००, (४) वायु पुराण १४०००, (५) भागवत पुराण १८००० (६) नारदपराण २५०००, (७) मार्कण्डेय पुराण ९०००, (८) अग्नि पुराण १२०००, (९) भविष्य पुराण १४००० (१०) ब्रह्मवैवर्त १८०००, (११) लिंग पुराण ११०००, (१२) वाराह पुराण २४०००, (१३) स्कन्द पुराण ८४०००, (१४) वामनपुराण १००००, (१५) कूर्म पुराण १८००० (१६) मत्स्य पुराण १३०००, (१७) गरुड़ पुराण १८०००, (१८) ब्रह्माण्ड पुराण १२०००।

(५) वामन पुराण में पुराण-सूची केवल एक श्लोक में दे दी है और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह भी बड़े अद्‌भुत ढ़ंग से, अन्यथा अठारह पुराणों का नाम एक श्लोक में किसी प्रकार आना संभव न था—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्ठयं।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक पृथक ॥

"अर्थात् १८ पुराणों में से दो के नाम 'म' से आरम्भ होते हैं (मत्स्य और मार्कण्डेय), दो 'भ' से आरम्भ होते है (भागवत और भविष्य), तीन 'ब्र' से हैं (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त), चार 'व' से हैं (वाराह, वायु, वामन और विष्णु)' शेष सात पुराणों के प्रथम अक्षर इस प्रकार हैं—अ=अग्नि, ना=नारद, प=पद्म लि=लिङ्ग, ग=गरुड़, कू=कूर्म, स्क=स्कन्द।

(६) विष्णु पुराण में यह सूची संक्षेप में दी गई है, पर उसने क्रम—संख्या का निर्देश बहुत स्पष्ट रूप से किया है—

ब्राह्म पाद्म, वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथा न्यन्नारदीयं च मार्कण्डेय च सप्तमम् ॥
आग्नेय मष्टमं चव भविष्यन्नवमं स्मृतम्।
दशमं चैव ब्रह्मवैवर्त लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंचदशं तथा ॥
मात्स्यंच गारुड़ं चैव ब्रह्माडं च ततः परम।
महापुराण न्येतानि ह्यष्टादश महामुने ॥

(वि०पु० ३—६—२१से२४)

कुछ विद्वानों का मत है कि विष्णु पुराण में जो क्रम संख्या दी गई है वह प्राचीनता की दृष्टि से है। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म पुराण सबसे प्राचीन और ब्रह्माण्ड सब से अंतिम समय का रचित कहा जायगा।

(७) मार्कण्डेय पुराण के १४४ वें अध्याय में ८ से ११ तक विष्णु पुराण के ये चारों श्लोक ज्यों के त्यों उद्‌धृत करके पुराण-सूची दे दी गई है और मार्कण्डेय पुराण का सातवां स्थान स्वयं स्वीकृत किया है।

(८) स्कन्द पुराण के केदार खण्ड में १८ पुराणों की उपर्युक्त सूची

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका वर्गीकरण भी किया गया है। उसमें कहा गया है कि "१८ पुराणों में से दस शैव, चार वैष्णव, दो ब्राह्म और दो अन्यों के हैं। शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारद और गरुड़—ये चार वैष्णव हैं, ब्राह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के हैं। अग्नि पुराण अग्नि की तथा ब्रह्मवैवर्त सूर्य की महिमा से पूर्ण हैं।"

पुराणों की इन विभिन्न सूचियों में 'वायु-पुराण' को स्पष्टतः १८ पुराणों में माना गया है और उसकी श्लोक संख्या २३ या २४ हजार बतलाई गई है जो कि इस समय लगभग ११ हजार श्लोकों का ही मिलता है। 'मत्स्य पुराण' के मतानुसार इस पुराण में 'वायु देव ने श्वेत कल्प के प्रसंग में अनेकानेक धर्म प्रसंगों के साथ रुद्र महात्म्य भी विस्तार से सुनाया है।'

सबसे मुख्य ध्यान देने का विषय तो वायुपुराण तथा शिवपुराण के अन्त में दी गई 'वायवीय संहिता' की विषय सूचियाँ हैं। जब कि वायवीय संहिता के अधिकांश में वही दक्ष, सती, पार्वती की कथा अथवा शिव-दीक्षा, पाशुपत व्रत, भस्म महिमा, शिव लिंग पूजा से महापापों का नाश, शैवावरण पूजा, योग मार्ग आदि फुटकर विषय ही अधिक पाये जाते हैं, वायुपुराण में पुराणों के लक्षणों के उपयुक्त सृष्टि रचना, कल्प और युग वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन सृष्टि का भूगोल, देवता, सृष्टि, राजाओं के वंशों आदि विषयों का विद्वतापूर्वक वर्णन किया गया है। हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि वायुपुराण के रचयिता ने सृष्टि रचना और उसके क्रम-विकास का जो वर्णन किया है वह अन्य कई पुराणों के तत्सम्बन्धी वर्णन की अपेक्षा अधिक बुद्धिसंगत है और यदि उसकी रूपक तथा अलंकारयुक्त शैली की जाँच वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से की जाय तो उसमें कितने ही वैदिक सृष्टि-विज्ञान के तत्वों का पता लग सकता है। पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता और उपयोगिता यही मानी गई है कि वे वेदों के गूढ़ तत्वों और रहस्यवादी वर्णनों को विशद व्याख्या के साथ रोचक कथाशैली में उपस्थित करते हैं जिससे सामान्य स्तर के पाठक भी उनको समझ सकते हैं। 'वायु पुराण' इस दृष्टि से निस्सन्देह अन्य कितने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही पुराणों की अपेक्षा उच्च—श्रेणी में रखे जाने योग्य है।

वायुपुराण की तर्क संगतता-—

यद्यपि परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए वायुपुराण के आरम्भ में उसे भी ब्रह्माजी, बायुदेव, व्यास जी, सूत जी, आदि का रचा हुआ कहा है, पर आगे चलकर जब वास्तविक विवेचन आरम्भ हुआ है तो रचयिता ने जगह-जगह ऐसे भाव प्रकट किये हैं जिनसे प्रकट होता है कि यह पुराण अन्य ग्रंथों की तरह किसी विशेष व्यक्ति की रचना है। सृष्टि रचना का विषय आरम्भ करते ही तीसरे अध्याय के अंतिम श्लोक में उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया है—

प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्याच पुनः प्रवृत्तिः ।।
तच्छास्त्र युक्तया स्वमतिप्रयुक्तात् समस्तमविष्कृत धी घृतिभ्यः ।।
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतम् यद्यथातथं तच्छ्रणुतोच्यमानम् ।।

अर्थात् "प्रकृति की मूल अवस्था में कारणों की कैसी स्थिति रहती है, तथा फिर कैसे रचना की प्रवृत्ति होती है ये सब बातें हर शास्त्र के मतानुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानों के लिये प्रकाशित कर रहे हैं। हे विप्रो! पूर्वकाल में ऋषियों ने जैसे कहा है मैं भी उसी प्रकार कह रहा हूं, आप लोग ध्यान से सुनिये ।।"

जगत के निर्माण और इतिहास की घटनाओं के सम्बन्ध में कोई लेखक यह तो कह नहीं सकता कि मैं इनको अपने मन या बुद्धि से विचार कर या गढ़ कर कह रहा हूँ। उनका तो कोई न कोई आधार ढूँढ़ना और बतलाना पड़ेगा। लेखक का काम तो यह है कि वह उन तथ्यों को अपनी विशेष शैली में अपने दृष्टिकोण के अनुसार विवेचना करता हुआ पाठकों या श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित करे। इस लिये वायुपुराणकार का यह कथन सर्वथा स्वाभाविक और आवश्यक है कि मैंने जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना से नहीं लिख दिया है वरन् उसकी सामग्री विभिन्न माननीय शास्त्रों और प्राचीन विद्वानों द्वारा रची गाथाओं आदि से एकत्रित की गई है। इस बात को प्रकट करके तथ्यों की जिम्मेदारी प्राचीन शास्त्रों पर और वर्णनशैली तथा विवेचन-प्रणाली की अपने ऊपर ले ली है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आगे जहाँ राजवंशों का वर्णन आया है वहाँ भी लेखक ने इस पुराण की रचना का समय साफ तौर पर दे दिया है। 'अनुषङ्गपाद समाप्ति' शीर्षक अध्याय में पाण्डवों की आगामी पीढ़ियों का जिक्र करते हुये वे कहते हैं—

"राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमशील था। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के किलों को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द ! यही परम धर्मात्मा राजा इस समय राज्य कर रहा है। उसी के राज्य काल में आपने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घ-सत्र (यज्ञ) का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है।"

यों जनता की धार्मिक मान्यता तथा श्रद्धा को सुदृढ़ रखने के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थों को किसी देवता या दैवी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ बतलाया गया है, पर 'वायु-पुराणकार' ने उस परम्परा का पालन करते हुये भी अपनी रचना को अन्य ग्रन्थों की तरह मानवीय घोषित कर दिया है, यह उनका एक प्रशंसनीय गुण ही माना जायगा।

विकास-सिद्धान्त का प्रतिपादन—

प्राचीन ग्रन्थों में से अधिकांश का यह मत प्रकट होता है कि 'सतयुग' अर्थात् सृष्टि का आदिम-काल सभ्यता, संस्कृति, विद्या-बुद्धि, आचार-विचार आदि की दृष्टि से सर्वोत्तम समय था और उसके पश्चात् सब विषयों में हीनता आती चली गई। पर 'वायु-पुराण' का सतयुग वर्णन पढ़ने से ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता। प्रकट में उन्होंने भी उसे श्रेष्ठ बतलाया है, पर उस समय के प्राणियों का जो कुछ चित्रण किया है, उसे एक विचारशील पाठक इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि उस समय के प्राणी एक वनमानुष से भी कम विकसित अवस्था में थे और उस समय वे मनुष्य न होकर किसी और ही जाति के प्राणी हों तो भी आश्चर्य नहीं। प्रकर्ण ८ (मानव सभ्यता का आरम्भ) के ४५वें श्लोक से आगे कहा गया है—

"उस समय कृतयुग के आरम्भ काल में वे प्राणी नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे। उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होती थी। वे इच्छानुसार इधर-उधर घूमते रहते थे। पृथ्वी से स्वयमेव उत्पन्न होने वाले पदार्थों को खाते थे। उस समय मूल, फल, पुष्प का अभाव था, पर उनको पृथ्वी के रसमय पदार्थ मिल जाते थे। उनको धर्म-अधर्म का विचार न था, कोई भेदभाव भी न था। वे सब आयु, रूप और अनुभूति में समान थे। उनमें किसी प्रकार का संघर्ष, प्रतिद्वन्दिता और क्रम का प्रश्न नहीं था। वे समुद्रों और पर्वतों के निकट रहा करते थे। उनका कोई स्थायी घर नहीं था। उस समय अधर्म करने वाले कोई नारकीय जीव न थे न कोई उद्‌भिज पदार्थ था। यद्यपि वे अपने शरीर का संस्कार (स्नान आदि) नहीं करते थे तो भी स्थिर-यौवन थे। वे जन्म और आकृति में समान थे, मृत्यु भी साथ ही होती थी। उनके सब व्यवहार स्वाभाविक होते थे, बुद्धि-पूर्वक नहीं। उनकी प्रवृत्ति शुभ और अशुभ कर्मों में नहीं होती थी, क्योंकि उस समय शुभ और अशुभ का विभाजन था ही नहीं। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी, न सङ्कर-दोष ही था। वे परस्पर अकाम और अनिच्छापूर्वक व्यवहार करते थे। उनमें लाभ-अलाभ, मित्र-अमित्र, प्रिय-अप्रिय न थे, वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे। एक दूसरे के प्रति किसी की कोई इच्छा या स्वार्थ न था, न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी।"

यों कल्पना और भावुकता का संयोग करके इन प्राणियों को देवता और योगियों के समान बतलाया जा सकता है, पर यदि प्रकृति के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से विचार किया जाय तो बुद्धि-तत्व का, जिसके द्वारा मनुष्य वास्तव में मनुष्य बन सका है, उनमें सर्वथा अभाव था और वे उसी अवस्था में रहते थे जिसमें इस समय छोटे पशुओं या कीड़े-मकोड़ों को रहते देखते हैं। जीव-सृष्टि के आरम्भ में इससे अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती।

त्रेतायुग का वर्णन करते हुये पुराणकार ने लिखा है कि "उसमें स्थूल जल-वृष्टि के आरम्भ हो जाने से वृक्ष उत्पन्न हो गये और उन्हीं से प्राणी अपना निर्वाह करने लगे। उन पेड़ों से एक प्रकार का रस या मधु निकलता था उसी को खाकर वे जीवित रहते थे। अब उनमें राग-द्वेष, लोभ के भाव भी उत्पन्न होने लगे और उन्होंने जबर्दस्ती उन वृक्षों पर अधिकार जमाना आरम्भ किया। इससे अनेक स्थानों पर वे वृक्ष नष्ट हो गये और लोग भूख-प्यास का कष्ट पाने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लगे। अब उनको शीत और गर्मी से भी कष्ट होने लगा, इससे उन्होंने घर बनाने आरम्भ किये। वृक्ष की शाखायें जिस प्रकार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और इधर-उधर फैली रहती हैं उसी प्रकार काठ फैलाकर उन लोगों ने घर बनाये। वृक्ष-शाखाओं की तरह बनाये जाने के कारण ही उनका नाम 'शाला' पड़ गया। जब वृष्टि से नदी, नाले, गड्ढे भर गये तो पृथ्वी रसवती होकर शस्य-शालिनी हो गई। बिना जोते बोये चौदह प्रकारकी वनस्पतियाँ गाँवों के समीप और जङ्गलों में उग आईं। उन्हीं का उपयोग करके उस समय के लोग निर्वाह करने लगे। पर जब उनमें भेदभाव और स्वार्थपरता का भाव बढ़ा तो लोग फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पत्ते भी तोड़ लेते थे। इससे वे सब वनस्पतियाँ भी क्रमशः नष्ट हो गई और लोग फिर भूख-प्यास से व्याकुल होने लगे। तब लोगों ने प्रयत्न करके वनस्पतियों के बीजों का पता लगाया और स्वयम् उनको जोत-बोकर उत्पन्न करने लगे। फिर उनमें कर्म-विभाग भी होने लगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न वर्णों की स्थापना की गई।"

वैदिक तत्वों और पौराणिक उपाख्यानों का समन्वय—

पुराणों में देवताओं, ऋषियों, राजाओं के सम्बन्ध में जो घटनायें और कथानक दिए गये हैं, वे एक निष्पक्ष पाठक को बहुत ही अतिरंजित और अनेक बार असम्भव से ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण अन्वेषण करने वाले विद्वानों ने यही बतलाया है कि पुराणकारों ने अलौकिक वैदिक तत्वों को रूपक तथा अलंकार की शैली में ढालकर लौकिक-कथाओं का रूप दे दिया है। देवासुर-संग्राम की कथायें इसका स्पष्ट प्रमाण है। इन्द्र और वृत्रासुर के संघर्ष को वेदों में भी कुछ अंशों में घटनात्मक ढङ्ग से लिया है, पर उनके विभिन्न स्थलों का मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका आशय सूर्य की शक्ति द्वारा बादलों से वर्षा कराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। 'शतपथ ब्राह्मण' में एक स्थान पर इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया गया है—

न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन कश्चनास्ति ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सः ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थात् "हे इन्द्र ! तुम कभी किसी से भी नहीं लड़े, तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। तुम्हारे युद्धों का जो वर्णन किया जाता है। वह सब 'माया' बनावटी या काल्पनिक है। न आज कोई तुम्हारा शत्रु है और न पहले कोई तुम से लड़ा था।"

पर पुराणकारों ने तो उसका वर्णन दो राजाओं के सांगोपांग युद्ध की तरह इतना बढ़ा-चढ़ाकर किया कि वे सब वास्तविक व्यक्ति ही जान पड़ने लगे। यही बात महिषासुर और दुर्गा के संग्राम की है, जिसका वर्णन सप्तशती, में बड़ी मनोमोहक लच्छेदार भाषा में किया गया है। उसमें कहा गया है कि महिषासुर ने अत्यन्त प्रबल होकर देवों को भगाकर इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया। फिर समस्त देवताओं की शक्ति को देवी के रूप में प्रकट करके उसके द्वारा महिष-बध कराया गया। पर वैदिक सूक्तों में 'महिष' को एक तम-आवरण माना गया है जो आरम्भिक अवस्था में सूर्य के तेज को रोके रहता है और जब केन्द्र में सौर-शक्ति पूर्ण रूपेण एकत्रित होकर परिधि की ओर बढ़ती है तो वह तम-आवरण या 'महिष' स्वयं ही नष्ट हो जाता है। 'ऋग्वेद' में कहा है—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणदयानती।
व्याख्यान् महिषो दिनम् ॥ [१०।१८९।२]

अर्थात् "सूर्य के भीतर से जोज्यति या प्रकाश निकलता है, वह प्रकाश इनके प्राण-अपान से प्रकट हुआ है। उसके निकलने से 'महिष' [अन्धकार] नष्ट हो जाता है और सूर्य भगवान समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।"

इसी प्रकार पुराणों में पुरुरवा, उर्वशी नहुष, ययाति, तुर्वश आदि राजाओं की बड़ी-बड़ी विचित्र कथायें दी गई हैं और उन्हीं को बाद के समस्त प्रमुख भारतीय राजवंशों का स्रोत बतलाया गया है। पर वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि ये सब आकाशीय पदार्थ हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में बार-बार इन सब के नाम आये हैं। पुराणों के लेखानुसार ययाति के पाँच पुत्र थे जिनके नाम यदु, तुर्वस, पुरु, द्रुह्य और अनु थे। इन्हीं से भारत के चन्द्रवंश, यादव, कौरव आदि चले हैं। इन सब नामों को 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र में आकाशीय रूप बतलाया गया है—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषस्यः । [१।१०८।८]

अर्थात् 'जो इन्द्र और अग्नि यदु, तुर्वश, द्रुह्य, अनु और पुरु में स्थिति करते हैं।'

इन्द्रो मायाभि पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्य शता दश । [६।४०।१८]

अर्थात् "इन्द्र माया से पुरु बन जाते हैं। उनके रथ में सहस्रों अश्व जुते होते हैं।"

"उत्त्वा तुर्वशायदु अस्नातारा शचीपति ।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् । (४-३०-११७)

अर्थात् "तुर्वश और यदु को शचीपति इन्द्र पार कर गया।"

इस प्रकार के मिलते-जुलते प्रसंग वेद-पुराणों में अनगिनती मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि या तो पुराणकारों ने वेदों के ग्रह-नक्षत्र सम्बन्धी विवरणों को राजवंशों का रूप दे दिया है अथवा उन्होंने अपने राजवंशों के वर्णन के लिये वैदिक नक्षत्रों की नामावली की नकल की है। जो कुछ भी हो विद्वानों की दृष्टि में इसमें कोई दोष नहीं है। पुराण-रचना का उद्देश्य ही वेदों के गूढ़ तत्वों को कथा और दृष्टान्तों का सरल रूप प्रदान करके उसका साधारण जनता में प्रचार करना है। इस सम्बन्ध में वेदों और पुराणों के एक मननशील विद्वान ने लिखा है—

"कहा गया है कि जैसे ही अव्यक्त से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये उनके मुखों से वेद और पुराण दो वाङ्मय तत्वों का आविर्भाव हुआ। वेद निगम तथा पुराण आगम है। वेद विश्व का केन्द्राधिष्ठित तत्व है। वह अति गूढ़ विवेचन के रूप में संगृहीत होता है। महर्षियों ने उसे वैदिक संहिताओं के रूप में प्राप्त किया है। दूसरा वह ज्ञान है जो लोकव्यापी-जीवन से सम्बन्ध रखता है, जिसका उद्भव लोक-जीवन की महती व्याख्या से होता है। वही पुराण या आगम है। पुराण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कहा गया है—'पुरां नवं भवति।' अर्थात् जो वाङ्मय एक ओर पुरा या पुरातन सृष्टि विद्या (वेदाविद्या) से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये-नये रूप में जन्म लेने वाले लोक-जीवन से भी सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण या आगमशास्त्र है। भारतीय साहित्य में पुराण वाङ्मय की विचित्र स्थिति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। लोक-तत्व और लोक-जीवन की जैसी सुरक्षा इसमें है वैसी अन्यत्र नहीं है।

योग द्वारा शारीरिक और आत्मिक कल्याण—

वायु-पुराण में योग का महत्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उसकी प्रेरणा दी है। उसमें कहा गया है—"जितनी तरह की तपस्याएँ, व्रत, नियम और यज्ञफल आदि हैं, प्राणायाम का फल भी उनमें से किसी से कम नहीं है। सौ सम्वतसर तक प्रत्येक मास कुश के अग्रभाग से जलबिन्दु पान करने का जो फल होता है, वही फल प्राणायाम करने से प्राप्त हो जाता है। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है, धारणा से पापों का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।"

आगे चलकर कहा है—"शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रमाद इन चारों को प्राणायाम का उद्देश्य समझिये। शान्ति का आशय है इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किये हुए अथवा पिता-माता द्वारा, किंवा भाइयों द्वारा किये हुये भयंकर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का नाश होना। प्रशान्ति उस तपस्या को कहते हैं जिससे इस लोक और परलोक में हित के लिये लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का संयम हो। जब प्रतिबुद्ध योगी को ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियों की तरह चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारकादि और भूत, भविष्य, वर्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो जाय उसे दीप्ति कहते हैं। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पंच-वायु जिससे प्रसन्न हों उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम-धर्म हुआ। यह तुरन्त फलदायक और काल-भय का निवारक है।"

इस प्रकार पुराणकार ने प्राणायाम को बहुत महत्व दिया है और यथा-संभव उसको व्यवहारिक विधि का ज्ञान कराने की चेष्टा की है। इसके लिए उन्होंने साधक को स्पष्ट चेतावनी दे दी है कि उसे खूब सोच-समझकर और पूर्ण जानकारी प्राप्त करके समस्त नियमों का पालन करते हुये प्राणायाम करना चाहिये। जो अनियम से अथवा गलत तरीके से प्राणायाम करेगा उसे जड़ता, बहिरापन, मूकत्व, अन्धापन, स्मृति-लोप, वृद्धता आदि अनेक प्रकार के रोग

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब दुष्परिणाम अज्ञानपूर्वक योग कर्म में प्रवृत्त होने से होते हैं। इस प्रकार की चेतावनी अन्य कई ग्रन्थों में भी देखने में आती है, पर इस पुराण में इन रोगों की जो चिकित्सा दी गई है, वह सर्वत्र देखने में नहीं आती। कोई अनुभवी योगी ही उसका विधान कर सकता है। प्राणायाम जनित दोषों की चिकित्सा बतलाते हुये कहा है—

"प्राणायाम से उत्पन्न होने वाले दोषों को शान्त करने के लिये स्निग्ध पदार्थ मिश्रित गर्म यवागू (जौ की पतली लपसी बिना नमक या मीठे की) कुछ काल तक पीड़ित स्थान पर धारण करे। इससे वात गुल्म नष्ट होता है। गुदावर्त को दूर करने को यह चिकित्सा करे कि दही अथवा यवागू का भोजन करे और वायु ग्रन्थि का भेदन करके उसे ऊपर की तरफ चलावे। अगर इससे कष्ट न मिटे तो मस्तक में धारणा करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँपकँपी हो जाय, वह शरीर को आसन द्वारा स्थिर कर मन में किसी पर्वत की धारणा करे। छाती का दर्द होने पर उस स्थान या कण्ठ देश में वैसी ही धारणा करे। बोली रुक जाने पर वचन में और बहरापन हो तो कानों में धारणा करे। प्यास का कष्ट होने से स्नेहाक्त प्रज्ज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं के फल की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करे। क्षय, कुष्ठ, कीलसादि राजस रोगों में सात्विकी धारणा करे। जिस-जिस स्थान में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्विकी धारणा करे। जो भयभीत हो जाय उसके मस्तक पर लकड़ी की कील रखकर धीरे-धीरे खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट आती है। अगर साँप ने काट लिया हो तो हृदय और उदर में धारणा करे। अगर विषाक्त पदार्थ सेवन करने में आ गया हो, तो हृदय में विशल्या धारणा करे। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी ऐसी चिकित्सा के लिये हजार घड़े तक से स्नान करते हैं। कण्ठ तक जल में घुसकर मस्तक में धारणा करे। आक (मदार) के सूखे पत्ते की दोनियाँ बनाकर दीमक की मिट्टी को घोलकर पी जाय। योग सम्बन्धी दोषों की चिकित्सा ऐसी ही आन्तरिक क्रिया द्वारा की जाय।"

यह तो हुई योगाभ्यास में भूल के कारण उत्पन्न हो जाने वाले विकारों और दोषों की बात। योग में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक भाव-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नाओं का महत्व अधिक है, इसलिये उसके दोषों की चिकित्सा भी मानसिक ढंग की होनी चाहिये। योगी की धारणा शक्ति निस्सन्देह प्रभावशाली होती है और वह शरीर की आरोग्यप्रदायक शक्ति को किसी स्थान पर संलग्न कर सकता है। इसलिये योगी के शारीरिक कष्ट सामान्य उपायों से ही दूर हो जाते हैं।

मानसिक विकारों का प्रतिकार—

शारीरिक व्याधियों की अपेक्षा भी मानसिक विकार बड़े अनिष्टकारी और मनुष्य का पतन करा देने वाले होते हैं। शरीर के कष्टों को सहते हुए जीवन के आवश्यक कार्यक्रमों को किसी प्रकार पूरा किया जा सकता है, पर मनोविकारों में ग्रस्त प्राणी का तो अपने ऊपर से नियंत्रण ही हट जाता है और वह शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते हुये भी निकम्मा या हानिकर हो जाता है। इस सम्बन्ध में विवेचन करते हुये पुराणकार लिखते हैं—

"तत्व-दृष्टि से योगियों के उपसर्गों (व्याधिओं) पर विचार करने से विदित होता है कि यदि मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री-प्रसंग की अभिलाषा, पुत्रोत्पादन इच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हविर्यज्ञ आदि तपस्याएँ, कपट, धनार्जन, स्वर्ग की स्पृहा आदि वस्तुओं में योगी आसक्त हो गया तो वह अविद्या के वशीभूत हो जायगा। इसलिए इनको उपसर्ग समझ कर निरन्तर इनसे बचने का उपाय करना चाहिए। दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओं का दर्शन सिद्ध का लक्षण कहा गया है। विद्या, कवित्व, शिल्प नैपुण्य, सब भाषाओं का बोध, विद्या का तत्वज्ञान, सुनने योग्य शब्दों को सौ योजन दूर से भी सुन लेना, यक्ष, राक्षस गन्धर्व आदि का दिव्य-दर्शन आदि योगियों के लिये विघ्नस्वरूप हैं। योगी जब सब दिशाओं में देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, पितरों को देखने लगते हैं, तब वे उन्मत्त हो जाते हैं।

आगे चलकर फिर कहा गया है कि योगियों की आठ प्रकार की सिद्धियाँ कही गई हैं जिन को योग के आठ ऐश्वर्य समझना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नामक तत्व पंचभूतात्मक है, निरवद्य भी पंचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहंकार एवं सूक्ष्म इन्द्रिय, मन और अहंकार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति-अष्ट ऐश्वर्यों की यह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्रिविधि प्रवृति है। त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं वे सब ऐसे योगी के वश में होते हैं। वे तीनों लोकों के पदार्थ को पा सकते हैं, इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं। यहाँ तक कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि प्राकृतिक इन्द्रियों के विषय भी योगी की इच्छानुसार प्रवर्तित होते रहते हैं। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, संयोग क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ भी नहीं होते, "पर इतना सब होने पर भी यदि वे ब्रह्मज्ञान का अवलम्बन करके अपवर्ग नामक परम पद की साधना नहीं करते तो वे रागवश राजस-तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं। उनमें से जो सुकृत करते हैं वे उसके फलस्वरूप स्वर्गलाभ करते हैं। वे फलभोग करने की उपरान्त पुनः भ्रष्ट होकर मानव-जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है और उस ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये।"

वास्तविकता यही है कि मनुष्य ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति किसी भी मार्ग पर चले जब तक उसके विचारों में शुद्धता, पवित्रता, निस्वार्थता और सात्विकता नहीं आयेगी, उसे किसी चिरस्थायी फल की आशा नहीं हो सकती। थोड़े समय तक हठपूर्वक इन्द्रियों को रोक कर कोई साधन करके विशेष शक्ति प्राप्त कर लेना और बात है तथा मन और अन्तःकरण को क्रमशः बिल्कुल निर्मल और शुद्ध बनाकर ईश्वरीय आदेश के अनुकूल मार्ग को ही पूरी तरह ग्रहण करना दूसरी बात है। पहली श्रेणी के व्यक्ति थोड़े समय के लिये कोई चमत्कार-सा दिखलाकर दुनियाँ को प्रभावित कर सकते हैं, नामवरी, यश और प्रशंसा भी प्राप्त कर सकते हैं, पर उनकी ये चीजें ज्यादा समय तक टिक नहीं सकतीं। इतना ही नहीं ऐसे व्यक्तियों में से कितने ही बाद में स्वार्थ और विषयों की लालसा में फँसकर पतित भी हो जाते हैं। उनकी वही गति होती है जैसा कि गीता में कहा है—

कर्मेन्द्रिय संयम्य य आस्ते मनसास्मरन।
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा मिथ्याचार स उच्यते॥

जीवन के उत्थान और अध्यात्म क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करने का मार्ग शुद्ध और सत्य भावों से धर्मानुष्ठान करना है। जो व्यक्ति मन के भीतर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कामनाएँ रखकर साधन-भजन करते हैं उनको सिद्धियाँ और चमत्कार की शक्ति प्राप्त कर लेने पर भी अन्त में गिरना ही पड़ता है।

अहिंसा का प्रतिपादन—

धार्मिक-जीवन में हिंसा और अहिंसा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। यों तो हिंसा प्राणी जगत का एक सामान्य नियम है और "जीवो जीवस्य भोजनम्" की लोकोक्ति प्रचलित हो गई है। पर यह नियम उन विवेकशून्य प्राणियों के लिये है जिनको ईश्वर ने ज्ञान रूपी महान तत्व प्रदान नहीं किया है। पर जिस 'मनुष्य' प्राणी के लिये भगवान ने ज्ञान-विज्ञान-अध्यात्म के सब रास्ते खोल दिये हैं उसके लिये सर्वोच्च आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का ही हो सकता है। जब समस्त संसार में एक ही आत्म-तत्व व्याप्त है और प्राणीमात्र एक ही विश्व-व्यापी चैतन्य तत्व से उद्भूत हुआ है तब कोई ज्ञानी व्यक्ति किस प्रकार जीव हिंसा का समर्थन कर सकता है। इस देश के कुछ धर्माचार्यों ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" लोकोक्ति का सहारा लेकर यज्ञादि में हिंसा का प्रतिपादन किया है, पर उनकी इस अनीतिमूलक प्रणाली के फलस्वरूप यज्ञ-कर्म का विरोध होने लगा और अन्त में ऐसा समय आया जब इस देश से यज्ञ-प्रथा का लोप ही हो गया। 'वायुपुराण' में इस समस्या की गम्भीरपूर्वक विवेचना की है और स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय किया है कि यज्ञादि में जीव हिंसा कदापि धर्मकार्य नहीं हो सकती। त्रेता युग में यज्ञ का प्रचलन होने का वर्णन करते हुये पशुबलि के सम्बन्ध में उसमें यह कथानक मिलता है—

"जब त्रेता में वृष्टि के उपरान्त सभी प्रकार की औषधियाँ पृथ्वी पर पैदा हो गईं, लोग घर द्वार, आश्रम और नगर बनाकर रहने लगे, तो विश्व-भोक्ता देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिये वेद संहिताओं और मंत्रों का प्रचार कर यज्ञ की प्रथा प्रचलित की। उस समय अश्वमेध यज्ञ का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सभी महर्षिगण आकर उसमें सम्मिलित हो गये, और मेध्य पशुओं के द्वारा यज्ञ का आरम्भ सुनकर सभी लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुये। जब सभी पुरोहितगण उस निरन्तर चलने वाले यज्ञ-कर्म में व्यस्त हो गये, यज्ञ में भाग लेने वाले देवता और महा-त्मागण आवाहित होने लगे, ठीक उसी समय यज्ञ-मंडल में समागत महर्षिगण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्वर्यु गण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत देखकर उन पशुओं की दीनता पर करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि 'यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म कार्य करने के इच्छुक तुम यह महान अधर्म कार्य कर रहे हो। हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है। इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो। यह पशु हिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो। हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षय फलदायी होगा। उन यज्ञ-बीजों से तुम यज्ञ आरम्भ करो जिनमें हिंसा का नाम नहीं है। हे इन्द्र ! प्राचीनकाल में बीस वर्ष पुराने रखे हुये बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वह महान धर्ममय यज्ञाराधन हैं।

इस प्रकार उन तत्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर तथा जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किसके द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये। इन्द्र के साथ विवाद में पड़े उन मुनियों ने यह समझौता किया कि इस विषय में राजा वसु की सम्मति ग्रहण की जाय।

उन सबने राजा बसु के पास जाकर कहा—हे परम बुद्धिमान राजन् ! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र और स्वयं महामहिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आपने यज्ञों की विधि किस प्रकार की देखी है ? इस बात को सुनकर राजा ने उचित-अनुचित का विचार न करके केवल ग्रन्थों के यज्ञ विषयक वचनों को स्मरण करके यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रों का कथन है कि मेध्य पशुओं द्वारा अथवा बीजों और फलों द्वारा यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी, महर्षियों के द्वारा अविष्कृत मंत्र-समूह हिंसा के द्योतक हैं और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है। राजा बसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने कहा—'हे राजन् ! तू राजा होकर भी ऐसी मिथ्या बात कह रहा है, अतः चुप रह।'

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने एक भवन की ओर देखा और कहा 'अब तू रसातल में प्रवेश कर।' मुनियों के ऐसा कहते ही राजा वसु, जो आकाशचारी था वसुधा तल पर आ गया। अतः पण्डित व्यक्ति को भी धर्म का निर्णय करने में बहुत सतर्क रहना चाहिये। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ़ है। महर्षियों ने जीव-हिंसा को धर्म का द्वार नहीं माना है।"

यद्यपि अधोगति में पड़े जीवों के लिये हिंसा का सर्वथा त्याग और अहिंसा के उच्च आदर्श का पालन बड़ा कठिन है, तोभी धर्म कार्यों में हिंसा का प्रवेश कदापि वांछनीय नहीं कहा जा सकता। किसी एक व्यक्ति के हिंसा करने से उसका प्रभाव आस-पास के थोड़े लोगों पर ही पड़ता है और उसे कोई महत्व नहीं दिया जाता, पर धर्म-कार्य में हिंसा होने से उसे एक प्रमाण की तरह मान लिया जाता है और समस्त समाज के लिये ही एक दुष्प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होने का मार्ग खुल जाता है। अतः यज्ञों के रूप में जीव हिंसा का विधान निस्सन्देह, क्रूरता और अधार्मिकता का परिचायक है और इससे मनुष्य की निम्न वृत्तियों को प्रोत्साहन मिलकर उसका पतन ही होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

प्राचीन समय में ज्ञान-विज्ञान के सम्बन्ध में जितनी खोज की गई थी वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है। उसी के आधार पर आज का विज्ञान चमत्कारी अविष्कार कर रहा है। अग्नि और जल द्वारा भाप का इंजिन बनाकर रेल चलाना निस्सन्देह बुद्धिमत्ता का प्रमाण है, पर जिन मनुष्यों ने दावानल के भयंकर अग्निकाण्ड में से थोड़ी अग्नि लेकर उसे गृहोपयोगी रूप में प्रयोग किया वह भी कम प्रशंसा के पात्र नहीं है। इसी प्रकार वर्तमान-युग में अणु-बम एक युग परिवर्तनकारी अविष्कार है, पर जिन भारतीय मनीषियों ने कई हजार वर्ष पहले यह घोषित कर दिया था कि संसार के प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण परमाणु हैं और वही सृष्टि-प्रक्रिया का मूल आधार है वे ही परमाणु-विज्ञान के आदि पुरुष माने जायेंगे। वायु-पुराणकार की दृष्टि भी सृष्टि-प्रक्रिया और उससे निर्मित विभिन्न प्रकार के पदार्थों के मूल कारण पर रही है। यद्यपि उन्होंने पौराणिक परम्परा के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देवता मानकर उनके रथों, घोड़ों, महलों और दरबारियों का मनोरंजक वर्णन किया है, जिससे जन समूह उनकी ओर आकर्षित हों, पर साथ ही बीच-बीच में विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों का परिचय भी दे दिया है। यद्यपि सूर्य को उन्होंने सर्वसाधारण के ज्ञानानुसार पृथ्वी से बहुत छोटा और चन्द्रमा से आधा प्रकट किया है और लोकरंजन के निमित्त उसमें मुनि, ऋषि गन्धर्व, अप्सरा यातु-धान, सर्प आदि का दरबार लगता भी बतलाया है, पर साथ ही अन्य स्थान पर यह भी प्रकट कर दिया है संसार का एकमात्र और आदि कारण सूर्य ही है। उसमें कहा गया है—

"तीनों लोकों का मूलकारण सूर्य ही है इसमें सन्देह नहीं। देवता, असुर और मनुष्यों से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत सूर्य का ही है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवों का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता है। सूर्य से ही सब उत्पन्न होते हैं और सूर्य में ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल में लोकों की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है। जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु, वर्ष, युग आदि उत्पन्न होकर जिसमें लय को प्राप्त होते हैं, वह सूर्य ही है। सूर्य को छोड़कर और किसी साधन से काल की गणना नहीं की जा सकती। और बिना काल तथा समय के न शास्त्र, न दीक्षा, न दैनिक कृत्य हो सकते हैं। तब न ऋतुओं का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे न फल-फूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न औषधियाँ बढ़ेंगी। संसार को प्रतप्त करने वाले और जल का आहरण करने वाले सूर्य के बिना यहाँ क्या, स्वर्ग में भी देवों का व्यवहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल है, अग्नि है और द्वादशात्म प्रजापति है। ये ही तीनों लोकों के चराचर को प्रतप्त किया करते हैं। सूर्य देव परम तेजस्वी और लोक पालों के आत्मा है ये उत्तम वायु-मार्ग का अवलम्बन करके किरणों द्वारा ऊपर-नीचे, अगल-बगल और सभी जगहों में ताप-दान करते हैं।"

वायु पुराण ने सूर्य के विषय में जो लिखा है वही आधुनिक विज्ञान की खोज से प्रकट हुआ है। सूर्य से ही समस्त ग्रहों ओर उपग्रहों की उत्पत्ति होती है, वही इनमें जीवन और प्राणतत्व की उत्पत्ति का मुख्य हेतु है, वही

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust Delhi and eGangotri Funding : IKS

जगत के सब व्यवहारों को स्थिर रखने का आधार है और अन्त में वही इन सब की प्रलय भी करता है, यही विज्ञान का आधुनिकतम सिद्धान्त है। धर्म शास्त्रों के मतानुसार भी अव्यक्त परब्रह्म का प्रकट रूप सूर्य ही है। वही उत्पत्ति पालन, और प्रलय के कर्ता के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के कार्यों की पूर्ति करता है। इस प्रकार धर्मशास्त्र तथा विज्ञान इस सम्बन्ध में एक मत है कि सृष्टि का मूल आधार सूर्य ही है और यही बात उपरोक्त उद्धरण में वायुपुराणकार ने स्पष्ट शब्दों में कह दी है।

यह भी स्पष्ट है कि उस युग में यंत्र-विद्या का इतना अधिक प्रचार नहीं था कि आजकल की तरह भीमकाय दूरबीनों तथा अन्य ताप-मापक यंत्रों द्वारा दूरवर्ती ग्रहों, ताराओं का आन्तरिक रहस्य जान सकें। स्वयं वायुपुराण ने ज्योतिष सम्बन्धी बातों का पता लगाने के लिये जिन साधनों का वर्णन किया है उनमें यंत्रों का जिकर नही किया है 'ज्योतिमण्डल का विस्तार' शीर्षक प्रकर्ण के अन्त में उन्होंने स्वयं लिखा है—

"ज्योतिर्मण्डल का ठीक-ठीक वर्णन कोई भी मनुष्य चर्म-चक्षुओं से देखकर नहीं कर सकता। बुद्धिमान मनुष्य शास्त्र, अनुमान, प्रत्यक्ष एवं उपपत्ति (युक्ति) द्वारा निपुणतापूर्वक परीक्षा कर इनमें भक्ति और स्रद्धा करे। बुद्धिमान विप्रो ! ज्योति-तत्व के निर्णय में चक्षु, व शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित वे ही पाँच कारण कहे गये हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि पुराण के रचयिता अपनी तर्क बुद्धि और योग शक्ति (एकाग्रता और ध्यान) से सृष्टि मूल रहस्यों को अधिकांश में समझ सके थे। यदि उन्होंने इन विषयों को रूपक, उपमा, दृष्टान्त के आवरण में छिपाकर प्रकट किया है, तो इसका कारण यही है कि वे जनसाधारण को सामने गहन तत्वों अधिक रूप में रखना निरर्थक समझते थे। सामान्य बुद्धि वालों को अत्यन्त सरल रूप में इन तत्वों से परिचित करा देने का काम जैसी युक्ति और चतुरता से इन पुराणकारों ने सम्पन्न किया उस प्रशंसनीय ही कहा जायगा। इनके द्वारा सर्वसाधारण में सैकड़ों वर्षों तक आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक शिक्षा का प्रचार होता रहा और लोगों में धर्म-कर्त्तव्य-बुद्धि जागृत रही।

यह बात दूसरी है कि काल-क्रम से इस क्षेत्र में भी स्वार्थी और कम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

योग्यता वाले लोगों ने प्रवेश किया और अपने स्वार्थ की पूर्ति की निगाह से तरह-तरह की मिलावट करके पुराणों की निर्मल धारा को गँदला बना दिया। स्वार्थीजन सदैव अपना दाव-घात ढूँढ़ते रहते हैं और जहाँ कहीं लाभ का मौका देखते हैं वहीं तरह-तरह के छल-बल, धूर्तता से भीतर घुस कर दोष उत्पन्न करते हैं ओर अपना मतलब पूरा करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी इस कान की भी चिन्ता नहीं करते कि हमारी इस सामयिक स्वार्थपरता के कारण जन-जीवन बहुत समय के लिये पतित और गर्हित हो जायगा वर्तमान समय की राजनीतिक संस्थाओं में इसका उदाहरण भलीभाँति देखा जा सकता है कि किस प्रकार लोग देशभक्त और जन नायक का वेश धर कर भीतर घुस जाते हैं और सच्चे कार्यकर्ताओं को हटाकर भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। यही बात पुराणों के सम्बन्ध में भी हुई है और इसी से हमको उनका विकृत रूप दिखलाई पड़ता है।

साम्प्रदायिकता के दोष का शमन—

पुराणों पर प्रायः साम्प्रदायिक विद्वेष की बातें फैलाने का दोषारोपण किया जाता है। कई शैव पुराणों में ब्रह्मा और विष्णु के सम्बन्ध में बहुत-सी हीनता द्योतक बातें लिखी हैं और एकाध वैष्णव पुराण में उसी तरह शिव को नीचा सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। किसी शैव लेखक ने लिखमारा कि 'विष्णु को प्रणाम करने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है' तो उसी के मुकावले के किसी वैष्णव नामधारी ने शिव-पूजा को घोर पाप कर्म घोषित कर दिया। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' का दर्जा काफी ऊँचा माना जायगा कि जिसमें 'शैव-पुराण' कहलाने पर भी विष्णु के सम्बन्ध में कोई निन्दात्मक बात नहीं है, वरन् तीन अध्यायों में विष्णु-वंश का वर्णन करते हुये जगह-जगह उनकी प्रशंसा ही की गई है। 'वायु पुराण' में भी दक्ष और शिव के विरोध तथा संघर्ष की कथा दी गई है पर उसमें विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि की वैसी दुर्गति तथा हीनता का एक शब्द भों नहीं मिलता जैसा कि 'शिवपुराण' आदि में दिखाया गया है। 'वायु पुराण' में शिव को ही सृष्टि का मूल और सर्व शक्तिमान बतलाया गया है पर विष्णु के सम्बन्ध में भी उसने जब कभी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनकी चर्चा आई है, सम्मान युक्त भाषा का प्रयोग किया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों के रहस्य को जानने की इच्छा रखने वाले ऋषियों ने उनकी महिमा का जिस प्रकार वर्णन किया उससे प्रकट होता है कि इस पुराण के रचयिता के विचारानुसार विष्णु का सम्मान महादेव के समान ही है। ऋषियों ने सूतजी से विष्णु भगवान की कथा सुनने की अभिलाषा करते हुये कहा—

"सूतजी ! भगवान विष्णु किस लिये पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं ? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं ? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे ? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिये उत्पन्न होते हैं ? वे इस प्रकार बारम्बार मानव-योनि में किस लिये जन्म धारण करते हैं ? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रु संहार-कारी भगवान कृष्ण के शरीर से जो-जो कर्म सम्पन्न होते हैं, उन सबको हम भली भाँति सुनकर चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बताइये, उसी प्रकार उनके अवतारों के विषय में भी वर्णन कीजिये। उन सर्वव्यापी भगवान की प्रवृत्ति के विषय में भी हमें जिज्ञासा है। महा महिमामय वे भग-वान विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं ? देवताओं और मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगाने वाले, भूर्भुवः आदि लोकों के उत्पत्तिकर्ता भगवान हरि किसलिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानव-योनि में समाविष्ट करते हैं ? चक्र धारण करने वालों में श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही संसार के मानव-मात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हें मानव-योनि में उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई ? सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत की सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं, वे किसलिये इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं और किसलिए गौओं का पालन करते हैं।

"जो भूतात्मा भगवान संसार के समस्त भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि आदि) को धारण करने वाले तथा उत्पन्न करने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में किस लिये आते हैं। जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता तथा पितरों को श्राद्ध-भोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभ कार्यों में विधि के अनुसार भोग के लिए

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने युग के अनुसार तीन लोकों की क्रमानुसार रचना कर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास संवत्सर, ऋतु, काल, योग आदि की रचना की है, जिन्होंने सर्व जीव समूहों में व्याप्त रहकर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियों में योग द्वारा रमण करते हैं, जो गत-आगत सबके नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत के विस्तृत विविध विधानों के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगों की एकमात्र गति हैं, जो पापात्माओं के लिये दुर्गतिस्वरूप हैं, जो चारों वर्णों, के उत्पत्तिकर्ता एवं रक्षक हैं, उनका वर्णन हमें सुनाइये।

"इन समस्त लोकों की सृष्टि करने वाला जो सनातन पुरुष है, वह इस मर्त्यलोक में किस लिये आगमन करता है ? परम बुद्धिमान सूतजी ! इस बात का हमें बड़ा ही सन्देह है और महान विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्गति प्राप्त करने वालों की गति है, वह मनुष्य शरीर धारण ही क्यों करता है ? भगवान विष्णु के इन आश्चर्य में डालने वाले कर्मों के विषय में हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं। वेद एवं देवगण उन भगवान विष्णु को परम आश्चर्यमय बतलाते हैं। हे महामते ! भगवान विष्णु की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बतलाइये। उनका आख्यान कहने और सुनने वालों को परम सुख देने वाला है। उनके बल एवं पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एवं महान हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी हम लोगों को बतलाइये।"

किसी अन्य शैव-पुराण में विष्णु का इस प्रकार गुणगान नहीं पाया जाता। उल्टा अनेक लेखकों ने उनके लिये अनुचित, अपमानजनक शब्द और घटनाक्रमों का प्रयोग किया है। यह शैली ठीक नहीं हैं और इस प्रकार की ओछी बातें पढ़ने से पाठक के हृदय में कहने वालों के प्रति सम्मान की भावना कम हो जाती है। इस दृष्टि से 'वायु पुराण' के वर्णन सर्वत्र सभ्यता और शिष्टता की रक्षा करने वाले हैं। जिस प्रकार भगवान विष्णु शिवजी की स्तुति करते हैं उसी प्रकार शिवजी भी उनकी सदैव प्रशंसा ही करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व जब ब्रह्माजी विष्णु की नाभि कमल से उत्पन्न हुए तब भगवान शंकर वहाँ आये और विष्णु द्वारा स्तुति किये जाने पर प्रसन्न

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होकर बोले—"विष्णो ! देव ! शाश्वत ! सुनो, मेरी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रीति है । प्रकाश-अप्रकाश, जङ्गम-स्थावर, अथवा यह सारा विश्व ही रुद्र और नारायणमय हैं । मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात्रि और मैं दिन हूँ। तुम ऋत हो मैं सत्य हूँ । तुम यज्ञ हो मैं उसका फल हूँ । तुम ज्ञान हो मैं ज्ञेय हूँ । सुकृत करने वाले जन तुम्हारा जप कर, तुमको प्रसन्न कर मुझमें प्रविष्ट हो जाते हैं । युगक्षय काल में हम दोनों को छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं है। तुम अपने को प्रकृति समझो और मुझको पुरुष । तुम जिस प्रकार मेरे आधे शरीर हो उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आधा शरीर हूँ । तुम हमारे महान श्रीवत्स पद लक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नील लोहित दक्षिण पार्श्व हूँ । हे विष्णो तुम मेरे हृदय हो और मैं तुम्हारे हृदय में स्थित हूँ । तुम सभी कार्यों के कर्ता और मैं कार्यधिष्ठित देवता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो ।"

वायु पुराणकार ने जो इस प्रकार की सदाशयता, शालीनता का परिचय दिया है वह धर्म के लिये परम हितकारी हैं । यदि अन्य पुराणकार भी ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय देते तो आज यह देश साम्प्रदायिक विद्वेष और पारस्परिक विरोध-भावना से बहुत कुछ मुक्त होता । यदि कोई किसी अन्य के उपास्य देव पर कटाक्ष करेगा तो वह भी वैसी ही भावना प्रकट करेगा और इससे समाज में कलह तथा विश्रृङ्खलता फैलेगी और धर्म की अप्रतिष्ठा होगी । इसलिए इस विषय में 'वायुपुराण' की नीति सर्वथा सराहनीय है ।

'वायु पुराण' के वर्णनों की स्पष्टता—

जैसा पहले बतलाया जा चुका है पुराणकारों ने अनेक वैदिक-तत्वों से रूपक, अलंकारयुक्त बड़ी-बड़ी कथायें बनाकर मनोरंजन के साथ धर्म-शिक्षण की विधि से काम लिया है । उदाहरण के लिए 'वामनावतार' का कथानक प्रसिद्ध है । वेदों में विष्णु की प्रशंसा करते हुए दो-चार स्थानों पर यह कहा गया है कि "यह समस्त विश्व आपकी पैरों की धूल में समाया हुआ है ।" यह कथन ब्राह्मण ग्रन्थों में व्याख्या द्वारा बलि-वामन की संक्षेप कथा के रूप में बदल दिया गया और पुराणों में इसे क्रमशः बढ़ाते हुए अन्त में 'वामन पुराण' जैसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यही बात देवी या दुर्गा की कथा कथा के सम्बन्ध में है। 'मार्कण्डेय पुराण' में दी गई 'दुर्गा सप्तशती' की कथा में दुर्गा और असुरों के संग्राम का वर्णन बड़े वीरतापूर्ण और रोचक ढङ्ग से किया गया है। 'देवी भागवत' में तो उसे एक 'महापुराण' के समान विस्तृत रूप दे दिया गया है। इनमें पूर्व चरित्र में मधु-कैटभ का वध है, मध्यम चरित्र में महिषासुर का वध है और उत्तर चरित्र में शुम्भ-निशुम्भु आदि के वध का वर्णन किया गया है।

देवी का उल्लेख वेदों में भी आया है पर वहाँ विश्व की मूलभूत चिति-शक्ति ही 'देवी' है। उसका एक मुख्य रूप वाक् या वाणी भी बताया गया है। वह 'वाग्देवी' अपनी महिमा और शक्ति का वर्णन करती हुई कहती है—

"मित्र और वरुण, इन्द्र और अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार इनको मैं ही धारण करती हूँ। वसु, रुद्र, आदित्य इस 'त्रिक' का संचरण मेरे ही द्वारा होता है। ब्रह्माणस्पति, सोम, त्वष्टा, पूषा, भग इनका भरण करने वाली मैं ही हूँ। राष्ट्र की नायिका मुझे ही समझो। मैं ही वस्तुओं का संचय करने वाली वसु पत्नी हूँ। जितने यज्ञीय अनुष्ठान हैं सबमें प्रथम मेरा स्थान है। देवों ने मुझे अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित किया है। जो देखता, सुनता और साँस लेता है वह मेरी ही शक्ति से अन्न खाता है। मैं जिसका वरण करती हूँ उसे ही उग्र, ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बना देती हूँ। रुद्र के धनुष में मेरी ही शक्ति प्रविष्ट है। मेरा अपना जन्मस्थान जलों के भीतर पारमेष्ठी समुद्र में है। वहाँ से जन्म लेकर मैं सब लोकों में व्याप्त हो जाती हूँ। मेरी ऊँचाई द्युलोक को स्पर्श करती है। झंझावात की तरह साँस लेती हुई मैं सब भुवनों का उपादान हूँ। द्युलोक (स्वर्ग) और पृथ्वी से भी परे मेरी महिमा है।

(ऋग्वेद १०।१२५)

पर पुराणों में देवी के वर्णन को अत्यन्त विस्तारयुक्त कथा का रूप देकर एक भिन्न प्रकार की उपासना पद्धति तथा सम्प्रदाय का स्रोत बना दिया गया। उनमें मधु-कैटभ वध के अवसर पर देवी का विष्णु की 'महामाया' के रूप में वर्णन किया गया, जिसने ब्रह्माजी द्वारा स्तुति किये जाने पर विष्णु को जगाया और मधु-कैटभ को मोहित करके विष्णु द्वारा उनका वध कराया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महिषासुर के उपाख्यान में उसके पूरे शरीर का वर्णन किया गया है कि महादेव जी के मुख से जो तेज निकला उससे उसका मुख बना, यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से उसकी दोनों बाहु बनीं। चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यदेश, वरुण के तेज से जंघा और उरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण, सूर्य के तेज से पैरों की अंगुली और वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुली बनीं। कुबेर से नासिका, प्रजापति से दाँत, पावक के तेज से तीनों नेत्र, वायु के तेज से दोनों कान बने।" इस प्रकार वह मंगलमयी देवी उत्पन्न हुई। सब देवताओं ने उसे अपने-अपने मुख्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये जिनके द्वारा संग्राम करके उसने महिषासुर को मार दिया।

'वायु पुराण' में भी मधु कैटभ के वध का वर्णन आया है। यह वर्णन बड़े सरल ढङ्ग से किया गया है। उसमें कहा गया है—

"भगवान शंकर के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान फिर शयन करने जल में घुस गये। तब पद्म जन्मा ब्रह्माजी भी प्रसन्न होकर उस पद्मासन पर जा बैठे। उसके बहुत दिन बाद वहाँ मधु-कैटभ नामक दो अतुलनीय बलशाली भ्राताओं ने तरुण सूर्य की तरह चमकने वाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनों की आंखें अन्धकार में चमक रही थीं और वे दोनों ही वीर हँस-हँस निर्भयभाव से पद्म पत्रों को तोड़ रहे थे। उन दोनों ने ब्रह्मा से कहा तुम हमारे भक्ष्य बनो। यह कहकर वे दोनों अन्तर्द्धान हो गये। पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य को जानना चाहा। वे उस कमल नाल के सहारे सीधे रसातल में उतर गये। वहाँ उन्होंने कृष्णाजिन और उत्तरीय धारी विष्णु को देखा। उन्होंने उनको जगाया और जगने पर कहा—'देव! हमें भूतों से भय हो रहा है, उठिये, हमें बचाइये हमारा कल्याण कीजिये।'

"शत्रु को दमन करने वाले स्वयं भगवान विष्णु हँसते हुये बोले—'कुछ चिन्ता नहीं, डरने की कोई बात नहीं।' ब्रह्मा जी के चले जाने पर उन अनन्त भगवान ने अपने मुख से विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओं को उत्पन्न करके कहा—तुम दोनों ब्रह्मा की रक्षा करो। इधर मधु-कैटभ ने विष्णु-जिष्णु के आवागमन की वार्ता जान कर उनकी ही तरह अपना रूप बनालिया। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जल को अपनी माया से स्तम्भित कर दिया और विष्णु-जिष्णु से संग्राम करने लगे। उनको युद्ध करते हुये सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये पर रणमद से म. उनमें से कोई भी युद्ध से विरत नहीं हुआ। उनका आकार-प्रकार और संस्थानादि एक प्रकार का था और गति, स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा दोनों का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने लगे। तब उन्होंने दिव्य-दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और विष्णु-जिष्णु के ऊपर के शरीर को कमल केसर के सूक्ष्म कवच द्वारा बाँध दिया और मन्त्रों का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रम्ह को एक इन्दुवदना, पद्म-सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने पूछा—तुम कौन हो ? कन्या ने कहा आप मुझे विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। इधर युद्ध करते-करते मधु कैटभ थक गये और विष्णु-जिष्णु ने उनको मार डाला।"

दक्ष-यज्ञ का विचित्र कथानक—

वायु-पुराणमें दक्ष-यज्ञके विध्वंस का जो वर्णन किया है वह अन्य समस्त पुराणों से भिन्न है। अभी तक सब जगह यही पढ़ने में आया था कि शिव-पत्नी सती ने दक्ष-यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर योगाग्नि में जल कर आत्म-बलिदान कर दिया, तब शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर यज्ञ का विध्वंस करा दिया। इसके बहुत काल पश्चात् देवताओं की अपार चेष्टा करने पर उन्होंने पार्वती से विवाह किया था। पर 'वायुपुराण' का कथन है कि किसी समय सती दक्ष के घर परिवार वालों से मिलने गई थी पर दक्ष ने उसका सम्मान नहीं किया जिससे उसने स्वतः आत्मघात कर लिया। तब शिव ने दक्ष को श्राप दिया कि तुम अगले जन्म में एक वृक्ष-कन्या के गर्भ से उत्पन्न होंगे और तब भी तुम्हारा नाम दक्ष ही रखा जायगा। ऐसा ही हुआ है और उस जन्म में भी दक्ष ने एक यज्ञ किया और महादेव को उसमें नहीं बुलाया। उस अवसर पर देवताओं को आकाश मार्ग से जाते देखकर पार्वतीजी ने उसका कारण पूछा। जब उनको शिव के अपमान की बात मालूम हुई तो वे बहुत रुष्ट हुईं और शिवजी को प्रेरित करके वीरभद्र द्वारा यज्ञ को नष्ट करवा दिया। उसी समय उमा के क्रोध से भद्रकाली की उत्पत्ति हुई जिसने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार 'वायुपुराण' में वर्णित दक्ष-यज्ञ के नष्ट किये जाने का वर्णन 'शिव पुराण' 'रामायण' आदि के वर्णन से बहुत भिन्नता रखता है।

सम्भवतः पुराण-प्रेमी इसका उत्तर 'कल्प-भेद' बतलायें, पर जब और सब कथायें इसी समय की हों और अन्य ग्रन्थों से मिलती हों तो किसी एक को ही पूर्वकल्प की कहना कोई सारयुक्त तर्क नहीं है।

ज्योतिर्मय लिङ्ग की कथा—

पुराणों में अनेक स्थलों पर सृष्टि आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा और विष्णु के पारस्परिक विवाद के अवसर पर ज्योतिर्लिङ्ग के उद्भव की कथा दी गई है और एकाध पुराण में इस प्रसंग में ब्रह्माजी को बहुत नीचा दिखाया गया है और विष्णु को भी शिव की अपेक्षा बहुत हीन प्रकट किया गया है। पर 'वायु-पुराण' में इस कथा को भी बहुत स्वाभाविक रूप में दिया गया है और शिवजी द्वारा यही कहलाया गया है कि—"देवताओं में श्रेष्ठ ! मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुये हो। यह लोक पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और यह नित्य युद्ध में स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बाँये हाथ हैं।" इस कथानक में और अन्य पुराणों में ब्रह्मा को झूँठा बनाने और उनका एक मस्तक काट दिए जाने के अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों में जमीन आसमान का भेद है।

अध्यात्म ज्ञान की प्रधानता—

ग्रन्थ के अन्त में पुराणकार ने व्यासजी के हृदय में निराकार और साकार ब्रह्म का प्रश्न उठने की बात कह कर इस विषय पर विचार किया है कि परब्रह्म का स्वरूप वेदों के कथनानुसार अक्षर, अव्यय, अतीन्द्रिय और चिन्मात्र है, अथवा जैसा भक्ति प्रधान कथाओं के प्रणेता बतलाते हैं वह नाना प्रकार के आभरण धारण करके, वेणु वादन करते हुए गोपियों सङ्ग रासलीला, हास-विलास, रतिक्रीड़ा आदि के प्रेमी, गौओं की रक्षार्थ इधर-उधर दौड़ते हुये राधा विलासी के रूप में है। भक्तगणों ने उन परम पुरुष श्रीकृष्ण को गोलोक धाम के वासी बताया है और कहा है कि वे अक्षर, अव्यय ब्रह्म से भी परे हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सत्यवती नन्दन व्यास जी जब बहुत सोच विचार करने पर भी इस समस्या का निराकरण नहीं कर सके तो उन्होंने एकान्त में बैठकर आहार, चित्त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मनसे चारों वेदों का आवाहन किया। दीर्घ काल तक इस प्रकार स्मरण और ध्यान करने के पश्चात् मूर्तिमान वेद उनके समक्ष उपस्थित हुये तो व्यास जी ने उनसे जिज्ञासा की कि—"अपने शब्द ब्रह्ममय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों में भेद बनाकर कर्म और ज्ञान का उपदेश दिया है। उसके अनुसार कामनाओं से घिरे हुये चित्त वाले मनुष्यों के जो कुछ सत्कर्म होते हैं, उसका फल स्वर्ग कहा गया है। और ईश्वर में ही अपनी चित्त वृत्ति लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गई है। चित्त शुद्धि से हीं ज्ञान कीं प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप हैं। यह सब जान लेंने पर भी मेरे हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है कि उस परब्रह्म से भी बढ़ कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं ?"

वेदों के कथन से व्यास जी को जो कुछ ज्ञान पड़ा उसका निष्कर्ष यही निकला कि 'वह परब्रह्म अक्षर, परम और कारणों का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भाँति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप हैं, उसी को सबसे परम समझो। वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है।"

अधिकांश पुराणों में जिस प्रकार अवतारों के वर्णन को प्रधानता देकर भगवान के साकार स्वरूप की उपासना पर अधिक जोर दिया है, वह बात 'वायु पुराण' में देखने में नहीं आती। इसमें ज्ञान और योग पर आधारित अध्यात्म-मार्ग की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है और अन्त में व्यास के सन्देह की कथा के रूप में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है।

'वायु-पुराण' की इस प्रकार की अनेक विशेषताओं पर ध्यान देने पर उसे 'महा-पुराणों' की सूची में स्थान देना सब प्रकार से समीचीन मालूम देता है। वास्तव में पौराणिक-साहित्य एक विशेष क्षेत्र और वर्ग से सम्बन्धित है

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और मध्यकाल में उसका बहुत अधिक विस्तार किया गया है। उसमें केवल १८ महापुराणों का ही समावेश नहीं है, वरन् १८ उप-पुराण, १८ अति-पुराण और १८ लघु-पुराणों का समावेश भी उनमें कर दिया गया है। इन सब ग्रन्थों की विषय-सूची और वर्णन शैली पर जब दृष्टिपात करते हैं तो 'वायु पुराण' का दर्जा बहुत ऊँचा जान पड़ता है। उसमें सृष्टि रचना, जीव-जगत का विस्तार, मानवीय-सभ्यता का विकास, समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था का क्रमशः उद्‌भव आदि विषयों का अन्य कितनेही पुराणों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक तथा बुद्धिसंगत ढंग से वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि पाठकगण इस पुराण का अध्ययन करके अनेक प्राचीन युग सम्बन्धी तथ्यों को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। धर्म के स्वरूप और उपासना का भी इसनें जिस रूप में वर्णन किया गया है उससे विवादग्रस्त प्रश्न उपस्थित करने के बजाय धर्म के उन मूल तत्वों पर प्रकाश पड़ता है जो मानव जीवन की सार्थकता के लिये मार्गदर्शक सिद्ध होंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

—*×*—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषय-सूची

१.	मुनियों द्वारा पुराण जिज्ञासा	...	४१
२.	द्वादश वर्षीय सत्र निरूपण	...	४६
३.	प्रजापति सृष्टि-कथन	...	५६
४.	हिरण्य-गर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति तथा आदि सृष्टि वर्णन	...	६०
५.	सृष्टि-रचना और दैवी शक्तियाँ	...	७४
६.	सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग, वाराह रूप से पृथ्वी की स्थापना	...	८२
७.	वर्तमान कल्प में मानुषी-सृष्टि, दो कल्पों के बीच की प्रति सन्धि का वर्णन, प्रलय-वर्णन	...	६४
८.	मानव सभ्यता का आरम्भ, विभिन्न युगों में मनुष्य का विकास क्रम	...	१०६
९.	देव-सृष्टि, देव, पितर, असुर, दानव, आदि की उत्पत्ति	...	१३७
१०.	मन्वन्तर वर्णन—स्वायम्भुव मनु तथा दक्षप्रजापति की सन्तति	...	१५५
११.	पाशुपत योग—प्राणायाम आदि योग के अङ्गों का वर्णन	...	१६८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१२. योगमार्ग में विघ्न—सिद्धियों के कारण पतन की सम्भावना ... १७८
१३. योगमार्ग के ऐश्वर्य ... १८४
१४. पाशुपतयोग का स्वरूप ... १८७
१५. पाशुपत-योग महिमा ... १९४
१६. शौचाचार द्वारा मनुष्य की सद्गति ... १९७
१७. परमाश्रय प्राप्ति ... २०१
१८. प्रायश्चित विधि ... २०२
१९. अरिष्ट वर्णन—मृत्यु का समय जानने के लक्षण ... २०५
२०. ओङ्कार प्राप्ति के लक्षण ... २१२
२१. कल्प निरूपण ... २१८
२२. कल्प-संख्या निरूपण ... २२९
२३. महेश्वरावतार-योग ... २३४
२४. शार्वस्तोत्र ... २४३
२५. मधुकैटभ उत्पत्ति, चक्रद्वारा उनका वध और सृष्टि रचना ... २६९
२६. स्वरोत्पत्ति, ओङ्कार और वेदों का आविर्भाव ... २८४
२७. ऋषिवंश कीर्तन—भृगु मरीचि, अग्नि आदि की संतति ... २९१
२८. अग्नि-वंश वर्णन ... २९७
२९. देव वंश वर्णन ... ३०५
३०. युग-धर्म निरूपण ... ३१९
३१. स्वायम्भुव वंश कीर्तन—सात द्वीप के अधिपतियों का वर्णन ... ३२९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३२.	भुवन-विन्यास—भारत के विभिन्न प्रदेशों का वर्णन	...	३३६
३३.	ज्योतिष प्रचार (१) चौदह लोक, सप्तद्वीप, सूर्य, चन्द्र ग्रह, नक्षत्रों का स्वरूप वर्णन	...	३४८
३४.	ज्योतिष प्रचार (२) सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह, आदि की गति, वर्षा करने वाले मेघों का वर्णन	...	३८१
३५.	ध्रुव-चर्या—सूर्य के रथ के देव, गन्धर्व आदि, समस्त ग्रहों के रथ व घोड़ों का वर्णन, ध्रुव द्वारा सबका धारण किया जाना	...	३६३
३५.	(क) ज्योतिष मण्डल का विस्तार—त्रिविधि अग्नि, मंगल आदि ग्रहों की सूर्य से उत्पत्ति, ज्योतिष शास्त्र का आधार	...	४०८
३६.	नीलकण्ठ स्तुति, समुद्र मन्थन में विष के निकलने पर ब्रह्मा द्वारा भगवान शिव की स्तुति और उनका गरल-पान	...	४२७
३७.	लिंगोद्भव स्तुति, ब्रह्मा और विष्णु के सम्मुख ज्योतिर्लिंग का प्रकट होना और दोनों के द्वारा उसकी स्तुति	...	४३८
३८.	पितर-वर्णन—पुरवा द्वारा पितरों का तर्पण, विभिन्न प्रकार के पितरों और उनकी श्राद्ध विधि का वर्णन	...	४४८
३६,	यज्ञ-प्रथा का वर्णन—चारों युगों के धर्म कथन में यज्ञ का महत्व, हिंसारूप यज्ञ का निषेध. राजा वसु का पतन	...	४६२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

४०. चारों युगों का आख्यान—चारों युगों का परिमाण, युगभेद, युगधर्म, युगसन्धि, युगांश और युग-संधान का तत्व, राज्य तथा समाज की दशा ... ४८१

४१, ऋषि-लक्षण—साधुओं के लक्षण, तपस्या का रूप, युगानुरूप व्यवहार, महर्षि, ऋषि, ऋषीक के भेद, प्राचीनकाल के मुख्य ऋषिवंशों की गणना ... ५००

४२. महास्थान तीर्थ वर्णन—वेदों की शाखाओं का विभाजन और उनके प्रवर्तक ऋषियों का परिचय राजा जनक के यज्ञ में शाकल्य का विनाश ... ५१७

—०—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वायु-महापुराण

।। मुनियों द्वारा पुराण-जिज्ञासा ।।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ।

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम् ।।१

ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्वज्ञमपराजितम् ।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ।।२

ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ।
ऐश्वर्यञ्चैव धर्मश्च सहसिद्धिचतुष्टयः ।।३

य इमान् पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।
आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ।।४

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ।
असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।।५

तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ।।६

श्री मन्नारायण को नमस्कार करके और नरों में उत्तम नर को नमस्कार करे । इसी प्रकार देवी सरस्वती को नमस्कार करके इसके पश्चात् 'जय' शब्द का उच्चारण करना चाहिए । सत्यवती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले पराशर ऋषि के पुत्र व्यास मुनि की जय हो, जिनके मुख रूपी कमल से निःसृत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अमृत का यह समस्त जगत् पान करता है। निश्चल, अविनाशी, शाश्वत, महान् आत्मा वाले, समस्त जगत् के पति देव-ईशान महादेव की शरणागति में जाता हूँ ।।१।। इस लोक की रचना करने वाले, सर्व विषयों के ज्ञाता, पराजित न होने वाले, भूत-काल और भविष्य-काल के पति तथा वर्तमान समय के सत्पति ब्रह्माजी की शरण में जाता हूँ ।।२।। जिस जगत् के पति का अनुपम ज्ञान और वैराग्य है तथा चारों सिद्धियों के साथ धर्म और ऐश्वर्य भी अद्भुत है ।। ३ ।। जो इस सत् और असत् स्वरूप वाले भावों को नित्य देखते हैं वे क्रिया-भाव के अर्थ रूप ईश्वर में फिर प्रवेश कर जाते हैं ।। ४ ।। लोकों का सृजन करने वाले और लोकों के तत्व को जानने वाले तत्त्व-वेत्ता ने योग में स्थिर होकर स्थावर और चर समस्त प्राणियों की सृष्टि की है ।। ५ ।। पुराण के आख्यानों को जानने की इच्छा रखने वाला मैं इस अजन्मा, विश्वकर्मा अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की रचना वाले, ज्ञान के पति लोकों के साक्षी प्रभु की शरण में जाता हूँ ।।६।।

ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः ।
ऋषीणाञ्च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ।।७
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णाय चर्षये ।
वसिष्ठाय च शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ।।८
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ।
धर्मार्थन्यायसंयुक्तैरागमैः सुविभूषितम् ।।९
असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि ।
प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ।।१०
ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रत परायणाः ।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।।११
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे ।
नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ।
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ।।१२
द्रष्टुं तान् स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ।
लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतृणां यत् सुभाषितैः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिंल्लोमहर्षणः ॥१३
तपः श्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमतः ।
शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१४

समाहित अर्थात् सावधान होकर ब्रह्म, वायु और महेन्द्र के लिये नमस्कार करके, ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ के लिये, अत्यन्त यशस्वी उनके नाती जातूकर्ण ऋषि के लिये, परम पवित्र वसिष्ठ के लिये तथा कृष्णद्वैपायन के लिये नमस्कार करके धर्म, अर्थ और न्याय से सङ्गत अर्थात् संयुक्त आगमों से सुशोभित-वेदों की सम्मति से युक्त ब्रह्मोक्त पुराण को भली-भाँति कहता हूँ ॥७–८–९॥ अनुपम कान्ति वाले, परम विक्रमशाली, समस्त नृप मण्डल में अति श्रेष्ठ असीमकृष्ण नामक राजा के द्वारा इस भू-मण्डल पर शासन करने के समय में सत्य के व्रत में तत्पर, परम सरल रजोगुण से हीन, शान्त प्रकृति वाले दमनशील और इन्द्रियों को जीतने वाले ऋषि लोग संशित आत्मा वाले होकर धर्म के धाम कुरुक्षेत्र में पवित्र तट वाली परम पवित्र दृषद्वती नदी के तट पर दीर्घ-सत्र का यजन करने लगे। सभी ऋषि लोग शास्त्र की विधि के अनुसार दीक्षा प्राप्त करने वाले और नैमिषारण्य के भ्रमण करने वाले थे ॥१०–११–१०॥ महान् तीव्र बुद्धि वाले, पुराणों के ज्ञाता तथा वक्ताओं में परमश्रेष्ठ सूतजी ने उन ऋषियों को देखने के लिये वहाँ आकर अपनी सुन्दर उक्तियों के द्वारा लोगों को हर्षित कर दिया अर्थात् सबको पुलकित बना दिया। इसी सत्कर्म से अर्थात् पुलकायमान बना देने के काम से संसार में वे लोम-हर्षण' इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥१३॥ वे तपस्या, शास्त्रों का श्रवण और आचार की निधि अत्यन्त बुद्धिमान् व्यास मुनि के श्रेष्ठ बुद्धि वाले सूतजी शिष्य थे और लोकों में बहुत ही प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥

पुराण वेदो ह्यखिलो यस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठितः ।
भारती चैव विपुला महाभारतवर्द्धिनी ॥१५
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ।
सूक्ताः सुपरिभाषाश्च भूमावोषधयो यथा ॥१६
स तान् न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अभिगम्योपसंसृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ॥१७
ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महौजसः ।
तस्मै साम च पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥१८

अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लोमहर्षणम् ॥१९
तस्मिन् सत्रे गृहपतिः सर्वशास्त्रविशारदः ।
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषां सूतमनोदयत् ॥२०

त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ।
दुदोह वै मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां कथाम् ॥२१

समस्त पुराण और सम्पूर्ण वेद जिसमें भली-भाँति प्रतिष्ठित थे और महाभारत के बढ़ाने वाली प्रचुर सरस्वती विराजमान थी ॥ १५ ॥ धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयोजन वाली अनेक कथाऐं जिसमें प्रतिष्ठित थीं । सूक्त और अच्छी परिभाषाऐं भूमि में औषधियों के तुल्य जिनमें विद्यमान थीं ॥ १६ ॥ ऐसे न्याय के ज्ञाता उन सूतजी ने न्याय से अच्छी बुद्धि वाले उन श्रेष्ठ मुनियों के समीप आकर और निकट में पहुँच कर हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और उन समस्त ऋषियों को अपने प्राणिपात तथा विनम्र व्यवहार से सन्तुष्ट किया ॥१७॥ सत्र का यजन करने वाले महान् ओज वाले सदस्यों के सहित वे सब भी उस समय बहुत ही प्रसन्न हुए और वे भी उन सूतजी का वन्दनार्चन यथा-विधि करने में तत्पर हुए ॥१८॥ इसके अनन्तर उन समस्त ऋषियों के हृदय में पुराण के श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न हुई क्योंकि उन्होंने अत्यन्त विश्वास के पात्र और महान् विद्वान् लोमहर्षण मुनि का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥१९॥ उस सत्र में समस्त शास्त्रों के पण्डित गृहपति ने उन सब ऋषियों के हार्दिक भाव को इङ्गितों के द्वारा लक्ष्य करके श्री सूतजी को प्रेरित किया ॥ २० ॥ गृहपति ने कहा—हे सूतजी ! आपने ब्रह्म के ज्ञाताओं में अति श्रेष्ठ महान् बुद्धि वाली भगवान् व्यासजी की इतिहास और पुराणों के ज्ञान प्राप्त करने के लिये

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भली-भाँति उपासना की है और आपने पुराणों में आश्रित कथा वाली उनकी बुद्धि का अच्छी तरह दोहन किया है अर्थात् आपने अच्छा पौराणिक ज्ञान उनसे प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

एषाञ्च ऋषिमुख्यानां पुराणं प्रति धीमताम् ।
शुश्रूषाशित महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२२
सर्वे हीमे महात्मानो नाना गोत्राः समागताः ।
स्वान् स्वान् वंशान् पुराणैस्तु श्रृणुयुर्ब्रह्मवादिनः ॥२३
सपुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिञ्छ्रवयेथा मुनीनथ ।
दीक्षिष्यमाणैरस्माभि स्तेन प्रागसि संस्मृतः ॥२४
इति सन्नोदितः सूतस्तैरेव मुनिभिः पुरा ।
पुराणार्थं पुराणज्ञैः सत्यव्रतपरायणैः ॥२५
स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्हष्टः पुरातनैः ।
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥२६
वंशानां धारण कार्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥२७
न हि वेदेष्वधीकार कश्चित् सूतस्य दृश्यते ।
वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः ।
सुत्यायामभवत् सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः ॥२८

हे महाबुद्धे ! इन बुद्धिमान् मुख्य ऋषियों की पुराण के प्रति श्रवण करने की अत्यन्त हार्दिक इच्छा है सो आप इन्हें वह सुनाने को योग्य होते हैं ॥ २२ ॥ ये सब महान् आत्मा वाले हैं और अनेक गोत्र वाले यहाँ एकत्रित हुए हैं । ये सब ब्रह्मवादी लोग पुराणों के द्वारा अपने-अपने वंशों का श्रवण करें ॥ २३ ॥ इस दीर्घ-सत्र में पुत्रों के सहित इन मुनियों को श्रवण कराइये । उसके द्वारा दीक्षिष्यमान हम सबके द्वारा आप पहिले ही संस्मृत हुए हो ॥२४॥ इस प्रकार से सत्यव्रत में परायण पुराणों के ज्ञाता उन्हीं मुनियों के द्वारा पहिले पुराण के लिये सूतजी से सत् नहीं कहा गया ॥ २५ ॥ प्राचीन सत्पुरुषों ने यह सूत का अपना धर्म देखा है कि देवताओं का ऋषियों का और अपरिमित तेज

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले राजाओं का तथा महात्माओं के श्रुत वंशों का धारण करना चाहिए जो कि ब्रह्म-वादियों ने इतिहास और पुराणों में दिष्ट किये हैं ।। २६-२७ ।। किन्तु सूत का वेदों में कहीं भी कोई अधिकार नहीं दिखाई देता है क्योंकि महात्मा राजा वेन के पुत्र पृथु के वर्तमान यज्ञ में सूत्या में प्रथम विकृत वर्ण वाले सूत की उत्पत्ति हुई थी ।। २८ ।।

ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ।
जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत ।
प्रमादात्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चितश्च कर्मसु ।।२९
शिष्यहव्येन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ।
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतः ।।३०
यच्च क्षत्रात् समभवद्ब्राह्मणाऽवरयोनितः ।
ततः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्त्तितः ।।३१
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यश्च चिकित्सितम् ।।३२
तत स्वधर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
कस्मात् सम्यङ् न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ।।३३
पितॄणां मानसी कन्या वासवी समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ।।३४
अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मनः ।
तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां वरः ।।३५

वहाँ पर इन्द्र सम्बन्धी हवि से पृक्त बृहस्पति की हवि को इन्द्र देव के लिये के लिये हुत किया था । इससे सूत की उत्पत्ति हुई । वहाँ प्रमाद से कर्मों में प्रायश्चित किया ।। २९ ।। जो शिष्य के हव्य से गुरु का हवि पृक्त होकर अभिभूत हो गया और इस अधरोत्तर चार से ही यह वर्ण वैकृत उत्पन्न हुए ।। ३० ।। और जो क्षत्रिय से ब्राह्मण की अवर योनि से हुआ वह पहिले के साथ साधर्म्य होने के कारण तुल्य धर्म वाला कहा गया है ।। ३१ ।। रथ, नाग और अश्व का चरित्र क्षत्रियों का उपजीवन यह सूत का मध्यम श्रेणी का धर्म होता

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है तथा चिकित्सा करना जघन्य श्रेणी का धर्म है ।। ३२ ।। सो ब्रह्म-वादी आप लोगों ने मुझसे मेरे धर्म के अनुकूल ही पूछा है । मैं ऋषियों के द्वारा समर्चित पुराण को भली-भाँति क्यों नहीं कहूँगा अर्थात् अवश्य ही कहूँगा ।।३३।। पितरों की वासवी नामक मानसी कन्या हुई थी वह पितरों के द्वारा अपध्यात होकर मत्स्य योनि में हुई थी ।। ३४ ।। जिस तरह अग्नि की उत्पत्ति का निमित्त अरनी होती है उसी भाँति वेदों के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ महान् योगी व्यास मुनि उसमें उत्पन्न हुए ।। ३५ ।।

तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे ।
पुरुषाय पुराणाया भृगुवाक्यप्रवर्त्तिने ।
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।।३६
जातमात्रश्च यं वेद उपतस्थे ससङ्ग्रहः ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्णादवाप तम् ।।३७
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ।
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः ।।३८
वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ।
भूमिकालगुणान् प्राप्य बाहुशाखो यथा द्रुमः ।।३९
तस्मादहमुप श्रुत्य पुराणं ब्रह्मवादिनः ।
सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजितादीप्ततेजसः ।।४०
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयै महात्मभिः ।।४१

उन पुराण पुरुष, भृगु के वाक्य प्रवृत्तों, विद्वान् , छद्म से मनुष्य का रूप धारण करने वाले, होनहार विष्णु भगवान् व्यासजी के लिये नमस्कार करके जिनके उत्पन्न होते ही संग्रह सहित सम्पूर्ण वेद उपस्थित हो गये थे, किन्तु धर्म की ही मर्यादा का पालन कर जातूकर्ण से उसको प्राप्त किया था ।। ३६-३७ ।। जिसने श्रुति रूपी सागर से बुद्धि रूपी मन्थन करने वाले से मथ कर संसार में महाभारत रूपी चन्द्रमा को प्रकट कर दिखलाया है ।। ३८ ।। जिस तरह भूमि के तथा काल के गुणों को प्राप्त कर वृक्ष बहुत सी शाखाओं से युक्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हो जाता है उसी तरह वेद रूपी वृक्ष भी वेद व्यास मुनि को प्राप्त कर अनेक शाखाओं से युक्त हो गया ॥ ३९ ॥ उन ही दीप्त तेज वाले, समस्त वेदों में पूजित, सर्वज्ञ और ब्रह्म के वक्ता से मैंने उप-श्रवण करके पहिले महात्मा और नैमिषारण्य में निवास करने वाले मुनियों के द्वारा पूछे गये वायु देव ने जो पुराण कहा था उस वायु-पुराण को मैं अब आप लोगों के समक्ष में कहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
कीर्त्तनं श्रवणं चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥४२
अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं संप्रचक्ष्यते ।
सुखमर्थः समासेन महानप्युपलभ्यते ।
तस्मात् किञ्चित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥४३
पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीयीत जितेन्द्रियः ।
तेनाधीतं पुराणं तत् सर्वं नास्त्यत्र संशयः ॥४४
यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥४५
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥४६
अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात् प्रोक्तं स्वयम्भुवा ।
आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥४७
यस्मात् पुरा ह्यनि तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४८
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्त्तते ।
तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ॥४९
अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत ॥५०

सूतजी ने कहा—जिस वायु पुराण में ब्रह्मवादी वायु देव के द्वारा विप्रों

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का धन, यश और आयु के देने वाला, पापों का नाश करने वाला परम पुण्यमय कीर्तन और इसका श्रवण तथा विशेष रूप से धारण करना कहा जाता है ॥ ४२ ॥ इसी क्रम से यह पुराण कहा जाता है। संक्षेप से सुखपूर्वक महान् अर्थ उपलब्ध होता है इससे कुछ समुदिष्ट करके पीछे विस्तारपूर्वक इसका वर्णन करूँगा ।। ४३ ।। जो कोई अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला पुरुष इसके प्रथम पाद का अध्ययन करता है उसने इस समस्त पुराण का अध्ययन कर लिया है; इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ४४ ॥ जो द्विज चारों वेदों को उनके समस्त षडङ्गों तथा उपनिषदों के सहित जानता है और यदि पुराण का ज्ञान नहीं रखता है तो वह विलक्षण नहीं होता है ॥ ४५ ॥ इसलिये इतिहास और पुराण इन दोनों से वेद को अच्छी तरह उपबृंहित करना चाहिए। जो अल्पश्रुत द्विज होता है उससे वेद भी भयभीत होता है कि मुझे अल्पज्ञ यह ब्राह्मण प्रसारित कर देगा ॥ ४६ ॥ इस अध्याय का अभ्यास करने वाले स्वयम्भू भगवान् ने साक्षात् स्वयं कहा है कि इसका अध्ययन करने वाला पुरुष आपत्ति में फँस कर भी मुक्त हो जायगा और यथेष्ट अच्छी गति को प्राप्त करेगा ॥ ४७ ॥ पहिले जिसने यह पुराण पूर्ण किया उसने इसका स्मरण किया है। जो इसके निरुक्त को जानता है वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ ४८ ॥ इस समस्त विश्व में नारायण व्याप्त होकर प्रवृत्त होते हैं उस जगत् के स्रष्टा का भी सृजन करने वाले महेश्वर देव हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये आप लोग संक्षेप से इस पुराण का श्रवण करें। वह सर्ग के समय में सर्गों को बनाते हैं और संहार करने के समय आने पर पुनः इसका आदान कर लिया करते हैं ॥ ५० ॥

॥ द्वादशवर्षीय सत्र निरूपण ॥

प्रत्यब्रुवन् पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः ।
कुत्र सत्रं समभवत् तेषामद्भुतकर्मणाम् ॥१
कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत ।
आचचक्ष पुराणं च कथं तेभ्यः प्रभञ्जनः ॥२
आचक्ष्व विस्तरेणेदं परं कौतूहलं हि नः ।
इति सञ्चोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शृणुध्वं यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् ।
यावन्तं चाभवत् कालं यथा च समवर्तत ॥४
सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा ।
सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥५
तपो गृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत् स्वयम् ।
इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ।
मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन् सत्रे महात्मनाम् ॥६
विबुधा ईजिरे तत्र सहस्रं प्रतिवत्सरान् ।
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत ।
कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥७

श्री शुकदेवजी ने कहा—तपश्चर्या के ही धन वाले उन ऋषियों ने सूतजी से फिर कहा कि यह सत्र कहाँ पर हुआ जो कि अद्भुत कर्म करने वाले उन ऋषियों ने किया था ? ॥ १ ॥ इस सत्र को कितने समय तक और किस प्रकार से किया था और प्रभञ्जन (वायु) ने उनको किस तरह यह पुराण कहा, यह सब आप कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें, क्योंकि हम सबको इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । इस तरह से ऋषियों के द्वारा पूछे गये सूतजी यह शुभ वचन बोले ॥ २–३ ॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप लोग श्रवण करें, मैं बतलाता हूँ, जहाँ पर उन परम धीर ऋषियों ने इस उत्तम सत्र का यजन किया था, जिस प्रकार से और जितने समय तक किया था ॥ ४ ॥ पहिले जहाँ पर इस विश्व के सृजन करने वालों ने विश्व का सृजन करते हुए एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इस परम पवित्र सत्र का यजन किया था ॥ ५ ॥ जिस स्थान पर तपोगृह का पति ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुआ, जिस स्थान पर इला का पत्नीत्व हुआ और महान् तेज वाले मृत्यु ने जहाँ पर शामित्र (पशु बाँधने का स्थान) किया था उन महात्माओं के सत्र में देवों ने एक सहस्र प्रति वत्सर वहाँ यजन किया था । जहाँ पर धर्म चक्र के भ्रमण करते हुए नेमि विशीर्ण हो गई थी इस कर्म के कारण वह मुनियों के द्वारा परम पूजित यह स्थान 'नैमिष'—इस नाम से विख्यात हुआ है ॥ ६–७ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारण सेविता ।
रोहिणी सुषुवे तत्र ततः सौम्योऽभवत् सुतः ।।८
शक्तिर्ज्येष्ठः समभवद्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धत्याः सुता यत्र शतमुत्तमतेजसः ।।९
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना ।
यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।।१०
अदृश्यन्त्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः ।
पराभवो वसिष्ठस्य यस्मिन् जातेऽप्यवर्त्तत ।।११
तत्र ते ईजिरे सत्रं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ।
नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्ततः स्मृताः ।।१२
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ।
पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ।।१३
अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ।।१४

जिस स्थान पर बड़े-बड़े सिद्धों तथा चारणों के द्वारा सेवित परम पवित्र गोमती है वहाँ पर रोहिणी ने पुत्र का प्रसव किया जोकि परम सौम्य हुआ ।।८।। जहाँ पर महात्मा वसिष्ठ के अरुन्धती से अत्युत्तम तेज वाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें शक्ति नाम वाला सबसे बड़ा पुत्र था ।। ९ ।। उस वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के द्वारा कल्माषपाद नामक राजा को शाप दिया गया था और जिस स्थान में विश्वामित्र और वसिष्ठ का पारस्परिक वैर हो गया था ।। १० ।। जहाँ पर दृश्यमान न होती हुई में पराशर मुनि हुए जिनके उत्पन्न होने पर भी वसिष्ठजी का पराभव हुआ था ।। ११ ।। वहाँ पर नैमिष नामक स्थान में ब्रह्मवादी उन ऋषियों ने सत्र का यजन किया था क्योंकि वह सत्र उन्होंने नैमिष नाम वाले स्थान में किया था अतएव तभी से वे सब नैमिषेय इस नाम से कहे गये हैं ।।१२।। उन धीमान् ऋषियों का वह सत्र बारह वर्ष पर्यन्त हुआ जबकि विक्रमशील पुरुरवा राजा इस भू-मण्डल का शासन करता था ।। १३ ।। पुरुरवा राजा को समुद्र के अठारह द्वीपों को अपने अधिकार में रखते हुए भी रत्नों के लोभ की अधिकता होने के कारण सन्तोष नहीं हुआ था, ऐसा हमने सुना है ।। १४ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उर्वशी चकमे यं च देवहूतिप्रणोदिता ।
आजहार च तत्सत्रं स्वर्वेश्यासहसङ्गतः ॥१५
तस्मिन्नरपतौ सत्रं नैमिषेयाः प्रचक्रिरे ।
यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ।
तदुल्बं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६
हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ।
विश्वभर्ता स्वयं देवो भावयन् लोकभावनम् ॥१७
बृहस्पतिस्ततस्तत्र तेषाममिततेजसाम ।
ऐलः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ॥१८
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ।
लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुं प्रचक्रमे ॥१९
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतेर्भृशम् ।
निजघ्नुश्चापि संक्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः ।
ततो निशान्ते राजानं मुनयो दैवनोदिताः ॥२०
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ।
और्वशेयं ततस्तस्य पुत्रञ्चक्रुर्नृपं भुवि ॥२१

देवहूति के द्वारा प्रेरित की हुई उर्वशी उसके समीप में गई और उस स्वर्ग की वेश्या के साथ में सङ्गति करने वाले अपने उस सत्र का आहरण कर लिया था ॥१५॥ उस राजा के होने के समय में नैमिषेय ऋषियों ने इस सत्र को किया था, जिस उद्दीप्त तेज वाले को अग्नि से गङ्गा ने गर्भ में प्रसूत किया था, वह गर्भ पर्वत पर रख दिया गया, जोकि सुवर्ण हो गया था ॥१६॥ लोकों की भावना को हृदय में विचारते हुए देव विश्वकर्मा ने स्वयं महात्माओं के उस यज्ञवाट को उससे हिरण्मय कर दिया था ॥१७॥ इसके अनन्तर अपरिमित तेज के धारण करने वाले उनमें बृहस्पति हुए। एक बार शिकार करते हुए पुरूरवा ऐल वहाँ पर उस देश में पहुँच गया था ॥१८॥ उसने उस यज्ञ-वाट को हिरण्मय देखकर बहुत अधिक आश्चर्य किया और लालच के कारण ज्ञान-हीन होकर उसे ग्रहण करने की इच्छा की ॥१९॥ इसके अनन्तर नैमिषेय

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋषियों ने उस राजा पर अत्यन्त क्रोध किया और दैव से प्रेरित उन मनीषी ऋषियों ने विशेष क्रोधित होकर प्रातःकाल में कुशा रूपी वज्रों से उस राजा का हनन भी किया था ॥२०॥ डाभ के वज्रों से विशेष रूप से पिसे हुए उस राजा ने अपने शरीर का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् भूमि पर उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न उसके पुत्र को राजा बना दिया गया ॥२१॥

नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ।
स तेषु वर्त्तते सम्यग् धर्मशीलो महीपतिः ।
आयुरारोग्यमत्युग्र तस्मिन् स नरसत्तमः ॥२२
सान्त्वयित्वा च राजानं ततो ब्रह्मविदां वराः ।
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं यथावद्धर्मभूतये ॥२३
बभूव सत्रं तत्तेषां बह्वाश्चर्यं महात्मनाम् ।
विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ॥२४
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यैर्मरीचिकैः ।
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्यवैश्वानरप्रभैः ॥२५
पितृदेवाप्सरः सिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणैः ।
सम्भारैस्तु शुभैर्जुष्टं तैरेवेन्द्रसदो यथा ॥२६
स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान् पितृन् पित्र्यैश्च कर्मभिः ।
आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्वादीन् यथाविधि ॥२७
आराधयितुमिच्छन्तस्ततः कर्मान्तिरेष्वथ ।
जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२८

जिस महान् आत्मा वाले को नहुष का पिता कहते हैं, वह धर्मशील राजा उन सबके साथ बहुत ही अच्छा बरताव करता था। वह एक परमश्रेष्ठ नृप था, इसलिये उसमें अत्युग्र आरोग्य और आयु सभी कुछ था ॥२२॥ ब्रह्म-वादियों में परमश्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उस राजा की सान्त्वना करके यथारीति धर्म की विभूति की वृद्धि के लिये अपने सत्र के करने का आरम्भ कर दिया ॥२३॥ पहिले समय में इस विश्व की सृष्टि करने की इच्छा वाले विश्व स्रष्टाओं की भाँति उन महान् आत्मा वाले ऋषियों का वह सत्र अत्यन्त आश्चर्य से पूर्ण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ था ॥२४॥ प्यारे सखा वैखानसों के द्वारा, बाल-खिल्यों के, मरीचिकों के और सूर्य तथा अग्नि के समान प्रभा वाले अन्य अनेक मुनियों के द्वारा उस सत्र का सेवन किया गया था ॥२५॥ पितर, देव, अप्सरागण, सिद्ध, गन्धर्व उरग और चारणों के द्वारा अनेकानेक शुभ सम्भारों से युक्त होकर इन्द्रदेव के निवास-स्थान (स्वर्ग) की भाँति इस सत्र का सेवन किया गया था ॥२६॥ स्तोत्र सत्र ग्रहों से देवताओं का तथा पित्र्य-कर्मों के द्वारा पितृगण का और अन्य समस्त गन्धर्व आदि का उनकी जाति एवं स्वभाव के अनुसार विधि-विधान के साथ वहाँ अर्चन किया था ॥२७॥ इसके अनन्तर अन्य कर्मों मे आराधना की इच्छा करते हुए गन्धर्वों ने साम का गायन किया और अप्सरागणों ने वहाँ नृत्य किया ॥२८॥

व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ।
मन्त्रादितत्त्वविद्वांसो जगदुश्च परस्परम् ॥२९
वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नुः प्रतिवादिनः ।
ऋषयस्तत्र विद्वांसः साङ्ख्यार्थन्यायकोविदाः ॥३०
न तत्र दुरितं किंचिद्विदधुर्ब्रह्मराक्षसाः ।
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुराः ॥३१
प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत ।
शक्तिप्रज्ञा क्रियायोगैर्विधिरासीत् स्वनुष्ठितः ॥३२
एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः ।
भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक् पृथक् ।
चक्रिरे पृष्ठगमनान् सर्वानयुतदक्षिणान् ॥३३
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् ।
पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्वर्यदहं द्विजाः ।
प्रणोदितश्च वंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः ॥३४
शिष्यः स्वयम्भुवो देवः सर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ।
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैर्यः समन्वितः ॥३५

मन्त्र आदि के तत्व के ज्ञाता परम विद्वान् मुनिगण अति विचित्र पदों-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वलि वाली शुभ कल्याणकारिणी वाणी का उच्चारण करने लगे और परस्पर में बोलने लगे ॥२६॥ वहाँ पर सांख्य-दर्शन के अर्थ तथा न्याय-दर्शन-शास्त्र के अर्थ के जानने वाले परम विद्वान् कुछ ऋषि लोग वितण्डायुक्त वचन बोलते हुए अपने प्रतिवादियों पर वाक्प्रहार करने लगे ॥३०॥ वहाँ उस दीर्घ सत्र में ब्रह्मराक्षसों ने कोई दुरित (पाप) कर्म नहीं किया था। दैत्य लोगों ने भी यज्ञ का हनन करने का कोई कर्म नहीं किया और वहाँ यज्ञीय वस्तुओं का हरण करने वाले असुर भी नहीं थे ॥३१॥ वहाँ उस समय कोई भी अनभीष्ट एवं प्रायश्चित्त के योग्य कर्म नहीं हुआ था। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के सद्योगों के द्वारा बहुत ही अच्छी तरह से की गई विधि का अनुष्ठान हो रहा था ॥३२॥ परम धीर भृगु आदि मनीषी ऋषियों ने इस प्रकार से वहाँ पृथक्-पृथक् ज्योतिष्टोम किये और बारह वर्ष पर्यन्त उस सत्र को करते रहे और सभी पृष्ठ गमनों को अयुत दक्षिणा वाले किया था ॥३३॥ यज्ञ समाप्त करने वाले उन सब ने अमित आत्मा वाले महान् स्वामी वायु से ही पूछा और वायुदेव ने कहा—हे ब्राह्मणो ! यदि आप लोगों ने मुझे ही वंश कथन करने के लिये प्रेरित किया है तो सुनो—ऐसा प्रभु वायुदेव ने उनसे कहा ॥३४॥ वे स्वयम्भू के शिष्य, सब को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाले, अपने ही वश में रहने वाले देव हैं, जो आठ अणिमादि ऐश्वर्यों से युक्त हैं ॥३५॥

तिर्यग्योन्यादिभिर्धर्मैः सर्वलोकान्विभर्त्ति यः ।
सप्तस्कन्धादिकं शश्वत् प्लवते योजनाद्वरः ॥३६
विषये नियता यस्य संस्थिताः सप्तका गणाः ।
व्यूहांश्च याणां भूतानां कुर्वन् यश्च महाबलः ।
तेजसश्चात्युपध्यानन्दधातीमं शरीरिणम् ॥३७
प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च करणानां च वृत्तिभिः ।
प्रेर्यमाणाः शरीराणां कुर्वते यास्तु धारणम् ॥३८
आकाशयोर्निर्हि गुणः शब्दस्पर्शसमन्वितः ।
तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्ययं भावो मनीषिभिः ॥३९
तत्राभि मानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मकः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वातारणिः समाख्यातः शब्दशास्त्र विशारदः ॥४०
भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान् मुनीन् प्रह्लादयन्निव ।
पुराणज्ञः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ॥४१

जो तिर्यग्योनि आदि धर्मों से समस्त लोकों का भरण करते हैं और श्रेष्ठ जो निरन्तर योजन से सप्त स्कन्ध आदि का प्लवन करते हैं ॥३६॥ जिसके विषय में नियत सप्तकगण संस्थित रहते हैं और जो महान् बल वाला तीन भूतों के व्यूहों को करता हुआ तेज के उपध्यान को खाता है और इस शरीर को धारण करता है ॥३७॥ प्राणाद्या पांच वृत्तियाँ होती हैं और जो इन्द्रियों की वृत्तियों से प्रेर्यमाण होती हुई शरीरों को धारण करती हैं ॥३८॥ आकाश-योनि वाला गुण, शब्द और स्पर्श से समन्वित होता है। मनीषियों के द्वारा यह भाव तैजस प्रकृति वाला भी कहा गया है ॥३९॥ मान वाला भगवान् वायु-देव अत्यधिक क्रिया के स्वरूप वाला होता है। यह शब्द शास्त्र के पण्डित तथा पुराणों के ज्ञाता ने पुराणों के आश्रय से युक्त, परम मधुर वाणी के द्वारा अच्छे मन वाले समस्त मुनियों को परमाह्लाद से पूर्ण करते हुए वातारणि का वर्णन किया ॥४०॥४१॥

॥ प्रजापति सृष्टि कथन ॥

महेश्वरायोत्तमवीर्यकर्मणे सुरर्षभायामितबुद्धितेजसे ।
सहस्रसूर्यानलवर्चसे नमस्त्रिलोकसंहारविसृष्टये नमः ॥१
प्रजापतीन् लोकनमस्कृतां स्तथा स्वयम्भुरुद्रप्रभृतीन् महेश्वरान् ।
भृगुं मरीचिं परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्ममथापि कश्यपम् ॥२
वसिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्दमान् रुचिं विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनिं तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहं च भावतः ॥३
तथैव चुक्रोधनमेकविंशतिं प्रजा विवृद्धयार्पितकार्यशासनम् ।
पुरातनानप्यपरांश्च शाश्वतांस्तथैव चान्यान् सगणानवस्थितान् ॥४
तथैव चान्यानपि धैर्यशोभिनो मुनीन् बृहस्पत्युशनः पुरोगमान् ।
तपःशुभाचारऋषीन् दयान्वितान् प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीम् ॥५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमां सुरेश देवर्षिगणैरलंकृताम् ।
शुभामतुल्यामनघामृषिप्रियां प्रजापतीनामपि चोल्वणार्च्चिषाम् ॥६
तपोभृतां ब्रह्मदिनादिकालिकीं प्रभूतमाविष्कृतपौरुषश्रियम् ।
श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परां पराणामनिलप्रकीर्त्तिताम् ॥७

सूतजी ने कहा—समस्त देवों में परम श्रेष्ठ, अपरिमित बुद्धि के तेज वाले, सहस्रों सूर्यों के अनल के तुल्य वर्चस वाले, उत्तम वीर्य के कर्म करने वाले महेश्वर भगवान के लिये नमस्कार है और तीनों लोकों के संहार की विसृष्टि करने वालों के लिये नमस्कार है ॥१॥ समस्त लोकों के वन्दनीय प्रजापतियों को तथा स्वयम्भू (ब्रह्मा) और रुद्र प्रभृति महान् ईश्वरों को एवं भृगु, मरीचि, परमेष्ठी और रज तथा तम के धर्म वाले मनु को और कश्यप को भी नमस्कार है ॥२॥ वशिष्ठ, दक्ष, अत्रि, पुलस्त्य और कर्दम को और रुचि, विवस्वान् तथा क्रतु एवं आंगिरस मुनि तथा प्रजापति को नत-मस्तक से प्रणाम करके पुलह को भाव सहित नमस्कार है ॥३॥ उसी भाँति प्रजा की विशेष वृद्धि के लिये कार्य-शासन को अर्पित कर देने वाले इक्कीस चुक्रोश धन को नमस्कार है और दूसरे पुरातनों को, नित्य निवास करने वालों को तथा गणों के सहित अवस्थित अन्यों को नमस्कार है ॥४॥ इसी प्रकार से धैर्य की शोभा वाले बृहस्पति एवं उशना जिनके अग्रेसर हैं, ऐसे अन्य मुनियों को, दया से युक्त तपश्चर्या एवं शुभ आचार वाले ऋषियों को प्रणाम करके कलि-युग के पापों के नाश करने वाली प्रजापति की सृष्टि को कहता हूँ ॥५॥ यह प्रजापति की सृष्टि सर्वोत्तम है और सुरेश तथा देवर्षियों के समूह से अलंकृत है। यह सृष्टि परम शुभ, अनुपम, निष्पाप और ऋषियों की अति प्रिय है एवं अत्यन्त तीव्र कान्ति काले प्रजापतियों की भी प्यारी है ॥६॥ जो तपस्वी लोग हैं,उनकी भी प्रिय है। ब्रह्मा के दिन से भी अधिक काल वाली है। यह सृष्टि ऐसी है, जिसने अत्यधिक पुरुषार्थ की श्री का आविष्कार किया है तथा श्रुति एवं स्मृति में प्रसृत एवं उदाहृत है। यह परे से भी परे है और वायु के द्वारा प्रकीर्तित है ॥७॥

समासबन्धैर्नियतैर्यथातथं विशब्दनेनापि मनःप्रहर्षिणीम् ।
यस्याञ्च बद्धा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ॥८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यत्तत् स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म प्रधानं प्रकृतिप्रसूति ।
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षुः क्षेत्रं तथैवामृतमक्षरञ्च ॥९
शुक्रं तपः सत्त्वमतिप्रकाशं तद्वयष्टि नित्यं पुरुषं द्वितीयम् ।
तमप्रमेयं पुरुषेण युक्तं स्वयम्भुवा लोकपितामहेन ॥१०
उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकात् कालस्य योगान्निगमावधेश्च ।
क्षेत्रज्ञयुक्तान् नियतान्विकारान् लोकस्य सन्तानविवृद्धिहेतून् ।
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाष्टौ सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥११
देवासुराद्रिद्रुमसागराणां मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानाम् ।
पिशाचयक्षोरगराक्षसानां ताराग्र हार्कर्क्षनिशाचराणाम् ॥१२
मासर्त्तुसंवत्सररात्र्यहानां दिक्कालयोगादियुगायनानाम् ।
वनौषधीनामपि वीरुधाञ्च जलौकसामप्सरसां पशूनाम् ॥१३
विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमानां यत्सूक्ष्मगं यद्भुवि यद्वियत्स्थम् ।
यत् स्थावरं यत्र यदस्ति किञ्चित् सर्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्तिः।१४

यथातथ अर्थात् समुचित रूप से नियत समास वन्धों के द्वारा बिना ध्वनि के भी मन को परम प्रहर्ष देने वाली है। जिसमें प्रधान की प्रथम प्रवृत्ति और ईश्वरवादिता बद्ध हो रही है ॥८॥ जो ब्रह्मा का अविषय कारण कहा गया है, वह ब्रह्म तथा प्रकृति की प्रसूति प्रधान है। गुहा की योनि वाला आत्मा, चक्षुः, क्षेत्र, अमृत और अक्षर, शुक्र, तप और अति प्रकाश वाला सत्व एवं वह पृथक् नित्य द्वितीय पुरुष को, पुरुष के द्वारा अप्रमेय लोकों के पितामह स्वयम्भू से युक्त उस पुरुष को, उत्पादक होने से, रजोगुण के अतिरेक से, काल के योग से और निगम की अवधि से लोक की सन्तान की विशेष वृद्धि के हेतु स्वरूप क्षेत्रज्ञ से युक्त नियत विकारों को महेश्वर के सङ्कल्प मात्र से आठ प्रकृति की अवस्था को उत्पन्न किया ॥९॥१०॥११॥ देव, असुर, अद्रि, द्रुम सागरों की—मनु, प्रजा, ईश, ऋषि, पितृगण और द्विजों की—पिशाच, राक्षस, उरग और यक्षों की—तारा, ग्रह, अर्क, ऋक्ष और निशाचरों की—मास, ऋतु, सम्वत्सर, रात्रि और दिवसों की—दिशा, काल, योगादि, युग और अयनों की—वन की औषधियों की—वीरुधों की—जल में घर वालों की—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अप्सराओं की—पशुओं की—विद्युत, सरित (नदी), मेघ और विहंगमों की स्थिति में जो सूक्ष्म गमन करने वाला है, जो भूमि में है और जो नभ में स्थित है तथा जो स्थावर है, जहाँ भी जो कुछ है उस सब की गति विभक्ति ही है ॥१२॥१३॥१४॥

छन्दांसि वेदाः सऋचो यजूंसि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञ. ।
आजीव्यमेषां यद्भीप्सितञ्च देवस्य तस्यैव च वै प्रचापतेः ॥१५
वैवस्वतस्यास्य मनोः पुरस्तात् सम्भू तिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ।
येषामिदं पुण्यकृतां प्रसूत्या लोकत्रयं लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधीनामापूरितञ्चोपरिभूषितञ्च ॥१६
रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।
वासः क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभः ॥१७
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि युगेषु सम्भूतिविकल्पनञ्च ।
ऋषित्वमार्षस्य च संप्रवृद्धिर्यथा युगादिष्वपि चेत्तदत्र ॥१८
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान् व्यासाश्च तेऽत्रक्रमशो निबद्धाः ।
कल्पस्य संख्या भुवनस्य संख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य संख्या ।१९
अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजानां धर्मातमनां स्वर्गनिवासिनां वा ।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्कोण तेषामपि च प्रमाणम् ॥२०
आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च योऽयं नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतुः ।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च संसारगतिः परा च ॥२१
प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात् समस्तमाविष्कृतधीधृतिभ्यः ।
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतं यद्यथातथं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥२२

छन्द, वेद, ऋचाओं के सहित यजुः, साम और सोम तथा यज्ञ इन सबका आजीव्य और जो भी इनका अभीप्सित है, वह सब उसी प्रजापति देव का निश्चित रूप से होता है ॥१५॥ पहिले इस वैवस्वत मनु की सम्भूति कही गई है और उनका प्रसव अर्थात् जन्म भी कहा गया है। ये तीनों लोक लोकों के द्वारा वन्दनीय सुरेश, देवर्षि, मनु आदिकों की प्रसूति से अर्थात् परम पुण्य-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शालियों के जन्म से समस्त तीनों लोक परिपूरित हैं और भूषित भी हैं ।।१६।। इस मनुष्य लोक में रुद्र के शाप से दक्ष का पुनर्जन्म अथवा भूमण्डल में निवास हुआ और नियम से यहाँ पर दक्ष का और भव का प्रतिशाप लाभ हुआ ।।१७।। मन्वन्तरों का परिवर्तन युगों में उनकी सम्भूति (उत्पत्ति) और विकल्पन तथा युगादि में ऋषित्व और आर्ष की संप्रवृद्धि हुई वैसी ही यहाँ पर भी हुई ।।१८।। जिन व्यासदेव ने द्वापर में वेदों का विस्तार किया, वे यहाँ पर भी क्रमशः निबद्ध हैं । कल्प की संख्या है, भुवन की संख्या है और ब्रह्मा के दिन की भी संख्या होती है ।।१९।। जीवों की जो अण्डज हैं, उद्भिज हैं, स्वेदज हैं और जरायुज है, धर्मात्मा हैं या स्वर्ग के निवास करने वाले जीव हैं और जो यातना सहने के लिये यातना स्थान (नरक) में पड़े हुए हैं, तर्क से उन सबका भी प्रमाण है ।।२०।। आत्यन्तिक, प्राकृतिक और नैमित्तिक जो यह प्रतिसर्ग का हेतु है तथा बन्ध और विशेष कर मोक्ष इनमें वहाँ पर परा, संसार की गति बताई गई है ।।२१।। प्रकृति में, अवस्थित कारणों में जो स्थिति होती है, अथवा जो प्रवृत्ति होती है, हे विप्रो ! वह शास्त्र की युक्ति से अपनी बुद्धि के प्रयत्न से समस्त धैर्य और बुद्धि को आविष्कृत करने वाले ऋषियों के लिये जो भली भाँति समझा कर कहा गया है, अब आप लोग कहे जाने वाले उस सबको श्रवण करो ।।२२ ।

।। हिरण्यगर्भ के रूप में विभिन्न तत्वों की उत्पत्ति ।।

ऋषयस्तु ततः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
प्रत्यूचुस्ते ततः सर्वे सूतं पर्याकुलेक्षणाः ।।१

भवान् वै वंशकुशलो व्यासात् प्रत्यक्षदर्शवान् ।
तस्मात्त्वं भवनं कृत्स्नं लोकस्यामुष्य वर्णय ।।२

यस्य यस्यान्वया ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषां पूर्वर्षिसृष्टिं च विचित्रां तां प्रजापतेः ।।३

असकृत्परिपृष्टस्तैर्महात्मा लोमहर्षणः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः ।।४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पृष्टां चैतां कथां दिव्यां श्लक्ष्णां पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसम्मताम् ॥५
यश्चेमांधारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो यतिभ्यश्च विशेषतः ॥६
शुचिः पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च ।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्त्तनात् ।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥७

नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियों ने यह सुनकर इसके अनन्तर पर्याकुल नेत्रों वाले उन सबने सूतजी से कहा ॥ १ ॥ महा महर्षि व्यास जी से प्रत्यक्ष दर्शन करने के कारण से आप निश्चय ही वंश कुशल महापुरुष हैं, इसलिये आप इस लोक का सम्पूर्ण भवन का हमारे सामने वर्णन करें ॥ २ ॥ जिस जिसके जो जो अन्वय (वंश) हैं और उनकी प्रजापति की विचित्र पूर्वकालीन ऋषियों की सृष्टि को तथा अन्वयों को हम जानना चाहते हैं ॥ ३ ॥ ऋषियों के द्वारा इस प्रकार बार-बार पूछे जाने पर महात्मा लोमहर्षणजी, जो कि सत्पुरुषों में परमश्रेष्ठ हैं उसे विस्तार से तथा आनुपूर्वी से कहने लगे ॥ ४ ॥ लोमहर्षण जी ने कहा—मुझ से पूछी गयी यह कथा अत्यन्त दिव्य-मधुर और पापों के नाश करने वाली है और अब मेरे द्वारा कही जाने वाली यह कथा सर्वथा श्रुति (वेद) से सम्मत, गहरे अर्थ से परिपूर्ण और अति विचित्र है। जो पुरुष इस कथा को नित्य धारण करेगा अथवा कई बार श्रवण करेगा और ब्राह्मणों को श्रवण करायेगा तथा विशेष रूप से यतियों को सुनायेगा और देवायतनों में, पर्व दिनों में पवित्र तथा समाहित होकर श्रवण करायेगा वह इस पुराण के अनुकीर्त्तन करने से दीर्घ आयु को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है और अपने वंश को धारण करके स्वर्गलोक में जाकर अन्त में प्रतिष्ठित होता है ॥ ५—६—७ ॥

विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यमानं निबोधध्वं सर्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥८
धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनम् ।
कीर्त्तनं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यकारिणाम् ॥९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितश्चेति पुराणं पंचलक्षणम् ॥१०
कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः ।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसम्मितम् ॥११
प्रबोध प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः ॥१२
उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३
एवं हि पादाश्चत्वारः समासात् कीर्त्तिता मया ।
वक्ष्याम्येतान् पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ॥१४

उनके विस्तार के अङ्ग को जिन शब्दों में जैसा भी मैंने सुना है वह अब मेरे द्वारा कीर्त्तन किया जा रहा है आप उसे समझ लेवें, यह सबकी कीर्त्ति का बढ़ाने वाला है ॥ ८ ॥ परम पुण्यकारी और स्थिर कीर्त्ति वाले सबको यह कीर्त्तन धन-यश के बढ़ाने वाला है, शत्रुओं का नाशक, स्वर्ग प्रदान कराने वाला और आयु की वृद्धि कराने वाला है ॥ ९ ॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं, पुराण में सर्ग-प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पांचों होते हैं तभी वह पूर्ण लक्षण सम्पन्न पुराण कहा जाता है ॥ १० ॥ कल्पों के भी जो कल्प है और शुचियों का भी जो नियत शुचि है ऐसा वेद से सम्मत यह मारुत पुराण मैं कहता हूँ ॥ ११ ॥ प्रबोध–प्रलय-स्थिति और उत्पत्ति ये प्रक्रिया प्रथम पाद है। कथन के योग्य वस्तु का परिग्रहण-उपोद्घात-अनुषङ्ग और उपसंहार होता है। यह धर्म से युक्त या धर्म देने वाला यश-दाता, आयु-वर्द्धक और सब प्रकार के पापों का नाशक होता है ॥१२—१३ ॥ इस प्रकार से मैंने संक्षेप में चार पादों को बतला दिया है पुनः इनको क्रमानुसार विस्तार के साथ कहूँगा ॥ १४ ॥

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ।
अन्ताय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने ।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥१५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ।
पञ्चप्रमाणं षट्श्येतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम् ।
असंशयाद् प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तामम् ॥१६
अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्व चिन्तकाः ॥१७
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ।
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥१८
जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल ॥१९
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मन्त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥२०
तस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् गुणभावे तमोमये ॥२१
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ।
गुणभावाद्वाच्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह ॥२२

उस हिरण्यगर्भ पुरुष और ईश्वर के लिये—अन्त रूप और प्रथम स्वरूप वाले के लिये - विशेषताओं से युक्त और प्रजाजन के लिये—लोकतन्त्र, स्वयम्भू ब्रह्मा जी के लिये नमस्कार करके ॥ १५ ॥ मैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ इस भूत सर्ग को बिना किसी संशय के कहता हूँ जिसके आदि में महत् है, अन्त में विशेष है, वैरूप्य से युक्त है और लक्षण के सहित है तथा पाँच प्रमाण वाला है, षट्श्वेत युक्त है एवं पुरुष से अधिष्ठित है और वन्दित है ॥ १६ ॥ और जो इसका अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। तत्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष उसे प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं ॥ १७ ॥ अब उस अव्यक्त का वर्णन किया जाता है, वह अव्यक्त गन्ध-वर्ण और रस से रहित है तथा शब्द और स्पर्श से भी हीन होता है। वह अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य और अपनी ही आतमा में अर्थात् स्वरूप में अवस्थित है ॥ १८ ॥ वह अव्यक्त इस जगत् का योनि, महद्भूत, सनातन, पर और ब्रह्म है। समस्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राणियों का विग्रह ऐसा अव्यक्त हुआ था ॥ १९ ॥ जिसका न आदि है और न अन्त ही है ऐसा अन्तजन्त, अजसूक्ष्म, त्रिगुण, प्रभवान्यय, असाम्प्रत और अविज्ञेय अर्थात् न जानने के योग्य अव्यक्त ब्रह्म के आगे आया ॥ २० ॥ उसकी आत्मा से अर्थात् स्वरूप से यह सब अन्धकारमय व्याप्त था। उस समय सृजन के काल में गुण साम्य अर्थात् गुणों की समष्टि में और तमोमय गुण भात्र में क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित प्रधान के गुण भात्र से वाच्यमान महान् प्रादुर्भूत हुआ अर्थात् उत्पन्न हुआ ॥ २१—२२ ॥

सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृतः।
सत्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्त्वमात्रप्रकाशकम्।
मनो महांश्च विज्ञेयो मन स्तत्कारणं स्मृतम् ॥२३
लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
धर्मादीनान्तु रूपाणि लोकतत्वार्थहेतवः।
महांस्तु सृष्टिं कुरुते नोद्यमानः सिसृक्षया ॥२४
मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संवित् विपुरं चोच्यते बुधैः ॥२५
मनुते सर्वभूतानां यस्मा च्चेष्टाफलं विभुः।
सौक्ष्मत्वेन विवृद्धानां तेन तन्मन उच्यते ॥२६
तत्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणतः।
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति ततः स्मृतः ॥२७
बिभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च।
पुरुषो भोगसम्बन्धात् तेन चासौ मतिः स्मृतः ॥२८

अव्यक्त और सूक्ष्म महत् से समावृत वह सत्व के उद्रेक वाला महान् आगे हुआ जो केवल सत्व का प्रकाश करने वाला था। वह महान् मन ही समझना चाहिये क्योंकि मन ही उसका कारण कहा गया है ॥ २३ ॥ वह क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित महान् लिङ्गमात्र उत्पन्न हुआ। धर्म आदि के रूप तो लोक तत्वार्थ के हेतु हैं। सृजन करने की इच्छा से प्रेरित किया हुआ वह महान् सृष्टि को करता है ॥ २४ ॥ विद्वानों के द्वारा यह महान् मन, मति, ब्रह्मा,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संवित और विपुर कहा जाता है ॥ २५ ॥ सूक्ष्मता से विशेष बढ़े हुए समस्त भूतों की चेष्टा के फल को यह विभु अवबोधित करता है इसी कारण से यह मन कहा जाता है ॥ २६ ॥ यह समस्त अन्य तत्वों के पहिले उत्पन्न हुआ है और परिणाम में महान् अर्थात् बड़ा है तथा शेष अन्य गुणों से भी बड़ा है इसीलिये इसे महान् कहा गया है ॥ २७ ॥ मान को धारण करता है और विभाग को समझता है तथा भोग के सम्बन्ध से पुरुष भी मानता है इसलिये यह 'मति' इस नाम से कहा गया है ॥ २८ ॥

बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च भावानां सलिलाश्रयात् ।
यस्माद्बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ॥२९
आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान् देहाननुग्रहैः ।
तत्वाभावांश्च नियतां स्तेन पूरिति चोच्यते ॥३०
बुध्यते पुरुश्चात्र सर्वभावान् हिताहितान् ।
यस्माद्वबोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते ॥३१
ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात् संवर्त्तते ततः ।
भोगश्च ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः ॥३२
ख्यायते तद्गुणैर्वापि नामादिभिरनेकशः ।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्याभिधीयते ॥३३
साक्षात् सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ।
तस्ताज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥३४
ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्मफलानि च ।
चिनोति यस्माद्भोगार्थान्तेनासौ चितिरुच्यते ॥३५

बृहत् का भाव होने से और बृंहणत्व के कारण से तथा भावों के सलिलाश्रय होने से यह भावों को बृंहित करता है इसीलिये इसे ब्रह्म कहा जाता है ॥ २९ ॥ इसी कारण से कि यह अनुग्रहों के द्वारा समस्त देहों का तथा नियत तत्वभावों का आपूरण किया करता है इसका नाम 'पूः''—यह कहा जाता है ॥ ३० ॥ इसमें पुरुष हित और अहित सभी भावों को जानता है और जिससे ज्ञान प्राप्त किया करता है इसलिये इसका नाम "बुद्धि"—यह कहा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाता है ॥ ३१ ॥ ख्याति और प्रत्युपभोग जिससे होते हैं तथा ज्ञान की निष्ठता होने से भोग होता है इसीलिये यह "ख्याति" कहा जाता है ॥ ३२ ॥ उसके गुणों के द्वारा अनेक नामादि से यह ख्यात होता है इसीलिये इस महत् की 'ख्याति' यह संज्ञा कही जाती है ॥ ३३ ॥ यह सभी कुछ को साक्षात् रूप से जानता है इसीलिये इस महात्मा का 'ईश्वर' नाम होता है। और इससे समस्त ग्रहों की उत्पत्ति हुई है अतएव वह 'प्रज्ञा'—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३४॥ ज्ञान आदि के रूप और क्रतु-कर्म के फल को तथा भोगार्थों को जो चयन करता है इसीलिये वह "चिति"—इस नाम से कहा जाता है ॥ ३५ ॥

वर्त्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ।
स्मरतं सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥३६
कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ।
तस्माद्विदेर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते ॥३७
विद्यते स च सर्वस्मिन् सर्वं तस्मिंश्च विद्यते ।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तौ महान्वै बुद्धिमत्तरैः ॥३८
ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याह भगवान् ज्ञानसन्निधिः ।
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरं प्रोच्यते बुधैः ॥३९
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः ।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते ॥४०
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स कः स्मृतः ।
यस्मात् पुर्यंनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते ॥४१
पर्यायवाचकैः शब्देस्तत्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेवं सद्भावचिन्तकैः ॥४२

वर्त्तमान, भूत और अनागत समस्त कार्यों का स्मरण इसके द्वारा किया जाता है इसलिये यह 'स्मृति'—इस नाम वाला कहा गया है ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण ज्ञान का लाभ करता है इससे 'माहात्म्य' कहा जाता है और पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता होने से इसका नाम 'संवित्' कहा जाता है ॥ ३७ ॥ वह सभी में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विद्यमान रहता है और सभी कुछ इसमें विद्यमान है इसीलिये श्रेष्ठ बुद्धि वालों के द्वारा यह महान् 'संविद' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ ज्ञान होने से इसे 'ज्ञान' यह कहा जाता है और ज्ञान की अच्छी निधि होने के कारण 'भगवान्' कहा जाता है। समस्त द्वन्द्वों के विपूरीभाव होने के कारण बुधों के द्वारा इसका नाम 'विपुर'—यह कहा जाता है ॥ ३९ ॥ लोकों का सबसे बड़ा ईश होने के कारणवश ही इस महत् का नाम 'ईश्वर'—यह हुआ है। वृहत् होने से 'ब्रह्मा'—यह कहा गया है और भूतत्व भाव इसमें रहने से इसे 'भव'—यह कहा जाता है ॥ ४० ॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विशेष ज्ञान होने से और एकत्व होने से उसे 'कः'—यह कहा जाता है। क्योंकि वह पुरी में अनुशयन किया करता है अतएव उसका नाम 'पुरुष'—यह कहा जाता है। वह किसी के द्वारा उत्पादित नहीं हुआ है और पूर्ववर्त्ती है इसीलिये 'स्वयम्भू'–इस नाम वाला है ॥४१॥ तत्वभाव के ज्ञाता तथा सद्भाव के चिन्तन करने वालों के द्वारा पर्यायवाचक अर्थात् समानार्थक द्योतक तत्वं-आद्यं और उत्तमम्—इन शब्दों से व्याख्या की गई है ॥ ४२ ॥

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम् ॥४३
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्वार्थहेतवः ।
त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्वराजसतामसः ॥४४
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
महता चावृतः सर्गो भूतादिविकृतस्तु सः ॥४५
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहङ्कारादजायत ।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥४६
आकाशं शुषिरं तस्मादुद्रिक्तं शब्दलक्षणम् ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् पुनः ॥४७
शब्दमात्रन्तदाकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
भूतादिस्तु विकुर्व्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज्ज ह ॥४८
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणोमतः ।
आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥४९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सृजन करने की इच्छा से जब इस महान् को प्रेरणा दी जाती है तो यह इस जगत् की सृष्टि किया करता है। उसकी सङ्कल्प और अध्यवसाय ये दो प्रकार की वृत्ति कही गई हैं। मानसिक कर्म का नाम सङ्कल्प और लगातार श्रम से कार्य करने को अध्यवसाय कहते हैं ॥ ४३ ॥ धर्म आदि के रूप लोक के तत्वार्थ के हेतु होते हैं। वह सात्विक-राजस और तामस प्रकार से तीन गुणों वाला समझना चाहिये ॥ ४४ ॥ उस त्रिगुण स्वरूप से जब रजोगुण का उद्रेक होता है तो उससे अहङ्कार हुआ है। वह सर्ग महत् से आवृत है और भूतादि से विकृत स्वरूप वाला होता है ॥ ४५ ॥ तमोगुण के उद्रेक वाले उस अहङ्कार से भूतों की तन्मात्राओं का सर्ग होता है। वह भूतादि वाला उसका तामस स्वरूप है ॥ ४६ ॥ उससे शब्द लक्षण वाला आकाश शुषिर उद्रिक्त हुआ। शब्द मात्र आकाश को फिर भूतादि ने आवृत कर लिया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर शब्द मात्र आकाश को स्पर्श मात्र सृजन किया। विकृत रूप वाले होते हुये भूतादि ने शब्द मात्र का सृजन किया ॥ ४८ ॥ फिर बल वाला वायु उत्पन्न होता है जिसका एक मात्र गुण स्पर्श ही कहा गया है। शब्द मात्र आकाश ने स्पर्श मात्र वायु को समावृत कर लिया था ॥ ४९ ॥

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ।
आपो रसान् विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्ज्जिरे ॥५०
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणः स्मृतः ।
रसमात्रन्तु तत्तोयं गन्धमात्रं समावृणोत् ॥५१
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः ।
अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥५२
भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परात् ।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्विकात् ।
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तते ॥५३
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ।
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥५४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ॥५५
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यश्च कर्म च ॥५६

जल केवल रस मात्र होता है जो कि रूप मात्राओं से आवृत हुआ था । जल ने रसों का विकार करते हुये गन्धमात्रा का सृजन किया ॥ ५० ॥ उससे सङ्घात की उत्पत्ति होती है जिसका गुण गन्ध होता है । रस मात्रा वाले जल ने गन्ध मात्रा वाले को समावृत कर लिया था ॥ ५१ ॥ उस-उसमें जो तन्मात्रा है उससे उसकी तन्मात्रता कही गयी है । अविशेष वाचक होने से तब ये अविशेष कहे गये हैं । अशान्त, घोर और मूढ़ होने से फिर अविशेष कहे गये हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार परस्पर से यह भूत तन्मात्र का सर्ग जनना चाहिये । वैकारिक अर्थात् विकारयुक्त अहङ्कार से और सत्व के उद्रेक वाले सात्विक से वह वैकारिक सर्ग एक साथ सम्प्रवृत्त होता है ॥ ५३ ॥ पाँच बुद्धीन्द्रियाँ अर्थात् ज्ञानार्जन करने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच साधक कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् केवल कर्म करके ज्ञानार्जन करने वाली इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इनके दश के दश ही अधिष्ठाता देव होते हैं जो वैकारिक कहे जाते हैं। उन दश उपर्युक्त इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन होता है । वहाँ वैकारिक देव होते हैं ॥५४॥ अब उन समस्त उक्त इन्द्रियों के विषय में बतलाते हैं। श्रोत, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और पाँचवीं इन्द्रिय नासिका है । ये सब शब्दादि विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होती हैं इसीलिये बुद्धीन्द्रिय कहा जाता है ॥ ५५ ॥ दोनों चरण, पायु अर्थात् गुदा-उपस्थ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय दोनों, हाथ और दशवीं वाक् ये इन्द्रियाँ इस तरह हैं। इनका क्रम से कर्मगति-विसर्ग अर्थात् मल का त्याग, आनन्द अर्थात् रमण सुख, शिल्प अर्थात् दस्तकारी और वाक्य कथन होता है ॥५६॥

आकाशं शब्दमात्रञ्च स्पर्शमात्रं समाविशेत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्द स्पर्शात्मकोऽभवत् ॥५७
रूपन्तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।
त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥५८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सशब्दस्पर्शरूपश्च रसमात्रं समाविशत् ।
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः ॥५९
सशब्दस्पर्शरूपेषु गन्धस्तेषु समाविशत् ।
संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्ति महीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूलभूतेषु दृश्यते ॥६०
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥६१
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकघनावृतम् ।
विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥६२
गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
तेषां यावच्च यद्यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥६३
उपलभ्य शुचेर्गन्धं केचिद्वायोरनैपुणात् ।
पृथिव्यामेव तद्विद्यादेषां वायोश्च संश्रयात ॥६४

शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रा वाले वायु में समावेश करता है । अतएव वायु स्पर्श और शब्द इन दो गुणों वाला हो गया ॥ ५७ ॥ शब्द और स्पर्श ये दोनों गुण उसी प्रकार से रूप में समावेश करते हैं । इसलिये अग्नि शब्द-स्पर्श और रूप इन तीन गुणों वाला हो गया ॥ ५८ ॥ इसी रीति से शब्द-स्पर्श और रूप रस तन्मात्रा वाले जल में समाविष्ट हो गये । इसलिये जल शब्द, स्पर्श, रूप और रस इन चार गुणों वाला हो गया ॥ ५९ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस इनमें गन्ध का समावेश हो गया । किन्तु मही को केवल गन्ध से ही निर्धारित किया करते हैं । वस्तुतः यह भूमि पाँच गुणों वाली स्थूल भूतों में दिखलाई देती है ॥ ६० ॥ शान्त, घोर और मूढ़ हैं अतएव ये विशेष कहे गये हैं । ये परस्पर में अनुप्रवेश करने से परस्पर को धारण किया करते हैं ॥६१॥ लोकालोक घन के आवृत यह सब भूमि के अन्दर हैं । विशेष इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य है नियत होने से वे कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ पूर्व-पूर्व के गुण उत्तर से उत्तर को प्राप्त होते हैं । उनका जितना और जो है वह उतना ही गुण कहा गया है ॥ ६३ ॥ कुछ लोग वायु के गन्ध को प्राप्त कर निपुणता के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अभाव से उसे वायु का ही गुण मान लेते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। इसे पृथिवी का ही समझना चाहिये और वायु में तो केवल उसका संश्रय हो जाता है ॥ ६४ ॥

एते सप्त महावीर्या नानाभूताः पृथक् पृथक् ।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ।
ते समेत्य महात्मानो ह्ययोन्यस्यैव संश्रयात् ॥६५
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदाद्या विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ॥६६
एककालं समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् ।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकं च यत् ।
तत्तस्मिन् कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणस्तदा ॥६७
प्राकृतेऽण्डे विबुद्धे सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ।
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥६८
आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ।
हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन् प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
सर्गे च प्रति सर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥६९
करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च ।
भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसन्धिषु ॥७०
हिरण्मयस्तुयो मेरुस्तस्योल्बं तन्महात्मनः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च जराद्यस्थीनि पर्वताः ॥७१

ये सात महान् वीर्य वाले हैं और पृथक् पृथक् अनेक भाँति के होते हैं। पूर्णरूप से न मिलकर प्रजा की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हुए ये सब महान् आत्मा वाले अन्योन्य के अर्थात् एक दूसरे के संश्रय से मिलकर पुरुष के अधिष्ठित होने से और अव्यक्त के अनुग्रह से महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक वे सब अण्ड को उत्पादित किया करते हैं ॥६५-६६॥ एक ही काल में वह जल के बुदबुदे की भाँति समुत्पन्न हुआ और विशेषों से अण्ड के स्वरूप में हुआ। फिर वह और उदक बृहत् हुआ और उसमें उस समय ब्रह्मा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की कार्य करणता संसिद्ध हुई ॥६७॥ प्राकृत अण्ड के विबुद्ध होने पर क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला हुआ । वही सर्वप्रथम शरीरधारी है और वही 'पुरुष'—इस नाम से कहा जाता है ॥६८॥ भूतों का अर्थात् प्राणियों का आदिकर्त्ता अर्थात् सर्वप्रथम सृजन करने वाला पहिले ब्रह्मा हुए । वह हिरण्यगर्भ इसमें आगे चार मुखों वाला प्रादुर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ । और सर्ग, प्रति-सर्ग में क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला होता है ॥६९ । इन्द्रियों के साथ सृजन किये जाते हैं और प्रत्याहार में त्याग देते हैं तथा फिर असमाहार सन्धियों में देहों को धारण कर लेते हैं । ॥७०॥ उस महान् आत्मा की उल्बता हिरण्मय मेरु की है. समुद्र गर्भ का जल है और जरादि अस्थियाँ पर्वत हैं ॥७१॥

तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सप्त वै ।
सप्तद्वीपा च पृथ्वीयं समुद्रैः सह सप्तभिः ॥७२
पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः ।
अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ॥७३
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ।
लोकालोकं च यत् किंचिच्चाण्डे तस्मिन् समर्पितम् ॥७४
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम् ।
आपो दशगुणा ह्येवन्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥७५
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ।
वायोर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतम् ॥७६
आकाशेन वृतो वायुः खं च भूतादिना वृतम् ।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान् ।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥७७
एताश्चावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ।
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसन्त्येताः परस्परम् ॥७८

उस अण्ड में ये सातों लोक अन्तर्भूत है अर्थात् उस के अन्दर रहते हैं । सात द्वीप और सातों समुद्रों के सहित यह भूमण्डल, बड़े विशाल पर्वत, सहस्रों की संख्या वाली नदियाँ—ये सब उसी के अन्तर्भाग में हैं । ये सब लोक और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह सम्पूर्ण जगत् तथा समस्त विश्व उसके ही अन्दर होते हैं ॥७२-७३॥ चन्द्रमा और सूर्य समस्त नक्षत्रों के साथ तथा सम्पूर्ण ग्रहों के सहित उसमें हैं और वायु के साथ लोकालोक जो कुछ भी है उसी अण्ड में समर्पित है ॥७४॥ यह अण्ड बाहिर से दश गुने जल से समावृत है और फिर जल से दश गुने तेज से इसी प्रकार बाहिर से आवृत है ॥७५॥ इसी भाँति तेज जितना है उससे दश गुना वायु से आवृत होता है और वायु से दश गुना उसके बाद आकाश से आवृत होता है ॥७६॥ वायु से आकाश से आवृत है और नभ भूतादि से आवृत है। भूतादि सब महान् से तथा यह महत् अव्यक्त से आवृत होता है। इस प्रकार से यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणों से आवृत होता है ॥ ७॥ इन सब को अन्योन्य को आवृत करके आठ प्रकृतियाँ स्थित होती हैं। प्रसर्ग के काल में ये स्थित होकर परस्पर में ग्रसती हैं ॥७८॥

एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
आधाराधेयभावेन विकारस्य विकारिषु ॥७९
अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते।
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत् प्रादुर्भूता तडिद्यथा ॥८०
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः।
आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ॥८१
निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम्।
पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ॥८२

इस रीति से परस्पर में उत्पन्न होती हुईं परस्पर में ही ये धारण किया करती हैं। विकार वालों में विकार का आधार-आधेय भाव होता है ॥७९॥ यहाँ इस अव्यक्त को क्षेत्र बताया गया है, ब्रह्मा इसका क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही प्राकृत-सर्ग होता है जो कि क्षेत्रज्ञ के द्वारा अधिष्ठित होता है। यह पहिले अबुद्धि पूर्व वाला था और जिस तरह अचानक बिजली चमक कर दिखलाई दिया करती है उसी तरह यह प्रादुर्भूत हुआ ॥८०॥ इस हिरण्यगर्भ के जन्म को तत्त्व बुद्धि पूर्वक ठीक-ठीक जो जानता है वह आयु वाला कीर्ति वाला

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और प्रजा वाला होता है ।।८१।। जो मानव निवृत्ति की ही कामना रखता है वह भी शुद्ध आत्मा वाला अच्छी गति को प्राप्त करता है। पुराण के नित्य श्रवण करने से सुख और क्षेम की प्राप्ति होती है ।।८२।।

।। सृष्टि रचना और दैवी शक्तियाँ ।।

यद्धि सृष्टेस्तु संख्यातं मया कालान्तरन्द्विजाः ।
एतत् कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ।।१
रात्रिस्त्वेतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ।
अहस्तस्य तु या सृष्टिः प्रलयो रात्रिरुच्यते ।।२
अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा ।
उपचारः प्रक्रियते लोकानां हितकाम्यया ।।३
प्रजाः प्रजानाम्पतय ऋषयो मुनिभिः सह ।
ऋषीन् सनत्कुमाराख्यान् ब्रह्मसायुज्यगैः सह ।।४
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।
तन्मात्रा इन्द्रियगणो बुद्धिश्च मनसा सह ।।५
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमतः ।
अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ।।६
स्वात्मन्यवस्थिते सत्वे विकारे प्रतिसंहृते ।
साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ।।७

श्रीलोमहर्षणजी ने कहा—हे द्विजवृन्द ! यह मैंने जो सृष्टि के कालान्तर की संख्या की है यह कालान्तर परमेश्वर का दिन समझना चाहिए ।।१।। परमेश्वर की रात्रि भी इतनी ही जाननी चाहिए उसका जो दिन होता है वही सृष्टि का काल होता है और जो रात्रि होती है वह प्रलय कहा जाता है ।।२।। उसका दिन तो होता है किन्तु रात्रि नहीं होती है—यह धारणा लोकों के हित की कामना से उपचार किया जाता है ।।३।। प्रजा-प्रजाओं के पति—ऋषिवृन्द मुनियों के सहित—सनत्कुमारादि नाम वाले ब्रह्म सायुज्य को जाने वालों के सहित समस्त इन्द्रियाँ और इन इन्द्रियों के सब अर्थ अर्थात् विषय—पंचमहाभूत-पाँच तन्मात्रा, इन्द्रियों का समुदाय और मन के साथ बुद्धि ये सब परमेश्वर के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिन के समय में रहा करते हैं और उस धीमान् परमेश्वर के दिन के अन्त समय में ये सब प्रलीन हो जाते हैं फिर जब रात्रि का अवसान होता है तो इस विश्व की उत्पत्ति हो जाती है ॥४-५-६॥ अपनी आत्मा में सत्त्व के अवस्थित होने पर और विकार प्रतिसंहत हो जाने पर प्रधान और पुरुष दोनों साधर्म्य से अवस्थित रहा करते हैं ॥७॥

तमः सत्त्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अत्रोद्रिक्तौ प्रसूतौ च तौ तथा च परस्परम् ।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥८
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ।
तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽव्यक्ताश्रितं स्थितम् ॥९
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तदा ।
अहर्मुखे प्रवृत्ते च पुरः प्रकृतिसम्भवः ॥१०
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।
प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्याण्डं महेश्वरः ॥११
प्रधानात् क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्त्तत ।
रजः प्रवर्त्तकं तत्र बीजेष्वपि यथा जलम् ॥१२
गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः ।
गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
आश्रिताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ॥१३
रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत ।
रजःप्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः ॥१४

तमोगुण और सत्त्वगुण ये दोनों समत्व रूप से व्यवस्थित हैं। यहाँ पर ये दोनों उद्रक वाले होते हैं और परस्पर में प्रसूत होते हैं। जब गुणों का साम्य हो अर्थात् दोनों गुण समान स्वरूप में स्थिति रखने वाले होते हैं तो सृष्टि का लय समझ लेना चाहिए। जब इनकी विषमता का भाव होता है तो उसे ही सृष्टि कहा जाता है ॥८॥ वस्तुतः स्पष्ट दर्शन में ये दो ही गुण आते हैं सत्वगुण और तमोगुण किन्तु तृतीय जो रजोगुण होता है वह जिस तरह तिलों में तैल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहता है और दूध में घृत रहा करता है किन्तु वह तैल और घृत स्पष्ट दिखलाई नहीं दिया करता है उसी तरह तमोगुण में और सत्त्वगुण में रजोगुण अव्यक्त रूप से आश्रित होकर स्थित रहता है जो कि प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है ॥६॥ महेश्वर प्रभु की परा सम्पूर्ण रजनी की उपासना करके तब दिन के आरम्भ प्रवृत्त हो जाने पर आगे प्रकृति का सम्भव (उत्पत्ति) हुआ । १०॥ महेश्वर ने अण्ड में प्रवेश करके उग्र योग से प्रधान और पुरुष को क्षुब्ध कर दिया ॥११॥ उस समय जब प्रधान क्षोभ्यमाण हुआ तो उससे रजोगुण हुआ वहाँ पर बीजों में जल के सदृश वह रजोगुण ही प्रवर्त्तक हो गया ॥१२॥ उस समय गुणों की विषमता को प्राप्त कर जो अण्ड में अधिष्ठित थे वे प्रसूत होते हैं । क्षोभ को प्राप्त हुए गुणों से तीन देव समुत्पन्न हुए जो वहाँ आश्रित थे—परम गुह्य थे—सब की आत्मा स्वरूप थे और शरीर धारण करने वाले थे ॥१३॥ रजोगुण तो ब्रह्मा हैं—तमोगुण अग्नि हैं और सत्त्वगुण विष्णु उत्पन्न हुए । ब्रह्मा सृष्टा होने से रजोगुण के प्रकाशक व्यवस्थित हुए ॥१४॥

तमःप्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः ।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः ॥१५
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ।
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः ॥१६
परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ।
क्षणं वियोगो न ह्येषान्न त्यजन्ति परस्परम् ॥१७
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महतः परः ।
ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्त्तते ।
परश्च पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥१८
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमानः समन्तात् ।
अनुप्रवर्त्तन्ति महान्त एव चिरस्थिताः स्वे विषये प्रियत्वात् ॥१६
प्रधानं गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ।
ईश्वराधिष्ठितात् पूर्वन्तस्मात्सदसदात्मकात् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुनं युगपत्सम्बभूवतुः ।।२०
तस्मात्तमोऽव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञित ।
संसिद्धः कार्यकरणैर्ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ।।२१

अग्नि तमोगुण का प्रकाश करने वाला है अतः वह काल के स्वरूप से व्यवस्थित हुए। सत्त्वगुण के प्रकाशक विष्णु हैं अतः उदासीनता की स्थिति में व्यवस्थित हुए हैं ।।१५।। ये ही तीन वेद हैं, ये ही तीन अग्नियाँ हैं। ये परस्पर में एक-दूसरे के आश्रित हैं और परस्पर में अनुव्रत वाले भी होते हैं ।।१६।। ये तीनों परस्पर में बरतावा करते हैं और परस्पर में धारण किया करते हैं। ये अन्योन्य मिथुन अर्थात् जोड़े वाले हैं और अन्योन्य के उपजीवी होते हैं। इनका आपस में एक दूसरे से एक क्षण मात्र का भी वियोग नहीं होता है और ये एक दूसरे को आपस में कभी त्याग नहीं करते हैं ।।१७।। ईश्वर सबसे पर देव हैं और विष्णु महान् से भी पर हैं। ब्रह्मा तो रजोगुण के उद्रेक वाले हैं जो यहाँ सर्ग के लिये ही प्रवृत्त होते हैं। पुरुष को पर समझना चाहिए और प्रकृति परा कही गई है ।।१८।। महेश्वर के द्वारा अधिष्ठित यह चारों ओर से उद्यम युक्त होता हुआ प्रवृत्त होता है। अपने विषय में प्रिय होने के कारण चिर स्थित महान् ही फिर अनुप्रवृत्त किया करते हैं ।।१९।। प्रधान गुणों की विषमता होने के कारण से सर्ग काल में अर्थात् सृजन के समय में प्रवृत्त होता है। पहिले ईश्वर से अधिष्ठित उस सदसदात्मक से ब्रह्मा और बुद्धि का जोड़ा एक ही समय में उत्पन्न हुआ ।।२०।। इस कारण से तम अव्यक्तमय और क्षेत्रज्ञ ब्रह्म संज्ञा वाला होता है तथा कार्य कारणों से संसिद्ध होता हुआ ब्रह्मा आगे हुआ ।।२१।।

तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्तः संप्रकाशते ।
स वै शरीरी प्रथमः कारणत्वे व्यवस्थितः ।।२२
अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वितः ।
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वितः ।।२३
तस्येश्वरस्याप्रतिघं ज्ञानं वैराग्यलक्षणम् ।
धर्मैश्वर्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिनः ।।२४
अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वशीकृत त्वाद्वैगुण्यात् सुरेशत्वात्स्वभावतः ।।२५
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत् ।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ।।२६
सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ।
सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तिः स्वयम्भुवः ।।२७
लोकान् सृजति ब्रह्मेति कालत्वे संक्षिपत्यपि ।
पुरुषत्वे ह्युदासोनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः ।।२८

प्रथम धीमान् अव्यक्त तेज से भली-भाँति प्रकाशित होता है । वह प्रथम शरीर धारण करने वाला है जो कि कारण रूप से व्यवस्थित हुआ है ।।२२।। वह अनुपम धर्म्म और वैराग्य से समन्वित तथा अप्रतीघ ज्ञान एवं ऐश्वर्य से अन्वित था ।।२३।। उस ईश्वर का वैराग्य के लक्षण वाला अप्रतिघ ज्ञान था और अभिमान वाले उसको धर्म तथा ऐश्वर्य से की हुई ब्राह्मी बुद्धि उत्पन्न हुई ।।२४।। इसके मन से जो भी वह चाहता है वही अव्यक्त से हो जाता है क्योंकि स्वभाव से वशीकृत-वैगुण्य और सुरेशता थी ।।२५।। चतुर्मुख तो ब्रह्मत्व और कालत्व में अन्तक हुआ । और सहस्र मूर्धा वाला पुरुष हुआ । इस प्रकार स्वयम्भू की तीन अवस्थाऐं हुईं ।।२६।। ब्रह्मत्व में सत्त्व और रजोगुण की वृत्ति थी, कालत्व की अवस्था में रजोगुण और तमोगुण की वृत्ति थी तथा पुरुषत्व की दशा में स्वयम्भू की केवल सात्त्विका गुण वृत्ति थी ।।२७।। वही स्वयम्भू ब्रह्मत्व के स्वरूप से लोकों का सृजन करता है और कालत्व की दशा में अव-स्थित होकर संहार किया करता है तथा पुरुषत्व के स्वरूप वह उदासीन भाव से स्थित रहता है । ये प्रजापति की तीन अवस्थाऐं होती हैं ।।२८।।

ब्रह्मा कमलगर्भाभः कालो जात्याञ्जनप्रभः ।
पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः ।।२९
योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ।
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्तिः स्वलीलया ।।३०
त्रिधा यद्वर्त्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ।
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ।।३१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चास्ति विषयं प्रति ।
तच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ॥३२
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीराद्यात्स्वयं प्रभुः ।
स्वामित्वमस्य तत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात् ॥३३
भगवान् भगसद्भावाद्रागो रागस्य शासनात् ।
परश्च तु प्रकृतत्वादवनादोमितिः स्मृतः ॥३४
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात् सर्वः सर्वं यतस्ततः ।
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥३५

अपनी अवस्था के अनुसार उस परमात्मा के तीन प्रकार के रूप होते हैं। जब वही ब्रह्मा होता है तो उसका रूप कमल के गर्भ की आभा के समान हुआ करता है, काल का स्वरूप होता है उस समय अञ्जन के सदृश रूप होता है और जब पुरुष के स्वरूप में होता है तब पुण्डरीकाक्ष अर्थात् कमल के तुल्य नेत्रों वाला होता है ॥२९॥ वह योग का स्वामी अपनी लीला से अनेक आकृति-विविध क्रिया-प्रचुर रूप, नाम तथा वृत्ति वाला है तथा शरीरों को धारण करता है और त्याग दिया करता है ॥३०॥ वह लोक में तीन स्वरूपों से रहता है इसी लिये वह त्रिगुण अर्थात् तीन गुण वाला कहा जाता है। चार प्रकार से प्रविभक्त होने से वह चतुर्व्यूह कहा गया है ॥३१॥ जो प्राप्त करता है—जो भी ग्रहण करता है और विषय के प्रति जो भी कुछ है वह सदा इसी का भाव होता है इसी कारण से यह आत्मा कहा जाया करता है ॥३२॥ सब में गत होने वाला है इसी कारण से ऋषि है, शरीर से भी आद्य होने से स्वयं प्रभु है और सब में प्रवेश होने से विष्णु कहा जाता है, समस्त वस्तु जात पर इसका स्वामित्व होता हैं ॥३३॥ भग नाम षट् ऐश्वर्य का होता है उसके सद्भाव होने से यही भगवान् इस नाम से कहा जाता है। राग के शासन करने से 'राग' कहते हैं, प्रकृत होने से पर तथा रक्षण करने से 'ओम्' यह नाम इसका कहा गया है ॥३४॥ समस्त प्रकार का विशेष ज्ञान होने से 'सर्वज्ञ'–यह नाम हुआ। उसके जहाँ-तहाँ सभी कुछ रहता है अतएव 'सर्व' यह नाम है। समस्त नरों का यह अयन अर्थात् आधार स्थान होता है इसी कारण से इस 'नारायण'—इस नाम से पुकारा गया है ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्यं सम्प्रवर्त्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् ।
अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥३६
आदित्वाच्चादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः जापतिरतः स्मृतः ॥३७
देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः ।
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ॥३८
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ।
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्वगतो यतः ॥३९
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥४०
इज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात् ।
क्रमणः क्रमणीयत्वाद्वर्णकस्याभिपालनात् ॥४१
आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ।
हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ।
तस्माद्धिरण्यगर्भः स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते ॥४२

अपनी आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके इस त्रैलोक्य में सम्प्रवृत्त होता है। तीन तरह की दशा से ही लोकों का सृजन करता है, संहार करता है और वीक्षण किया करता है। वह पहिले चार मुखों वाला हिरण्यगर्भ के स्वरूप से प्रकट हुए ॥३६॥ सबके आदि में होने से 'आदिदेव' तथा अजन्मा होने के कारण से 'अज' कहा गया है। समस्त प्रजाओं का पालन-पोषण करता है, अतएव 'प्रजापति' कहा गया है ॥३७॥ समस्त देवताओं में सबसे बड़ा देव है, इसीलिये इसका 'महादेव' यह नाम पड़ गया है। समस्त लोकों का आवश्यक रूप से ईश होने के कारण से ही 'ईश्वर' इस नाम से यह पुकारा जाया करता है ॥३८॥ सबसे बृहत् होने से 'ब्रह्मा' तथा भूत होने के कारण से 'भूत' इस नाम से यह कहा जाता है। क्षेत्र के विशेष ज्ञान होने से 'क्षेत्रज्ञ' और क्योंकि यह सब में गत होकर रहा करता है, इसलिये इसे 'विभु' इस नाम से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहा गया है ॥३९॥ चूंकि यह पुर में अनुशयन किया करता है, इसी कारण से इसे 'पुरुष' कहा गया है। किसी के द्वारा उत्पादित नहीं किया गया है और सबके पहिले होने वाला है, इससे इसका 'स्वयम्भू' यह नाम कहा गया है ॥४०॥ यह इज्य अर्थात् सृजन करने के योग्य है इसीलिए इसका नाम यज्ञ' यह होता है। विक्रान्ति के देखने से 'कवि' नाम होता है। क्रमण करने के योग्य होने से 'क्रमण' तथा अभिपालन करने से 'वर्णक' ये नाम हुए है ॥४१॥ कपिल, आदित्य संज्ञा वाला, अग्रज और अग्नि ये नाम कहे गये हैं। इसका गर्भ हिरण्य हुआ था और हिरण्य के ही गर्भ से जन्म लेने वाला है, इसलिये इस पुराण में उसे 'हिरण्यगर्भ' इस नाम से कहा जाता है ॥४२॥

स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजस्तु यः ।
न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥४३
कल्पसंख्यानिवृत्तोस्तु पराख्यो ब्रह्मणः स्मृतः ।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ॥४४
कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ।
समतीतानि कल्पानान्तावच्छेषाः परास्तु ये ॥४५
यस्त्वयं प्रर्त्तते कल्पो वाराहन्तं निबोधत ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्त्तते द्विजाः ॥४६
तस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनवः स्युश्चतुर्दश !
अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः ॥४७
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः ।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ॥४८
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पः कल्पेन चैव ह ॥४९
अतीतानि च कल्पानि सोदर्कानि सहान्वयैः ।
अनागतेषु तद्वच्च तर्क्कः कार्या विजानता ॥५०

निवृत्त स्वयम्भू के वर्षों पहिले उत्पन्न होने वाला जो काल है, वह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता है ।।४३।। कल्प की संख्या के निवृत्त होने वाले ब्रह्मा को 'पराख्य' कहा जाता है। उसका उतना अन्य शेष-काल होता है, उसके अन्त में प्रतिसृजन किया जाता है ।।४४।। करोड़ों-करोड़ों सहस्र जो अन्तर्भूत अतीत हुए हैं, अर्थात् अन्दर में रहने वाले गुजर चुके हैं वे उतने शेष पर कहे जाते हैं ।।४५।। जो यह वर्तमान कल्प है, उसका नाम वाराह समझ लेना चाहिए। हे द्विजवृन्द ! उन अन्य समस्त कल्पों में यह इस समय वरतने वाला प्रथम ही कल्प है ।।४६।। इस वाराह-कल्प में स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं, जो कुछ तो अतीत हो चुके हैं, कुछ वर्तमान हैं और कुछ आगे होंगे ।।४७।। उन सब के द्वारा चारों ओर यह भूमण्डल सात द्वीपों वाला है, जोकि पूरे एक सहस्र युग पर्यन्त नश्वरों के द्वारा परिपालन करने के योग्य है। प्रजाओं के द्वारा और तप से युक्त है, उसका पूर्ण विस्तार मैं बतलाता हूँ, उसका आप लोग अब श्रवण करें ।।४८।। एक मन्वन्तर के द्वारा सब ही अन्तर्गत होते हैं। जो आगे होंगे, वे आगे होने वालों के द्वारा और कल्प, कल्प के द्वारा अन्तर्गत होते हैं ।।४९।। विशेष रूप से जानने वाले के द्वारा अन्वयों के सहित और सोदक जो कल्प व्यतीत हो गये हैं तथा उसी प्रकार से जो अनागत हैं अर्थात् अर्थात् आगे आने वाले हैं, उनमें तर्क करना चाहिए ।।५०।।

।। सृष्टि रचना के विभिन्न सर्ग ।।

आपो ह्यग्नेः समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
सान्तरालैकलीनेऽस्मान्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।१
एकार्णवे तदा तस्मिन् न प्राज्ञायत किंचन ।
तदा स भगवान् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यः स सुष्वाप सलिले तदा ।।३
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदीक्ष्य सः ।
इमं चोदाहरत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।।४
आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुमः ।
अप्सु शेते च तत्तस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ।।५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥६
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत्।
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अग्नि से जल हुए और पृथिवी तल में अग्नि के नष्ट हो जाने पर तथा अन्तराल के सहित लीन होने पर स्थावर और जङ्गम नष्ट हो गये ॥१॥ उस समय उस एक अर्णव में कुछ भी नहीं जाना गया था। तब सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र चरण वाला भगवान् ब्रह्मा तथा सहस्र मूर्धा वाला रुक्म (सुवर्ण) के समान वर्ण से युक्त, इन्द्रियों से अगोचर पुरुष जो 'नारायण' इस नाम से कहा जाता है, वह ब्रह्मा उस समय में जल में शयन करता था ॥२॥३॥ उस समय सत्व के उद्रेक होने से वह प्रबुद्ध हुए और उन्होंने इस लोक को पूर्णतया शून्य देखा। यहाँ नारायण के प्रति इस श्लोक को उदाहृत करते हैं ॥४॥ आप नार ये तनु हैं, ऐसा जलों का नाम सुनते हैं। क्योंकि जलों में शयन किया करते हैं, इसी कारण से 'नारायण' यह नाम कहा गया है ॥५॥ एक युगों के सहस्र के तुल्य निशा का समय पर्यन्त उसने वहाँ उसी तरह उपासना की और फिर रात्रि के अन्त में सर्ग (सृजन) के कारण होने से ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हैं ॥६॥ उस जल में ब्रह्मा उस समय वायु होकर विचरण करता था, जैसे कोई खद्योत (जुगनू) वर्षा-काल की रात्रि में इधर-उधर घूमा करता है ॥७॥

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम्।
अनुमाना दसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥८
अकरोत् स तनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा।
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥९
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः।
किन्तु रूपं महत् कृत्वा उद्धरेयमहं महीम् ॥१०
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं धर्मसंज्ञितम् ॥११
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेतं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ॥१३
पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
पीनोन्नतकटीदेशं सुश्लक्ष्णं शुभलक्षणम् ॥१४
रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥१५

इसके अनन्तर उस जल में अन्तर्गत भूमि का ज्ञान प्राप्त करके भी भूमि के उद्धार के प्रति वह अनुमान से असंमूढ था अर्थात् अनुमान के ज्ञान से युक्त था ॥८॥ इसके अनन्तर उसने अन्य तनु किया, जैसा कि पहिले कल्प आदि में बनाया था और फिर उस महान् आत्मा ने मन से उस दिव्य रूप का चिन्तन किया था ॥९॥ उसने उस समय चारों ओर जल में आप्लुत इस भूमि को देखकर विचार किया कि क्या मैं अपना महान् रूप बनाकर इस भूमि का उद्धार करूँ ? ॥१०॥ जल की क्रीड़ाओं में अत्यन्त सुन्दर बाराह के रूप का स्मरण किया, जो कि समस्त प्राणियों के द्वारा धर्षित न करने के योग्य होता है तथा वाङ्मय और धर्म की संज्ञा वाला है ॥११॥ अब उस वाराह के रूप का विस्तृत वर्णन किया जाता है—वह वाराह जोकि भगवान् ने उस समय अपना रूप बनाया था दश योजन विस्तीर्ण अर्थात् लम्बा था, एक-सौ योजन ऊँचा था, नीले मेघ के समान कान्ति वाला था और मेघ की घोर गर्जना के सदृश शब्द करने वाला था ॥१२॥ एक बहुत ही विशाल पर्वत के समान आकार वाला, श्वेत था और उसके अत्यन्त तीक्ष्ण तथा बहुत ही उग्र दाढ़ें । बिजली एवं अग्नि के तुल्य प्रकाश (चमक) वाले उसके नेत्र थे और सूर्य के समान तेज वाला था ॥१३॥ मोटे और चौड़े कंधों वाला था, सिंह के विक्रम से युक्त गमन के समान गमन करने वाला था । मोटे और ऊँचे बहुत ही सुन्दर एवं शुभ लक्षण वाले कटि देश से युक्त था ॥१४॥ ऐसे आकार-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकार वाला अत्यन्त विशाल अपना अभिमत वाराह का रूप हरि भगवान् ने धारण कर पृथिवी के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था। १५।।

स वेदवाद्युपद्रष्टा क्रतुवक्षाश्चितीमुखः।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।।१६
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः।
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान् ।।१७
सत्यधर्ममयः श्रीमान् धर्म्मविक्रमसंस्थितः।
प्रायश्चित्तरतो घोरः पशुजानुर्महाकृतिः ।।१८
ऊर्द्धगात्रो होमलिङ्गः स्थानबीजो महौषधिः।
वेद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिगाज्यस्रृक् सोमशोणितः ।।१९
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ।।२०
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो विभुः।
उपाकर्मेष्टिरुचिरः प्रवर्ग्यवित्तभूषणः ।।२१
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः।
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्ग इवोच्छ्रितः।
भूत्वा यज्ञवाराहो वै अपः स प्राविशत् प्रभुः ।।२२

अब उस वाराह के स्वरूप में प्रभु के प्रवेश करने का विस्तृत शोभा समन्वित वर्णन किया जाता है—वह हरि का वाराह स्वरूप वेदवादियों का उपद्रष्टा था, क्रतु ही जिसका वक्षःस्थल था और चिति के मुख वाला था। उस वाराह की जिह्वा साक्षात् अग्निदेव थे, दर्भ रोम रूप थे, ब्रह्म जिसका शीर्ष (मस्तक) था, महान् तप वाला था ।।१६।। दिन और रात्रि रूपी नेत्रों को धारण करने वाला, वेद और षट् वेदों के अंगों के आभरण वाला, घृत ही जिसकी नासिका थी और स्रुवा जिसका मुख था तथा सामवेद का गान ही उसकी महान् ध्वनि थी ।।१७।। सत्य और धर्म से परिपूर्ण श्री से युक्त तथा धर्म रूपी विक्रम में संस्थिति करने वाला था। प्रायश्चित्त में अनुराग रखने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाला, पशु की जानु वाला, परम घोर और महान् आकृति वाला उस वाराह का स्वरूप था ॥१८॥ ऊर्ध्व गात्र वाला तथा होम के उपस्थ वाला, स्थान के बीज वाला, महान् औषधि स्वरूप था। वह जानने के योग्य अन्तरात्मा वाला, मन्त्र ही जिसके स्फिक् थे तथा घृत स्पृक् वाला और सोम के रक्त वाला उस वाराह का स्वरूप था ॥१९॥ वेद जिस वाराह के स्कन्ध थे, हवि जिसकी गन्ध थी और हव्य तथा कव्य ही उसके वेग थे जिनसे वह युक्त था। प्राग्वंश के काया वाला, द्युति वाला और विविध भाँति की दीक्षाओं से समन्वित स्वरूप वाला वह वाराह था ॥२०॥ दक्षिणा हृदय, योगी, महासत्रमय और विभु तथा उपाकर्म की दृष्टि से सुन्दर एवं प्रवर्ग्य वित्त और भूषण वाला वाराह स्वरूप था ॥२१॥ अनेक छन्दों की गति के मार्ग वाला, गुह्य उपनिषदों के आसन वाला छाया रूपिणी अपनी पत्नी की सहायता से युक्त अत्युन्नत मणिशृङ्ग की भाँति होकर उस प्रभु यज्ञ वाराह ने जल में प्रवेश किया था ॥२२॥

उद्भिः संछादितामुर्वीं स तामश्नन् प्रजापतिः।
उपगम्योज्जहाराशु अपस्ताश्च स विन्यसत् ॥२३

सामुद्रीर्वै समुद्रेषु नादेयीश्च नदीष्वथ।
रसातलतले मग्नां रसातलतले गताम्।
प्रभुर्ल्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाभ्युज्जहार गाम् ॥२४

ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीकरः।
मुमोच पूर्वं मनसा धारयित्वा धराधरः ॥२५

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थितः।
चरितत्वाच्च देवस्य न मही याति विप्लवम् ॥२६

ततोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया।
पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः।
पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥२७

प्राक् सर्वे दह्यमानास्तु तदा संवर्त्तकाग्निना।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥२८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुनापस्तु संहृताः ।
निषिक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रतत्राचलोऽभवत् ।।२६

प्रजापति ने जलों से भली भाँति ढकी हुई उस पृथ्वी को खोजते हुए वहाँ जाकर शीघ्र ही उसका उद्धार किया और उन जलों का विन्यास कर दिया ।।२३।। समुद्रों में सामुद्री तथा नदियों में नदी सम्बन्धी जलों का विन्यास किया । इसके अनन्तर रसातल में निमग्न तथा रसातल में गई हुई भूमि को प्रभु ने लोकों के हित के लिये अपनी दंष्ट्रा से (दाढ़ से) ऊपर लाकर उद्धार किया ।।२४।। इसके अनन्तर पृथ्वी की रचना करने वाले प्रभु उस पृथ्वी को अपने स्थान पर लाकर धरा के धारण करने के पहिले मन से धारण करके फिर त्याग किया था ।।२५।। उस जल के समूह के ऊपर स्थित पृथ्वी एक बड़ी विशाल नौका की तरह थी, किन्तु वह मही देव के द्वारा लाने के कारण से फिर विप्लव को प्राप्त नहीं होती है ।।२६।। इसके उपरान्त देव ने भूमि को ऊपर लाकर जगत के स्थापन करने की इच्छा की और उसी इच्छा से कमल के समान नेत्रों वाले पृथ्वी प्रविभाग करने के लिये मन किया । पृथ्वी को समान करके उस पृथ्वी पर उस देव ने पर्वतों को चुन दिया ।।२७।। पहिले उस समय वे सब संवर्त्ताकाग्नि से दह्यमान थे और भूमि पर सब ओर से उस अग्नि के द्वारा वे सब पर्वत विशीर्ण हो गये थे ।।२८।। शैत्य से उस एकार्णव में वायु के द्वारा जल संहृत किये गये और जहाँ-जहाँ पर वे निषिक्त थे, वहाँ-वहाँ पर अचल हो गये ।।२६।।

स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयोऽन्तर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ।।३०
ततस्तेषु विशीर्णेषु लोकोदधिगिरिष्वथ ।
विश्वकर्म्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः ।।३१
ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम् ।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पुनः सोऽथ प्रकल्पयत् ।
लोकान् प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज्ज ह ।।३२
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ससर्ज्ज सृष्टिन्तद्रूपां कल्पादिषु यथा पुरा ॥३३
तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रधानसमकालं वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥३४
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥३५

स्कन्न और अचल होने से ये अचल कहे गये तथा पर्वों से पर्वत कहे गये हैं। अन्तर्भिगीर्ण होने से इनका नाम गिरि पड़ गया है। इनकी शिलाओं का चयन किये जाने से इनका नाम शिलोच्छ्रय हुआ है ॥३०॥ इसके अनन्तर उन लोक-उदधि और पर्वतों के विशीर्ण हो जाने पर विश्वकर्मा बार-बार कल्पादि में विभाग करते हैं ॥३१॥ समुद्रों के सहित इस पृथ्वी को, सात द्वीपों को, समस्त पर्वतों को और भूमण्डल से आदि चार लोकों को उसने पुनः प्रकल्पित किया था। इस तरह लोकों का प्रकल्पन करके फिर प्रजा के सर्ग की रचना की ॥३२॥ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार की प्रजा के सृजन की इच्छा करने वाला होकर जिस प्रकार पहिले कल्पादि में थी, उसी रूप वाली सृष्टि की रचना की थी ॥३३॥ सर्ग की करने की भावना से अभिध्यान् करते हुए उनके समक्ष में उस समय बुद्धिपूर्वक एक ही समय में प्रधान तथा तमोमय प्रादर्भूत हुआ ॥३४॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध-संज्ञा वाला तथा महात्मा से पाँच पर्व वाली यह अविद्या प्रादुर्भूत हुई ॥३५॥

पञ्चधा चाश्रितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
सर्वतस्तमसा चैव दीपः कुम्भवदावृतः ।
बहिरन्तः प्रकाशश्च शुद्धो निःसंज्ञ एव च ॥३६
यस्मात्तैः संवृता बुद्धिर्मुख्यानि करणानि च ।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिता ॥३७
मुख्यसर्गे तथाभूतं ब्रह्मा दृष्ट्वा ह्यसाधकम् ।
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततो न्यासोऽभ्यमन्यत ॥३८
तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्य्यक् स्रोतोऽभ्यवर्त्तत ।
यस्मात्तिर्यग् व्यवर्त्तत तिर्य्यक्स्रोतस्ततः स्मृतम् ॥३९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तमोबहुत्वात्ते सर्गे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ।
उत्पथग्राहिणश्चापि ध्यानाद्ध्यानमानिनः ॥४०
तिर्य्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अहंकृता अहंमना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥४१
एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ।
अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ॥४२

ध्यान करते हुए अभिमानी का वह सर्ग पाँच प्रकार से आश्रित हुआ। वह सर्ग कुम्भ से दीप की भाँति सब ओर से तम से आवृत था। बाहिर और अन्दर शुद्ध प्रकाश था, जिसकी कोई संज्ञा नहीं थी ॥३६॥ जिससे उनके द्वारा बुद्धि संवृत थी और मुख्य कारण संवृत थे, उससे वे संवृत आत्मा वाले नग मुख्य कहे गये हैं ॥३७॥ मुख्य सर्ग में ब्रह्माजी ने उस प्रकार के असाधक को देखकर अपने मन में बहुत ही अप्रसन्नता की और इसके अनन्तर उसने फिर न्यास करने को मन में माना ॥३८॥ इस प्रकार सर्ग करने के लिये उसके ध्यान करते हुए वहाँ पर तिर्यक् स्रोत हुआ। क्योंकि वह तिर्यक् व्यवहार करता है, इसीलिये वह 'तिर्यक् स्रोत' इस नाम से कहा गया है ॥३९॥ उन सब में तमोगुण की अधिकता होने से वे सब अधिक अज्ञान वाले कहे गये हैं। ध्यान के मानी के ध्यान से वे सभी उत्पथ के ग्रहण करने वाले भी थे ॥४०॥ तिर्यक् स्रोत वाले ईश्वर ने इस द्वितीय विश्व को देखा, जोकि कर्म में और मन में अहं भाव वाला तथा अट्ठाईस प्रकार के स्वरूप वाला है ॥४१॥ एकादश इन्द्रियों के प्रकार हैं तथा नौ उदय के प्रकार हैं, आठ तारक आदि के तथा उनकी शक्ति के प्रकार कहे गये हैं ॥४२॥

अतः प्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च बहिः पुनः ।
यस्मात्तिर्यक् प्रवर्त्तेत तिर्य्यक्स्रोताः स उच्यते ॥४३
तिर्यक्स्रोताश्च दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ।
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्वन्तथाभिधम् ।
तस्याभिध्यायतो नित्यं सात्विकः समवर्त्तत ॥४४
ऊर्द्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्द्ध्वव्यवस्थितः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यस्माद्व्यवर्त्ततोर्द्ध न्तु ऊर्द्ध स्रोतास्ततः स्मृतः ॥४५
ते सुखप्रीतिबहुला वहिरन्तश्च संवृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्धस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥४६
तेन वा तादयो ज्ञेयाः सृष्टात्मानो व्यवस्थिताः ।
ऊर्द्धस्रोतास्तृतीयो वै तेन सर्गस्तु स स्मृतः ॥४७
ऊर्द्ध स्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत ।
ससर्ज्ज सर्गमन्यं स साधकं प्रभुरीश्वरः ॥४८
अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक्स्रोतः सुसाधकम् ।
यस्मादर्वाक्व्यवर्त्तेत ततोऽर्वाक्स्रोत उच्यते ॥४८
ते च प्रकाशबहुलास्तमःसत्त्वरजोधिका ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥५०

इसलिये वे सब प्रकाश हैं और फिर बाहिर वे सब आवृत हैं। जिस कारण से उनकी तिर्यक् प्रवृत्ति होती है, इसीलिये वह सर्ग तिर्यक् स्रोत वाला कहा जाता है ॥४३। ईश्वर ने जोकि तिर्यक् स्रोत वाला है, इस द्वितीय विश्व को देखा और उस प्रकार वाले समस्त उद्भूत अभिप्राय को देखा। इस तरह नित्य ही सर्ग-रचना के ध्यान करने वाले के समक्ष सात्त्विक हुआ ॥४४॥ यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला था और ऊर्ध्व की ओर ही व्यवस्थित भी था। यह ऊर्ध्व की ओर प्रवृत्त था, इसी कारण से इसका नाम ऊर्ध्व-स्रोता कहा गया है ॥४५॥ वे सब सुख और प्रीति की प्रचुरता वाले थे, बाहिर और अन्दर संवृत थे, बाहिर और अन्तर्भाग में प्रकाशमय थे। ये सब ऊर्ध्व स्रोतोद्भव कहे गये हैं ॥४६॥ इससे वात आदि जानने चाहिए, जोकि सृष्ट स्वरूप वाले व्यवस्थित हैं। यह तृतीय सर्ग ऊर्ध्व स्रोत वाला है, अतः यह इसी नाम से कहा भी गया है ॥४७॥ इन ऊर्ध्व स्रोतों में देवों के सृष्ट होने पर वह प्रभु ब्रह्मा उस समय बहुत हां प्रीति वाले हुए अर्थात् ब्रह्माजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इसके अन्तर उन्होंने अन्य सर्ग करने का मन में विचार किया और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ईश्वर प्रभु ने अन्य साधक सर्ग की सृष्टि की ॥४८॥ इसके अनन्तर अभिध्यान करते हुए जब सत्य का अभिध्यायी वे हुए तब उसका अव्यक्त से सुसाधक अर्वाक् स्रोत का प्रादुर्भाव हुआ। वह अर्वाक् की ओर वरतावा करता है, इसी कारण से वह अर्वाक् स्रोत इस नाम से कहा जाता है ॥४९॥ और बहुल प्रकाश वाले वे होते हैं, जिनमें तम, सत्व और रजोगुण अधिक होता है। इससे वे पुनः-पुनः करने वाले तथा अधिक दुःख वाले होते हैं ॥५०॥

प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिताः ॥५१
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्म्मिणः।
इत्येष तेजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्रोताः प्रकीर्तितः ॥५२
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः।
विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च।
विवृतं वर्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति तत्वतः ॥५३
भूतादिकानां सत्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते।
विपर्य्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः ॥५४
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु सः।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥५५
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः।
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥५६
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः।
तिर्य्यक्स्रोताश्च यः सर्गस्तिर्य्यग्योनिः स पञ्चमः ॥५७

बाहिर और अन्दर प्रकाशयुक्त हैं। वे मनुष्य और साधक हैं। तारकाद्य लक्षणों से वे आठ प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ॥५१॥ सिद्धात्मा वे मनुष्य, जो गन्धर्वों के सहधर्मी होते हैं। यह तेजस सर्ग होता है और अर्वाक् स्रोता कहा गया है ॥५२॥ पाँचवाँ अनुग्रह सर्ग होता है और वह चार प्रकार से व्यवस्थित होता है। विपर्य्यय से, शक्ति से, तुष्टि से और चतुर्थ प्रकार में सिद्धि से व्यवस्थित है। वे विवृत्त और वर्तमान अर्थ को तत्वतः अर्थात् तात्त्विक रूप से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जानते हैं ॥५३॥ भूतादि का जो सर्ग होता है, वह छठवाँ सर्ग कहा जाता है। भूतादि विपर्य्यय से तथा अशक्ति से व्यवस्थित होता है ॥५४॥ प्रथम सर्ग महत् का होता है, जो वह महत् का ही सर्ग जानना चाहिए। तन्मात्राओं का दूसरा सर्ग होता है, वह भूत सर्ग कहा जाया करता है ॥५५॥ तृतीय सर्ग वैकारिक सर्ग होता है, जो इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाला ऐन्द्रिक ही कहा गया है। इतना यह प्राकृत सर्ग है, जो बुद्धिपूर्वक हुआ है ॥५६॥ चतुर्थ सर्ग मुख्य सर्ग होता है। स्थावर मुख्य कहे जाते हैं। तिर्यक् स्रोता जो सर्ग होता है, वह पाँचवाँ तिर्यग्योनि होता है ॥५७॥

तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः।
तथार्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥५८
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्विकस्तामसस्तु सः।
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥५६
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।
प्राकृतास्तु त्रयः सर्गाः कृतास्ते बुद्धिपूर्वकाः ॥६०
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट्सर्गा ब्रह्मणस्तु ते।
विस्तरानुग्रहं सर्गं कीर्त्यमानं निबोधत ॥६१
चतुर्द्धावस्थितः सोऽथ सर्वभूतेषु कृत्स्नशः।
विपर्ययेण शक्त्या च तुष्टया सिद्धया तथैव च ॥६२
स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तिता।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु तुष्टिर्द्देवेषु कृत्स्नशः ॥६३
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृताः।
सर्गाः परस्परस्याथ प्रकारा बहवः स्मृताः ॥६४

इसी प्रकार से ऊर्ध्व स्रोत वालों का जो छठवाँ सर्ग होता है, वह 'देव-सर्ग' कहा गया है। इस प्रकार से अर्वाक् स्रोत वालों का सातवाँ सर्ग होता है और वह मनुष्य सर्ग कहा गया है ॥५७॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग है, जो सात्त्विक और तामस है। ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और तीन सर्ग प्राकृत सर्ग कहे गये हैं ॥५६॥ प्राकृत और वैकृत कौमार नवम कहा गया है। प्राकृत सर्ग तो

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तीन हैं, जोकि वे बुद्धिपूर्वक किये गये हैं ।।६०।। ब्रह्मा के वे छै सर्ग बुद्धि-पूर्वक प्रवृत्त होते है। विस्तरानुग्रह सर्ग अब कहा जाता है,उसे जान लो ।।६१।। वह सर्ग समस्त प्राणियों में पूर्णरूप से चार प्रकार से व्यवस्थित हुआ है। विपर्यय, शक्ति, तुष्टि और उसी भाँति सिद्धि से व्यवस्था की गई है ।।६२।। स्थावरों में तो विपर्यास होता है। तिर्यग्योनियों में शक्तिता होती है। मनुष्य सिद्धात्मा होते हैं, अर्थात् मनुष्यों में सिद्धि होती है और देवों में तुष्टि होती है ।।६३।। ये सब प्राकृत हैं और वैकृत नौ कहे गये हैं। ये परस्पर के सर्ग हैं और इनके बहुत से प्रकार बताये गये हैं ।।६४।।

अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनञ्च सनकं विद्वांसं च सनातनम् ।।६५
विज्ञानेन निवृत्तास्ते वैवर्तेन महौजसः ।
संबुद्धाश्चैव नानात्वादपविद्धास्त्रयोऽपि ते ।
असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं गताः पुनः ।।६६
तदा तेषु व्यतीतेषु तदान्यान् साधकांश्च तान् ।
मानसानसृजद्ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः ।
आभूतसंप्लवावस्थान्नामतस्तान्निबोधत ।।६७
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
स्वर्गं दिवः समुद्रांश्च नदान् शैलान् वनस्पतीन् ।।६८
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मानो वृक्षवीरुधाम् ।
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्त्ताः सन्धिरात्र्यहाः ।।६९
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ।
स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ।।७०
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूताः तद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागैः ।
वैश्याश्चोर्वोर्यस्य पद्भ्याञ्च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ।७१
नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ।।७२
एष वः कथितः पादः समासान्न तु विस्तरात् ।
अनेनाद्येन पादेन पुराणं संप्रकीर्तितम् ।।७३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सबसे आगे अर्थात् पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही समान मानसों का सृजन किया अर्थात् मन से समुत्पन्न होने वालों की रचना की । उन मानसों में सनन्दन, सनक और विद्वान् सनातन हैं । वे महान् ओज वाले वैवर्त्त विशेष ज्ञान होने से निवृत्त हो गये अर्थात् निवृत्त मार्ग के अनुगामी बन गये । वे संबुद्ध होते हुए तीनों ही इस नानात्व स्वरूप सृजन से अपविद्ध हो गये । प्रजा की सृष्टि को न करके ही वे फिर प्रतिसर्ग को चले गये ॥६६॥ उस समय उन सनकादि के चले जाने पर ब्रह्माजी ने तब फिर स्थानाभिमानी अन्य मानस साधकों का सृजन किया । अब भूत से लेकर संप्लवावस्था वालों के नामों को जान लो ॥६७॥ जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, दिशा, स्वर्ग, दिव, समुद्र, नद, शैल, वनस्पति, औषधियों की आत्मा तथा वीरुध और वृक्षों की आत्मा, लव, काष्ठ, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि, दिवस, अर्ध मास, मास, अयन, शब्द, युग ये सब स्थानाभिमानी हैं,अतः वे स्थान के नाम वाले कहे गये हैं ॥६८-६९-७०॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, उसके वक्ष स्थल से क्षत्रिय उद्भूत हुए, ऊरुओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई और पैरों से शूद्र वर्ण वाले उत्पन्न हुए । इस तरह ये सभी वर्ण ब्रह्माजी के शरीर के विभिन्न भागों से ही उत्पन्न हुए हैं ॥७१॥ नारायण अव्यक्त से परे है और अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है । उस अण्ड से ब्रह्माजी ने जन्म ग्रहण किया और फिर उन ब्रह्माजी ने स्वयं इन समस्त लोकों की रचना की है ॥७२॥ यह पाद संक्षेप से कह दिया गया है । इसमें विस्तार नहीं किया है । इस आद्य पाद पुराण का भली भाँति कीर्त्तन किया गया है ॥७३॥

॥ वर्तमान कल्प में मानुषी सृष्टि ॥

इत्येष प्रथमः पादः प्रक्रियार्थः प्रकीर्तितः ।
श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः काश्यपेयः सनातनः ॥१
सम्बोध्य सूतं वचसा प्रपच्छाथोत्तारां कथाम् ।
अतःप्रभृति कल्पज्ञ प्रतिसन्धि प्रचक्ष्व नः ॥२
समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयोः ।
कल्पयोरन्तरं यच्च प्रतिसंधिर्यतस्तयोः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एतद्वेदितुमिच्छामः अत्यन्तकुशलो ह्यसि ।।३
अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ।
समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयोः ।।४
मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रताः ।
यश्चायं वर्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः ।।५
अस्मात् कल्पाच्च यः कल्पः पूर्वोऽतीतः सनातनः ।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थान्निबोधत ।।६
प्रत्याहृते पूर्वकल्पे प्रतिसंधिं च तत्र वै ।
अन्यः प्रवर्त्तते कल्पो जनाल्लोकात् पुनः पुनः ।।७

इस प्रकार यह प्रथम पाद प्रक्रिया के लिये ही कहा गया है । इसका श्रवण करके सनातन काश्यपेय बहुत ही मन में प्रसन्न हुए ।।१।। इसके अनन्तर वाणी से सूतजी का सम्बोधन करके उन्होंने इससे आगे की कथा पूछी—उन्होंने कहा—हे कल्पज्ञ ! इससे आगे आप हमको प्रति-सन्धि का वर्णन कर समझावें ।।२।। जो कल्प व्यतीत हो गया और इस समय वर्त्तमान हैं इन दोनों कल्पों की जो प्रति-सन्धि है उसे हम जानना चाहते है क्योंकि आप अत्यन्त कुशल हैं आप सभी कुछ जानते हैं । यह हमें सुनाइये ।। ३ ।। लोमहर्षणजी ने कहा—मैं अब आपको समतीत कल्प और वर्त्तमान कल्प इन दोनों की जो प्रति-सन्धि होती है उसे बतलाता हूँ ।।४।। हे सुव्रत वालो ! जिन कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं और जो यह कल्प होता है वही बतलाता हूँ । वर्त्तमान समय के कल्प का शुभ नाम वाराह है ।।५।। इस कल्प से पहिले जो सनातन कल्प व्यतीत हुआ है उस कल्प की और इस कल्प की मध्यावस्था को जान लो ।।६।। पूर्व कल्प के प्रत्याहृत हो जाने पर वहाँ प्रति-सन्धि होती है और बार-बार जन-लोक से अन्य कल्प हुआ प्रवृत्त होता है ।।७।।

व्युच्छिन्नात् प्रतिसंधेस्तु कल्पात् कल्पः परस्परम् ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वाः कल्पान्ते सर्व शस्तदा ।
तस्मात् कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसंधिर्निगद्यते ।।८
मन्वन्तरयुगाख्यानामप्युच्छिन्नाश्च सन्धयः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परस्पराः प्रवर्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह ।।९
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ।
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्वो ह्यस्मात्तु यः परः ।
आसीत् कल्पो व्यतीतो वै परार्द्धेन परस्तु सः ।।१०
अन्ये भविष्या ये कल्पा अपरार्द्धाद्गुणीकृताः ।
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः ।।११
यस्मिन् पूर्वः परार्द्धे तु द्वितीये पर उच्यते ।
एतावान् स्थितिकालश्च प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ।।१२
अस्मात् कल्पात्तु यः पूर्वं कल्पोऽतीतः सनातनः ।
चतुर्युगसहस्रान्ते अहो मन्वन्तरैः पुरा ।।१३
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन् दाहकाले ह्युपस्थिते ।
तस्मिन् कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ।।१४

प्रति-सन्धि के व्युच्छिन्न होने से परस्पर में कल्प से कल्प के अन्त में समस्त क्रियाऐं उस समय सभी ओर से व्युच्छिन्न हो जाया करती हैं । इसी से कल्प से कल्प की प्रति-सन्धि कही जाती है ।।८।। कला की भाँति ही मन्वन्तर और युगों के नाम वालों की सन्धियाँ भी उच्छिन्न हुआ करती हैं और वे सब परस्पर में मन्वन्तर और युगों के साथ प्रवृत होते हैं ।। ९ ।। जो संक्षेप से प्रक्रियार्थ के द्वारा पूर्व-कल्प कहे गये हैं अब उन कल्पों के परार्द्ध स्वरूपों में इससे जो पहिला था और जो पर था इसमें परार्द्ध से जो कल्प व्यतीत हो गया वह पर था ।।१०।। हे द्विजो ! अपरार्द्ध से गुणी कृत अन्य जो कल्प भविष्य में होंगे उनमें इस समय रहने वाला यह प्रथम कल्प है जो अब वर्त्तमान में चल रहा है ।।११।। जिस द्वितीय परार्द्ध में पूर्व पर कहा जाता है इतना ही स्थिति का काल प्रत्याहार कहा गया है ।।१२।। इस वर्त्तमान कल्प से जो पहिला सनातन कल्प व्यतीत हो गया है वह पहिले मन्वन्तरों के साथ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगों के एक सहस्र बार हो जाने के अन्त में समाप्त हुआ है ।।१३।। उस समय कल्प के क्षीण हो जाने पर दाह का काल उपस्थित हुआ और उसमें अर्थात् कल्प में उस समय देवता लोग जो थे वे विमानों में संस्थित हो गये थे ।।१४।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये ।
अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥१५
मन्वन्तरे तथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्याद्विनवतिस्तथा ।
अष्टाधिकाः सप्तशताः सहस्राणां स्मृताः पुरा ॥१६
वैमानिकानां देवानां कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ।
एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः ॥१७
अथ मन्वन्तरेष्वासंश्चतुर्दशसु वै दिवि ।
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥१८
तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ।
वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन् काले तु ये सुराः ।
मन्वन्तरेषु ये ह्यासन् देवलोके दिवौकसः ॥१९
ते तैः संयोजकैः सार्द्धं प्राप्ते सङ्कलने तथा ।
तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ॥२०
ततस्तेऽवश्यभावित्वाद्बुद्ध्वा पर्यायमात्मनः ।
त्रैलोक्यवासिनो देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥२१
तेऽनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावतः ।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ॥२२

और जो नक्षत्र, ग्रह और तारा थे तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह थे वे सब सुकृतात्माओं की अठ्ठाईस करोड़ ही संख्या थी ॥ १५ ॥ इसी प्रकार एक मन्वन्तर में तथा चौदह मन्वन्तरों में तीन सौ करोड़ थे और पहिले अठ्ठानवें करोड़ सात सौ सहस्र कहे गये हैं ॥ १६ ॥ कल्प के व्यतीत हो जाने पर विमानों में संस्थित देवताओं में जो हुये वे एक-एक कल्प में विमानों में बैठने वाले देवता कहे गये हैं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर दिव में चौदह मन्वन्तरों में इसी भाँति देवता, पितर, मुनि लोग और मनुगण थे ॥ १८ ॥ और उनके अनुगामी जो मनु पुत्र थे और इसी प्रकार वर्णों तथा आश्रमों में रहने वालों के द्वारा वन्दित हुये जो उस समय में सुरगण थे और मन्वन्तरों में जो दिव में रहने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले देवलोक में थे वे सब सङ्कलन के प्राप्त होने पर उन संयोजकों के साथ भूत संप्लव के प्राप्त होने के समय में तुल्यनिष्ठा वाले थे ।। १९–२० ।। इसके पश्चात् उन त्रैलोक्य के निवासी देवों ने अवश्यम्भावी होने से अपनी पारी को जानकर उस उपप्लव के प्राप्त होने पर उत्सुकता और विषाद न रखते हुये भाव से स्थानों का त्याग करके फिर महर्लोक के लिये संविग्न होते हुये उन्होंने अपनी बुद्धि धारण की ।। २१—२२ ।।

ते युक्ता उपपद्यन्ते महसिस्थैः शरीरकैः ।
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।२३
तैः कल्प वासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तु यैः ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनैः ।।२४
मत्वा तुते महर्ल्लोकं देवसङ्घाश्चतुर्द्दश ।
ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दध्रिरे मतिम् ।।२५
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।
तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तु यैः ।।२६
दशकृत्व इवावृत्या तस्माद्गच्छन्ति स्वस्तपः ।
तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति वै पुनः ।
एतेन क्रमयोगेन यान्ति कल्पनिवासिनः ।।२७
एवं देवयुगानान्तु सहस्राणि परस्परात् ।
गतानि ब्रह्मलोकं वै अपरावर्त्तिनीं गतिम् ।।२८

वे सब अधिक विशुद्धि वाले और मानसी सिद्धि में आस्थित होते हुए महर्लोक में स्थित शरीरों से युक्त होकर उपपन्न होते हैं ।। २३ ।। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और उनके भक्त दूसरे लोग हैं उन कल्पवासियों के साथ उन्होंने महान् को प्राप्त कर लिया था ।। २४ ।। वे चौदह देव सङ्घ महर्लोक को मानकर फिर उन्होंने जन-लोक के लिये उद्वेग के साथ अपना विचार किया ।।२५।। विशुद्धि की प्रचुरता वाले वे सब मानसी सिद्धि में आस्थित हो गये और उन कल्पबासियों के साथ जिन्होंने महान् को प्राप्त किया था ।। २६ ।। आवृत्ति से दश बार की तरहउससे स्वर्लोक और तपलोक को जाते हैं वहाँ दश कल्प पर्यन्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहकर फिर वे सत्य लोक को जाते हैं। इसी क्रम के योग्य से कल्प निवासी जाते हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार से देव युगों के सहस्र अर्थात् सहस्रों देवयुग परस्पर से व्यतीत हुये फिर ब्रह्मलोक की अपरावर्त्तिनी गति को प्राप्त हुये ॥ २८ ॥

आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्येण तु तत्समाः ।
भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च ॥२९
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति प्रीतियुक्ताः प्रसङ्गमात् ।
आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३०
अवश्यम्भाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ।
नाना त्वेनाभिसम्बद्धास्तदा तत्कालभाविनः ॥३१
स्वरूपतो बुद्धिपूर्वं यथा भवति जाग्रतः ।
तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ॥३२
प्रत्याहारे तु भेदानां येषां भिन्नाभिसूष्मणाम् ।
तैः सार्द्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च ॥३३
नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ।
विनष्टस्वाधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥३४
ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरञ्जनाः ।
प्रकृतौ कारणातीताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥३५

वहाँ वे आधिपत्य के बिना वैभव में उन्हीं के समान रूप और विषय में ब्रह्मा के ही तुल्य होते हैं ॥ २९ ॥ वहाँ पर सुन्दर सङ्गम होने से बड़ी ही प्रीति से युक्त होकर वे रहते हैं। ब्रह्मा के आनन्द को प्राप्त कर ब्रह्मा के साथ ही मुक्त किये जाते हैं ॥ ३० ॥ वे स्वयं अवश्यम्भावी प्राकृत अर्थ से ही नानात्व से अभिसम्बद्ध होते हुये उस समय उस काल में होने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार जाग्रत स्वरूप से बुद्धिपूर्वक होता है उस काल में होने वाला उनका वैसा ही ज्ञान प्रवृत्त होता है ॥ ३२ ॥ भिन्न अभिसूषा जिनके भेदों के प्रत्याहार में ही उनके साथ कार्य और करण प्रतिसृष्टि किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ अपने अधिकारों के विनाश हो जाने वाले, अपने धर्म से स्थित रहने वाले और ब्रह्मलोक के निवास करने वाले उनके नानात्व के दर्शन से वे तुल्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लक्षण वाले, निरञ्जन, शुद्ध आत्मा वाले सिद्ध प्रकृति में कारण से अतीत रहने वाले अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित होते हैं ॥ ३४—३५ ॥

प्रख्यापयित्वा ह्यात्मानं प्रकृतिस्तेषु सर्वशः ।
पुरुषाव्यवहृतत्वेन प्रतीता न प्रवर्त्तते ॥३६
प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां वा कारणं पुनः ।
संयोगे प्राकृते तेषां युक्तानां तत्वदर्शिनाम् ॥३७
अत्रापवर्गिणां तेषामपुनर्मार्गगामिनाम् ।
अभावः पुनरुत्पत्तौ शान्तानामर्च्चिषामिव ॥३८
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं त्रैलोक्यात्सुमहात्मसु ।
तैः सार्द्धं ये महर्ल्लोकात्तदा नासादिता जनाः ।
तच्छिष्टाश्चेह तिष्ठन्ति कल्पाद्देहमुपासते ॥३९
गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ता मानुषा ब्राह्मणादयः ।
पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः ॥४०
तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ।
सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विभासते ।
ते सप्तरश्मयो भूत्वा ह्येकैको जायते रविः ॥४१
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रीन् लोकान् प्रदहन्त्युत ।
जङ्गमं स्थावरं चैव नदीः सर्वांश्च पर्वतान् ।
पूर्वं शुष्का ह्यनावृष्ट्या सूर्यैस्तैश्च प्रधूपिताः ॥४२

उनमें सब ओर से प्रकृति अपने आपको प्रख्यापित करके पुरुष के साथ अव्यवहृत होने से प्रतीत होकर प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ३६ ॥ उनका फिर सर्ग प्रवर्त्तित होने पर अथवा तत्वदर्शी युक्त उनके प्राकृत संयोग में पुनः कारण होता है ॥ ३७ ॥ यहाँ पर पुनः मार्गगामी न होने वाले उन अपवर्ग वालों का पुनर्जन्म में शान्त होने वाली अग्नि की ज्वालाओं के समान अभाव होता है अर्थात् अपवर्ग वालों की पुनः उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर अच्छी एवं महान् आत्मा वाले उनके त्रैलोक्य से ऊपर जाने पर उनके साथ जो महर्लोकों में उस समय वहाँ जन आसादित नहीं होते हैं। उनसे शेष में रहने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले यहाँ रहते हैं और कल्प से देह को धारण किया करते हैं ।। ३९ ।। गन्धर्वों से आदि लेकर पिशाचों के अन्त पर्यन्त मानुष और ब्राह्मण प्रभृति, पशु पक्षीगण, सरीसृपों के सहित स्थावर उस समय उन पृथिवी तल में निवास करने वालों के रहने पर यहाँ पर सूर्य की एक सहस्र किरणों की विभासमानता होती है। वे फिर सात रश्मियाँ होकर उनमें से एक-एक रवि हो जाता है ।। ४०—४१ ।। क्रम से वे उत्तिष्ठमान होकर इन तीनों लोकों को प्रदग्ध कर देते हैं जिनमें चर प्राणी अर्थात् जंगम सृष्टि स्थावर अर्थात् अचर सृष्टि—नदी और पर्वत ये सभी प्रदग्ध हो जाते हैं। पहिले वे वृष्टि के न होने शुष्क हो जाते हैं और फिर उन तीव्रतम सूर्यों से प्रधूपित अर्थात् प्रतप्त किये जाते हैं ।। ४२ ।।

तदा ते विविशुः सर्वे निर्दग्धाः सूर्यरश्मिभिः ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे धर्माधर्मात्मकास्तु वै ।।४३
दग्धदेहास्ततस्ते वै गताः पापयुगात्यये ।
योन्या तया ह्यनिर्मुक्ताः शुभपापानुबन्धया ।।४४
ततस्ते ह्युपपद्यन्ते तुल्यरूपा जने जनाः ।
विशुद्धिबहुलाः सर्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।।४५
उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुनः सर्गे भवन्तीह ब्रह्मणो मानसीप्रजाः ।।४६
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु जने त्रैलोक्यवासिषु ।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तेषु सूर्यैस्तु सप्तभिः ।
वृष्ट्या क्षितौ प्लावितायां विशीर्णेष्वा लयेषु च ।।४७
समुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्वाश्च पार्थिवाः ।
व्रजन्त्येकार्णवत्वं हि सलिलाख्यास्तदाश्रिताः ।।४८
आगतागतिकं तद्वै यदा तु सलिलं बहु ।
संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्या तदा च सा ।।४९

उस समय वे सब जङ्गम और स्थावर चाहे वे धर्मात्मा हों या अधर्म-स्वरूप वाले हों, विशेष रूप में सूर्य की किरणों से जले हुये होते हुए विवश हो जाया करते हैं ।। ४३ ।। दग्ध देहों वाले वे वहाँ से फिर पाप-युग के अत्यय

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में चले जाते हैं और शुभ तथा पाप के अनुबन्ध वाली उस योनि से निर्मुक्त नहीं होते हैं ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे मनुष्य जन-लोक में तुल्य रूप वाले होते हैं। उस समय वे सब प्रचुर विशुद्धि वाले होते हुये मानसी सिद्धि में आस्थित हुआ करते हैं ॥ ४५ ॥ वहाँ पर अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा की एक रात निवास कर फिर यहाँ सर्ग में ब्रह्मा की मानसी अर्थात् मन से उद्‌भव वाली प्रजा होते हैं ॥ ४६ ॥ इसके पश्चात् उन त्रैलोक्य-वासियों के इस जन-लोक में प्रवृत्त होने पर और सात प्रखरतर सूर्यों के द्वारा उन लोकों के दग्ध हो जाने पर उन परम विशीर्ण घरों में वृष्टि से समस्त भूमण्डल के प्लावित हो जाने पर सब समुद्र, मेघ और पार्थिव जल तदाश्रित होते हुये सलिल नाम वाले एकार्णवता को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४७–४८ ॥ आया हुआ और बिना गति वाला वह सलिल जब अत्यधिक मात्रा में हो जाता है तब वह इस संस्थित भूमि को ढककर वह अर्णव नाम वाली हो जाती है ॥ ४९ ॥

आभाति यस्मान्नाभान्ति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ।
सर्वतः समनुप्लाव्य तासाश्चाम्भो विभाव्यते ॥५०
तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्वां पृथ्वीं समन्ततः ।
धातुस्तनोतिर्विस्तारे तेनाम्भस्तनवः स्मृताः ॥५१
अरमित्येष शीघ्रन्तु निपातः कविभिः स्मृतः ।
एकार्णवे भवन्त्यापो न शीघ्रास्तेन ते नराः ॥५२
तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थिते ब्रह्मणोऽहनि ।
राजन्यां वर्त्तमानायान्तावत्तत् सलिलात्मना ॥५३
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ।
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्ततः ॥५४
येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ।
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तुमिच्छति ॥५५
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥५६

जिसके कारण से व्याप्त दीप्तियों से जो भासमान होते हैं वे भी उस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समय भासित नहीं होते हैं। सब ओर से भली भाँति प्रावन कर अर्थात् निमग्न करके उस समय केवल उनके जल ही विभावित होता था ॥५०॥ क्योंकि वह जल पूर्णतया विस्तार वाला होता है और इस समस्त पृथ्वी को सब ओर से घेर लेता है। विधाता के विस्तार के फैलाने पर वे इससे जल के तनु कहे गये हैं ॥५१॥ अरं– यह कवियों के द्वारा शीघ्र निपात कहा गया है। एकार्णव में जल ही होतें हैं और इससे वे नर शीघ्र नहीं होते हैं। ५२। ब्रह्माजी के दिन के संस्थित होने पर उस एक सहस्र युग के अन्त में तब तक केवल जल के स्वरूप से ही इस पृथ्वी के वर्त्तमान रहने पर इसके पश्चात् उस जल के पृथ्वी तल में रहने वाली अग्नि में नष्ट हो जाने पर चारों ओर निरालोक अर्थात् प्रकाश से हीन अन्धकार छाया हुआ था और वात प्रशान्त हो गया था ऐसे समय में जिसके द्वारा यह अधिष्ठित था वह ब्रह्मा पर पुरुष प्रभु था और उसने फिर इस लोक के विभाग करने की इच्छा की अथवा इच्छा करता है ॥५३-५४-५५॥ उस एक अर्णव अर्थात् समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर उस समय वह ब्रह्मा सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाला हो जाता है ॥५६॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥५७
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्ष्य च।
इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥५८
आपो नाराख्यास्तनव इत्यपान्नाम शुश्रुमः।
आपूर्य नाभिं तत्रास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥५९
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक्।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजा पतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ॥६०
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्वः प्रथमं तुराषाट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमसः परस्तात् ॥६१
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत् प्रजाः।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तो कालो भूत्वाऽग्रसत् पुनः ॥६२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स वै नारायणाख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये समवर्त्तत ।।६३

सहस्र शीर्षों वाला, हेम के तुल्य देदीप्यमान वर्ण वाला, समस्त इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् परे वह पुरुष ब्रह्मा नारायण—इस नाम वाला उस समय में जल में शयन करता था ।।५७।। सत्त्व की अधिकता के होने से वह प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत हुआ और उसने चेतना युक्त होकर इस लोक को शून्य देखा । यहाँ पर उस नारायण के प्रति इस निम्न श्लोक को उदाहृत करते हैं ।।५८।। आप अर्थात् जल नार-इस नाम वाले तनु हैं यही जलों के नाम को सुनते हैं । वहाँ पर नाभि को आपूरित कर वह होता है इसलिये 'नारायण' यह कहा गया है ।।५९।। सहस्र शीर्ष (मस्तक) वाला, अच्छे मन वाला, सहस्र चरणों वाला, सहस्र नेत्रों वाला, सहस्र मुख वाला, सहस्र को भोग करने वाला, सहस्र बाहुओं वाला प्रथम प्रजापति है जो त्रयीपथ में पुरुष कहा जाता है ।।६०।। सूर्य के तुल्य वर्ण वाला, भुवन की रक्षा करने वाला, एक ही प्रथम तुराषाट्, हिरण्यगर्भ महात्मा और पुरुष है जो उस तम से पर पढ़ा जाता है ।।६१।। वही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक से युक्त होकर ब्रह्मा बनकर प्रजाओं का सृजन करता था और जब कल्प का अन्त होता तो उस समय में काल होकर फिर उस सृष्टि का ग्रसन कर लेता था ।।६२।। वही नारायण नाम वाला सत्त्वगुण से उद्रिक्त होता हुआ समुद्र में शयन करता है तथा वह इस प्रकार अपने स्वरूप को तीन रूपों में विभक्त करके त्रैलोक्य में बरताव किया करता है ।।६३।।

सृजते ग्रसते चैव वीक्षन्ते च त्रिभिस्तु तान् ।
एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।६४
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलावृते ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ।।६५
चतुर्विधाः प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्मयां रात्र्यां महार्णवे ।
पश्यन्ति तं महर्ल्लोकात् सुप्तं कालं महर्षयः ।।६६
भृग्वादयो यथा सप्त कल्पे ह्यस्मिन् महर्षयः ।
ततो विवर्त्तमानैस्तैर्महान् परिगतः परः ।।६७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गत्यर्थाद् ऋषयो धातोर्न्नामनिर्वृ त्तिरादितः ।
तस्माद्दृषिपरत्वेन महांस्तस्मान्महर्षयः ॥६८
महर्ल्लोकस्थितैर्द्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः ।
सत्याद्याः सप्त ये ह्यासन् कल्पेऽतीते महर्षयः ॥६९
एवं ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रशः ।
दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्तं कालं महर्षयः ॥७०

इन तीन रूपों से उन लोकों का सृजन करता है, ग्रसन करता है और इनका वीक्षण करता है । जब एकार्णव में स्थावर और जङ्गम लोक के नष्ट हो जाने पर इस लोक ग्रसन का कार्य भी नहीं किया करता है किन्तु प्रत्येक कार्य के स्वरूप भिन्न हैं ॥६४॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगों की चौकड़ी के एक सहस्र संख्या समाप्त हो जाती हैं तब उसके अन्त में सब ओर जल से आवृत होने पर प्रकाश रहित अर्थात् अन्धकारमय सागर में नारायण नाम वाले ब्रह्मा शयन करते हुए चारों प्रकार की प्रजा का ग्रास करके ब्राह्मी रात्रि में महार्णव में स्थित रहते हैं और महर्षिगण महर्लोक से उस सुप्तकाल को देखते हैं ॥६५-६६॥ इस कल्प में भृगु आदि सात महर्षि कहे गये हैं । उनके द्वारा विशेष रूप से वहाँ उपस्थित होकर वह पर महान् चारों ओर से परिगत होगया ॥६७॥ गति के अर्थ वाली धातु से 'ऋषि'—इस नाम की निर्वृत्ति होती है । उससे महान् यह भी ऋषि परत्व है अतएव महर्षय, ऐसा कहा गया है ॥६८॥ महर्लोक में स्थित उनके द्वारा उस समय काल सुप्त होता हुआ देखा गया । अतीत कल्प में सत्य आद्य ये सात महर्षि थे ॥६९॥ इस प्रकार से सहस्रों ही ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली रात्रियाँ व्यतीत हो जाने पर उसी प्रकार से उस समय अन्य महर्षियों ने भी काल को सोया हुआ देखा ॥७०॥

कल्पस्यादौ तु बहुशो यस्मात् संस्थाश्चतुर्द्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात् कालो निरुच्यते ॥७१
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥७२
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितः कल्पयोर्द्वयोः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साम्प्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ।।७३
कीर्त्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा ।
साम्प्रतं ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत ।।७४

कल्प के आदि में ब्रह्मा ने बहुत-सी चौदह संस्थाओं की कल्पना की थी इसीलिये वह काल-ऐसा कहा जाता है ।।७१।। कल्पों के आदि कालों में समस्त प्राणियों का सृजन करने वाला वह महादेव बार-बार व्यक्त और अव्यक्त होता है और उसी का यह समस्त जगत् है ।।७२।। यही दोनों कल्पों की प्रतिसन्धि होती है जो आपके समक्ष में वर्णित करदी गई है । अब के समय वाले और व्यतीत हुए इन दोनों के मध्य में जो प्राग्वस्था हुई थी वह संक्षेप से वर्णन करदी गई है जो जैसी कल्प-कल्प में थी । अब आपके सामने इस कल्प का वर्णन करता हूँ उसे आप लोग श्रवण करें या समझ लेवें ।।७३-७४।।

।। मानव सभ्यता का आरम्भ ।।

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ।।१
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ।
अन्धकारे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।२
जलेन समनुव्याप्ते सर्वतः पृथिवीतले ।
अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु च ।।३
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ।
तदाकाशे चरन् सोऽथ वीक्ष्यमाणः स्वयम्भुवः ।।४
प्रतिष्ठाया ह्यपायन्तु मार्गमाणस्तदा प्रभुः ।
ततस्तु सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा ह्यन्तर्गतां महीम् ।।५
अनुमानात्तु सम्बुद्धो भूमेरुद्धरणं प्रति ।
चकारान्यां तनुञ्चैव पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ।।६
स तु रूपं वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत् प्रभुः ।
अद्भिः सञ्छादितामुर्वीं समीक्ष्याथ प्रजापतिः ।।७

श्री सूतजी ने कहा—वह एक सहस्र युगों के तुल्य रात्रि के समय की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपासना कर फिर रात्रि के अन्त में सर्ग करने के कारण से ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥१॥ उस जल में वायु के स्वरूप में होकर विचरण करता था क्योंकि उस समय स्थावर और जङ्गम सब के नष्ट हो जाने पर वहाँ केवल अन्धकार ही अन्धकार था ॥२॥ समस्त यह पृथ्वीतल चारों ओर से जल से ही समनुव्याप्त हो रहा था और वहाँ समस्त प्राणी विभाग रहित होते हुए सुस्थित थे ॥३॥ जिस तरह वर्षा ऋतु में रात्रि के समय में खद्योत इधर से उधर विचरण करता हुआ दिखाई दे जाता है इस तरह वह भी उस समय आकाश में इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देता था ॥४॥ उस समय प्रभु ने पुनः प्रतिष्ठा के उपाय की खोज करते हुए उस जल के अन्दर गई हुई भूमि का ज्ञान प्राप्त किया ॥५॥ उस समय अनुमान से भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करने ने भूमण्डल के उद्धार करने के कार्य की ओर पूर्ण चेतना प्राप्त की और पहिले कल्प आदि में धारण किया हुआ शरीर का स्मरण किया ॥६॥ उस समय प्रजापति ने जल द्वारा सम्यक् प्रकार से आच्छादित इस भूमि को देखकर उन्होंने तब बाराह का स्वरूप धारण कर जल के अन्दर प्रवेश किया था ॥७॥

उद्धृत्योर्वमिथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसत् ।
सामुद्रीस्तु समुद्रेषु नादेयीर्निम्नगास्वपि ।
पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥८
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्त्तकाग्निना ।
तेनाग्निना प्रलीनास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥९
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुनापस्तु संहृताः ।
निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रतत्राऽचलोऽभवत् ॥१०
स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ।
गिरयोऽद्भिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ॥११
ततस्तु तां समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्ज्जलात् प्रभुः ।
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत् पुनः ॥१२
सप्त सप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेषु सप्तसु ।
विषमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् ॥१३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
तावन्तः पर्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः ।
सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ।।१४

इसके अनन्तर जल में निमग्न भूमण्डल का उद्धार किया और उस जल का वहीं विन्यास किया था। जो समुद्र से सम्बन्ध रखने वाला जल था उसका समुद्रों में और जो नदियों से सम्बद्ध था उसका नदियों में विन्यास किया। जो पृथ्वी से सम्बन्धित था उसे पृथ्वी में ही विन्यास किया तथा उसने पृथ्वी में पर्वतों को चुन दिया था ।।८।। पहिले सर्ग में उस समय संवर्त्ताग्नि के द्वारा चारों ओर से दाह के होने से भूमि में उस अग्नि से समस्त पर्वत प्रलीन हो गये थे ।।६।। शैत्य के कारण से उस एकार्णव में वायु के द्वारा संहृत जल जहाँ-जहाँ पर निषिक्त हुए वहाँ-वहाँ वह अचल हो गये थे ।।१०।। ये स्कन्न होकर अचल होने से 'अचल' और इनमें 'पर्वों' के होने के कारण से ये 'पर्वत' कहलाये गये हैं। जल के द्वारा पूर्णतया निगीर्ण हो जाने से 'गिरि' और शिलाओं के बहुत से चयन होने के कारण से इन्हें 'शिलोच्चय' कहा जाता है ।।११।। इसके अनन्तर प्रभु ने उस भूमि को अन्तर्जल से उद्धृत करके पुनः उसे अपने ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और फिर उसका विभाग भी किया था ।।१२।। उस भूमि मण्डल के सात-सात द्वीपों में सात-सात वर्षों की रचना की और जो विषम स्वरूप में थे उनको समान बनाकर पर्वतों को शिलाओं से चुन दिया था ।।१३।। उन द्वीपों में चालीस वर्ष और उतने ही पर्वत वर्ष के अन्त में समवस्थित थे। सर्ग के आदि में वे स्वभाव से ही सन्निविष्ट हो गये थे अन्यथा कुछ भी नहीं किया गया था ।।१४।।

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ।
सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ।।१५
भूराख्यांश्चतुरो लोकांश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
पूर्वं तु निर्म्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्वशः ।।१६
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत् स्थानिनः पुरा ।
आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ।।१७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदीः सर्वांश्च पर्वतान् ।
ओषधीनाँ तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ॥१८
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्तं सन्धिरात्र्यहम् ।
अर्द्धमासांश्च मासांश्च अयमाब्दयुगानि च ॥१९
स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ।
स्थानात्मानः स सृष्ट्वा वै युगावस्थां विनिर्ममे ॥२०
त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् ।
कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजाः ॥२१

सात द्वीप और समुद्र अन्योन्य के मण्डल के सन्निकृष्ट होगये और वे परस्पर में अपने ही आप स्वभाव से समावृत हो गये थे ॥१५॥ सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने सूर्य और चन्द्रादि ग्रहों के साथ भू-इस नाम वाले चार लोकों का निर्माण किया और इनके सब ओर से स्थानों की रचना की थी ॥१६॥ इस कल्प के ब्रह्माजी ने पहिले स्थानियों का सृजन किया। जैसे–जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष और उसी प्रकार से दिव-इन सब का सृजन किया जो कि स्थानी होते हैं ॥१७॥ इसी तरह स्वर्ग, दिशा, समुद्र, नदी, पर्वत समस्त ओषधियों के स्वरूप तथा सम्पूर्ण वृक्ष और बीरुधों के रूप की रचना की थी ॥१८॥ लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि और दिन, पक्ष, मास, अयन, युग और वर्ष ये सब स्थान और इनके पृथक्-पृथक् स्थानों के अभिमानी अर्थात् उनमें रहने वाले उन्होंने स्थानों के स्वरूपों का सृजन कर फिर युगों की अवस्था का निर्माण किया था ॥१९-२०॥ कृत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों का सृजन कर कल्प के आदि काल में उनने सर्वप्रथम कृत युग में प्रजाओं की सृष्टि की थी ॥२१॥

प्रागुक्ता या मया तुभ्यं पूर्वकालं प्रजास्तु ताः ।
तस्मिन्न संवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥२२
अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः ।
प्रवर्तन्ति पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि ॥२३
बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततस्ताः सृज्यमानास्तु सन्तानार्थं भवन्ति हि ॥२४
धर्म्मार्थकाममोक्षाणामिह ताः साधकाः स्मृताः ।
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ॥२५
ततस्ते तपसा युक्ताः स्थानान्यापूरयन्ति हि ।
ब्रह्मणो मानसास्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि ॥२६
ये सर्गा द्वेषयुक्तेन कर्मणा ते दिवं गताः ।
आवर्त्तमाना इह ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥२७
स्वकर्मफलशेषेण ख्याताश्चैव तथात्मिकाः ।
संभवन्ति जनाल्लोकात् कर्मसंशयबन्धनात् ॥२८

इसके पूर्व समय में जो मैंने तुम्हारे सामने प्रजा का वर्णन किया था वह समस्त प्रजा उस कल्प के संवर्ज्यमान होने पर उसी समय अग्नि से दग्ध हो गई थी ॥२२॥ जो तप लोक में प्राप्त नहीं हुई और इस जनलोक में ही समाश्रित रही वे ही पुनः सर्ग में प्रवृत्त होते हैं और वे बीज के लिये ही रहा करते हैं ॥२३॥ फिर सर्ग के होने के लिये वे वहाँ बीज के लिये ही स्थित रहे इसके पश्चात् वे सृज्यमान होकर सन्तान के लिये होते हैं ॥२४॥ यहाँ पर वे सब देव, पितर, ऋषि और मनुष्य धर्मार्थ काम और मोक्ष के लिये साधक कहे गये हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् वे तप से युक्त होकर समस्त स्थानों को भर देते हैं। वे ब्रह्मा के सिद्ध आत्मा वाले मानस सृष्टि के रूप में होते हैं ॥२६॥ जो सर्ग द्वेष से युक्त होकर कर्म के द्वारा दिव को प्राप्त हो जाते हैं वे यहाँ पर युग-युग में आवर्त्तमान होते हुए जन्म धारण किया करते हैं ॥२७॥ अपने किये हुए कर्मों के शेष रहे हुए फलों के द्वारा जो उस स्वरूप में प्रसिद्ध होते हैं वे कर्मों के संशययुक्त बन्धन के कारण से जनलोक से यहाँ आकर जन्म लिया करते हैं ॥२८॥

आशयः कारणं तत्र बोद्धव्यं कर्मणां तु सः ।
तैः कर्मभिस्तु जायन्ते जनाल्लोकाः शुभाशुभैः ॥२९
गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु ।
देवाद्यस्थावरान्ते च उत्पद्यन्ते परस्परम् ॥३०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे ।
तान्येते प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।३१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।३२
कल्पेष्वासन् व्यतीतेषु रूपनामानि यानि च ।
तान्येवानागते काले प्रायशः प्रतिपेदिरे ।।३३
तस्मात्तु नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे ।
पुनः पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपतः ।।३४

कर्मों का कारण आशय ही समझना चाहिए । उन शुभ और अशुभ कर्मों से मनुष्य यहाँ जन्म लिया करते हैं ।।२९।। वे यहाँ देव से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त नाना भाँति की योनियों में परस्पर में उत्पन्न होते हुए अनेक प्रकार के शरीरों को धारण किया करते हैं ।।३०।। सृष्टि होने के पहिले उनके जो-जो भी कर्म थे उन्हीं कर्मों के अनुसार यहाँ बार-बार सृज्यमान होते हुए फलों को भोगा करते हैं ।।३१।। उनके हिंसा तथा अहिंसा वाले, मृदु तथा क्रूरता से भरे हुए, धर्म से युक्त तथा पूर्ण अधर्म से भरे हुए और सत्य एवं असत्य जैसे भी पहिले कर्म होते हैं उनकी वैसी ही भावनाऐं होती हैं और वैसा ही यहाँ भोगते हैं क्योंकि उनका स्वभाव भी वैसा ही होता है कि फिर उन्हें वही अच्छा भी लगा करता है चाहे वह ठीक हो अथवा नहीं ।।३२।। बीते हुए कल्पों में जैसे भी उनके नाम और स्वरूप होते हैं वैसे ही वे आने वाले समय में भी प्रायः प्राप्त किया करते हैं ।।३३।। इसी कारण से वे उन्हीं नाम और रूपों की प्राप्ति करते हैं क्योंकि कल्पों में वे बार-बार जन्म नाम और रूप से ही लिया करते हैं ।।३४।।

ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै ।
प्रजास्ता ध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।।३५
मिथुनानां सहस्रन्तु सोऽसृजद्वै मुखात्तदा ।
जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः सुचेतसः ।।३६
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज ह ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ते सर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिणः ॥३७
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः ।
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः ॥३८
पद्भ्यां सहस्रमन्यत्तु मिथुनानां ससर्ज्ज ह ।
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीका ह्यल्पतेजसः ॥३९
ततो वै हर्षमानास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ।
अन्योन्या हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः ॥४०
ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनोत्पत्तिरुच्यते ।
मासे मासेर्त्तवं यद्यत्तदाज्ञासीद्धि योषिताम् ॥४१
तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ।
आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ते सकृत् ॥४२

इसके अनन्तर सर्ग के अवष्टब्ध हो जाने पर सृजन की पूर्ण इच्छा रखने वाले ब्रह्माजी के जो सत्य के अभिध्यान करने वाले थे, उस समय उन्होंने मुख से सहस्रों प्रजा के मिथुन उत्पन्न किये, वे मनुष्य सत्त्व के उद्रेक से अच्छे चित्त वाले होते हैं ॥३५-३६॥ उन्होंने सहस्रों मिथुनों को अपने वक्षःस्थल से उत्पन्न किया वे सभी रजोगुण के उद्रेक वाले थे जो शुष्मी होते हुए भी अशुष्मी थे ॥३७॥ अन्य सहस्रों द्वन्द्वों को ब्रह्माजी ने अपने उरुओं से उत्पन्न किया था जो कि रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक वाले थे और वे ईहा के स्वभाव वाले कहे गये हैं ॥३८॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सहस्रों जोड़ों को अपने चरणों से उत्पन्न किया था जो कि सभी तमोगुण के उद्रेक वाले थे और श्रीरहित एवं तेज से शून्य थे ॥३९॥ इसके अनन्तर अपने-अपने द्वन्द्वों के रूप में उत्पन्न होने वाले वे सभी प्राणी परम प्रसन्न हुए और अन्योन्य काम-वासना में लिप्त होकर मैथुन में प्रवृत्त हो गये ॥ ४० ॥ तभी से लेकर इस कल्प में मिथुन उत्पत्ति कही जाती है । प्रत्येक मास में स्त्रियों को जो ऋतु धर्म होता था वह उस समय उसी ब्रह्मा की आज्ञा थी ॥४१॥ इस लिये उस आर्तव काल में मैथुन के सेवन करने वालों ने भी स्त्रियों के साथ शयन नहीं किया । आयु के अन्त में ही वे एकबार मिथुनों का प्रसव करते हैं ॥४२॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुटकाः कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिताः ।
ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥४३
ध्याते तु मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत् ।
शब्दादि विषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः ॥४४
इत्येवं मनसा पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापतेः ।
तस्यान्ववाये सम्भूतायैरिदं पूरितं जगत् ॥४५
सरित्सरः समुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि ।
तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिन् चरन्ति वै ॥४६
पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ।
ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥४७
धर्माधर्मौ न तास्वास्तां निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः ।
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे ॥४८
धर्माधर्मौ न तास्वास्तां कल्पादौ तु कृते युगे ।
स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे ॥४९

कुटक और कुविक मरने की इच्छा वाले उत्पन्न होते हैं । तभी से लेकर इस कल्प में मिथुनों का जन्म हुआ था ॥४३॥ मन से ध्यान करने पर उन प्रजाओं का एकबार पाँच लक्षणों वाला शुद्ध शब्दादि का विषय उत्पन्न होता है ॥४४॥ इसी प्रकार से प्रजापति की जो पूर्व सृष्टि पहिले हुई उसी अन्ववाय में उसकी यह समस्त प्रजा हुई है जिनसे यह समस्त जगत् परिपूरित हो रहा है ॥४५॥ वह प्रजापति की प्रजा सरित्, सरोवर, समुद्र और पर्वतों का सेवन करती है । उस समय युग में वे सब अत्यन्त जल, शीत और उष्णता से रहित होते हुए सर्वत्र विचरण किया करते हैं ॥४६॥ वह समस्त प्रजा अपनी इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली मानसो सिद्धि में अवस्थित होती हुई पृथ्वी के रस से उत्पन्न आहार को ग्रहण करती है ॥४७॥ उस कृत युग में उन प्रजाओं में धर्म तथा अधर्म कुछ भी नहीं थे । उस समय की वह प्रजा विशेषता रहित थी । उन सब की तुल्य आयु, सुख और रूप था । कहीं भी कुछ भी आपस में अन्तर नहीं था ऐसी सतयुग की समस्त प्रजा थी ॥४८॥ कल्प के आदि में कृत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युग में उन प्रजाओं में धर्म और अधर्म कुछ भी नहीं था। कृत युग में वे सब अपने-अपने अधिकार के अनुसार यजन करते थे ॥४९॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया।
आद्यं कृतयुगं प्राहुः सन्ध्यानान्तु चतुः शतम् ॥५०
ततः सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वन्द्वन्नापि च क्रमः ॥५१
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः।
विशोकाः सत्त्वबहुलाः एकान्तसुखितप्रजाः ॥५२
ता वै निकामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।
पशवः पक्षिणश्चैव न तदासन् सरीसृपाः ॥५३
नोद्भिज्जा नारकाश्चैव ते ह्यधर्मप्रसूतयः।
न मूलफलपुष्पञ्च नार्त्तवं ह्यृतवो न च ॥५४
सर्वकामसुखः कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतता।
मनोभिलषिताः कामास्तासां सर्वत्र सर्वदा ॥५५
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्यां वै ताभिर्ध्याता रसोत्थिताः।
बलवर्णकरी तासां सिद्धिः सा रोगनाशिनी ॥५६

दिव्य संख्या से चार हजार वर्ष का आद्य कृत-युग कहा गया है और चार सौ वर्ष सन्ध्याओं के कहे गये हैं ॥५०॥ उन सहस्रों प्रथित प्रजाओं में उनका कोई प्रतिघात नहीं होता है, न कोई द्वन्द्व होता है और न कोई क्रम होता है ॥५१॥ कृत युग में प्रजा पर्वत और समुद्र के सेवन करने वाली थी तथा बिना निकेत और आश्रय वाली थी। उस समय उन प्रजाओं में शोक का अभाव था, सत्त्व की प्रचुरता थी और एकान्त सुख से युक्त थी ॥५२॥ कृत-युग में समस्त प्रजा स्वेच्छानुकूल आचरण करन वाली और नित्य ही परम प्रसन्न चित्त वाली थी। उस समय पशु, पक्षी और सरीसृप नहीं थे ॥५३॥ अधर्म से जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे नारकीय पुरुष और उद्भिज भी नहीं थे। न मूल था, न पुष्प थे और न फल ही थे तथा ऋतु का धर्म और ऋतु भी नहीं थे ॥५४॥ कृत युग में उस समय समस्त कामों में सुख देने वाला

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

काल था। उस समय न अधिक उष्णता थी और न शीतलता ही थी। उस समय उन कृतयुग की प्रजाओं के सभी काम मन के अभिलाषित ही सर्वत्र और सदा होते थे ॥५५॥ पृथिवी में उनके द्वारा ध्यान की हुई इससे उत्थित बल और वर्ण को करने वाली उनकी सिद्धि उठती थी जो समस्त रोगों के नाश करने वाली थी ॥५६॥

असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः।
तासां विशुद्धात् सङ्कल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ॥५७
समं जन्म च रूपञ्च म्रियन्ते चैव ताः समम्।
तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टिः सुखं दमः ॥५८
निर्विशेषाः कृताः सर्वा रूपायुःशीलचेष्टितैः।
अबुद्धिपूर्वकं वृत्तं प्रजानां जायते स्वयम् ॥५९
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न सङ्करः ॥६०
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्त्तयन्ति परस्परम्।
तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्ज्जिताः ॥६१
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे।
नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाबलाः ॥६२
लाभालाभौ न तास्वास्तां मित्रामित्रे प्रियाप्रिये।
मनसा विषयस्तासान्निरीहाणां प्रवर्त्तते।
न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यन्नानुगृह्णन्ति चैव हि ॥६३

न संस्कार करने के योग्य शरीरों के द्वारा वह समस्त प्रजा स्थिर यौवन वाली थी। उनके विशुद्ध सङ्कल्प से मिथुन प्रजा उत्पन्न हुई ॥५७॥ उन सब का जन्म और रूप समान ही था और वे साथ ही मरते भी थे। उस समय सब में सत्य—लोभ का अभाव—क्षमा–तुष्टि–सुख और दम वर्त्तमान था। रूप, आयु, शील और चेष्टितों के द्वारा सब विशेषता से रहित कर दिये थे। प्रजाओं का वृत्त अबुद्धि के साथ स्वयं होता है ॥५९॥ कृतयुग में पाप और शुभयुक्त कर्मों में प्रवृत्ति का अभाव रहता था। उस समय सतयुग में चारों वर्णों और चारों

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आश्रमों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं थी और न कृतयुग में वर्ण सङ्करता हो थी ॥६०॥ उस समय के लोग सब इच्छा और द्वेष से युक्त न होते हुए ही परस्पर में बरताव किया करते थे। उस समय न तो कोई किसी से उत्तम था और न कोई अधम ही अर्थात् उत्तमाधम के होने का कोई अवसर ही नहीं था और सब समान वय और रूप वाले थे ॥६१॥ कृतयुग में प्रायः सभी सुख से युक्त और शोक से रहित थे और इसी प्रकार का जीवन लेकर उत्पन्न होते हैं। वे नित्य ही प्रहृष्ट चित्त वाले, महान् सत्त्व से संयुत और महान् बल वाले थे ॥६२॥ उस समय के व्यक्तियों के विचार में कोई लाभ या कुछ अलाभ अर्थात् हानि है, ऐसा होता ही नहीं था। उनमें न कोई किसी का मित्र था और न कोई शत्रु अर्थात् मित्रामित्र का भेद-भाव सर्वथा था ही नहीं। किसी का प्रिय और किसी का अप्रिय होने की भावना भी बिल्कुल नहीं थी। बिना ईहा वाले उनका विषय मन से प्रवृत्त होता है। वे अन्योन्य की कोई लिप्सा नहीं करते हैं और न किसी पर कोई अनुग्रह किया करते हैं ॥६३॥

ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञं दानं कलियुगे वरम् ॥६४
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरन्तु रजस्तमौ ।
कलौ तमस्तु विज्ञेयं युगवृत्तवशेन तु ॥६५
कालः कृते युगे त्वेष तस्य संख्यान्निबोधत ।
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् ॥६६
सन्ध्यांशौ तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च संख्यया ।
तदा तासां बभूवायुर्न च क्लेशविपत्तयः ॥६७
ततः कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे हि गते तु वै ।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वशः ॥६८
सन्ध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु ।
एवं कृते तु निःशेषे सिद्धिस्त्वन्तर्दधे तदा ॥६९
तस्याञ्च सिद्धौ भ्रष्टायां मानस्यामभवत्ततः ।
सिद्धिरन्या युगे तस्मिंस्त्रेतायामन्तरे कृताः ॥७०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कृतयुग में सबसे प्रधान ध्यान माना गया है और त्रेतायुग में ज्ञान का सबसे अधिक महत्त्व होता है। द्वापर युग में यज्ञ-यागादि का सबसे अधिक गौरव माना जाता था और इस कलियुग में दान की सर्वश्रेष्ठता मानी गई है ॥६४॥ युगवृत्त की वशता के कारण से कृतयुग में सत्त्वगुण—त्रेता में रजोगुण—द्वापर में रजोगुण और तमोगुण तथा कलियुग में केवल तमोगुण का आधिपत्य रहता है।.६५॥ कृतयुग में जो काल होता है उसकी संख्या समझ लो। चार सहस्र वर्ष का वह कृतयुग होता है ॥६६॥ उसके संध्या-सन्ध्यांश दिव्य आठ सौ वर्ष संख्या में होते हैं। उस समय उनकी आयु ऐसी ही होती थी कि उसमें कोई भी क्लेश तथा विपत्तियाँ नहीं होती थीं ॥६ ॥ इसके अनन्तर उस कृतयुग के सन्ध्यांश के चले जाने पर एक पाद से अवशिष्ट युग-धर्म सभी ओर से होता है ॥६८॥ अन्तकाल में युग की सन्ध्या के भी व्यतीत हो जाने पर युग का एक पाद से सन्ध्या-धर्म अवस्थित रहता है । इस प्रकार से कृतयुग के निःशेष हो जाने पर उस समय सिद्धि अन्तर्हित हो जाती है ॥६९॥ तब उस मानसी सिद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर उस युग में त्रेता में अन्तर में की हुई अन्य सिद्धि होती है ॥७१॥

सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिताः।
अष्टौ ताः क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति संक्षयम् ॥७१
कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युगविभागशः।
वर्णाश्रमाचारकृतः कर्मसिद्धोद्भवः स्मृतः ॥७२
सन्ध्याकृतस्य पादेन सन्ध्यापादेन चांशतः।
कृतसन्ध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन् पादान् परस्परान्।
ह्रसन्ति युगधर्मैस्ते तपः श्रुतबलायुषैः ॥७३
ततः कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम्।
त्रेतायां युगमन्यन्तु कृतांशमृषिसत्तमाः ॥७४
तस्मिन् क्षीणे कृतांशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह।
कल्पादौ संप्रवृत्तायास्त्रेतायाः प्रमुखे तदा ॥७५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रणश्यति तदा सिद्धिः कालयोगेन नान्यथा ।
तस्यां सिद्धौ प्रणष्टायामन्या सिद्धिरवर्त्तत ॥७६
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु तौ ।
मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्ज्जनम् ॥७७

सर्ग के आदि में मैंने जो आठ मानसी सिद्धियाँ कीर्त्तित की थीं वे आठों सिद्धियाँ क्रम के योग से संक्षय को प्राप्त हो जाती हैं ॥७१॥ कल्प के आदि में मानसी जो यह सिद्धि है वह कृत-युग में होती है। सभी मन्वतरों में चारों युगों के विभाग से वर्ण और आश्रमों के कर्मों द्वारा सिद्धि की उत्पत्ति कही गई है ॥७२॥ सन्ध्या कृत-पाद से और अंश से सन्ध्या-पाद से सन्ध्या के अंश किये जाने वाले परस्पर में तीन-तीन पादों को तप, श्रुत, बल, आयु वाले युग के धर्मों से वे ह्रास को प्राप्त होते हैं ॥७३॥ हे श्रेष्ठ ऋषियो ! फिर इसके अनन्तर कृत-अंश के क्षीण हो जाने पर इसके पश्चात् त्रेता में अन्य युग कृत-अंश वाला हुआ ॥७४॥ उस कृतांश के क्षीण हो जाने पर यहाँ पर उनसे शेष प्रजाओं में कल्प के आदि में त्रेता के सम्प्रवृत्त होने पर प्रमुख में ही उस समय काल योग से सिद्धि का नाश हो जाता है अन्य कोई कारण नहीं है। उस पूर्व सिद्धि के नाश हो जाने पर फिर अन्य सिद्धि हुई थी ॥७५-७६॥ उस समय जलों की सूक्ष्मता होने पर अर्थात् कुछ कमी हो जाने पर उन दोनों ने मेघ के स्वरूप से स्तनयित्नु मेघों से वर्षा के सृजन में प्रवृत्ति की ॥७७॥

सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले ।
प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ॥७८
सर्वप्रत्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते ।
वर्त्तयन्ति हि तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः ॥७९
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् ।
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ॥८०
यत्तद्भवति नारीणां जीवितान्ते तदार्त्तवम् ।
तदा तद्वै न भवति पुनर्युगबलेन तु ॥८१
तासां पुनः प्रवृत्तं तु मासे मासे तदार्त्तवम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततस्तेनैव योगेन वर्तता मिथुने तदा ॥८२
तासां तत्कालभावित्वान्मासि मास्युपगच्छताम् ।
अकाले ह्यार्तवोत्पत्तिर्गर्भोत्पत्तिरजायत ॥८३
विपर्ययेण तासां तु तेन कालेन भाविना ।
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ॥८४

एक बार होने वाली ही उस वृष्टि से पृथ्वी तल के जल से परिपूर्णतया संयुक्त हो जाने पर उस समय उनके घरों में संस्थित वृक्षों का प्रादुर्भाव हो गया अर्थात् वृक्षादि खूब अच्छी तरह उत्पन्न हुए ॥७८॥ उनसे उन प्रजाओं का सभी प्रकार का उपभोग सम्पन्न हो जाता है । त्रेतायुग के आरम्भ में प्रजा उन वृक्षों को बरताव में लाती हैं ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर अधिक काल उस त्रेतायुग का व्यतीत होने पर उन्हीं प्रजाओं के कुछ विपर्यय हो जाने से तब अचानक राग और लोभ के रूप वाला भाव उत्पन्न हो गया ॥८०॥ स्त्रियों के जीवितान्त में जो आर्त्तव होता है उस समय वह नहीं होता है तो फिर योग के बल से उनको फिर मास में अर्थात् प्रत्येक मास में वह ऋतु-धर्म प्रवृत्त हुआ और फिर उसी योग से उस समय वे मिथुन में प्रवृत्त हुए हैं ॥८१–८२॥ उनको उस समय में ऋतु-धर्म होने से उन स्त्रियों का उपगमन करें और प्रत्येक मास में ही करना चाहिए । अकाल में आर्त्तव की उत्पत्ति गर्भ की उत्पत्ति हुई ॥८३॥ उस समय में होने वाले उनके विपर्यय से उस समय सब गृह संस्थित वृक्ष नष्ट हो जाते हैं ॥८४॥

ततस्तेषु प्रणष्टेषु विभ्रान्ता व्याकुलेन्द्रियाः ।
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥८५
प्रादुर्बभूवुस्तासां च वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ॥८६
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥८७
तेन ता वर्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य च ।
हृष्टतुष्टास्तया सिद्धया प्रजा वै विगतज्वराः ॥८८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुन: कालांतरेणैव पुनर्ल्लोभावृतास्तु ता: ।
वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकं बलात् ।।८६
तासां तेना पचारेण पुनर्ल्लोककृतेन वै ।
प्रणष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षा: क्वचित् क्वचित् ।।६०

तब उस समय उन वृक्षों के प्रनष्ट हो जाने पर वे बहुत ही भ्रान्त हुए उनकी समस्त इन्द्रियाँ व्याकुलित हो गईं तब सत्य के अभिध्यायी उन्होंने उस सिद्धि का ध्यान किया ।।८५।। फिर सिद्धि के ध्यान से वे सब गृह में रहने वाले वृक्ष प्रादुर्भूत हो गये थे । और वे वस्त्र, फल तथा अनेक आभरणों का प्रसव किया करते हैं ।।८६।। उन प्रजाओं के उन्हीं वृक्षों में गन्ध, वर्ण और रस से युक्त महान् वीर्य युक्त पुट-पुट में अमाक्षिक मधु उत्पन्न होता है ।।८७।। त्रेतायुग के आरम्भ काल में सभी प्रजा उसी का व्यवहार करते थे । इससे वे सब परम हृष्ट-पुष्ट और उस सिद्धि से विगत ज्वर अर्थात् दु:ख रहित हो गये ।।८८।। फिर कुछ काल के पश्चात् ही लोभ से आवृत हुए उन वृक्षों का परिग्रहण करते हैं और बलपूर्वक उनका मधु अथवा माक्षिक भी ग्रहण करते हैं ।। ८९ ।। उनके उस लोक कृत अपचार से फिर कहीं-कहीं वे कल्प वृक्ष मधु के साथ ही साथ नष्ट हो गये थे ।।९०।।

तस्यामेवाल्पशिष्टायां सन्ध्याकालवशात्तदा ।
प्रावर्तंत तदा तासां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि तु ।।६१
शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दु:खिता भृशम् ।।
द्वन्द्वैस्ता: पीडयमानास्तु चक्रुरावरणानि च ।।६२
कृत्वा द्वन्द्व प्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे ।
पूर्वं निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ।।६३
यथायोग्यं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुन: ।
मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च ।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वानं शाश्वतोदकम् ।।६३
यथायोगं यथाकामं समेषु विषमेषु च ।
आरब्धास्ते निकेता वै कर्त्तुं शीतोष्ण वारणम् ।।६५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ।
ग्रामांश्चैव यथाभागं तथैवान्तः पुराणि च ॥९६

तासामायामविष्कम्भान् संनिवेशान्तराणि च ।
चक्रुस्तदा यथाप्राज्ञं प्रदेशः संज्ञितस्तु तैः ॥९७

अंगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ।
तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ॥९८

कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशांगुल उच्यते ।
रत्निरंगुलपर्वाणि संख्यया त्वेकविंशतिः ॥९९

उस समय सन्ध्या-काल के कारण से जोकि सन्ध्या का थोड़ा-सा भाग ही शेष रह गया था उन प्रजाओं में द्वन्द्वों को उत्पत्ति हुई अर्थात् 'सुख-दुःख' आदि के जोड़े उत्पन्न हो गये ॥९१॥ तब तो वे अति तीव्र शीत, वात, आतप के द्वन्द्वों से बहुत उत्पीड़ित हुए और वे परम पीड़ा मान होकर उन द्वन्द्वों से बचाव करने के लिये अपने आवरण करने लगे । ९२॥ सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का प्रतीकार करके वे सब घरों में निवास करने लगे जिससे शीतलता, उष्णतादि से पूर्ण बचाव हो जावे । इसके पूर्व वे सभी स्वेच्छाचारी थे और किसी भी घर का आश्रय लेकर नहीं रहते थे ॥९३॥ योग्यता और प्रीति के अनुसार फिर घरों में निवास करते हुए रहने लगे । मरुधन्वाओं में, नीचे स्थानों में, पर्वतों में और नदियों में जहाँ कि निरन्तर जल विद्यमान रहता है वे ऐसे दुर्गों को अर्थात् पूर्ण सुरक्षित स्थानों का आश्रय लेते थे ॥ ९४ ॥ जैसा भी योग हो और जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार समतल और विषमतल में उन्होंने शीत और उष्णता का वारण करने के लिये अपने घरों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया था ॥९५॥ इसके पश्चात् खेटों तथा पुरों की स्थापना की थी और भाग के अनुसार ग्रामों की और अन्तःपुरों की स्थापना की गई थी ॥९६॥ उनके आयाम और विष्कम्भों को तथा अन्दर के सन्निवेशों का बुद्धि के अनुसार निर्माण किया और उस समय उन्हीं के द्वारा 'प्रवेश' यह संज्ञा रखी गई थी ॥९७॥ प्रदेशिनी से अंगुष्ठ का व्यास 'प्रादेश' कहा जाता है । मध्यमा से 'ताल' और अनामिका से 'गोकर्ण' कहा गया है ॥ ९८ ॥ कनिष्ठिका से 'वितस्ति' जोकि द्वादशांगुल कहा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाता है। अंगुलियों के पर्व जो संख्या में इक्कीस होते हैं 'रत्नि' कहे जाते हैं ॥९९॥

चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तः स्यादंगुलानि तु ।
किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदंगुलम् ॥१००
चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ।
धनुः सहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥१०१
अष्टौ धनुः सहस्राणि योजनं तैर्निरुच्यते ।
एतेन योजनेनैव सन्निवेशस्ततः कृतः ॥१०२
चतुर्णामेव दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्याम्यहं विधिम् ॥१०३
सौधोच्चवप्रप्राकारं सर्वतश्चातकावृतम् ।
तदेकं स्वस्तिकद्वारं कुमारीपुरमेव च ॥१०४
श्रोतसीसह तद्द्वारं निखातं पुनरेव च ।
हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वाऽपरे मताः ॥१०५
खेटानां नगराणांच ग्रामाणांचैव सर्वशः ।
त्रिविधानांच दुर्णाणां पर्वतोदकवन्धनम् ॥१०६

चौबीस अंगुल का 'हस्त' होता है। दो रत्नियों का 'किष्कु' होता है जोकि बयालीस अंगुल का होता है ॥१००॥ चार हस्त का धनु होता है और दो नालिका दण्ड होता है। दो सहस्र धनुओं का गव्यूति होता है ॥१०१॥ आठ सहस्र धनुओं का एक योजन कहा जाता है। इस योजन से ही सन्निवेश किया गया था ॥१०२॥ चार युगों में तीन तो अपने से उत्थित थे और चौथा दुर्ग कृत्रिम था जिसकी विधि को मैं कहता हूँ ॥१०३॥ सब ओर से चातकों से आवृत ऊँचे प्राकार वाला सौध होता है। उसमें एक स्वस्तिक द्वार होता है और कुमारी पुर होता है ॥१०४॥ श्रोतसी के साथ वह द्वार निखात (खुदा हुआ) होता है। वह आठ हाथ, दश हाथ अथवा नौ हाथ का दूसरे मानते हैं ॥१०५॥ खेटों के, नगरों के और ग्रामों के सब ओर से और तींन प्रकार के दुर्गों के पर्वतोदक बन्धन होता है ॥१०६॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्रिविधानांच दुर्गाणां विष्कम्भायाममेव च ।
योजनानाञ्च विष्कम्भमष्टभागार्द्धमायतम् ।।१०७
परमार्द्धार्द्धमायामं प्रागुदक्प्रवरं पुरम् ।
छिन्नकर्णं विकर्णन्तु व्यञ्जनं कृशसंस्थितम् ।।१०८
वृत्तं हीनञ्च दीर्घञ्च नगरं न प्रशस्यते ।
चतुरस्रार्जवं दिकस्थं प्रशस्त वै पुरं परम् ।।१०६
चतुर्विंशतिराद्यन्तु हस्तानष्टशतं परम् ।
अत्र मध्यं प्रशंसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ।।११०
अथ किष्कुशतान्यष्टो प्राहुर्मुख्यनिवेशनम् ।
नगरादर्धविष्कम्भं खेटं ग्रामं ततो बहिः ।।१११।।
नगराद्योजनं खेटं खेटाद्ग्रामोऽर्द्धं योजनम् ।
द्विक्रोशं परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनुः ।।११२

तीनों प्रकार के दुर्गों का विष्कम्भ जितना आयाम होता है । योजनों के अष्ट-भाग और अर्ध-भाग आयत विष्कम्भ होता है ।।१०७।। परमार्थ के अर्ध आयाम वाला पहिले उदक से प्रवर पुर, छिन्न कर्ण, विकर्ण, व्यंजन, कृश-संस्थित, वृत्त, हीन और दीर्घ नगर प्रशस्त नहीं कहा जाता है । चारों ओर से सिधाई वाला दिशाओं में स्थित पुर परम प्रशस्त होता है ।।१०८–१०६।। जिसका आद्य चौबीस हाथ और पर आठ सौ तथा ह्रस्व और उत्कृष्ट से रहित मध्य भाग हो उसकी प्रशंसा करते हैं ।।११०।। इसके अनन्तर आठ सौ किष्कु का मुख्य निवेशन कहा गया है । नगर से आधा विष्कम्भ खेट होता है और उससे बाहिर ग्राम होता है ।।१११।। नगर से एक योजन खेट और खेट से आधा योजन ग्राम होता है । दो कोश परम सीमा होती है और चार धनुष क्षेत्र की सीमा होती है ।।११२।।

विंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशां मार्गस्तु तैः कृतः ।
विंशद्धनुर्ग्राममार्गः सीमामार्गो दशैव तु ।।११३
धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान् राजपथः स्मृतः ।
नृवाजिरथनागानामसम्बाधः सुसंचरः ।।११४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धनूंषि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तु तैः कृताः ।
गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यकाः ॥११५
घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदञ्च गृहान्तरम् ।
वृत्तिमार्गास्त्वर्द्धपदं प्राग्वंशः पदिकः स्मृतः ॥११६
अवस्करं परीवाहं पदमात्रं समन्ततः ।
कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ॥११७
यथा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ।
तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥११८
वृक्षाश्चैव गताः शाखा न ताश्चैव परागताः ।
अत उर्द्धगताश्चान्या एवं तिर्य्यग्गताः पुरा ॥११९

बीस धनुष विस्तार वाला उन्होंने दिशाओं का मार्ग बनाया, बीस धनुष का विस्तीर्ण ग्राम का मार्ग और दश धनुष विस्तार वाला सीमा का मार्ग बनाया था ॥११ ॥ दश धनुष विस्तार वाला शोभायुक्त राजपथ कहा गया है जोकि मनुष्य, अश्व, रथ, हस्ती आदि का बाधा-रहित संचार वाला होता है ॥११४॥ चार धनुष के विस्तार वाली ही शाखा रथ्या (गली) उन्होंने बनाईं इसी प्रकार से गृहरथ्या, उपरथ्या, द्विका और उपरथ्यका, घण्टापथ, चतुष्पाद, त्रिपद, गृहान्तर, वृत्तिमार्ग, अर्द्धपद, प्राग्वंश और पदिक कहा गया है ॥११५-११६॥ यह मात्र चारों ओर अवस्कर परीवाह उन स्थानों पर करने पर फिर घर किये ॥११७॥ जिस तरह वे पहिले गृह संस्थित वृक्ष थे पुनः-पुनः चिन्तन कर वैसा ही करना आरम्भ कर दिया ॥११८॥ शाखाऐं और वृक्ष गये वैसे ही परागत नहीं हुए। इसलिये ऊपर की ओर गये हुए दूसरे थे इसी प्रकार से पहिले तिरछे जाने वाले थे ॥११९॥

बुद्धाऽन्विष्यस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गताः ।
तथा कृतास्तु तैः शाखास्तस्माच्छालास्तु ताः स्मृताः ॥१२०
एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च ।
तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्वं चैव तासु तत् ॥१२१
प्रसीदति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः ॥१२२
कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ।
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिकाः ॥१२३
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।
वार्त्तार्थसाधिकाप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः ॥१२४
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।
वृष्ट्या तदभवत्स्रोतः खातानि निम्नगाः स्मृताः ॥१२५
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्ज्जने ।
ये परस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥१२६
अपाम्भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासु चाभवन् ।
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे ॥१२७
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्याऽरण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ॥ २८

खूब समझ कर खोज करते हुए का वैसा ही न्याय है जैसा कि वृक्ष में रहने वाली शाखाएँ होती हैं। उनके द्वारा की हुई शाखाएँ हैं इससे वे शालायें कहलाई गई हैं ॥१२०॥ इस प्रकार से शाखाओं से शालाऐं और गृह प्रसिद्ध हुए। इसी से वे शालाऐं कहलाई और उनमें वह शालत्व था ॥१२१॥ उनमें मन प्रसन्न होता है और वे मन को प्रसाद युक्त करती भी हैं। इसी से गृह और शालाऐं प्रसाद संज्ञा से युक्त हुए हैं ॥१२२॥ उन द्वन्द्वों के उपघातों को करके अर्थात् सुख-दुखादि स्वरूप जो बहुत से संसार में द्वन्द्व (जोडे) हैं उनका निवारण करके अर्थात् गृहादि का निर्माण करके बचाव करके अब जीविका के उपाय के विषय में चिन्तन किया अर्थात् रोजी कैसे चले, यह विचार किया। उस समय मधु के साथ कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर भूखी-प्यासी प्रजा विषाद से व्याकुल हो उठी ॥१२३॥ इसके अनन्तर उन प्रजाजनों को फिर त्रेता युग में वृत्ति की सिद्धि का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी इच्छा से जीविका और अर्थ के साधन करने वाली अन्य वृत्ति भी प्रादुर्भूत हुई ॥१२४॥ तब वृष्टि का जो जल था जो कि यहाँ पर निम्न स्थानों में चला गया था, वृष्टि से वह स्रोत हो

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया और जो खात अर्थात् गहराई वाले खुदे हुए थे, वे नदियाँ कहलाई ॥ ॥१२५। इस तरह द्वितीय वृष्टि के सर्जन में नदियाँ प्रवृत्त हुईं । जो जलों के परे छोटी थीं और पृथ्वी तल में प्राप्त हुईं थीं ॥१२६॥ भूमि और जल के संयोग से उनमें औषधियाँ सम्पन्न हुईं वे औषधियाँ फूल-मूल और फलों वाली उत्पन्न हुईं थीं ॥१२७॥ जो हल से नहीं जोते गये हैं और बोये गये हैं ऐसे ग्राम के चौदह अरण्य थे जो कि ऋतु के पुष्प और फलों से युक्त वृक्षों को और गुल्मों को उत्पन्न करते थे ॥१२८॥

प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्त्तायामौषधस्य तु ।
तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा ॥१२९
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यम्भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन तु ॥१३०
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षान् गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्यन्तु यथाबलम् ॥१३१
सिद्धात्मानस्तु ये पूर्वं व्याख्याताः प्राकृते मया ।
ब्रह्मणा मानवास्ते वै उत्पन्ना योजनादिह ॥१३२
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुखिनस्तदा ।
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः ॥१३३

त्रेता युग में जीविका के कार्य में औषध का प्रादुर्भाव हुआ । उस समय त्रेता युग में प्रजा उस औषध से अब भी रोजी चलाती थी ॥१२९॥ त्रेता युग में होने वाले अवश्यम्भावी अर्थ से फिर उन प्रजा-जनों में सभी ओर से राग और लोभ पुनः हो गया था ॥१३०॥ इसके अनन्तर उन्होंने नदी के क्षेत्रों को और पर्वतों का परिग्रहण किया और बल के अनुसार वृक्षों और गुल्मौषधियों को प्रसहन किया । झाड़ी के रूप में रहने वाली औषधि गुल्मौषधि कही जाती हैं ॥१३१॥ जो सिद्ध आत्मा वाले थे वे सब मैंने पहिले प्राकृत में बता दिये अर्थात् उनकी भली-भाँति व्याख्या कर दी थी । यहाँ पर योजन से ब्रह्मा के द्वारा जो उत्पन्न हुए वे मानव थे ॥१३२॥ उस समय शान्त-शुष्मी-कर्म करने वाले और दुःख से युक्त इसके पश्चात् पुनः प्रवर्त्तमान होते हुए त्रेता युग में उत्पन्न हुए ॥१३३॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ।
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः ।।१३४
इतस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः ।
वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै ।।१३५
प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ।
एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेशु परस्परम् ।।१३६
तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषतां तदा ।
प्रणष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा ।।१३७
अग्रसद्भूर्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्पं पत्रैश्च याः पुनः ।।१३८
ततस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः प्रजास्तदा ।
स्वयम्भुवं प्रभुं जग्मुः क्षुधाविष्टाः प्रजापतिम् ।।१३९
वृत्त्यर्थमभि लिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् ज्ञात्वा तासां मनीषितम् ।।१४०

ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र और द्रोह करने वाले मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म्मों से पूर्व जातियों में भावित होते हुए उत्पन्न हुए ।।१३४।। यहाँ से जो उनसे बलवान् थे—सत्य के स्वभाव वाले थे–हिंसा का कर्म न करने वाले थे–अपनी आत्मा जीत लेने वाले और वीत-लोभ अर्थात् लोभ से रहित थे, वे उनमें निवास करते थे ।।१३५।। उनसे अन्य अल्प तेज वाले प्रतिग्रहण करते हैं । इस प्रकार से आपस में विप्रतिपन्न और प्रपन्नों में रहते हैं ।।१३६।। उन सबके उस दोष से वे सब औषधियाँ उस समय मुष्टियों से सिकता की भाँति ह्रियमाण और प्रनष्ट हो गईं ।।१३७।। भूमि ने सबका ग्रास कर लिया । युग के बल से चौदह जो ग्राम्य अरण्य थे वे पुष्पों से फल को और पत्रों से पुष्प को ग्रहण करते हैं ।। ।।१३८।। इसके पश्चात् उन सभी के प्रनष्ट हो जाने पर उस समय सब प्रजा-जन विभ्रान्त होते हुए, भूख से आविष्ट होते हुए प्रजापति प्रभु स्वयम्भू के पास आये ।।१३९।। त्रेता युग के आदि में जीविका के लिये इच्छा करते हुए उनको देखकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने उनके बुद्धि स्थित विचार को जान लिया था ।।१४०।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युक्तं प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च ।
ग्रस्ताः पृथिव्या औषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुनः ।।१४१
कृत्वा वत्सं सुमेरुं तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ।
दुग्धेयं गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले ।।१४२
जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ।
ओषध्यः फलपाकान्ताः सप्तसप्तदशास्तु ताः ।।१४३
व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कारूषाश्च सतीनकाः ।।१४४
माषा मुग्दा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ।
आढक्यश्चणकाश्चैव सप्तसप्तदशाःस्मृताः ।।१४५
इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयः स्मृताः ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।।१४६

प्रत्यक्ष दृष्ट दर्शन से युक्त बात का विचार कर ब्रह्मा जी ने यह जान लिया कि पृथिवी ने समस्त औषधियों को ग्रस लिया है और उन्होंने पुनः प्रति दोहन किया ।।१४१।। ब्रह्माजी ने सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था । इससे उस समय दोहन की हुई यह गौ ने पृथ्वी तल में बीजों को उत्पन्न किया और उन बीजों ने पुनः वे ग्राम्यारण्य उत्पन्न किये और सात-सात दशा वाली औषधियां जिनमें फलों का अन्त तक पाक होता था उत्पन्न हुईं । व्रीहि–यव–गोधूम–अणु–तिल–उदार प्रियङ्गु–कारुष–सतीनक–माष (उर्द)–मुग्द (मूंग)–मसूर और कुलत्थ के सहित निष्पाव–आढका–चणक ये सात-सात दशा वाले कहे गये हैं ये सब उत्पन्न हुए ।।१४२।।१४३।।१४४।। ।।१४५।। ये सब ग्राम्य औषधियों की जातियाँ बतलाई गई हैं । और जो याज्ञिय औषधियाँ हैं वे ग्राम्यारण्य चौदह हैं ।। ४६।।

व्रीहयः सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिलाः ।
प्रियंगुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका ।।१४७
श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्त्तिलाः सगवेधुकाः ।
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये ।।१४८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश ।
उत्पन्नाः प्रथमा ह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु ।।१४६
अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्वशः ।
वृक्षा गुल्मलतावल्लीवीरुधस्तृणजातयः ।।१५०
मूलैः फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन् पुष्पैश्च जायते ।
पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयम्भुवा ।।१५१
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः ।।१५२
ततः स तासां वृत्त्यर्थं वार्त्तोपायं चकार ह ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धि तु कर्मजाम् ।।१५३
ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्या स्तु जज्ञिरे ।
संसिद्धायान्तु वार्त्तायान्ततस्तासां स्वयंभुवः ।
मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परम् ।।१५४

व्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, सातवीं प्रियङ्गु और आठवीं कुलत्थिका—श्यामाक, नीवार, जर्त्तिला, सगवेधुका, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कट ये चौदह औषधियाँ ग्राम्यारण्य नाम से कही गई हैं ।। त्रेता युग के आदि में पहिले ये ही उत्पन्न हुईं थीं ।।१४७।।१४८।।१४९।। हल की फाल से जो भूमि नहीं जुती हुई है, उसमें होने वाली ये औषधियाँ हैं और सब ओर ग्राम्यारण्य हैं जिनमें वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, विरुध और तृण की जाति वाली औषधियाँ होती हैं ।।१५७।। स्वयम्भू के द्वारा दुही हुई पृथ्वी ने जो बीज दिये उन सबके अङ्कुर उत्पन्न हुए और मूल-फल और पुष्पों से युक्त हुए उत्पन्न होते हैं ।।१५१।। अपनी ऋतु में फल और पुष्प प्रदान करने वाली औषधियाँ यहाँ उत्पन्न हुईं । जब औषधियाँ प्रसृष्ट हो गईं तो फिर नहीं उगती हैं ।।१५२।। इसके अनन्तर उन्होंने उन प्रजाजनों की वृत्ति के लिये उपाय किये और भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा ने उनके कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि को देखा ।।१५३।। तब से लेकर कृष्ट पच्या औषधियाँ उत्पन्न हुईं । इसके अनन्तर उन प्रजा के जनों की जीविका के भली-भाँति सिद्ध हो जाने पर भगवान् स्वयम्भू के द्वारा परस्पर में जैसे आरम्भ की गई थी वह मर्यादा स्थापित हो गई ।।१५४।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ये वै परिगृहीतारस्तासामा सन्विधात्मकाः ।
इतरेषां कृतत्राणाः स्थापयामास क्षत्रियान् ॥१५५
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा ।
सत्यं ब्रह्म यथा भूतं ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ॥१५६
ये चान्येप्यबलास्तेषां वैश्यसंकर्मसंस्थिताः ।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ।
वैश्यानेव तु तानाहुः कीनाशान् वृत्तिसाधकान् ॥१५७
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः ।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तु सः ॥१५८
तेषां कर्माणि धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभुः ।
संस्थितौ प्राकृतायां तु चातुर्वर्णस्य सर्वशः ॥१५९
पुनः प्रजास्तु ता मोहात् तान् धर्मास्तानपालयन् ।
वर्ण धर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् ॥१६०
ब्रह्मा तमर्थं बुद्धा तु याथातथ्येन वै प्रभुः ।
क्षत्रियाणां बलं दण्डं युद्धमाजीवमादिशत् ॥१६१
याजनाध्यापनं चैव तृतीयं च परिग्रहम् ।
ब्राह्मणानां विभुस्तेषां कर्माण्येतान्यथादिशत् ॥१६२

उनके परिगृहीता विधात्मक थे । दूसरों के त्राण करने वाले क्षत्रियों की स्थापना की । उनका जो उपस्थान करते हैं वे यथाभूत सत्य ब्रह्म को बोलने वाले ब्राह्मण थे जो कि निर्भय रहा करते थे अर्थात् क्षत्रियों के संरक्षण में उन्हें किसी भी बाधा आदि का भय नहीं रहता था ॥१५६॥ उनमें जो भी अन्य बल रहित थे और वैश्य कर्मों में संस्थित थे, पहिले पृथ्वी में अतन्द्रित का नाश कर देते थे । उन वृत्ति के साधक वैश्यों को कीनाश ही कहते हैं ॥१५७॥ शोच करते हुए—द्रव होते हुए जो परिचर्याओं में निरत रहते हैं और जो तेज से हीन और अल्प वीर्य वाले हैं उन्हें वह 'शूद्र' इस नाम से बोलता था ॥१५८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने प्राकृत संस्थिति में सब ओर से चतुर्वर्ण के अनुसार उनके कर्मों की और धर्मों की व्यवस्था कर दी थी ॥१५९॥ फिर उन प्रजा के जनों ने मोह से उन धर्मों का पालन न करते हुए वे वर्णों के, धर्मों के द्वारा जीविका

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चलाते हुए परस्पर में विरोध करने वाले हो गये ।।१६०।। प्रभु ब्रह्माजी ने उस अर्थ को भली भाँति ठीक-ठीक समझ कर क्षत्रियों की जीविका बल, दण्ड और युद्ध करना बतलाया था ।।१६१।। यज्ञादि का यजन कराना, वेद और शास्त्रों का पढ़ाना तथा दान ग्रहण करना ये तीन कर्म उन ब्राह्मणों के विभु श्री ब्रह्मा जी ने बताये थे ।।१६२।।

पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं चैव विशां ददौ ।
शिल्पाजीवं भृतिञ्चैव शूद्राणां व्यदधात् प्रभुः ।।१६३
सामान्यानि तु कर्माणि ब्रह्मक्षत्रविशां पुनः ।
यजनाध्ययनं दानं सामान्यानि तु तेषु च ।।१६४
कर्माजीवं ततो दत्त्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ।
लोकान्तरेषु स्थानानि तेषां सिद्धयाऽददत् प्रभुः ।।१६५
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ।।१६६
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममुपजीविनाम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां प्रतिचारेण तिष्ठताम् ।१६७
स्थानान्येतानि वर्णानां व्यत्याचारवतां स्वयम् ।
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ।।१६८
गृहस्थो ब्रह्मचारित्वं वानप्रस्थं सभिक्षुकम् ।
आश्रमांश्चतुरो ह्येतान् पूर्वमास्थापयत् प्रभुः ।।१६९

पशुओं का पालन करना, व्यापार करना और कृषि का काम करना ये तीन कर्मों के करने की व्यवस्था ब्रह्माजी ने वैश्यों के लिये की और यही आदेश दिया । प्रभु ने दस्तकारी के द्वारा रोजी कमाना, नौकरी करना ये कर्म शूद्रों के करने के लिए बताये थे ।।१६३।। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के सामान्य कर्म स्वयं यजन करना, स्वयं अध्ययन करना और स्वयं दान देना था। ये तीनों कर्म उन तीनों में समान रूप से होते थे ।।१६४।। इस प्रकार से इन सबके कर्म और आजीविका की व्यवस्था करके और उन्हें परस्पर में यह देकर फिर प्रभु ने दूसरे लोकों में सिद्धि से उनके स्थानों को भी दिया था ।।१६५।। जो परम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रियावान् ब्राह्मण थे उनके लिये प्राजापत्य कहा गया है।" जो संग्रामों में कभी पीठ दिखाकर शत्रु के समक्ष से भयोद्विग्न होकर पलायन नहीं किया करते थे, उन क्षत्रियों को इन्द्र सम्बन्धी स्थान दिया गया था ॥१६६॥ अपने धर्म के अनुसार उपजीवन करने वाले वैश्यों के लिए दूसरे लोक में वायु का स्थान दिया था। शूद्र प्रतिचार से सेवावृत्ति करते हुए यहाँ लोक में रहते थे उन शूद्रों की जाति वाले पुरुषों के लिए दूसरे लोक में गन्धर्वों का स्थान दिया था ॥१६७॥ विशेष रूप से अत्यन्त आचार के पालन करने वाले उन वर्णों के लिये स्वयं ये स्थान देकर फिर उन वर्णों के स्थित लोगों में चार आश्रमों की स्थापना की थी ॥१६८॥ प्रभु ब्रह्माजी ने गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास इन चार आश्रमों की पहिले ही स्थापना की थी ॥१६९॥

वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते ।
कुतः कर्मा क्षितिं प्राहुराश्रमस्थानवासिनः ॥१७०
ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामतः ।
निर्देशार्थं ततस्तेषां ब्रह्मा धर्मान् प्रभाषत ।
प्रस्थानानि च तेषां वै यमांश्च नियमांश्च ह ॥१७१
चातुर्वर्णात्मकः पूर्वं गृहस्थश्चाश्रमः स्मृतः ।
त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि यमैश्च नियमैश्च ते ॥१७२
दाराऽग्नयोऽथातिथेय इज्याश्राद्धक्रियाः प्रजाः ।
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसंग्रहः ॥१७३
दण्डी च मेखली चैव ह्यधःशायी तथा जटी ।
गुरुशुश्रूषणं भैक्षं विद्याद्वै ब्रह्मचारिणः ॥१७४
चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम् ।
उभे सन्ध्येऽवगाहश्च होमश्चारण्य वासिनाम् ॥१७५

जो भी कोई इस संसार में वर्णों के कर्मों को नहीं करना है उसे आश्रम स्थान के निवास करने वाले 'कर्माक्षिति' क्यों कहते हैं ॥ १७० ॥ ब्रह्माजी ने उन आश्रमों का नाम से स्थापन किया था। इसके पश्चात् उनके निर्देश के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिये ब्रह्माजी ने स्वयं उन धर्मों का बतलाया था, और प्रस्थान तथा उनके नियम और यम भी ब्रह्मा जी ने बताये थे ॥ १७१ ॥ यह एक ही गृहस्थ का आश्रम ऐसा है जो चारों वर्णों के स्वरूप वाला पहिले कहा गया है। यह गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की प्रतिष्ठा का उद्‌भव स्थान ही होता है। अब यहाँ क्रम के अनुसार हो उनका यम तथा नियमों के साथ वर्णन करता हूँ ॥ १७२ ॥ पत्नी का वैदिक विधि से ग्रहण करना. अग्नियों को आहित रखना, घर में समागत अतिथियों के लिये श्रद्धाभाव से अतिथि-सत्कार करना, यजन करना, श्राद्धादि की क्रिया का करना और प्रजा को जन्म देना अर्थात् सन्तान उत्पन्न करना, ये ही संक्षेप से गृहस्थों के धर्मों का संग्रह किया है ॥ १७३ ॥ अब ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म बतलाया जाता है—दण्ड का धारण करना, मौञ्जी मेखला का पहिनना, भूमि में शयन करना, शिर पर जटा धारण करना, गुरु की सेवा करना और भिक्षा करना, ये सब ब्रह्मचारी के धर्म होते हैं ॥ १७४ ॥ अरण्य में निवास करने वालों के चीरपत्र और अजिन अर्थात् मृगचर्म वस्त्र होते हैं। धान्य, मूल, फल और औषध, आहार दोनों समय सन्ध्योपासना करना और स्नान करना आदि धर्म होते हैं ॥ १७५ ॥

आसन्नमुसले भैक्षमस्तेयं शौचमेव च।
अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा ॥१७६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यञ्च दशमं स्मृतम्।
दशलक्षणिको ह्येष धर्मः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥१७७
भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च।
आचारशुद्धिर्नियमः शौचञ्च प्रतिकर्म च।
सम्यग्दर्शनमित्येवं पञ्चैवोपव्रतान्यपि ॥१७८
ध्यानं समाधिर्मनसेन्द्रियाणां ससागरैर्भैक्षमथोपगम्य।
मौनं पवित्रोपचितैर्विमुक्तिः परिव्रजो धर्ममिमं वदन्ति ॥१७९
सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्तो आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम्।
सत्यार्ज्जवन्तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ॥१८०
वेदाः साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमाश्च ये।
न सिद्ध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते ॥१८१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बर्हिः कर्माणि सर्वाणि प्रसिद्ध्यन्ति कदाच न ।
अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतोऽपि पराक्रमान् ।।१८२

आसन्नमुसल मे भिक्षा करना, चोरी न करना, शुद्धि रखना, प्रमाद न करना तथा स्त्री-गमन न करना. प्राणियों में दया करना तथा क्षमा रखना, क्रोध न करना, गुरु की सेवा करना और सत्य ये दश नियम एवं धर्म होते हैं । स्वयम्भू भगवान् ने यहाँ दश लक्षण वाला धर्म बताया है ।। १७६–१७७ ।। भिक्षु अर्थात् संन्यासी के पाँच तो यहाँ व्रत होते हैं और पाँच ही उपव्रत होते हैं । आचारों की शुद्धि नियम है और शौच का होना प्रतिकर्म होता है और सम्यक् दर्शन इस प्रकार से पाँच ही उपव्रत भी होते हैं ।। १-८ ।। मन से इन्द्रियों का ध्यान-समाधि, सागर के सहित भिक्षा प्राप्त करके मौन, पवित्र उपचितों से विमुक्ति प्राप्त करना यही पारिव्राज धर्म कहते हैं ।. १७९ ।। ये सब आश्रम ब्रह्माजी ने स्वयं ही कल्याण के लिये कहे हैं । सत्य, आर्जव, नय, क्षान्ति, योग, इज्या और दम- अङ्गों के सहित वेद, यज्ञ, व्रत और नियम ये सब भाव-दोष के उपागत होने पर प्रदुष्ट के कभी सिद्ध नहीं होते हैं ।। १८१ ।। जिसका अन्तर्भाव प्रकृष्ट दोष से युक्त होता है उसके पराक्रम करते हुये भी बाहित से समस्त कर्म कभी प्रसिद्ध नहीं होते हैं अर्थात् केवल दिखावे के कर्मों से कोई अभीष्ट सिद्धि नही होता है ।। १८२ ।।

सर्वस्वमपि यो दद्यात् कलुषेणान्तरात्मना ।
न तेन धर्मभाक् स स्याद्भाव एवात्र कारणम् ।।१८३
एवं देवाः सपितर ऋषयो मनवस्तथा ।
तेषां स्थानममुष्मिंस्तु संस्थितानां प्रचक्षते ।।१८४
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तु तेषां तत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ।।१८५
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतन्तद्वै दिवौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयः ।
योगिनाममृतं स्थानं नानाधीनां न विद्यते ।।१८६
स्थानान्याश्रमिणां तानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिताः ।
चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिताः ।।१८७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे भुवि ।
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविः स्मृतः ।।१८८
तथैव पितृयाणानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एवं वर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा ।
यदास्य न व्यवर्त्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिकाः ।।१८९

चाहे कोई अपनी कलुषित आत्मा से अपना सर्वस्व भी क्यों न दे देवे, उस दिये दान से वह कभी भी धर्म का भागी नहीं हो सकता है क्योंकि इस दान आदि के कर्म में भाव ही मुख्य कारण होता है ।। १८३ ।। इस प्रकार से पितर-ऋषिगण और मनुवृन्द इस लोक में सस्थित होने वाले उनका स्थान बतलाया जाता है ।। १८४ ।। ऊर्द्ध रेतस ऋषियों की संख्या अठ्ठासी हजार है उनका वह स्थान है, वही गुरुवासी सप्तर्षियों का स्थान है और वही दिवौकस अर्थात् देवताओं का स्थान कहा गया है । गृहस्थों का प्राजापत्य न्यास करने वालों का ब्रह्मा का क्षय और योगियों का अमृत स्थान है और जो नाना धी वाले हैं उनका कोई नहीं है ।। १८५–१८६ ।। जो अपने-अपने धर्म में व्यवस्थित रहते हैं उन्हीं आश्रमों में रहने वालों के स्थान होते हैं । ये चार मार्ग देवयान बनाये गये हैं ।। १८७ ।। भूमण्डल पर आद्य मन्वन्तर में लोकतन्त्र ब्रह्माजी के द्वारा देवयान के लिये मार्ग बनाये गये हैं और उनका द्वार रवि कहा गया है ।।१८८।। उसी प्रकार से पितृयान वालों का द्वार चन्द्रमा कहा जाता है । इस प्रकार से उस समय में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग करने पर जब इसकी प्रजा वर्णाश्रम के स्वरूप वाली व्यवहार नहीं करती है ।। १८९ ।।

ततोऽन्या मानसीः सोऽथ त्रेतामध्ये ऽसृजत् प्रजाः ।
आत्मनः स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ।।१९०
तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्यं प्राप्ते क्रमेण तु ।
ततोऽन्या मानसीस्तत्र प्रजाः स्रष्टुं प्रचक्रमे ।।१९१
ततः सत्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सोऽथासृजत् प्रभुः ।
धमर्थिकाममोक्षाणां वार्त्तायाश्चैव साधिकाः ।।१९२
देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ।
युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिताः प्रजाः ।।१९३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपस्थिते तदा तस्मिन् प्रजाधर्मे स्वयम्भुवः।
अभिदध्यौ प्रजाः सर्वा नानारूपास्तु मानसीः ॥१६४
पूर्वोक्ता या मया तुभ्यञ्जनलोकं समाश्रिताः।
कल्पेऽतीते तु ते ह्यासन् देवाद्यास्तु प्रजा इह ॥१६५
ध्यायतस्तस्य ताः सर्वाः सम्भूत्यर्थमुपस्थिताः।
मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मताः ॥१६६
ख्यात्यानुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविताः।
कुशलाकुशलप्रायैः कर्मभिस्तैः सदा प्रजाः।
तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धा प्रजज्ञिरे ॥१६७
देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपैः।
वृक्षनारकिकीटत्वै स्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः।
आधीनार्थं प्रजानाञ्च आत्मनो वै विनिर्ममे ॥१६८

इसके अनन्तर उन्होंने त्रेता के मध्य में अन्य मानसी प्रजा की सृष्टि की थी। जो अपने से, अपने शरीर से और अपनी आत्मा से तुल्य ही थे ॥१६०॥ उस आद्य त्रेता युग में क्रम से मध्य को प्राप्त होने पर इसके अनन्तर अन्य वहाँ पर मानसी प्रजा के सृजन का उपक्रम किया था। १६१ ॥ इसके पश्चात् उस प्रभु ने सत्व और रजोगुण के उद्रेक वाली प्रजा का सृजन किया जो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों की तथा आजीविका की साधिका थी ॥ १६२ ॥ देवगण, पितृवृन्द, ऋषि-समुदाय और मनुगण ये सब धर्म से युग के अनुरूप ही थे जिन्होंने इस सम्पूर्ण प्रजा को विचित किया है ॥ १६३ ॥ उस समय में स्वयम्भू के उस प्रजा धर्म में उपस्थित होने पर वह नाना रूप वाली मानसी समस्त प्रजा ने अभिध्यान किया ॥ १६४ ॥ मैंने पहिले तुम से जो जनलोक में आश्रित रहने वाली बताई थी कल्प के व्यतीत हो जाने पर वह देवाद्या प्रजा यहाँ थी ॥ १६५ ॥ सम्भूति के लिये उपस्थित उस समस्त प्रजा का ध्यान करते हुये उसके यहाँ मन्वन्तर के क्रम से प्रथम कनिष्ठ में माने गये ॥ १६६ ॥ ख्याति से और सब अर्थों वाले उन-उन अनुबन्धों से भावित प्रजा सर्वदा उन कुशल और अकुशल कर्मों से तथा उन कर्मों के शेष फल से उपलब्ध होती हुई उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुईं ॥ १९७ ॥ देव, असुर, पितृत्व, पशु, पक्षी, सरीसृप, वृक्ष, नारकिकीटत्व आदि भावों के द्वारा उपस्थित अपने आधीनता के लिये प्रजाओं का निर्माण किया ॥ १९८ ॥

॥ देव-सृष्टि वर्णन ॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीप्रजाः ॥
तच्छरीरसमुत्पन्नै कार्यैस्तैः कारणैः सह ।
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्य स्तस्य धीमतः ॥१
ततो देवासुरपितॄन् मानवञ्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतांश्च स्वात्मना समयूयुजत् ॥२
युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयम्भुवः ।
तमिमध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभूत् प्रजापतेः ॥३
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मान स्ततोऽसुराः ॥४
यया सृष्टाः सुरा तन्वा तां तनुं स व्यपोहत ।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥५
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रि यामिका ।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात् स्वयम्भुवः ॥६
दृष्ट्वा सुरांस्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ।
अव्यक्तां सत्वबहुलां ततस्तां सोऽभ्ययू युजत् ।
ततस्तां युञ्जतस्यस्य प्रियमासीत् प्रभोः किल ॥७

श्री सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर अभिध्यान करने वाले उनके उन कारणों के साथ उनके शरीर से समुत्पन्न कार्य्यों से मानसी प्रजा को जन्माया। उस धीमान के गात्रों से क्षेत्रज्ञ हुये ॥ १ ॥ इसके पश्चात् देव, असुर, पितर और चौथा मान की सृष्टि करने की इच्छा वाले ने अपनी आत्मा से इनको और जलों को संयोजित कर दिया था ॥ २ ॥ इसके बाद स्वयम्भू के जन्म-दाता युक्तात्मा उसके उस सर्ग का अभिध्यान करते हुये प्रजापति का प्रयत्न हुआ ॥३॥ इसके अनन्तर उसकी जांघ से पहिले असुर पुत्र उत्पन्न हुये। असुः—यह प्राण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहा गाया है। उसके जन्म देने वाले विप्र हैं। इससे असुर हुये ॥ ४ ॥ जिस शरीर से सुरों का सृजन किया था वह तनु उसने व्यपोहित कर दिया। उससे वह तनु अर्थात् शरीर अपविद्ध हो गया इससे तुरन्त ही रात्रि उत्पन्न हुई ॥ ५ ॥ वह विशेष तम वाली थी इससे वह तीन याम वाली रात्रि हुई। इससे स्वयम्भू की समस्त प्रजा रात्रि में अन्धकार से एकदम आवृत्त हो गई थी ॥ ६ ॥ देवेश ने सुरों को देखकर अन्य तनु को प्राप्त किया जो कि अव्यक्त और सत्व की प्रचुरता वाली थी। इसके पश्चात् उसने उसको योजित कर दिया था। उसको योजित करने वाले प्रभु का वह बहुत ही प्रिय था ॥ ७ ॥

ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः।
यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्त्तिताः ॥८
धातुर्द्दिवीति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते।
तस्यान्तन्वान्तु दिव्यायां जज्ञिरे तेन देवताः ॥९
देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्या मपद्यत।
सत्वमात्रात्मिकां देवस्ततोऽन्यां सोऽभ्यपद्यत ॥१०
पितृवन्मन्यमानस्तान् पुत्रान् प्राध्यायत प्रभुः।
पितरो ह्यु पपक्षाभ्यां रात्र्यह्नोरन्तरासृजत्।
तस्मात्ते पितरो देवाः पुत्रत्वन्तन तेषु तत् ॥११
यया सृष्टास्तु पितरस्तान्तनुं स व्यपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या प्रजायत ॥१२
तस्मादहस्तु देवानां रात्रिर्या साऽसुरी स्मृता।
तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी ॥१३
तस्माद्देवासुराः सर्वे ऋषयो मनवस्तथा।
ते युक्तास्तामुपासन्ते ब्रह्मणो मध्यमान्तनुम् ॥१४

दीव्यमान उसके मुख से फिर देवगण उत्पन्न हुये क्योंकि ये दीव्यमान होते हुये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिये ये देवता कहे गये थे ॥ ८ ॥ 'दिवु'—यह धातु जो कहा गया है वह क्रीड़ा के अर्थ में होता है। उस दीव्यमान तनु में देवता उत्पन्न हुये थे ॥ ९ ॥ फिर देवेश ने देवों का सृजन करके उसके पश्चात्

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसने अन्य शरीर धारण किया। उस देव ने सत्वमात्र के स्वरूप वाले अन्य शरीर को प्राप्त किया था ॥ १० ॥ उस प्रभु ने उन पुत्रों को पिता की भाँति मानते हुये पढ़ाया। वे उपपक्षों से पितर थे फिर प्रभु ने रात्रि और दिन के अन्तर भाग का सृजन किया था। इसी से वे देव पितर हुये क्योंकि उनमें उनका पुत्रत्व भाव था ॥ ११ ॥ जिस तनू से पितरों की सृष्टि की थी उस शरीर का उसने त्यागकर दिया। वह शरीर उससे अपविद्ध हो गया था फिर उससे तुरन्त ही सन्ध्या उत्पन्न हो गई थी ॥ १२ ॥ उससे देवों का दिन हुआ जोकि असुरों की रात्रि कही गई है। उन दोनों के मध्य में जो पैत्री तनू था वह बहुत ही गौरव से पूर्ण था ॥ १३ ॥ उससे सब देव, असुर ऋषि और मनु युक्त होते हुए ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर की उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत।
रजोमात्रात्मिकायान्तु मनसा सोऽसृजत् प्रभुः ॥१५
रजः प्रायात् ततः सोऽथ मानसानसृजत् सुतान्।
मनसस्तु ततस्तस्य मानसा जज्ञिरे प्रजाः ॥१६
दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वान्तनुन्ता मपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥१७
तस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः।
इत्येतास्तनवस्तेन व्यपविद्धा महात्मना ॥१८
सद्यो रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे।
ज्योत्स्ना संध्या तथाहश्च सत्त्वमात्रात्मकं स्वयम्।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्रियामिका ॥१९
तस्माद्देवा दिव्यतत्त्वा हृष्टाः सृष्टा मुखात्तु वै।
यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन ते दिवा ॥२०
तन्वा यदसुरान् रात्रौ जघनादसृजत् प्रभुः।
प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तेन ते ॥२१

इसके अनन्तर उस ब्रह्मा ने फिर एक अन्य शरीर प्राप्त किया था। वह शरीर रजोगुण के स्वरूप वाला था और उसे उस प्रभु ने मन से सृजन किया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था ॥१५॥ इसके अनन्तर उस रजोगुण की बहुलता वाले उस शरीर से मानस पुत्रों का सृजन किया था। फिर उसके मन से मानस प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ उस अपनी मानस प्रजा देखकर उसने अपने शरीर का त्याग कर दिया क्योंकि वह तनू उससे अपविद्ध होगया था फिर उससे तुरन्त ही ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गई थी ॥१७॥ उससे ज्योत्स्ना के जन्म होने पर समस्त प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। उस महापुरुष ने इस तरह इतने ये शरीर विशेष रूप से अपविद्ध किये थे ॥१८॥ फिर तुरन्त ही रात्रि, दिन, सन्ध्या ज्योत्स्ना (चाँदनी) उत्पन्न हुए। ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिन सत्त्व मात्र स्वरूप वाले स्वयं ही थे। रात्रि तमो मात्र स्वरूप वाली थी और वह तीन याम (प्रहर) के स्वरूप वाली थी ॥ १९ ॥ इससे दिव्य तत्व वाले देव परम हृष्ट और मुख से सृष्ट हुए थे। क्योंकि उनका दिवा में जन्म हुआ इसलिये वे दिवा के ही बलि-ग्रहण करने वाले हैं ॥२०॥ जो असुर रात्रि में शरीर की जाँघ से प्रभु ने उत्पन्न किये थे वे प्राणों से रात्रि के जन्म ग्रहण करने वाले हैं इसी से वे रात्रि में असह्य होते हैं ॥ २१ ॥

एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह ।
पितृणां मानवानाञ्च अतीतानागतेषु वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषां निमित्तानि भवन्ति हि ॥२२

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्याभासितानि वै ।
भान्ति यस्मात्ततो भासि भाशब्दोऽयं मनीषिभिः ।
व्याप्तिदीप्त्यां निगदितः पुनश्चाह प्रजापतिः ॥२३

सोऽम्भांस्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान् ।
पितृंश्च वासृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान् पुनः ॥२४
तामुत्सृज्य तनुं कृत्स्नान्ततोऽन्यामसृजत् प्रभुः ।
मूर्ति रजस्तमः प्रायां पुनरेवाभ्ययूयुजत् ॥२५
अन्धकारे क्षुधाविष्ट स्ततोऽन्यां सृजते पुनः ।
तेन सृष्टाः क्षुधात्मानस्तेऽम्भांस्यादातुमुद्यताः ॥२६
अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राक्षसास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचराः ॥२७
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम् ।
तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यकाः क्रूरकर्मिणः ॥२८

ये ही भविष्य में होने वाले देवों के असुरों के साथ, पितरों के और अतीत तथा अनागत मानवों के सबबों के मन्वन्तरों में निमित्त होते हैं ॥ २२ ॥ ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या ये चार आभासित हैं । जिस कारण से ये भा-युक्त होते हैं इसी से इनका 'भा" यह शब्द मनीषियों ने व्याप्ति और दीप्ति इन दोनों के कारण से कहा है और फिर प्रजापति ने भी कहा है ॥२३॥ उसने इन जलों को देखकर तथा देव, दानव, मानव और पितरों को देखकर उसने आत्मा से फिर अन्य देवों को सृजित किया ॥ २४ ॥ प्रभु ने उस अपने सम्पूर्ण शरीर को उत्कृत करके फिर अन्य शरीर का सृजन किया और फिर रजोगुण और तमोगुण की बहुलता वाले शरीर को अभियोजित किया था ॥ २५ ॥ उस अन्धकार में क्षुधा से आविष्ट होते हुए उसने फिर अन्य तनू का सृजन किया । उससे सृजित हुए क्षुधात्मा के अम्भों को लेने के लिये उद्यत हो गये थे ॥२६॥ हम इन जलों की रक्षा करते हैं इस प्रकार से कहे गये वे उनमें राक्षस कहलाये थे जोकि लोक में क्रोधात्मा निशाचर थे ॥२७॥ जिन्होंने उनमें परस्पर में परम प्रसन्न होते हुए यह कहा कि हम इन जलों को क्षीण करते हैं । इस कर्म से यक्ष और क्रूर कर्म करने वाले गुह्यक हुए ॥ २८ ॥

रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ।
य एष क्षितिधातुर्वै क्षयणे सन्निरुच्यते ॥२९
तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यंत धीमतः ।
शीतोष्णाच्चोच्छ्रिता ह्यूर्द्ध्वं तदारोहन्त तं प्रभुम् ॥३०
हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिताः ।
व्यालात्मानः स्मृता व्यालाद्धीनत्वादहयः स्मृताः ॥३१
पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिणः ।
तेषां पृथिव्यां निलयाः सूर्याचन्द्रमसोरधः ॥३२
तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भस्सुदारुणः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मिकान् ।।३३
सर्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशना ।।३४
भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात् ।
वयतो गास्ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे तदा ।।३५
ध्यायतीत्येष धातुर्वै यात्रार्थे परिपठ्यते ।
पिबतो जज्ञिरे गास्तु गंधर्वास्तेन ते स्मृताः ।।३६

यह धातु-रक्षण और पालन के अर्थ में विभावित होता है। जो यह क्षिति धातु है वह क्षयण में कही जाती है ।।२९।। अप्रिय उसने उनको देखा कि धीमान् उसके केश विशीर्ण हो गये थे और शीत और उष्णता से ऊर्द्ध की ओर उच्छ्रित होते हुए उस प्रभु का आरोहण किया ।। ३० ।। मेरे शिर से हीन व्याल अपसर्पित हो गये इससे व्याल कहे गये और व्याल से हीनता होने के कारण से अहि कहलाये गये हैं ।।३१।। पन्नत्व होने से ये पन्नग कहे गये और अपसर्पण करने वाले होने के कारण सर्प कहलाये गये हैं। उनका सूर्य और चन्द्रमा के अधोभाग में पृथिवी में निलय हैं ।।३२।। उसके क्रोध से उत्पन्न होने वाला जो यह अग्नि गर्भ है वह बहुत ही सुदारुण है और वह सर्पों के साथ उत्पन्न विषात्मकों में आविष्ट हो गया ।।३३।। इसके अनन्तर सर्पों को देखकर क्रोध से क्रोधात्माओं का निर्माण किया वे कपिश वर्ण से उग्र माँस को खाने वाले भूत हुए ।।३४।। भूतत्व होने से वे भूत कहे गये और पिशित (माँस) का अशन (भोजन) करने से पिशाच कहलाये गये हैं। वय से गा और उसके पश्चात् उस समय उसके गन्धर्व उत्पन्न हुये ।।३५।। "ध्यायति"–यह धातु यात्रा के अर्थ में परिपठित की जाती है। पीते हुए गा के उत्पन्न हुए थे इसलिये वे गन्धर्व कहे गये हैं ।।३६।।

अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ।
ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वय सोऽसृजत् ।।३७
छाद्यतस्तानि छन्दांसि वयसोऽपि वयांस्यपि ।
शून्यान् दृष्ट्वा तु देवो वैऽसृचत्पक्षिगणानपि ।।३८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुखतोऽजान् ससर्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् ।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ॥३९
पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातयः ॥४०
ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे ।
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभुः ॥४१
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ।
गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोधत ॥४२
श्वापदा द्विखुरोहस्ती वानरः पक्षिपञ्चमाः ।
उन्दकाः पशवः सृष्टाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥४३

इन आठ देव-योनियों की सृष्टि कर लेने पर उस प्रभु ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दता से वय से अन्य पशु-पक्षियों का सृजन किया ॥३७॥ छाद्य से उन छन्दों को वय से भी वयों को सृजा तथा देव ने शून्यों को देखकर पक्षियों के समुदाय का भी सृजन किया था ॥३८॥ मुख से अजों का उत्पन्न किया, वक्षः स्थल से वय का सृजन किया तथा ब्रह्माजी ने उदर से और पार्श्वों से गा का सृजन किया था ॥३९॥ पैरों से घोड़ों को, मातङ्गों को, शरभों को, गवयों को, मृगों को, उष्ट्रों को और अश्वतरों को तथा इनकी अन्य जाति वालों का निर्माण किया ॥४०॥ औषधियाँ, फल और मूल उसके रोम से उत्पन्न हुए। इस तरह से पशु-औषधियों का सृजन करके उस प्रभु ने अध्वर में नियोजन किया था ॥४१॥ इससे आदि में कल्प के त्रेतायुग में मुख गौ, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर और गर्दभ—इनको ग्राम्य पशु कहते हैं। अब आगे अरण्य पशुओं को समझ लो ॥४२॥ श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी पञ्चम, उन्दक, पशु और सप्तम सरीसृपों सृजन किया ॥४३॥

गायत्रं वरुणञ्चैव त्रिवृत्सौम्यं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥४४
छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म स्तोमं पञ्चदशन्तथा ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बृहत्साममथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ।।४५
सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं पञ्चदशन्तथा ।
वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ।।४६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ।।४७
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः ।।४८
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ।।४९
सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ।
ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ।।५०

गायत्र, वरुण, त्रिवृत्सौम्य, रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से निर्माण किया था। ब्रह्माजी के चार मुखों में जो प्रथम था उससे उक्त प्राणियों की उत्पत्ति की थी ॥ ४४ ॥ त्रैष्टुभ, कर्म, स्तोम, पञ्चदश, बृहत्साम उक्थछन्दों को दक्षिण मुख से सृजन किया था ।।४५।। साम, जगती छन्दोस्तोम, पञ्चदश, वैरूप्य, अतिरात्र को पश्चिम मुख से सृजा था ॥ ४६ ॥ एकविंश, अथर्वाण, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुभ और सवैराज को ब्रह्माजी ने अपने उत्तर के मुख से सृष्ट किया था ॥ ४७ ॥ विद्युत, अशनि (वज्र), मेघ, रोहित, इन्द्र धनुष और कल्प की अवस्था को भगवान् प्रभु ने आदि में सृजा था ॥ ४८ ॥ उच्चावच भूत उसके गात्रों अर्थात् शरीराङ्गों से उत्पन्न हुए जबकि प्रजापति ब्रह्माजी प्रजा के सर्ग का सृजन कार्य कर रहे थे ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर पहिले देव, असुर, पितर आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करके इसके पश्चात् भूत, स्थावर और चरों का सृजन करते हैं ।।५०।।

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ।।५१
अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु जङ्गमम् ।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥५२
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥५३
महाभूतेषु नानात्व मिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥५४
केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्म च मानवाः ।
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ॥५५
पौरुष कर्म दैवञ्च फलवृत्तिस्वभावतः ।
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ।
एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६
कर्मस्थान् विषयान् ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ।
नामरूपञ्च भूतानां कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥५७

यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओं का समुदाय, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थाणु और जङ्गम का सृजन किया । इनमें जिन्होने जो कर्म पहिले सृष्टि में प्राप्त किये थे वे पुनः-पुनः सृज्यमान होते हुए भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं ॥५१–५२। हिंसा की वृत्ति वाले तथा अहिंस्र, कोमल स्वभाव वाले तथा कठोर, धर्म और अधर्म, ऋत और अनृत आदि तत्तत् भावनाओं से भावित होकर यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं और इसीलिये वही उनको अच्छा भी लगता है ॥५३॥ महाभूतों में अनेक प्रकारता और इन्द्रियों के अर्थों की मूर्तियों में भूतों का विनियोग करना विधाता ने ही स्वयं किया था ॥५४। कुछ मनुष्य तो पुरुषार्थ को ही कर्म कहते हैं और दैव (भाग्य या प्रारब्ध) का चिन्तन करने वाले अर्थात् भाग्यवादी दूसरे ब्राह्मण दैव ही को कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ पौरुष कर्म और दैव इनके फल की वृत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है । न तो ये दोनों एक ही हैं न ये दोनों पृथक् ही होते हैं और न उन दोनों में कोई अधिक ही है । इस प्रकार से यह दोनों न एक ही हैं और न दो अलग-अलग ही होते हैं ॥५६॥ सत्त्व गुण में स्थित रहने वाले समान भाव से देखने वाले समदर्शी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुरुष कर्मों में स्थित रहने वाले विषयों को बोला करते हैं। महेश्वर उस भगवान् ने आदि में विनिर्मित भूतों के नाम और रूप का समस्त प्रपञ्च शब्दों से ही सृष्ट किये हैं ॥५७॥

ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु दृष्टयः ।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्ये वास्य दधाति सः ॥५८
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥५९
एवंविधासु सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ।
शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ॥६०
एवं भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।
यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः ॥६१
अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ।
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमाङ्गिरसन्तथा ॥६२
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम् ॥६३

ऋषियों के नामधेय अर्थात् नाम और देवों में जो दृष्टियाँ हैं वे सब रात्रि के अन्त में प्रसून होने वालों के वही उनकी करता है ॥५८॥ ऋतुओं के अनुसार जो ऋतुओं के चिह्न होते हैं और अनेक प्रकार के स्वरूप होते हैं जबकि उनका परिवर्तन हुआ करता है ये सब युगादिकों में उस तरह के भाव वे-वे ही दिखाई दिया करते हैं ॥५९॥ इस प्रकार से अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा इस रीति से की हुई सृष्टियों में रात्रि के अन्त में मानसी सिद्धि का आश्रय करके दिखलाई दिया करते हैं ॥ ६० ॥ इस तरह से ब्रह्माजी ने चर और स्थावर भूतों की सृष्टि की किन्तु इनकी वह सृजन की हुई समस्त प्रजा जब वृद्धि प्राप्त करती हुई नहीं हुई तो धीमान् ब्रह्मा ने अपनी ही आत्मा के सदृश अन्य मानस पुत्रों का सृजन किया था जिनके नाम भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, आङ्गिरस, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ ये होते हैं। ये सभी ब्रह्मवादी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और ब्रह्मात्मक अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप वाले ही थे जिनको कि पुराण में निश्चित रूप से 'नव-ब्रह्मा' ऐसा ही कहा गया है ॥६१–६२–६३॥

ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ।
संकल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजः ॥६४
अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम् ॥६५
सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनम् ।
न ते लोकेषु सर्ज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः ॥६६
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ।
तेष्वेवं निरपेक्ष्येषु लोकवृत्तानुकारणात् ॥६७
हिरण्यगर्भो भगवान् परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ।
तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्क्कसमद्युतिः ।
अर्द्धनारीनरवपुस्तेजसाज्वलनोपमः ॥६८
सर्वं तेजोमयं जातमादित्यसमतेजसम् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६९
एवमुक्त्वा द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक् ।
स चैकादशधा जज्ञे अर्द्धमात्मानमीश्वरः ॥७०

इसके उपरान्त पूर्व में होने वालों में भी सबसे पहिले जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा ने रोषात्म सम्भव रुद्र का सृजन किया और संकल्प तथा धर्म का सृजन किया था ॥६४॥ पहिले ब्रह्माजी ने अपने ही तुल्य मानस सनक के सहित सनन्दन परम विद्वान् सनातन और विभु सनत्कुमार का सृजन किया था किन्तु वे लोकों के सृजन कर्म में निरपेक्ष होने के कारण प्रवृत्त ही नहीं हुए थे ॥ ६५–६६ ॥ वे सबके सब ज्ञानोदय हो जाने वाले, वीतराग अर्थात् परम वैराग्य से परिपूर्ण रहने वाले और मत्सरता से रहित थे। इस प्रकार से लोक वृत्त के अनुकरण में बिल्कुल ही अपेक्षा न रखने वाले उनके होने पर ब्रह्माजी चिन्तित हुए ॥ ६७ ॥ उस समय लोक सृजन एवं बराबर उसके वर्धन के अपने कार्य में असफल रहते हुए हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ने मन में बहुत ही चिन्ता की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

थी । उस चिन्तन काल में उनके रोष से समुत्पन्न सूर्य के समान द्युति वाला, अर्धनारीश्वर पुरुष सामने हुआ जो इतना तेज युक्त था जैसे कि साक्षात् अग्नि ही हो ॥६८॥ वह आदित्य के समान तेज वाला समस्त तेज से पूर्ण उत्पन्न हुआ और अपने आपका विभाजन करो, यह कहकर वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गया ॥६९॥ इस प्रकार कहकर पुरुष और स्त्री पृथक्-पृथक् होकर दो रूपों में ईश्वर ने अपने आपके अर्ध भाग को एकादश प्रकार से जन्म दिया अर्थात् उत्पन्न किया था ॥७०॥

तेनोक्तास्ते महात्मानः सर्वं एव महात्मना ।
जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिणः ॥७१
लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिताः ।
विश्वं विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥७२
एवमुक्तास्तु रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः ।
रोदनाद्द्रावणच्चैव रुद्रा नाम्नेतिविश्रुताः ॥७३
यैर्हि व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तेषामनुचरा लोके सर्वलोकपरायणाः ॥७४
नैकनागा युतबला विक्रान्ताश्च गणेश्वराः ।
तत्र या सा महाभागा शंकरस्यार्द्धकायिनी ॥७५
प्रागुक्ता तु मया तुभ्यं स्त्री स्वयंभोर्मुखोद्गता ।
कायार्द्धं दक्षिणन्तस्याः शुक्लं वामं तथाऽसितम् ॥७६
आत्मानं विभजस्वेति सोक्ता देवी स्वयंभुवा ।
सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥७७

उन महान् आत्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे सभी महात्मा जोकि हित के चाहने वाले थे, जगत् की बहुलता को करने की भावना में अधिकार वाले हुए ॥ ७१ ॥ आप सब अतन्द्रित होते हुए लोक के वृत्तान्त के लिये पूर्ण प्रयत्न करो अर्थात् विश्व की रचना करने में आलस्य का त्याग कर पूरा-पूरा यत्न करो । लोक की स्थापना और विश्व का हित करना ही तुम्हारा पूर्ण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर्त्तव्य है ॥ ७२ ॥ जब ब्रह्माजी ने लोक की रचना एवं स्थापना तथा विश्व के हित के कार्यों की निर्मिति के लिये उनसे कहा तो वे सब ओर से रुदन करने लगे और एकदम द्रवीभूत हो गये । अतएव रोदन करने से तथा उनके द्रावण होने से उनका नाम संसार में "रुद्र"—यह प्रसिद्ध हो गया था ॥७३॥ जिनके द्वारा यह समस्त चर और अचर स्वरूप वाला त्रैलोक्य व्याप्त हो गया था वे भगवान् रुद्र थे । उनके अनुचर लोक में समस्त लोक कार्यों में परायण हुए ॥ ७४ ॥ वे गणेश्वर अनेक नागों के बल के तुल्य बल वाले और परम विक्रम से युक्त थे । और वहाँ पर भगवान् शङ्कर के अर्ध शरीर वाली जो वह परम महान् भाग वाली थी ॥७५॥ पहिले मैंने तुमको स्वयम्भू के मुख से उत्पन्न हुई स्त्री के विषय में बतलाया था । उसका दक्षिण काया का अर्ध भाग शुक्ल तथा वाम अध भाग असित या ॥ ७६ ॥ हे द्विज वृन्द ! आत्मा का विभाजन करो इस प्रकार से भगवान् स्वयम्भू के द्वारा कही गई वह शुक्ल और कृष्ण दो प्रकार की हो गई थी । अब उनके नाम मैं बतलाता हूँ उन्हें तुम लोग सावधान होकर श्रवण करो ॥ ७७ ॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला ॥७८
उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः ।
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ॥७९
विश्वरूपमथार्यायाः पृथग्देहविभावनात् ।
शृणु संक्षेपतस्तस्या यथावदनुपूर्वशः ॥८०
प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ।
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ॥८१

द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु ।
गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती ॥८२
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला ।
बर्हिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ॥८३
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ॥८४
एकानसा दैत्यहनी माया महिषमर्द्दिनी ।
अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका ॥८५
देवीनामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ।
भद्रकाल्यास्तवोक्तानि देव्या नामानि तत्त्वतः ॥८६

उनके नाम—स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा एकपर्णा, पाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा हैं जो लोक में 'गौरी'–इस नाम से विश्रुत हुई हैं ॥७८–७९॥ अब इस आर्या का जो विश्व रूप है जिसका पृथक् देह की विभावना से प्राकट्य हुआ है, उसका पूरा हाल यहाँ आनुपूर्वी के अनुसार संक्षेप में श्रवण करो ॥८०॥ प्रकृति, नियता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती भूतनायिका ये उसके नाम होते हैं ॥८१॥ अब द्वापर के अन्त तक विकारों में जो उसके नाम हैं उनका श्रवण करो—गौतमी, कौशिका, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्ण पिङ्गला, बर्हिर्ध्वजा, शूलधरा, परम ब्रह्मचारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी, वृषकन्या, एक वाससी, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, एकानसा, दैत्यहनी, माया, महिषमर्दनी, अमोघा, विन्ध्य निलया, विक्रान्ता, गण नायिका ये देवियों के क्रम के अनुसार विकार रहित नाम हैं। तुमको भद्रकाली के नामों को तत्व रूप से बतला दिया गया है ॥८२–८३–८४–८५–८६॥

ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न पराभवः ।
अरण्ये प्रान्तरे वापि पुरे वापि गृहेऽपि वा ॥८७
रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जले वापि स्थलेऽपि वा ।
व्याघ्रकुम्भीरचौरेभ्यो भूतस्थाने विशेषतः ।
आधिष्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्त्तयेत् ॥८८
अर्भकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिः सदा ।
अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥८९
महादेवी कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।।९०
साऽसृजद् व्यवसायन्तु धर्मं भूतसुखावहम् ।
सङ्कल्पञ्चैव कल्पादौ जज्ञिरेऽव्यक्तयोनितः ।।९१

जो पुरुष उन नामों का पाठ करते हैं उनका अरण्य में, प्रान्तर में, पुर में तथा घर में भी कहीं भी कभी कोई पराभव नहीं होता है ।।८७।। यह सर्वत्र रक्षाकारक है और जल में अथवा स्थल में भी इससे रक्षा होती है । व्याघ्र, कुम्भीर और चोरों से विशेष रूप से भूतस्थान में तथा समस्त आधियों में देवी के शुभ नामों का कीर्तन करना चाहिए ।।८८।। अर्भक ग्रह और भूतों से तथा सर्वदा पूतना मातृकाओं से जो बालक अभ्यर्दित होते हैं अर्थात् सताये हुए होते हैं, उनकी इस देवी की नामावली से रक्षा करनी चाहिए ।।८९।। महादेवी के कुल में प्रज्ञा और श्री ये दोनों प्रकीर्तित होती हैं । इन दोनों से देवी के सहस्र नाम होते हैं जिनसे यह समस्त जगत् व्याप्त हो रहा है ।।९०।। उस देवी ने व्यवसाय का सृजन किया तथा सबको सुख प्रदान करने वाले धर्म और सङ्कल्प को कल्प के आदि में अव्यक्त योनि से उत्पन्न किया ।।९१।।

मानसश्च रुचिर्नाम विज्ञेयो ब्रह्मणः सुतः ।
प्राणात् स्वादसृजद्दक्षञ्चक्षुर्भ्याञ्च मरीचिकम् ।।९२
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलजन्मनः ।
शिरसोऽङ्गिरसञ्चैव श्रोत्रादत्रिन्तथैव च ।।९३
पुलस्त्यञ्च तथोदानाव्द्यानाच्च पुलहं पुनः ।
समानजं वसिष्ठन्तु अपा नान्निर्ममे क्रतुम् ।।९४
अभिमानात्मकं भद्रं निर्ममे नीललोहितम् ।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः प्राणजा द्वादश स्मृताः ।।९५
इत्येते मानसाः पुत्रा विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ।
भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न चैते ब्रह्मवादिनः ।।९६
गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः प्राक् प्रवर्त्तितः ।
द्वादशैते प्रवर्त्तन्ते सह रुद्रेण वै प्रजाः ।।९७
ऋभुः सनत्कुमारस्तु द्वावेतावूर्द्धरेतसौ ।
पूर्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ ।।९८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मा का मानस पुत्र रुचि–इस नाम वाला जानना चाहिए। अपने प्राण से ब्रह्मा ने दक्ष को उत्पन्न किया और चक्षुओं से मरीचि को जन्म दिया था। ॥९२॥ भृगु हृदय से उत्पन्न हुए अर्थात् सलिल से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के हृदय से भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। शिर से अङ्गिरस की तथा श्रोत्र से अत्रि ऋषि का जन्म हुआ था ॥९३॥ उदान से पुलस्त्य को, व्यान से पुलह को, समान से वसिष्ठ को, अपान से क्रतु को और अभिमान के स्वरूप वाले नील लोहित भद्र को निर्मित किया था। ये बारह प्राण से जन्म लेने वाले ब्रह्मा के पुत्र कहलाये थे ॥९५॥ ये ब्रह्मा के पुत्र मानस जानने चाहिए और जो भृगु आदि का सृजन किया था वे ब्रह्मवादी नहीं थे ॥९६॥ वे सब पुराण गृहमेधी अर्थात् पुराने गृहस्थ थे जिन्होंने प्रथम धर्म को प्रवृत्त किया था। ये बारह रुद्र के साथ प्रजा के सृजन में प्रवृत्त होते हैं ॥९७॥ ऋभु और सनत्कुमार ये दोनों ऊर्द्ध्वरेता थे। ये उनसे पहिले प्राचीन समय में उत्पन्न हुए थे और ये दोनों सभी के पूर्वज थे ॥९८॥

व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणे लोकसाधकौ।
वैराजे तावुभौ लोके तेजः संक्षिप्य चास्थितौ ॥९९
तावुभौ योगधर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि।
प्रजाधर्मञ्च कामञ्च वर्त्तयेतां महौजसा ॥१००
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते।
तस्मात्सनत्कुमारोयमिति नामास्य कीर्तितम् ॥१०१
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥१०२
इत्येष करणोद्भूतो लोकान् स्रष्टुं स्वयंभुवः।
महदादिविशेषान्तो विकारः प्रकृतेः स्वयम् ॥१०३
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः।
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृतः ॥१०४
पुरैश्च विविधाकारैः प्रीतैर्ज्जनपदैस्तथा।
तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्वरीम् ॥१०५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैराज नामक प्रथम कल्प के व्यतीत होने पर लोकों के साधक वे दोनों लोक में तेज का संक्षेप करके आस्थित रहे थे ॥ ९९ ॥ योग के धर्म वाले वे दोनों आत्मा में आत्मा को आरोप करके महान् ओज से प्रजा धर्म और काम को बरतते थे ॥ १०० ॥ ज्यों ही यहाँ उत्पन्न हुये वैसे ही कुमार यह कहे जाते हैं। इसी कारण से यह सनत्कुमार हैं—इस प्रकार से इनका नाम कीर्त्तित हुआ है ॥ १०१ ॥ उनके वे देव गुणों से युक्त दिव्य द्वादश वंश हुए जो महर्षियों से अलङ्कृत क्रिया वाले और प्रजा वाले थे ॥ १०२ ॥ यह करण से उद्भूत स्वयम्भू के लोकों का सृजन करने के लिये महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक स्वयं प्रकृति का विकार है ॥ १०३ ॥ चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा के आलोक (प्रकाश) वाला, ग्रहों और नक्षत्रों से विभूषित तथा नदियों, समुद्रों और पर्वतों से समावृत—अनेक प्रकार के आकार वाले, पुरों से एवं प्रीतियुक्त जनपदों से आवृत ऐसे उस अव्यक्त ब्रह्म-वन में ब्रह्मा शर्वरी (रात्रि) को बिताते हैं ॥१०४–१०५ ॥

अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥१०६

महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवांस्तथा ।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥१०७

आजीवः सर्वभूतानामयं वृक्षः सनातनः ।
एतद्ब्रह्मबलं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥१०८

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मणः प्राकृतस्तु यः ॥१०९

मुख्यादयस्तु षट् सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
त्रैकाले समवर्तन्त ब्रह्मणस्तेऽभिमानिनः ॥११०

सर्गाः परस्परस्याथ कारणं ते बुधैः स्मृताः ।
दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ ।
एकस्तु यो द्रुमं वेत्तिनान्यः सर्वात्मनस्ततः ॥१११

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्यौर्मूर्द्धानं यस्य विप्राःस्तुवन्ति खन्नाभि वै चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः,
सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूत प्रसूतिः ॥११२

वक्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूताः यद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे ।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः,
सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ॥११३

महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ।
अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोकाः कृतास्त्विमे ॥११४

उसी के अनुग्रह से उत्थित हुआ—अव्यक्त बीज से प्रभव (जन्म) वाला, बुद्धि के स्कन्ध से परिपूर्ण, इन्द्रियों के अंकुर कोटर वाला, महाभूतों की प्रशाखाओं वाला, विशेषों के से पत्रों वाला, धर्म तथा अधर्म रूपी पुष्पों से अन्वित, सुख और दुःख रूपी फलों के उदय वाला और समस्त प्राणियों की आजीविका वाला यह सनातन वृक्ष है। उस ब्रह्म वृक्ष का यह ब्रह्म ही बल होता है ॥ १०६—१०७—१०८ ॥ जो अव्यक्त कारण है वह नित्य और सत् तथा असत् स्वरूप वाला होता है। जो प्राकृतिक सर्ग है वह ब्रह्मा का अनुग्रह है ॥ १०९ ॥ मुख्य आदि छै सर्ग वैकृत और बुद्धिपूर्वक होते हैं। वे अभिमान वाले ब्रह्मा के त्रैकाल में होते थे ॥ ११० ॥ विद्वानों ने उन सर्गों को ही परस्पर के कारण कहा है। सुन्दर पर्ण वाले, सयुज और शाखाओं से युक्त दिव्य पद विद्रुम हैं। जो एक द्रुम का ज्ञान रखता है वह सर्वात्मा से अन्य नहीं है ॥ १११ ॥ जिसके द्यौ रूपी मूर्धा का ब्राह्मण स्तवन किया करते हैं, आकाश जिसकी नाभि है और चन्द्रमा तथा सूर्य दो नेत्र है, दिशा श्रोत्र हैं और भूमि उसके चरण हैं, वह समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाला अचिन्त्य आत्मा है ॥ ११२ ॥ जिसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए, वक्षःस्थल से क्षत्रिय, उरुओं के पूर्व भाग से वैश्य और जिसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सभी वर्ण उसके शरीर से ही उद्भूत हुए हैं ॥ ११३ ॥ अव्यक्त से पर महेश्वर हैं और अव्यक्त से उत्पन्न अण्ड है, अण्ड से फिर ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया जिस ब्रह्मा ने ये सभी लोक बनाये हैं ॥ ११४ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

।। मन्वन्तरादि वर्णन ।।

एवंभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा।
यदा ता न प्रवर्त्तन्ते प्रजाः केनापि हेतुना ।।१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दुःखितः।
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।।२
अथात्मनि समस्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्।
राजसत्वं पराजित्य वर्त्तमानं स धर्मतः ।।३
तप्यते तेन दुःखेन शोकश्चक्रे जगत्पतिः।
तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत् ।।४
ततमः प्रतिनुत्तं वै मिथुनं स व्यजायत।
अधर्माचरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ।।५
ततस्तस्मिन् समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि।
ततश्च भगवानासीत् प्रीतिश्चैवमशिश्रियत् ।।६
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहदभास्वराम्।
द्विधाकरोत्स तं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।।७
अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत।
प्राकृतां भूतधात्रीं तां कामान्वै सृष्टवान् विभुः ।।८

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से होने वाले लोकों में जब लोकों की रचना करने वाले ब्रह्मा के द्वारा किसी भी हेतु से वह प्रजा प्रवृत्त न हुई तब तमोमात्र से आवृत्त ब्रह्मा जी तभी से लेकर अत्यन्त दुःखित हुये। इसके अनन्तर उन्होंने अर्थ के निश्चय करने वाली बुद्धि बनाई ।। १—२ ।। इसके अनन्तर उनने धर्म से वर्त्तमान राजसत्व को पराजित करके तमोमात्रा की नियामक बुद्धि का आत्मा में सृजन किया था ।। ३ ।। उस दुःख से वह तथ्यमान होते हैं और जगत्पति ने बड़ा शोक किया था। उससे तम का विनोदन किया और रजोगुण ने तमोगुण आवृत कर लिया था ।। ४ ।। प्रतिनुत्त हुए उस तम से मिथुन की उत्पत्ति हुई। अधर्म के चरण से हिंसा शोक से उत्पन्न हुई ।। ५ ।। इसके पश्चात् चरणात्मा मिथुन के समुत्पन्न होने पर इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हुए

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और इस प्रकार से सेवन किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा ने अपने उस अभास्वर शरीर का अपोह कर दिया और उसने उस देह के दो भाग कर दिए। आधे भाग से वह पुरुष हुए और आधे शरीर के भाग से उसकी नारी शतरूपा उत्पन्न हुई। विभु ने भूतों की प्राकृत धात्री उसको प्राप्तकर कामनाओं की सृष्टि की थी ॥ ७—८ ॥

सा दिवं पृथिवीञ्चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता ।
ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति ॥९
या त्वर्द्धात् सृजते नारी शतरूपा व्यजायत ।
सा देवी नियुतन्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥१०
भर्तारन्दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ।
स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥११
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ।
लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१२
तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते ।
प्रथम संप्रयोगः स कल्पादौ समवर्त्तत ॥१३
विराजमसृजत ब्रह्मा सोऽभवत् पुरुषो विराट् ।
सम्राण्मानसरूपात्तु वै राजस्तु मनुः स्मृतः ॥१४

वह अपनी महिमा से दिव और पृथिवी में व्याप्त होकर अधिष्ठित हुई। ब्रह्मा का वह पूर्व तनू दिव को आवृत करके अधिष्ठित होता है ॥ ९ ॥ जिस शरीर ने अपने अर्धभाग से नारी का सृजन किया और शतरूपा समुत्पन्न हुई। उस देवी ने दश हजार वर्ष पर्यन्त परम दुश्चार तप किया था ॥ १० ॥ ऐसी उग्र तपश्चर्या करके उसने दीप्त यश वाले अपना स्वामी पुरुष प्राप्त किया था और वह पुरुष प्रथम स्वायम्भुव मनु इस नाम से कहा जाता है ॥ ११ ॥ यहाँ पर उसका एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगपर्यन्त मन्वन्तर कहा जाता है। पुरुष ने अयोनिजा अर्थात् योनि उत्पन्न न होने वाली शतरूपा को पत्नी के रूप में प्राप्त किया ॥ १२ ॥ वह उसके साथ रमण करते हैं इसीलिये वह रति कही जाती है। कल्प के आदि में वह प्रथम साम्प्रयोग हुआ ॥ १३ ॥ ब्रह्मा जी ने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विराट् का सृजन किया सो वह पुरुष विराट् हो गया था। मानस रूप से सम्राट् वैराज मनु कहा गया है ॥ १४ ॥

स वैराजः प्रजासर्गः स सर्गे पुरुषो मनुः ।
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥१५
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाताः प्रजास्त्विमाः ॥१६
देवी नाम्ना तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे ।
स्वायम्भुवः प्रसूतिन्तु दक्षाय व्यसृजत् प्रभुः ॥१७
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः सङ्कल्पो मनुरुच्यते ।
रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूर्ति प्रत्यपादयत् ॥१८
आकूत्यां मिथुनं यज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ सम्बभूवतुः ॥१९
यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२०
यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृताः ।
अजिताश्चैव शूकाश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणः स्मृतौ ॥२१

वह वैराज प्रजासर्ग है और वह सर्ग में पुरुष मनु है। वीर वैराज पुरुष से शतरूपा उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ पुत्रवानों में परम श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तान-पाद दो पुत्र और दो महान् भाग्यशालिनी कन्याऐं हुईं जिन दोनों से ये समस्त प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ नाम से वे देवी आकूति और प्रसूति थीं जो कि अत्यन्त शुभ थीं। स्वायम्भुव प्रभु ने प्रसूति को दक्ष के लिये दान करके दिया था ॥ १७ ॥ प्राण को दक्ष समझ लेना चाहिये और सङ्कल्प मनु कहा जाता है। प्रजापति रुचि के लिए आकूति को दे दिया ॥ १८ ॥ आकूति में मानस के यज्ञ में शुभ मिथुन हुआ। यज्ञ और दक्षिणा यह यमल (जोड़ली सन्तति) पैदा हुआ ॥ १९ ॥ यज्ञ के दक्षिणा में बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे स्वायम्भुव के अन्तर में 'यामा' इस नाम से आख्यात हुए थे ॥ २० ॥ यम के पुत्र थे इससे यज्ञ के याम कहे गये हैं। अजित और शूक ये दो गण ब्राह्मण कहे गये हैं ॥२१॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यामा पूर्वं परिक्रान्ता यतः संज्ञा दिवौकसः ।
स्वायम्भुवसुतायान्तु प्रसूत्यां लोकमातरः ॥२२
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभुः ।
सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः ॥२३

योगपत्न्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः ।
श्रद्धा लक्ष्मी धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ॥२४
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ।
द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयम्भुवा ॥२५

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।
ख्यातिः सत्पथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥२६
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ।
तास्ततः प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः ॥२७
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च ॥२८

याम पहिले परिक्रान्त हुए इसलिए दिवौकस संज्ञा हुई। स्वायम्भुव सुता प्रसूति में दक्ष ने लोकमातर चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया था। वे सभी महान् भाग वाली और सभी कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली परम सुन्दरी थीं ॥ २२—२३ ॥ वे सभी योग पत्नियाँ थीं और सब योगमाताऐं थीं। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु शान्ति, सिद्धि, कीर्त्ति इन तेरहों को दाक्षायणी प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया था। इसके ये द्वार स्वयम्भू ने किए थे ॥ २४—२५ ॥ उनसे शेष यवीयान की एकादश सुलोचनाऐं थीं जिसके नाम ये हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा ये ग्यारह हैं। उनको फिर अन्य महर्षियों ने ग्रहण किया था। उन महर्षियों के नाम ये हैं—रुद्र, भृगु, मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर और अग्नि ये महर्षियों के नाम थे ॥ २६–२७–२८ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिञ्च भृगवे तथा ।
मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमाङ्गिरसे ददौ ।।२९
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ।
क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयान्तथात्रये ।।३०
ऊर्ज्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यग्नये ददौ ।
स्वधा चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि वक्ष्यते ।।३१
ऐते सर्वे महाभागाः प्रज्ञाः स्वानुष्ठिताः स्थिताः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम् ।।३२
श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ।
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते ।।३३
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा ।
क्रियायास्तु नयः प्रोक्तो दण्डः समय एव च ।।३४
बुद्धेर्बोधसुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ ।
लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वपुः सुतः ।।३५

दक्ष ने सती को महादेव के लिये दिया, भृगु को ख्याति, मरीचि को सम्भूति और अङ्गिरस के लिये स्मृति नाम वाली कन्या का दान किया था ।। २९ ।। पुलस्त्य को प्रीति, पुलह को क्षमा, क्रतु को सन्नति तथा अत्रि के लिये अनसूया नाम वाली कन्या का दान दक्ष ने दिया था ।। ३० ।। वसिष्ठ को ऊर्जा, अग्नि को स्वाहा और पितृगण को स्वधा दी । अब उनमें जो सन्तति समुत्पन्न हुई उसे बतलाया जाता है ।। ३१ ।। ये सब महान् भाग्य से युक्त, परम पण्डित और अपने कर्त्तव्य कर्म में निष्ठित होकर स्थित रहे जब तक कि समस्त मन्वन्तरों में आभूत संप्लव हुआ था ।। ३२ ।। श्रद्धा ने काम को समुत्पन्न किया और लक्ष्मी का पुत्र 'दर्प' इस नाम से कहा जाने वाला पैदा हुआ । धृति का पुत्र नियम था और तुष्टि ने सन्तोष नामक पुत्र को जन्म दिया था ।। ३३ ।। पुष्टि से लाभ नामक पुत्र का प्रसव हुआ तथा मेधी का पुत्र श्रुत हुआ था । क्रिया के पुत्र का नाम 'नय' था और दण्ड एवं समय भी उसी के पुत्र हुए थे ।। ३४ ।। बुद्धि के बोध और अप्रमाद ये दो पुत्र पैदा हुए थे एक लज्जा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के विनय नामक पुत्र प्रसूत हुआ तथा व्यवसाय काम वाला पुत्र वपु का हुआ था ॥ ३५ ॥

क्षेमः शान्तिसुनश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत ।
यशः कीर्त्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः ॥३६
कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्या रत्या व्यजायत ।
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्त्तित ॥३७
जज्ञे हिंसात्वधर्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ ।
निकृत्यानृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च ॥३८
माया च वेदाना चापि मिथुनद्वयमेतयोः ।
भयाज्जज्ञेऽथ सा माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥३९
वेदनायास्ततश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिज्वरा शोकाः क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ।
दुःखान्तरा स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ॥४०
तेषां भार्याऽस्ति पुत्रो वा ते सर्वे निधनाः स्मृता ।
इत्येव तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ॥४१
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ।
सोऽभिध्याय सतीं भार्यान्निर्ममे ह्यात्मसम्भवाम् ॥४२

शान्ति के क्षेम और सिद्धि का सुख पुत्र हुआ। कीर्त्ति का यश हुआ इतने वे धर्म पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ काम का हर्ष नामक पुत्र देवी रति से उत्पन्न हुआ। यह धर्म का सुखोदर्क अर्थात् सुखप्रदान करने वाला सर्ग हुआ जो कि बताया गया है ॥ ३७ ॥ हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत ये दो पुत्र उत्पन्न किये थे। निकृति और अनृत के भय तथा नरक समुत्पन्न हुए ॥३८॥ इन दोनों के माया और वेदना इनका जोड़ा पैदा हुआ जो भय से जन्म-ग्रहण किया था। उस माया ने समस्त भूतों के अपहरण करने वाली मृत्यु को जन्म दिया था ॥ ३९ ॥ वेदना ने रौरव से दुःख को जन्म दिया था। मृत्यु ने व्याधि, ज्वर, शोक और असूया ने क्रोध को उत्पन्न किया ये सब दुःखान्तर अधर्म के लक्षण वाले हुए हैं ॥ ४० ॥ उनकी भार्या अथवा पुत्र वे सभी निधन कहे गये

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं। यह इतना तामस सर्ग था जो धर्म का नियामक हुआ है ॥ ४१ ॥ 'प्रजा का सृजन करो—इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा नीललोहित जब आदेश प्राप्त करने वाला हुआ तो उसने आत्मा से सम्भूत होने वाली सती का अभिध्यान करके उसे अपनी भार्या बनाया था ॥ ४२ ॥

नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान् ।
सहस्रं हि सहस्राणामसृजत् कृमिवाससा ।
तुल्यांश्चैवात्मनः सर्वे रूपतेजोबलश्रुतैः ॥४३
पिङ्गलान् सन्निषङ्गांश्च सकपर्द्दान् विलोहितान् ।
विवासान् हरि केशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः ॥४४
बहुरूपान् विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः ।
रथिनो वर्मिणश्चैव धर्मिणश्च वरूथिनः ॥४५
सहस्रशत बाहूश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान् ।
स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रानुद्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ॥४६
अन्नादान् पिशितादांश्च आज्यपान् सोमपांस्तथा ।
मेदपांश्चातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यवः ॥४७
सोपासङ्गतलत्रांश्च धन्विनो ह्य पवर्मिणः ।
आसीनान् धावतश्चैव जृम्भिनश्चैव धिष्ठितान् ॥४८
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतोऽध्यायतस्तथा ।
ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान् प्रधूपितान् ॥४९

तब कृमिवासा ने न ज्यादा अधिक और न ज्यादा हीन ऐसे अपने ही समान मानस पुत्र जो सहस्रों के सहस्र थे उत्पन्न किये जो कि रूप, तेज और बल से सब अपनी आत्मा के ही बिल्कुल तुल्य थे ॥ ४३ ॥ अब यहाँ उनके ही रूप, गुण तथा आकारादि का वर्णन किया जाता है कि ये किस प्रकार के थे—पिङ्गल, सन्निषङ्ग, सकपर्द, विलोहित, नित्रास, हरिकेश, दृष्टिघ्न और कपाली थे ॥ ४४ ॥ फिर वे विरूप, बहुरूप, विश्वरूप, रूपी, रथी, वर्मी, धर्मी और वरूथ वाले थे जिनको कि उत्पन्न किया था ॥ ४५ ॥ सहस्र शत बाहु वाले, दिव्य, भूमि और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, स्थूल शीर्ष वाले,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आठ दाढ़ों वाले, दो जिह्वाओं वाले और तीन नेत्रों वाले थे ॥ ४६ ॥ अन्नाद अर्थात् अन्न को भक्षण करने वाले, पिशिताद अर्थात् मांसाशी, घृत पीने वाले, सोम का पान करने वाले, मेदय, अतिकाया वाले, शिति कण्ठ और अत्यन्त उग्र क्रोध वालों का सृजन किया ॥ ४७ ॥ सोपासङ्ग तलत्रों को, धन्वियों को, उपवर्मियों को, आसीनों को, दौड़ते हुओं को, जँभाई लेने वालों को और अधिष्ठितों को उत्पन्न किया था ॥ ४८ ॥ अध्यापन करने वाले, जपते हुए, योग करते हुए, अध्ययन करते हुए, ज्वलित होते हुए, वर्षते हुए, द्योतमान तथा प्रधूपितों का सृजन किया ॥ ४९ ॥

बुद्धान् बुद्धतमांश्चैव ब्रह्मिष्ठान् शुभदर्शनान् ।
नीलग्रीवान् सहस्राक्षान् सर्वांश्चाथ क्षपाचरान् ॥५०
अदृश्यान् सर्वभूतानां महायोगान् महौजसः ।
रुद्रतो द्रवतश्चैव एवंयुक्तान् सहस्रशः ।
अपातयामान सृजत् रुद्ररूपान् सुरोत्तमान् ॥५१
ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेतान्मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ।
सृष्ट्या नात्मनस्तुल्याः प्रजा नैवाधिकास्त्वया ।
अन्याः सृज त्वं भद्रन्ते स्थितोहन्त्वं सृज प्रजाः ॥५२
एते ये वं मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः ।
सहस्राणां सहस्रन्तु आत्मनोपमनिश्चिताः ॥५३
एते देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महाबलाः ।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्रनाम्ना प्रतिश्रुताः ॥५४
शतरुद्रसमाम्नाता भविष्यन्तीह यज्ञियाः ।
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वे देवयुगैः सह ॥५५
मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीह च्छन्दजाः ।
तैः सार्द्धमीज्यमानास्ते स्थास्यन्तीह युगक्षयात् ॥५६

बुद्धों का, बुद्धतमों का, ब्रह्मिष्ठों का और शुभ दर्शन वालों का, नीली ग्रीवा वालों का, सहस्र नेत्रों वालों का, समस्त निशाचरों का सृजन किया ॥५०॥ जो किसी को दृश्यमान नहीं होते थे ऐसे अदृश्य, महान् योग वाले, महान्

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ओज वाले, रुदन करते हुए तथा द्रवित होते हुए, आपातयाम, रुद्र के रूप वाले और सुरोत्तम इस प्रकार के युक्त सहस्रों का सृजन किया ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा जी ने जब इस तरह की प्रजा की सृष्टि को देखा तो कहा ऐसी प्रजा का सृजन मत करो। तुम को अपनी प्रजा अपने ही समान सृजित करनी चाहिये, न अधिक हो और न तुमसे हीन होवे। अब तुम अन्य प्रजा का सृजन करो, तुम्हारा कल्याण होगा, मैं यहाँ पर स्थित हूँ, तुम प्रजा का सृजन करो ॥ ५२ ॥ ये सब जो मैंने उत्पन्न किये हैं जो कि विरूप और नीललोहित हैं और सहस्रों के सहस्र हैं वे अपनी आत्मा के समान ही मिश्रित रूप से हैं ॥ ५३ ॥ ये सब महान् बल वाले रुद्र देवता होंगे जो कि पृथिवी में और अन्तरिक्ष में रुद्र के नाम से प्रसिद्ध होंगे ॥ ५४ ॥ शत रुद्र कहे गये हैं जो यहाँ यज्ञिय होंगे। वे सब देवताओं के साथ यज्ञों के भागों को ग्रहण करने वाले होगे ॥ ५५ ॥ मन्वन्तरों में जो छन्दिज देवता यहाँ होंगे उनके साथ ईज्यमान वे यहाँ युग के क्षय होने तक स्थित रहेंगे ॥ ५६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता।
प्रत्युवाच तदा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः ॥५७
एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं प्रभो।
ब्रह्मणा समनुज्ञा ते सदा सर्वमभूत् किल ॥५८
ततःप्रभृति देवेशो न प्रासूयत वै प्रजाः।
ऊर्द्धरेताः स्थिताः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्।
यस्माच्चोक्तं स्थितोऽस्मीति ततः स्थाणुरिति स्मृतः ॥५९
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च।
अथ यानि दशैतानि नित्यन्तिष्ठन्ति शङ्करे ॥६०
सर्वान् देवान् ऋषींश्चैव समेतानसुरैः सह।
अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥६१
अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्।
ज्ञानेन च मुनीन् सर्वान् योगाद्भूतानि सर्वशः ॥६२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

योगं तपश्च सत्यञ्च धर्मञ्चापि महामुने ।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥६३
येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वरं प्रभो ६४

उस समय पर धीमान महादेव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये ब्रह्माजी ने उत्तर दिया और प्रजापति हर्षित होते हुए भीम से बोले – इस प्रकार से आपका कल्याण हो—हे प्रभो ! जैसा भी आपने कहा है । ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होने पर सदा सब ठीक हुआ ॥ ५ —५८ ॥ तब से लेकर फिर देवों के स्वामी ने आगे प्रजा का सृजन नहीं किया था । जब तक आभूत संप्लव अर्थात् महाप्रलय नहीं हुआ तब तक ऊर्द्ध्वरेता होकर स्थाणु के रूप में स्थित हो गये । मैं स्थित हूँ यह कहने के कारण से ही स्थाणु इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ॥५६॥ ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, घृति, सृष्टत्व, आत्म सम्बोध, अधिष्ठातृत्व ये दश शङ्कर में नित्य ही विद्यमान रहा करते हैं ॥ ६० ॥ समस्त देवता ऋषिवृन्द और उनके अनुचर इन सबको अपने तेज से ये अतिक्रान्त कर देते हैं अतएव यह महादेव कहलाये गये हैं ॥ ६१ ॥ ऐश्वर्य से देवों का तथा बल से महान् असुरों का, ज्ञान से समस्त मुनिगण का एवं योग से सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सब ओर से अतिक्रमण महादेव शम्भु कर दिया करते हैं । ६२ ॥ ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! महेश्वर भगवान का योग, तप, सत्य, धर्म तथा ज्ञान का साधन हमारे सामने वर्णन कीजिये, हम उसे श्रवण करना चाहते हैं ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! जिस-जिस धर्म से द्विज गति को प्राप्त किया करते हैं वह सभी माहेश्वर योग को सुनना चाहते हैं ॥ ६४ ॥

पञ्च धर्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः ।
माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ॥६५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्याञ्चैव सर्वशः ।
मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ॥६६
यमशुक्रपुरोगैश्च पितृकालान्तकैस्तथा ।
एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते धर्माः पर्युपासिताः ॥६७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ते वै प्रक्षीणकर्माणः शारदाम्बरनिर्मलाः ।
उपासते मुनिगणाः सन्धायात्मानमात्मनि ॥६८
गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः ।
विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ॥६९
महेश्वरेण ये प्रोक्ताः पञ्च धर्मा सनातनाः ।
तान् सर्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्नि बोधत ॥७०

वायुदेव ने कहा—पुराण में रुद्र ने पाँच धर्म बतलाये हैं। अक्लिष्ट कर्म करने वाले रुद्रों ने जिस प्रकार से माहेश्वर्य ज्ञान को बतलाया है उन समस्त धर्मों की जिन्होंने उपासना की है वह मैं बतलाता हूँ ॥ ६५ ॥ आदित्य, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, भृगु और जो अन्य देवगण हैं उन्होंने तथा यम, शुक्र जिन के पुरोगामी हैं उनके द्वारा तथा पितृ कालान्तक इन सबके द्वारा एवं अन्य बहुतों के द्वारा वे समस्त धर्म उपासित किये गये हैं ॥ ६६–६७ ॥ प्रक्षीण कर्म वाले और शरत्काल के अम्बर के सदृश निर्मल चित्त वाले वे मुनियों के समूह सन्ध्या में आत्मा में आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ६८ ॥ अपने गुरु के प्रिय और हित के कार्य में सदा युक्त रहने वाले और गुरु के प्रिय की इच्छा रखने वाले मनुष्य का जन्म त्याग कर देवताओं की तरह विहार किया करते हैं ॥ ६९ ॥ भगवान महेश्वर ने जो सनातन पाँच धर्म बतलाये हैं उन सबको क्रम के योग से मैं कहता हूँ मेरे द्वारा कहे जाने वाले उन सबको आप लोग भली-भाँति समझ लो ॥ ७० ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्माः प्रकीर्त्तिताः ॥७१
तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा ।
प्रवक्ष्यामि तथा तत्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ॥७२
प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ।
स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७३
प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः ।
प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृताः ॥७४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृताः ।
मध्यमश्च द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ।।७५
उत्तमस्तत्रिरुद्धातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते ।
स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः ।।७६
इत्येतत् त्रिविधं प्रोक्तं प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ।।७७

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पाँच बातें इस योग में धर्म के नाम से कही गयी हैं ।। ७१ ।। उन पाँचों का क्रम विशेष से लक्षण, कारण तथा तत्व जैसा कि भगवान रुद्र ने कहा है उसे मैं बताता हूँ ।। ७२ ।। प्राणायाम की गति भी प्राण का आयाम कहा जाता है और वह भी तीन प्रकार का होता है । एक मन्द होता है, दूसरा मध्यम और तृतीय उत्तम होता है ।। ७३ ।। प्राणों का निरोध जो किया जाता है वही प्राणायाम इस सञ्ज्ञा वाला होता है । प्राणायाम का प्रमाण द्वादश मात्रा बताई गई हैं ।।७४।। मन्द संज्ञक प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला ही होता है । इसमें द्वादश उद्धात मात्रा बताई गई है । प्राणायाम का दूसरा मध्यम नाम वाला जो भेद है उसमें दो बार उद्धाता होता है और चौबीस मात्राएं हो जाती हैं । तीसरे उत्तम नामक भेद में तीन बार उद्धात होकर छत्तीस मात्राऐं होती हैं । स्वेद, कम्प और विषाद का जनन करने वाला उत्तम कहा गया है ।। ७५—७६ ।। ये तीन प्रकार वाला प्राणायाम का लक्षण बताया गया है । संक्षेप में इसका प्रमाण और लक्षण समझ लो ।। ७७ ।।

सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथाऽन्यो वा मृगो वने ।
गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः समुपजायते ।।७८
तथा प्राणो दुराधर्षः सर्वेषामकृतात्मनाम् ।
योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत् ।।७९
स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वापि दुर्बलः ।
कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्द्दनात् ।।८०
परिधाम मनो मन्दं वश्यत्वं चाधिगच्छति ।
परिधाय मनोदेवं तथा जीवति मारुतः ।।८१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वश्यत्वं हि तथा वायुर्गच्छते योगमास्थितः ।
तदा स्वच्छन्दतः प्राणं नयते यत्र चेच्छति ॥८२

यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ।
अभयाय मनुष्याणां मृगेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥८३

यथा परिचितश्चायं वायुर्वै विश्वतो मुखः ।
परिध्यायमानः संरुद्धः शरीरे किल्विषं दहत् ॥८४

सिंह हो अथवा हाथी हो तथा वन में अन्य कोई मृग हो, उसे ग्रहण कर लिया जावे और सेव्यमान बनाया जावे तो वह मृदु हो जाता है अर्थात् उस हिंस्र पशु की नैसर्गिक क्रूरता का ह्रास होकर उसमें कोमल भाव आ जाता है ॥७८॥ इसी भाँति अकृतात्मा समस्त मानवों का प्राण बहुत ही दुराधर्ष होता है अर्थात् आत्म-बल से हीन मनुष्यों का प्राण धर्षण के अयोग्य होता है। यदि योग के अभ्यास से वही प्राण सेव्यमान होकर वहीं जाता है ॥ ७९ ॥ जिस प्रकार कोई दुर्बल शेर या हाथी कालान्तर में योग के वश से परिमर्दन होने से गम्य होता है उसी भाँति प्राण भी होता है ।८०॥ मन मन्द को परिधान करके वश्यत्व को प्राप्त होता है। मारुत मनोदेव का परिधान करके जीवित रहता है ॥८१॥ योग में आस्थित होता हुआ वायु जिस प्रकार से वश्यत्व को प्राप्त होता है उसी तरह उस समय वह जहाँ भी चाहता है वहीं स्वच्छन्दता के साथ प्राण को ले जाता है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार से सिंह अथवा हाथी वश्यत्व हो जाने से अवस्थित हो जाता है और मनुष्यों को पशुओं से भय रहित कर देता है ॥ ८३ ॥ उसी तरह यह विश्वतोमुख वायु अर्थात् सभी ओर सर्वत्र गमनशील वायु परिचित होता हुआ परिध्यायमान होकर जब संरुद्ध होता है तो वह शरीर में जो किल्विष होता है उसका दाह कर दिया करता है ॥ ८४ ॥

प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ।
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्वस्थश्चैव जायते ॥८५

तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ।
सर्वयज्ञफलश्चैव प्राणायामश्च तत्समः ॥८६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अबिन्दुं यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामञ्च तत्समम् ।।८७
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।८८
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ।।८९

प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं और फिर वह केवल सत्वगुण में ही स्थित रहा करता है ।। ८५ ।। जो भी तपस्यायें तपी जाती हैं, व्रत लिये जाते हैं और नियम ग्रहण किये जाते हैं तथा समस्त यज्ञों के करने का जो भी कुछ फल होता है वह सब प्राणायाम के समान होता है ।। ८६ ।। जो कोई मास-मास में कुशा के अग्रभाग से जल के बिन्दु को ग्रहण करता है और सौ वर्ष तक करता रहता है यह सब प्राणायाम के तुल्य ही होता है ।। ८७ ।। प्राणायामों के द्वारा मनुष्य अपने समस्त दोषों को दग्ध कर दिया करता है, धारणाओं के द्वारा किल्विष का नाश कर देता है, प्रत्याहार से विषयों का संहार कर देता है और ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों का क्षय करता है ।। ८८ ।। इसलिये योगी को सर्वदा युक्त होकर प्राणायाम में परायण होना चाहिये । वह फिर समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है ।। ८९ ।।

।। पाशुपत-योग ।।

एकं महान्तं दिवसमहोरात्रमथापि वा ।
अर्द्धमासं तथा मासमयनाब्दयुनानि च ।।१
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः ।
उपासते महात्मानः प्राणं दिव्येन चक्षुषा ।।२
अतऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् ।
फलञ्चैव विशेषेण यथाह भगवान् प्रभुः ।।३
प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ।
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ।।४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घोराकारशिवानान्तु कर्मणां फलसम्भवम् ।
स्वयंकृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ॥५
पितृमातृ प्रदुष्टानां ज्ञातिसम्बन्धिसङ्करैः ।
क्षपणं हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते ॥६
लोभमानात्मकानां हि पापानामपि संयमः ।
इहामुत्र हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ॥७

श्री वायु ने कहा—एक महान् दिन अथवा एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन और पूरी रात्रि, अर्धमास अर्थात् पन्द्रह दिन, मास, अयन, अब्द अर्थात् वर्ष, युग और सहस्रों महायुग तक महान् आत्मा वाले ऋषिगण तपश्चर्या में स्थित होते हुये दिव्य चक्षु के द्वारा प्राणायाम की उपासना किया करते हैं ॥ १–२ ॥ इससे आगे प्राणायाम का प्रयोजन बतलाया जाता है और जैसा कि भगवान प्रभु ने कहा है उसका विशेष रूप से फल भी बतलाते हैं ॥ ३ ॥ प्राणायाम के चार प्रयोजन जान लो—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और चौथा प्रसाद—ये प्रयोजन-चतुष्टय होता है ॥ ४ ॥ देहधारियों के घोर आकार वाले तथा शिव कर्मों की फल की उत्पत्ति स्वयंकृत इस लोक में अथवा परलोक में कुछ काल में होती है ॥ ५ ॥ पिता माता के द्वारा प्रकृष्ट रूप से दुष्ट एवं ज्ञाति-सम्बन्धी सङ्करों से दोषयुक्त कषाय पापों का क्षयण शान्ति कही जाती है ॥ ६ ॥ लोभ और मान-स्वरूप वाले पापों का संयम इस लोक में और परलोक में हित के लिये जो तप होता है "प्रशान्ति" कही जाती है ॥ ७ ॥

सूर्येन्दुग्रहताराणां तुल्यस्तु विषयो भवेत् ।
ऋषीणाञ्च प्रसिद्धानां ज्ञानविज्ञानसम्पदाम् ॥८
अतीतानागतानाञ्च दर्शनं साम्प्रतस्य च ।
बुद्धस्य समतां यान्ति दीप्तिः स्यात्तप उच्यते ॥९
इन्द्रियाणीन्द्रितार्थांश्च मनः पंच च मारुतान् ।
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति संज्ञितः ॥१०
इत्येष धर्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः ।
सन्निकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकाल प्रसादजः ॥११

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् ।
आसनं च यथातत्वं युञ्जतो योगमेव च ॥१२
ओङ्कारं प्रथमं कृत्वा चन्द्रसूर्यौ प्रणम्य च ।
आसनं स्वस्तिकं कृत्वा पद्ममर्द्धासनन्तथा ॥१३
समजानुरेकजानुरुत्तानः सुस्थितोऽपि च ।
समो दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ॥१४

सूर्य, चन्द्र, ग्रह और ताराओं के तुल्य विषय होता है। ज्ञान और विज्ञान की सम्पत्ति स्वरूप प्रसिद्ध ऋषियों के तथा जो पहिले हो चुके हैं उनके एवं भविष्य में होने वालों के और बोध से युक्त इस समय में होने वाले के दर्शन समानता को प्राप्त होते हैं और वह दीप्ति होती है, यह तप कहा जाता है ॥ ८–९ ॥ इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् विषय, मन और पाँच मारुतों को जिससे प्रसाद होता है इसलिये यह प्रसाद इस संज्ञा से युक्त हुआ है ॥१०॥ यह प्रथम धर्म है और प्राणायाम चार प्रकार का होता है। सद्यः काल में प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सन्नकृष्ट फल वाला जानना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके आगे प्राणायाम का लक्षण बताते हैं और योग को ही करने वाले के यथातथ्य आसन को भी बताया जाता है ॥ १२ ॥ सर्व प्रथम ओङ्कार का उच्चारण करे फिर चन्द्र और सूर्य देव को प्रणाम करे इसके पश्चात् स्वस्तिक आसन करे तथा पद्म या अर्धासन करे ॥ १३ ॥ समान जानुओं वाला, एक जानु, उत्तान और सुस्थित, सम और दृढ़ आसन वाला होकर दोनों चरणों को संहृत करे ॥१४॥

संवृतास्योऽवबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ छाद्य तथा प्रजननं ततः ॥१५
किञ्चिदुन्नामितशिराः शिरो ग्रीवां तथैव च ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१६
तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन च्छादयेत् ।
ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा योगं युञ्जन् समाहितः ॥१७
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पञ्च स मारुतान् ।
विगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥१८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः।
तथात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१९
पूरयित्वा शरीरन्तु स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः।
आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥२०
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च।
तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ॥२१

अपने मुख को बन्द करके—आँखों को बन्द करके और उरःस्थल को आगे की ओर निकालकर—पार्ष्णियों से वृषणों को तथा जननेन्द्रिय को छादित करे ॥१५॥ कुछ ऊँचा सिर करने वाला सिर और ग्रीवा (गरदन) को ऊँचे की ओर करे और अपनी नासिका के अग्र भाग को देखे तथा इधर-उधर किसी भी ओर दिशाओं में नहीं देखे ॥१६॥ रजोगुण से तमोगुण का प्रच्छादन करे और फिर सत्त्व के द्वारा रजोगुण का छादन करना चाहिए। इसके अनन्तर सत्त्वगुण में स्थित होकर बहुत समाहित भाव से योग का अभ्यास करे ॥१७॥ इन्द्रियों को और समस्त इन्द्रियों के अर्थों को—मन को तथा पाँच मारुतों को समवाय से विगृहीत करके प्रत्याहार करने का उपक्रम करना चाहिए ॥१८॥ जो कूर्म के द्वारा अपने अङ्गों की भाँति सभी ओर से अपनी कामनाओं का प्रत्याहरण करता है और आत्मरति वाला होता हुआ एकस्थ अर्थात् एकाग्र होकर अपने में ही आत्मा को देखता है ॥१९॥ बाहर और भीतर से शुचि होकर शरीर को पूरित करे और आकण्ठ नाभि के योग से प्रत्याहार का उपक्रम करना चाहिए ॥२०॥ एक कला मात्र निमेष और उन्मेष जानना चाहिए फिर द्वादश मात्रा वाला प्राणायाम किया जाता है ॥२१॥

धारणा द्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम्।
तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते।
वीक्षते परमात्मानं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२२
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः।
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥२३
एवं वै नियताहारः प्राणायामपरायणः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनिः ॥२४
अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून् ।
विवर्द्धयति सम्मोहं न रोहेदजितां ततः ॥२५
नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणैव बलान्वितः ।
आपिवेत प्रयत्नेन तथा वायुञ्जितश्रमः ॥२६
नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने ।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्द्धनि ॥२७
किञ्चिदूर्द्ध्वं परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।
प्राणापानसमारोधात् प्राणायामः स कथ्यते ॥२८

द्वादशायाम धारणा होती है और दो धारणाओं का योग होता है और उस प्रकार से योग से युक्त होकर ऐश्वर्य को प्राप्त हो जाता है फिर अपने तेज से दीप्यमान परमात्मा को देख लेता है ॥२२॥ प्राणायाम से युक्त नियत आत्मा वाले विप्र के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं और फिर वह केवल सत्त्व में ही स्थित रहने वाला होता है ॥२३॥ इस प्रकार से नियत आहार वाला और सर्वदा प्राणायाम करने तत्पर रहने वाला सदा मुनि जीत-जीत कर भूमि का आरोहण करे ॥२४॥ न जीती हुई महाभूमि बहुत-से दोषों को उत्पन्न कर देती है और सम्मोह को बढ़ा देती है इसलिये अजिता का कभी आरोहण नहीं करना चाहिए ॥२५॥ नाल यन्त्र से बल से आन्वित होता हुआ जिस प्रकार से जल को पीता है उसी प्रकार से प्रयत्न से वायु को श्रम से जीते ॥२६॥ नाभि में, हृदय में, कण्ठ में, उरस्थल में, मुख में, नासा के अग्रभाग में, नेत्र में, भ्रूओं के मध्य में और मूर्धा में कुछ ऊर्ध्व में और पर में धारणा परम कही गई है। प्राण और अपान के समारोध करने से वह प्राणायाम कहा जाता है ॥२७-२८॥

मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ।
निवृत्ति विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु संज्ञितः ॥२९
सर्वेषां समवाये तु सिद्धिः स्याद्योगलक्षणा ।
तयोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं वै सिद्धिलक्षणम् ।
ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मानं सूर्यचन्द्रवत् ॥३०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनन्तु न विद्यते ।
अदेशकालयोगस्य दर्शनन्तु न विद्यते ॥३१
अग्न्यभ्याशे वने वापि शुष्कपर्णचये तथा ।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥३२
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसंचये ।
उदपाने तथा नद्यान्न बाधातः कदाचन ॥३३
क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो न च व्याकुलचेतनः ।
युञ्जीत परमं ध्यानं योगी ध्यानपरः सदा ॥३४
एतान् दोषान् विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै ।
तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारकाः ॥३५

मन की धारणा ही धारणा इस नाम से कीर्त्तित हुई है । विषयों की निवृत्ति प्रत्याहार इस संज्ञा से युक्त हुआ है ॥२९॥ प्राणायामादि समस्तों के समवाय में ही योग के लक्षण वाली सिद्धि होती है । उससे उत्पन्न योग का ध्यान सिद्धि का लक्षण है । ध्यान से युक्त सदा आत्मा को सूर्यचन्द्र की भाँति देखता है ॥३०॥ सत्त्व की उपपत्ति न होने पर दर्शन नहीं होता है । देश और काल के योग से रहित को दर्शन नहीं होता है ॥३१॥ अग्नि के समीप में—वन में—शुष्क पत्तों के ढेर में—जन्तुओं से व्याप्त स्थान में—श्मशान में—पुराने टूटे-फूटे गोष्ठ में—चतुष्पथ में—शब्दों से अर्थात् कोलाहल पूर्ण स्थान में—भय से पूर्ण प्रदेश में—चैत्य और बल्मीकों के संचय वाली स्थान में—उदपान में—अन्नादि बाधा से युक्त—क्षुधा से आविष्ट—अप्रसन्न और व्याकुल चित्त वाला पुरुष सदा ध्यान में परायण योगी परम ध्यान कभी न करे । तात्पर्य यह है कि ऐसी परिस्थिति में ध्यानादि कभी नहीं करना चाहिए ॥३२-३३-३४॥ इन उक्त दोषों का विशेष रूप से निश्चय करके प्रमाद से जो योग का अभ्यास करता है उसके दोष प्रकुपित हो जाते हैं और शरीर में विघ्नों के करने वाले हो जाते हैं ॥३५॥

जडत्वं बधिरत्वं च मूकत्वं चाधिगच्छति ।
अन्धत्वं स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ॥३६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्यो युनक्ति वै ।
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन योगी युञ्जेत्समाहितः ॥३७
अप्रमत्तः सदा चैव न दोषान् प्राप्नुयात् क्वचित् ।
तेषां चिकित्सां वक्ष्यामि दोषाणां च यथाक्रमम् ।
यथा गच्छन्ति ते दोषाः प्राणायामसमुत्थिताः ॥३८
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ।
एतेन क्रमयोगेन वातगुल्मं प्रशाम्यति ॥३६
गुदावर्त्तप्रतीकारमिदं कुर्य्याच्चिकित्सितम् ।
भुक्त्वा दधियवागूर्वा वायुरूर्द्धं ततो व्रजेत् ॥४०
वायुग्रंथि ततो भित्त्वा वायुदेशे प्रयोजयेत् ।
तथापि न विशेषः स्याद्धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ॥४१
युञ्जानस्य तनुं तस्य सत्त्वस्थस्यैव देहिनः ।
गुदावर्त्तप्रतीघाते एतत् कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥४२

समय–स्थिति–देश आदि की कुछ भी परवाह न करके जो योग का अभ्यास किया करते हैं उनको जड़ता–बहरापन–मूकता हो जाते हैं । अन्धापन—स्मृति का लुप्त हो जाना—बुढ़ापा और रोग आदि हो जाते हैं ॥३६॥ उस व्यक्ति के दोष प्रकुपित हो जाया करते हैं जो अज्ञान से योग का अभ्यास किया करते हैं । इसलिये शुद्ध ज्ञान से योगी को पूर्णतया समाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ॥३७॥ जो अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद से रहित होता है वह सर्वदा ही दोषों को प्राप्त नहीं किया करता है । उन दोषों की क्रम के अनुसार चिकित्सा बतलाते हैं जिससे कि प्राणायाम से उत्पन्न हुए दोष चले जाया करते हैं ॥३८॥ स्निग्ध अर्थात् घृत के स्नेह वाली अत्यन्त उष्ण यवागू को खाकर वहाँ अवधारण करना चाहिए । इस क्रम के योग से वात गुल्म प्रशान्त हो जाता है ॥३६॥ गुदावर्त्त का प्रतीकार चिकित्सा को करते हुए यही करे कि दही अथवा यवागू खाकर रहे इससे वायु ऊर्ध्व को चली जाती है ॥४०॥ वायु की ग्रन्थि का भेदन कर उसे वायु के देश में प्रयोजित करना चाहिए । तो भी विशेष न हो तो धारणा को मूर्धा में धारण करे ॥४१॥ जो युञ्जान व्यक्ति है

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसकी स्थिति सत्त्व में होती है उस देही के गुदावर्त्त के प्रतिघात में यह चिकित्सा करनी चाहिए ॥४२।

सर्वगात्रप्रकम्पेन समारब्धस्य योगिनः ।
इमां चिकित्सां कुर्व्वीत तया संपद्यते सुखी ॥४३
मनसा यद्व्रतं किञ्चिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत् ।
उरोद्घाते उरःस्थानं कण्ठदेशे च धारयेत् ॥४४
त्वचोऽवघाते तां वाचि बाधिर्ये श्रोत्र योस्तथा ।
जिह्वास्थाने तृषार्त्तस्तु अग्रे स्नेहांश्च तन्तुभिः ।
फलं वै चिन्तयेद्योगी ततः संपद्यते सुखी ॥४५
क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्विकीम् ।
यस्मिन् यस्मिन् रजोदेशे तस्मिन् युक्तो विनिर्द्दिशेत् ॥४६
योगोत्पन्नस्य विप्रस्य इदं कुर्याच्चिकित्सितम् ।
वंशकीलेन मूर्द्धानं धारयाणस्य ताडयेत् ।
मूर्ध्नि कील प्रतिष्ठाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥४७
भयभीयस्य सा संज्ञा ततः प्रत्यागमिष्यति ।
अथ वा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्यां तत्र धारयेत् ॥४८
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
स्निग्धमल्पं च भुञ्जीत ततः संपद्यते सुखी ॥४९

शरीर के समस्त अङ्गों के प्रकम्प होने से समारब्ध योगी की इस चिकित्सा को करे उससे वह सुखी हो जाता है ॥४३॥ जो कोई भी व्रत हो उसे मन से विष्टम्भी कृत बनाकर धारण करना चाहिए अर्थात् मन में पूर्ण दृढ़ता करके ही धारण करे । उर के उद्घात होने पर उरःस्थान को कण्ठ देश में धारण करना चाहिए ॥४४॥ त्वक् का अवघात हो जाने पर उसको वाणी में धारण करे, श्रोत्रों के वधिरत्त्व में उसी प्रकार करे । तृषा से आर्त्त को जिह्वा के स्थान में आगे तन्तुओं से स्नेहों को धारण करे । योगी को फल का चिन्तन करना चाहिए इससे वह सुख वाला होता है ॥४५॥ क्षय में—कुष्ठ में और सकीलास में सब सात्त्विकी को धारण करे । जिस-जिस में रजोदेश में युक्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होते हुए उसका विनिर्देश करना चाहिए ॥४६॥ योगोत्पन्न विप्र की यह चिकित्सा करे कि बाँस की कील को मूर्धा में धारण करते हुए ताड़ित करना चाहिए। मूर्धा में कील प्रतिष्ठित करके काष्ठ को काष्ठ से ताड़न करे ॥४७॥ भयभीत की तब वह संज्ञा आ जायगी। अथवा लुप्त संज्ञा वाले की हाथों से वहाँ धारण करे ॥४८॥ फिर संज्ञा को प्राप्त कर धारणा को मूर्धा में धारण करे। थोड़ा स्निग्ध पदार्थ खाना चाहिए तब वह सुखी हो जाता है ॥४६॥

अमानुषेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित्।
दिवं च पृथिवीञ्चैव वायुमग्निं च धारयेत् ॥५०
प्राणायामेन तत्सर्वं दह्यमानं वशीभवेत्।
अथापि प्रविशेद्देहं ततस्तं प्रतिषेधयेत् ॥५१
ततः संस्तभ्य योगेन धारयानस्य मूर्द्धनि।
प्राणायामाग्निना दग्धं तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥५२
कृष्णसर्पापराधं तु धारयेद्धृदयोदरे।
महर्जनस्तपः सत्यं हृदि कृत्वा तु धारयेत् ॥५३
विषस्य तु फलं पीत्वा विशल्यां धारयेत्ततः।
सर्वतः सनगां पृथ्वीं कृत्वा मनसि धारयेत् ॥५४
हृदि कृत्वा समुद्रांश्च तथा सर्वाश्च देवताः।
सहस्रेण घटानाञ्च युक्तः स्नायीत योगवित् ॥५५

जिस समय योग का वेत्ता अमानुष सत्त्व से जागृत हो जाता है और दिव तथा पृथिवी को—वायु को और अग्नि को धारण करे ॥५०॥ प्राणायाम से यह सब दह्यमान होकर वशीभूत हो जाते हैं और भी देह में प्रवेश करे तो उसका प्रतिषेध कर देना चाहिए ॥५१॥ इसके अनन्तर योग से स्तम्भित कर मूर्धा में धारण करने वाले के प्राणायाम की अग्नि से दग्ध हुआ वह सब विलीन हो जाता है ॥५२॥ कृष्ण सर्प के अपराध को हृदय के उदर में धारण करे और महः—जन—तप और सत्य को हृदय में करके धारण करना चाहिए ॥५३॥ विष के फल को पीकर फिर विशल्या को धारण करे। सब ओर से पृथ्वी को नगों से युक्त करके मन में धारण करे। हृदय में समस्त समुद्रों को तथा संपूर्ण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देवों को करके योग के ज्ञाता पुरुष को एक सहस्र घटों से स्नान करना चाहिए ॥५४-५५॥

उदके कण्ठमात्रे तु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
प्रतिस्रोतोविषाविष्टो धारयेत् सर्वगात्रिकीम् ॥५६
शीर्णोऽर्कपत्रपुटकैः पिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ।
चिकित्सितविधिह्येष विश्रुतो योगनिर्मितः ॥५७
व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ।
ब्रुवतो लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत् क्वचित् ॥५८
अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते ।
तस्मात् प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥५९
सत्त्वं तथारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे ॥६०
आत्मानं पृथिवीञ्चैव ज्वलन्तीं यदि पश्यति ।
कृत्वान्यं विशते चैव विद्यात् सिद्धिमुपस्थिताम् ॥६१

कण्ठ मात्र जल में धारणा को मूर्धा में धारण करे । प्रति स्रोत के विष से आविष्ट होता हुआ सर्वगात्रिकी को धारण करना चाहिए ॥५६॥ शीर्ण होता हुआ आक के पत्तों के दोनों से वल्मीक की मृत्तिका को पीना चाहिए यह योग में निर्मित चिकित्सा की विधि बतलाई गई है ॥५७॥ योग में दृष्ट हेतु से इसकी संक्षेप में व्याख्या भी कर दी गई है । बोलने वाले से इसका लक्षण जानलो । किसी भी योग्य विप्र को इसे कह देना चाहिए ॥५८॥ और भी मोह के कारण यदि कहेगा तो वह विज्ञान प्रलीन हो जायगा । अतएव योग की प्रवृत्ति को किसी भी प्रकार से कहना नहीं चाहिए ॥५९॥ यह शरीर में प्रथम योग की प्रवृत्ति है । इसमें सत्त्वगुण की पूर्ण वृद्धि होती है—आरोग्य, अलोलुपता, वर्ण की कान्ति, सुन्दर स्वर और सौम्यता, अच्छा गन्ध और अल्प मूत्र तथा मल ये सब इसमें हो जाते हैं ॥६०॥ यदि अपने आपको और जलती हुई पृथिवी को देखे तो अन्य को करके प्रवेश करे और सिद्धि को उपस्थित होने वाली समझ लेना चाहिए ॥६१॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

।। योगमार्ग के विघ्न ।।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा ।
प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः ।।१
मानुष्यान् विविधान् कामान् कामयेत ऋतु स्त्रियः ।
विद्यादानफलञ्चैव उपसृष्टस्तु योगवित् ।।२
अग्निहोत्रं हविर्यज्ञमेतत प्रायतनं तथा ।
मायाकर्म धनं स्वर्गमुपसृष्टस्तु कांक्षति ।।३
एष कर्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागतः ।
उपसृष्टन्तु जानीयाद्बुद्ध्या चैव विसर्जयेत् ।
नित्यं ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात् प्रमुच्यते ।।४
जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ।
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः ।।५
प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम् ।
भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः । ६
विद्या काव्यं तथा शिल्पं सर्वं वाचाननृतानि तु ।
विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रभावस्यैव लक्षणम् ।।७

श्री सूतजी ने कहा—अब इसके आगे जैसे-तैसे उपसर्गों को बतलाते हैं। तत्त्व को देख लेने वाले देहधारी को जो दोष प्रादुर्भूत हो जाते हैं ।।१।। मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के कामों की और स्त्री की ऋतु की कामना करनी चाहिए और उपसृष्ट और योग का वेत्ता पुरुष विद्या दान के फल की इच्छा करे ।।२।। जो उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त होता है वह पुरुष अग्निहोत्र, हवि, यज्ञ तथा यह प्रायतन, माया कर्म धर्म और स्वर्ग की इच्छा करता है ।।३।। कर्मों में युक्त यह अविद्या के वश में आया हुआ होकर किया करता है उसे उपसृष्ट अर्थात् उपसर्ग से युक्त ही जान लेना चाहिए और बुद्धि से इन सब का त्याग कर देना चाहिए। जो नित्य ही ब्रह्म परायण युक्त होता है वह उपसर्ग से प्रमुक्त हो जाता है ।।४।। प्रत्युपसर्ग को जीत लेने वाले और श्वास को जीत लेने वाले देही को उपसर्ग प्रवृत्त हुआ करते हैं और वे सत्त्व से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युक्त, राजस तथा तामस होते हैं ॥५॥ प्रतिभा के श्रवण में और देवों के दर्शन तथा भ्रमावर्त्त इतने ये सिद्धि के लक्षण की संज्ञा वाले कहे गये हैं ॥६॥ विद्या, काव्य, शिल्प और सर्व वाचावृत तथा विद्या के अर्थ में ये सब उपस्थित होते हैं और यह सब प्रभाव का ही लक्षण कहा जाता है ॥७॥

शृणोति शब्दान् श्रोतव्यान् योजनानां शतादपि ।
सर्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत् ॥८
यक्षराक्षसगन्धर्वान् वीक्षते दिव्यमानुषान् ।
वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम् ॥९
देवदा नवगन्धर्वान् ऋषींश्चापि तथा पितॄन् ।
प्रेक्षते सर्वतश्चैव उन्मत्तां तं विनिर्दिशेत् ॥१०
भ्रमेण भ्राम्यते योगी चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
भ्रमेण भ्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञानं सर्वं प्रणश्यति ॥११
वार्त्ता नाशयते चित्तं चोद्यमानोऽन्तरात्मना ।
वर्त्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्वं ज्ञानं प्रणश्यति ॥१२
आवृत्य मनसा शुक्लं पटं वा कम्बलं तथा ।
ततस्तु परमं ब्रह्म क्षिप्रमेवानुचिन्तयेत् ॥१३
तस्माच्चैवात्मनो दोषांस्तूपसर्गानुपस्थितान् ।
परित्यजेत मेधावी यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥१४॥

एकसौ योजन सेभी सुनने के योग्य शब्दों को सुनलेता है, सब कुछ का ज्ञाता तथा विधियों का जानने वाला योगी एक उन्मत्त की भाँति हो जाता है ॥८॥ यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों को तथा दिव्य मनुष्यों को वह देखता है और महान् योग वाला उनको जानता है, यह सब उपसर्ग का ही लक्षण होता है ॥९॥ देव, दानव, गन्धर्वों को ऋषियों, को तथा पितृगणों को सब ओर वह देखा करता है। उसे एक उन्माद से युक्त उन्मत्त व्यक्तिनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥१०॥ अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होता हुआ योगी भ्रम से भ्राम्यमाषा होता है और जो भ्रम से भ्रान्त बुद्धि वाला हो जाता है उसका सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जाया करता है ॥११॥ अन्तरात्मा के द्वारा प्रेरित होने वाला वार्त्ता का नाश कर देता है

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और जो वर्त्तन से आक्रान्त बुद्धि वाला होता है उसका समस्त ज्ञान स्पृष्ट रूप से नष्ट हो जाता है ।।१२।। उस स्थिति में मन से शुक्ल वस्त्र या कम्बल से आवृत होकर इसके अनन्तर शीघ्र ही ब्रह्म का अनुचिन्तन करना चाहिए ।।१३।। उस से ही आत्मा के दोषों को तथा उक्तप्रकार के उपस्थित उपसर्गों को मेधा वाले पुरुष को परित्याग कर देना चाहिए यदि वह अपनी आत्मा की सिद्धि की इच्छा करता है। तो योगको सिद्धि के लिये ऐसे त्याग करने की परमावश्यकता होती है ।।१४।।

ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुराः ।
उपसर्गेषु सयुक्ता आवर्त्तन्ते पुनः पुनः ।।१५
तस्माद्युक्तः सदा योगी लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ।
तथा सुप्तः सुसूक्ष्मेषु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।।१६
ततस्तु योगयुक्तस्य जितनिद्रस्य योगिनः ।
उपसर्गाः पुनश्चान्ते जायन्ते प्राणसंज्ञकाः ।।१७
पृथिवीं धारयेत्सर्वां तमश्चापो ह्यनन्तरम् ।
ततोऽग्निश्चैव सर्वेषामाकाशं मन एव च ।।१८
ततः परां पुनर्बुद्धिं धारयेद्यत्नतो यती ।
सिद्धीनाञ्चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत् ।।१९
पृथ्वीं धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्तते ।
अपो धारयमाणस्य आपः सूक्ष्मा भवन्ति हि ।
शीता रसाः प्रवर्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसन्निभाः ।।२०
तेजो धारयमाणस्य तेजः सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ।
आत्मानं मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति ।।२१

ऋषिगण, देवता, गन्धर्व, यक्ष, उरग और महान् असुर गण ये सब उपसर्ग से संयुक्त होकर बार-बार आवर्तित हुआ करते हैं ।।१५।। इसलिये जो युक्त योगी होता है उसे सर्वदा अल्प और हलका आहार करने वाला, इन्द्रियों को जीत लेने वाला होना चाहिए तथा सुसूक्ष्मों में सुप्त रहने वाला होकर उसे मूर्धा में धारणा को धारण करना चाहिए ।।१६।। इस प्रकार से रहने वाले निद्रा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का जीत लेने वाले योग से युक्त योगी को अन्त में फिर वे उससर्ग प्राणसंज्ञा वाले हो जाया करते हैं ।।१७।। समस्त पृथिवी को धारण करे इसके अनन्तर जलों को, फिर अग्नि को और सबके बाद आकाश को धारण करे ।।१८।। इसके अनन्तर यती को मनसे भी परा बुद्धि को यत्न पूर्वक धारण करनी चाहिए। और इस बीच में जो भी सिद्धियों के चिह्न उपस्थित हों उन्हें देख,देख कर त्याग देना चाहिए ।।१९।। पृथ्वी को धारण करने वाले के लिये यह मही अति सूक्ष्म प्रवृत्त होती है। जलों को धारण करने वाले के लिये जल सूक्ष्म हो जाते हैं और समस्त रस शीत तथा अमृत के तुल्य प्रवर्तमान हुआ करते हैं ।।२०।। जब तेज को धारण किया जाता है तो वह तेज भी सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा को तेज मानता है और तेज तद्भाव का ही अनुदर्शन किया करता है ।।२१।।

आत्मानं मन्यते वायुं वायुवन्मण्डलं प्रभो।
आकाशं धारयाणस्य व्योम सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ।।२२
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं घोषश्चास्य प्रवर्त्तते ।
आत्मानं मन्यते नित्यं वायुः सूक्ष्मः प्रवर्त्तते ।।२३
तथा मनो धारयतो मनः सूक्ष्मं प्रवर्त्तते।
मनसा सर्वभूतानां मनस्तु विशते हि सः।
बुद्ध्या बुद्धिं यदा युञ्जेत्तदा विज्ञाय बुद्ध्यते ।।२४।।
एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित् ।
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परमं व्रजेत् ।।२५।।
यस्मिन् यस्मिंश्च संयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे।
तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति ।।२६।।
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्मणि संसक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो बुद्धया स परं प्राप्नुयाद्द्विजः ।।२७
दृश्यन्ते हि महात्मान ऋषयो दिव्यचक्षुषः।
संसक्ताः सूक्ष्मभावेषु ते दोषास्तेषु संज्ञिताः ।।२८

हे प्रभो ! आत्मा को वायु मानता है और समस्त मण्डल को वायु की भाँति देखता है। आकाश को धारयमाण का व्योम सूक्ष्म हो जाता है ।।२२।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह मण्डल को सूक्ष्म देखता है और इसका घोष प्रवृत्त होता है । जो आत्मा को वायु मानता है उसको वायु सूक्ष्म होकर प्रवर्त्तमान हुआ करता है ॥२३॥ उसी प्रकार से मन को धारण करने वाले का मन सूक्ष्म होता हुआ प्रवर्त्तमान होता है । मन से समस्त प्राणियों के मन में वह प्रवेश कर जाता है । जब बुद्धि से बुद्धि को युक्त करता है तब ज्ञान प्राप्त करके समझा जाया करता है ॥२४॥ ये सात सूक्ष्म होते हैं इनको जान कर जो योग का ज्ञाता परित्याग करता है वही मेधावी बुद्धि से परम को प्राप्त होता हैं ॥२५॥ यह प्राणी जिसमें, संयुक्त होता हुआ उस ऐश्वर्य के लक्षण वाले में उसके सङ्ग का सेवन करता है उसी से उसका नाश हो जाता है ॥२६॥ इसलिये इन समस्त सूक्ष्मों को जोकि एक दूसरे से आपस में ससक्त हो रहे हैं भली भाँति जानकर जो बुद्धि से त्याग कर देता है वही द्विज परम की प्राप्ति किया करता है ॥२७। परम महान् आत्मा वाले, दिव्य चक्षु वाले ऋषि लोग सूक्ष्मभावों में संसक्त होते हुए दिखलाई दिया करते हैं वे उनमें दोषों की संज्ञा वाले ही कहे जाते हैं ॥२८॥

तस्मान्न निश्चयः कार्यः सूक्ष्मेष्विह कदाचन ।
ऐश्वर्याज्जायते रागो विरागं ब्रह्म चोच्यते ॥२९

विदित्वा सप्त सूक्ष्मणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् ।
प्रधानं विनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥३०

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥३१

नित्यं ब्रह्मधनो युक्त उपसर्गैः प्रमुच्यते ।
जितश्वासोप सर्गस्य जितरागस्य योगिनः ।
एका बहिःशरीरेऽस्मिन् धारणा सर्वकामिको ॥३२

विशेद्यदा द्विजो युक्तो यत्र यत्रार्प्पयेन्मनः ।
भूतान्याविशते वापि त्रैलोक्यञ्चापि कम्पयेत् ॥३३

एतया प्रविशेद्देहं हित्वा देहं पुनस्त्विह ।
मनोद्वारं हि योगानामादित्यञ्च विनिर्द्दिशेत् ॥३४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आदानादिक्रियाणान्तु आदित्य इति चोच्यते ।
एतेन विधिना योगी विरक्तः सूक्ष्मवर्जितः ।
प्रकृतिं समतिक्रम्य रुद्रलोके महीयते ।।३५

इसलिये यहाँ पर इन सूक्ष्मों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। ऐश्वर्य से ही राग की उत्पत्ति हुआ करती है और विराग ही ब्रह्म कहा जाता है ।।२९।। सात प्रकार के इन सूक्ष्मों का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके और छै अङ्गों से महेश्वर को जानकर जोकि प्रधान है। इनके अनन्तर विनियोग का आत्मा पुरुष पर ब्रह्म को प्राप्त किया करता है ।।३०।। सर्वज्ञता का होना, पूर्णतया मानसिक तृप्ति का हो जाना, अनादि बोधपूर्ण स्वाधीनता, नित्य शक्ति के लोप का अभाव, अनन्तशक्ति का होना और विभुकी विधि का ज्ञान रखना ये महेश्वर के छै अङ्ग होते हैं ।।३१।। नित्य ही जो ब्रह्म रूपी धन से धनराज होता है। श्वास के उपसर्ग को जीत लेने वाले तथा राग को जीत लेने वाले योगी को इस शरीर में बाहिर एक ही सर्वकामिनी धारणा होनी चाहिये ।। ३२ ।। जिस समय में युक्त द्विज जहां, जहां पर मन को अर्पित करे तथा भूतों में आविष्ट होवे तो वह त्रैलोक्य को कँपादेता है ।।३३।। इससे यहाँ पर-देह का त्यागकर फिर देह में प्रवेश करे और आदित्य को तथा योगों के मनोद्वार की विनिर्दिष्ट करना चाहिए ।।३४।। आदानादि क्रियाओं को आदित्य यह कहा जाता है। इस विधि से सूक्ष्म से वर्जित विरक्त योगी प्रकृति का भली भाँति क्रमण करके रूद्रलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।३५।।

ऐश्वर्यगुणसम्प्राप्तं ब्रह्मभूतन्तु तं प्रभुम् ।
देवस्थानेषु सर्वेषु सर्वतस्तु निवर्त्तते ।।३६
पैशाचेन पिशाचांश्च राक्षसेन च राक्षसान् ।
गान्धर्वेण च गन्धर्वान् कौबेरेण कुबेरजान् ।।३७
इन्द्रमैन्द्रेण स्थानेन सौम्यं सौम्येन चैव हि ।
प्रजापतिं तथा चैव प्राजापत्येन साधयेत् ।।३८
ब्राह्मं ब्राह्म्येन चाप्येवमुपामन्त्रयते प्रभुम् ।
तत्र सक्तस्तु उन्मत्तस्तस्मात्सर्वं प्रवर्त्तते ।।३९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नित्यं ब्रह्मपरो युक्तः स्थानान्येतानि वै त्यजेत् ।
असज्यमानः स्थानेषु द्विजः सर्वगतो भवेत् ॥४०

ऐश्वर्य के गुण से सम्प्राप्त ब्रह्मभूत उस प्रभु को सर्व ओर समस्त देव-स्थानों में निःशेष रूप से बरतता है ॥ ३६ ॥ पिशाचों को पिशाच से, राक्षसों को राक्षस से, गन्धर्वों को गन्धर्व से तथा कुबेरजों को कौवेर से अर्थात् कुबेर के स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इन्द्र को ऐन्द्र स्थान से, सौम्य को सौम्य स्थान से तथा प्रजापति को प्राजापत्य स्थान से साधन करना चाहिये ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार से ब्राह्म से ब्राह्म प्रभु का उपामिश्रण करता है । वहाँ पर सक्त होने वाला उन्मत्त हो जाता है । उसी से सब प्रवृत्त होता है ॥ ३९ ॥ नित्य ही ब्रह्म में परायण रहने वाले युक्त पुरुष को ये स्थान त्याग देने चाहिये । स्थानों में आसज्यमान द्विज सर्वगत हो जाता है ॥ ४० ॥

॥ योग-मार्ग के ऐश्वर्य ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्यगुण विस्तरम् ।
येन योग विशेषेण सर्वलोकानतिक्रमेत् ॥१
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम् ।
तत्सर्वं क्रमयोगेन उच्यमानं निबोधत ॥२
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तरेव च ।
प्राकाम्यञ्चैव सर्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्वतः ॥३
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि विविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सर्वकामिकम् ॥४
सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मञ्चैव प्रवर्त्तते ।
सावद्यं नाम तत्तत्वं पंचभूतात्मकं स्मृतम् ॥५
निरवद्यं तथा नाम पंचभूतात्मकं स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ॥६
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तन्तु पंचभूतात्मकं पुनः ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध्यहङ्कार संज्ञितम् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इससे आगे ऐश्वर्य गुणों का विस्तार से वर्णन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया जाता है जिस योग विशेष के द्वारा समस्त लोकों का अतिक्रमण किया करता है ॥ १ । वहाँ पर आठ गुणों वाला योगियों का ऐश्वर्य कहा गया है । वह सब क्रम के योग से कहा जाने वाला है उसे आप लोग भली-भाँति समझ लेवें ॥ २ ॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, सर्वत्र प्राकाम्य और सब ओर ईशत्व तथा सर्वत्र वशित्व जहाँ कि कामावसायिता होवे । वह भी सर्वकामिक ऐश्वर्य अनेक प्रकार वाला जानना चाहिये ॥ ३—४ ॥ वह ऐश्वर्य सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म प्रवर्त्तमान हुआ करता है । इसमें जो सावद्य होता है वह तत्व होता है जो कि पञ्चभूतात्मक होता है ॥ ५ ॥ निरवद्य यह नाम भी पञ्चभूतात्मक कहा गया है । इन्द्रियों का समूह, मन और अहङ्कार कहा गया है ॥ ६ ॥ वहाँ पर पुनः सूक्ष्म प्रवृत पञ्चभूतात्मक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहङ्कार संज्ञा वाला होता है ॥ ७ ॥

तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च ।
संयोग एवं त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्त्तति ॥८
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्त्तते ।
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभुः ॥९
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु जीवस्यानियतः स्मृतः ।
अणिमा च यथाव्यक्तं सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥१०
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां दुष्प्राप्यं समुदाहृतम् ।
तच्चापि भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलात् ॥११
लम्बनं प्लवनं योगे रूपमस्य सदा भवेत् ।
शीघ्रगं सर्वभूतेषु द्वितीयं तत्पदं स्मृतम् ॥१२
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ।
महिमा चापि यो यस्मिस्तृतीयो योग उच्यते ॥१३
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु त्रैलोक्यमगमं स्मृतम् ।
प्रकामान् विषयान् भुंक्ते न च प्रतिहतः क्वचित् ।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुख-दुःखं प्रवर्त्तते ॥१४

इसी प्रकार से सर्वमय और आत्मा में रहने वाली ख्याति ही तीन प्रकार

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का संयोग सूक्ष्मों में ही प्रवृत्त होता है ॥ ८ ॥ पुनः आठ गुणों वाले की भी उनमें जो प्रवृत्ति होती है उसके रूप को बतलाते हैं जो कि भगवान प्रभु ने बताया है ॥ ९ ॥ त्रैलोक्य में समस्त भूतों में जीव की अनियतता कही गई है। अणिमा जिस प्रकार से अव्यक्त है उसमें सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥१०॥ तीनों लोकों में जो परम दुष्प्राप्य बताया गया है वह भी योगियों को पहिले बल-पूर्वक प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ योग में इसका रूप सर्वदा लम्बन एवं प्लवन होता है। शीघ्र गमन करने वाला समस्त भूतों में उसका द्वितीय पद कहा गया है ॥ १२ ॥ त्रैलोक्य में समस्त भूतों की प्राप्ति और प्राकाम्य तथा जो जिसमें महिमा होती है वह भी तृतीय योग कहा जाता है ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य में समस्त भूतों में त्रैलोक्य अगम कहा गया है। वह विषयों को प्रकृष्ट कामना के अनु-सार भोग करता है और कोई कहीं भी प्रतिहति करने वाला नहीं होता है। त्रैलोक्य में सर्वभूतों का सुख और दुःख प्रवृत्त होता है ॥ १४ ॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् ।
वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
भवन्ति सर्वकार्येषु इच्छतो न भवन्ति च ॥१५
यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ॥१६

शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चैव मनस्तथा ।
प्रवर्त्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति तथेच्छया ॥१७
न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते हीयते न च लिप्यते ॥१८
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन ।
क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रियते न च ॥१९

अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जितः ।
अवर्णो ह्यवरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥२०
भुंक्तेऽथ विषयांश्चैव विषयैर्न्न च युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्मं सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः ॥२१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुषः स्मृतः।
पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्यै परतः स्थितः ॥२२
गुणान्तरन्तु ऐश्वर्ये सर्वतः सूक्ष्म उच्यते।
ऐश्वर्य्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम्।
अपवर्ग ततो गच्छेत् सुसूक्ष्मं परमं पदम् ॥२३

योग के ज्ञान को रखने वाला प्रविभाग से सर्वत्र ईश होता है। इस चराचरात्मक त्रैलोक्य में समस्त भूत वश्य होते हैं। समस्त कार्यों में इच्छा करते हुये नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ इस चराचर त्रैलोक्य में जहाँ पर कामावसायित्व होता है वहाँ इच्छा से इन्द्रियाँ होती हैं और नहीं होती हैं ॥ १६ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप तथा मन इसकी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं तथा इच्छा से नहीं होते हैं ॥ १७ ॥ यह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न भिन्न होता है, न छेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न मोह को प्राप्त होता है, न दीयमान होता है, न लिप्त ही होता है, न यह क्षीण होता है, न क्षर होने वाला होता है और न कभी खिन्न होता है। यह सर्वत्र किया जाता है और विकार युक्त नहीं होता है ॥ १८—१९ ॥ बिना गन्ध, रस और रूप वाला तथा स्पर्श और शब्द से विवर्जित, बिना वर्ण वाला तथा वर्ण का अवर, स्वरूप वाला यह होता है ॥ २० ॥ और विषयों का भोग करता है तथा विषयों से युक्त नहीं होता है। परम सूक्ष्म का ज्ञान प्राप्त करके सूक्ष्मत्व होने से अपवर्ग से व्यापक है और व्यापित्व होने से पुरुष कहा गया है। सूक्ष्मभाव से यह पुरुष ऐश्वर्य में परे स्थित होता है ॥ २२ ॥ ऐश्वर्य में दूसरा गुण सब ओर सूक्ष्म कहा जाता है। ऐश्वर्य का अप्रतिघाती परम श्रेष्ठ योग को प्राप्त करके अति सूक्ष्म परम पद अपवर्ग को जाता है ॥ २३ ॥

॥ पाशुपत योग का स्वरूप ॥

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात् कर्म्म समाचरेत्।
राजसं तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ॥१
तथा सुकृतकर्म्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते।
तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्माद्‌ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥३
परिश्रमस्तु यज्ञानां महतार्थेन वर्त्तते ।
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम् ॥४
अथ वै ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
न स स्याद् व्यापितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ॥५
दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ।
विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम् ॥६
गोभिर्मही संयतते पतत्रिणं महात्मानं परममति वरेण्यम् ।
कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ।
योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा तं निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम् ॥७

श्री वायु देव ने कहा—इस प्रकार से आया हुआ ज्ञान से अथवा राग से कर्म का आचरण न करे। राजस हो अथवा तामस हो उसका भोग करके वहाँ पर ही युक्त होता है ॥ १ ॥ यदि कोई सुकृत कर्मों के करने वाला है तो वह अपने सुकृत कर्मों के प्रभाव से उनका फल स्वर्ग में भोगता है। जब पुण्य-कर्मों के फल का भोग समाप्त हो जाता है तो उस स्थान से भ्रष्ट होकर पुनः मनुष्य लोक को प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ इससे ब्रह्म परम सूक्ष्म है और ब्रह्म शाश्वत कहा गया है अर्थात् ब्रह्म सर्वदा रहने वाला कहा जाता है। ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये क्योंकि ब्रह्म ही परम सुख होता है ॥ ३ ॥ यज्ञों के करने में महान् परिश्रम करना पड़ता है और वह भी बहुत अधिक धन से सम्पन्न किया जाता है। यज्ञादि के करने वाला भी फिर मृत्यु के वश में हो जाता है। इसलिये मोक्ष का प्राप्त करना ही परम सुख होता है ॥ ४ ॥ ध्यान से संयुक्त होता हुआ जो ब्रह्म यज्ञ में परायण होता है वह सौ मन्वन्तरों में भी मारा नहीं जा सकता है ॥ ५ ॥ विश्व नाम वाले, विश्व के रूप वाले, विश्व के पाद, शिर और ग्रीवा वाले, विश्व के स्वामी, विश्व का पालन करने वाले, दिव्य पुरुष, विश्व की गन्ध वाले, विश्व की माल्य, विश्व के अम्बर को धारण करने वाले

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रभु का योग से दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥ मही इन्द्रियों से पतत्रि, महान् आत्म वाले, परम मति, वरेण्य, कवि, पुराण, अनुशासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान् को संयत करती है उस इन्द्रियों से रहित सुवर्ण के समान वर्ण वाले पुरुष को योग से देखते हैं, चक्षु से नहीं देखते हैं ॥ ७ ॥

अलिङ्गिनं पुरुषं रुक्मवर्णं सलिङ्गिनं निर्गुणं चेतनं च ।
नित्यं सदा सर्वगतन्तु शौचं पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलं प्रकाशम् ॥८
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमानः अपाणि पादोदरपार्श्वजिह्वः ।
अतीन्द्रियोऽप्यापि सुसूक्ष्म एकः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥९
नास्यास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति स वेद सर्वं न च वेदवेद्यः ।
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं सचेतनं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् ॥१०
तामाहुर्मुनयः सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम् ।
प्रकृतिं सर्वभूतानां युक्ताः पश्यन्ति चेतसा ॥११
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुति (म) माँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१२
युक्ता योगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम् ।
पुरुषं सर्वभूतानां तस्माद्ध्याता न मुह्यते ॥१३
भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम् ।
सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति ॥१४

बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हेम के सदृश वर्ण से युक्त, सलिङ्गी, निर्गुण, चेतन, नित्य, सदा सब में रहने वाले, शौच, अचल और प्रकाश स्वरूप पुरुष को युक्ति से देखते हैं ॥८। उसकी भावना से युक्त तेज से दीप्यमान, पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जिह्वा से रहित, इन्द्रियों की पहुँच से परे, बिना नेत्रों वाला और बिना कानों वाला अब भी सुसूक्ष्म एक वह देखता है और सुनता भी है ॥९॥ इसको कुछ भी अबुद्ध नहीं है, इसके बुद्धि भी नहीं है, वह सब को जानता है और वह वेदों के द्वारा भी जानने के योग्य नहीं हैं अर्थात् वेद भी उसके यथार्थ स्वरूप को नहीं बता सकते हैं। उसको सब से प्रथम पुरुष, महान्, सचेतन, सर्वगत और ससूक्ष्म कहते हैं ॥१०॥ लोक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में सब मुनिगण उस को समस्त प्राणियों के प्रसव के धर्म वाली प्रकृति कहते हैं। जो योग से युक्त होते हैं वे ध्यान में चित्त से उसे देखते हैं ।।११।। अब उसके स्वरूप का वर्णन करते हैं कि वह सभी ओर पाणि तथा पादों वाला है, सब ओर नेत्र शिर और मुख वाला है, सब तरफ श्रुतिमान् है और लोक में सब को आवृत करके स्थित रहता है ।।१२।। जो युक्त होते हैं वे योग से उस ईशान और सर्वत्र स्थित सनातन को एवं समस्त भूतों के पुरुष को देखते हैं। इसलिये जो ध्याता अर्थात् ध्यान-योगी हैं वे कभी मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ।।१३।। समस्त भूतों की आत्मा, महान् आत्मा वाले, अव्यय, सब की आत्मा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करके मोहित नहीं होते हैं ।।१४।।

पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिषु ।
पुरि शेते तथाभ्रे च तस्मात् पुरुष उच्यते ।
अथ चेल्लुप्तधर्म्मात्तु सविशेषैश्च कर्म्मभिः ।।१५
ततस्तु ब्रह्मयोन्यां वै शुक्रशोणितसंयुतम् ।
स्त्रीपुमांसप्रयोगेण जायते हि पुनः पुनः ।।१६
ततस्तु गर्भकाले तु कलनं नाम जायते ।
कालेन कलनश्चापि बुद्‌बुदश्च प्रजायते ।।१७
मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रवातेन पीडितः ।
हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु विश्वत्वमुपगच्छति ।।१८
एवमात्मास्थिसंयुक्तो वायुना समुदीरितः ।
जायते मानुषस्तत्र यथा रूपं तथा मनः ।।१९
वायुः सम्भवते तेषां वातात् सञ्जायते जलम् ।
जलात्संभवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्द्धते ।।२०
रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशच्छुक्रभागाश्चतुर्दश ।
भागतोऽर्द्धपलं कृत्वा ततो गर्भे निषेवते ।।२१

जिस तरह पवन समस्त मूर्त्तियों में विचरता हुआ ग्राह्य हुआ करता है उसी भाँति वह पुर में शयन करता है तथा अभ्र में भी स्थित रहता है इसी लिये पुरुष—यह कहा जाता है । [illegible]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धर्म वाला होता है ॥१५॥ इसके पश्चात् वह ब्रह्म शुक्र और शोणित से संयुत होकर योनि में स्त्री और पुमान् के प्रयोग से बार-बार उत्पन्न होता है ॥१६॥ सर्वप्रथम योनि में पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है तो वह उस गर्भ के समय में पहिले कलन नाम वाला होता है। कुछ समय में वही कलन बुद्बुद हो जाता है ॥१७॥ जिस तरह मिट्टी का एक पिण्ड चक्र वात के द्वारा पीड़ित किया जाता है और हाथों से बनाया हुआ विश्वत्व को प्राप्त हो जाता है ॥१८॥ इसी प्रकार से वायु के द्वारा समुदीरित वह आत्मा और अस्थि से संयुक्त मनुष्य उत्पन्न होता है। उसमें फिर जैसा रूप होता है वैसा मन होता है ॥१६॥ वायु उत्पन्न होता है, उस वात से जल होता है, जल से प्राण उत्पन्न होता है और प्राण से शुक्र की वृद्धि होती है ॥२०॥ तेतीस रक्त के भाग होते हैं और शुक्र के चौदह भाग होते हैं। भाग से आधा पल करके फिर गर्भ में निषेवित होता है ॥२१

ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः ।
पितुः शरीरात् प्रत्यङ्गरूपमस्योपजायते ॥२२
ततोऽस्य मातुराहारात् पीतलीढप्रवेशितम् ।
नाभिः स्रोतःप्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम् ॥२३
नवमासान् परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः ।
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्य्यायक्रमागतः ।
नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः ॥२४
ततस्तु कर्म्मभिः पापैर्निरयं प्रतिपद्यते ।
असिपत्रवनञ्चैव शाल्मलीच्छेदभेदयोः ॥२५
तत्र निर्भत्सनञ्चैव तथा शोणितभोजनम् ।
एतास्तु यातना घोराः कुम्भीपाकसुदुःसहाः ॥२६
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्नाः स्वरूपमुपयान्ति वै ।
तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागतः ॥२७
एवं जीवस्तु तैः पापैस्तप्यमानः स्वयं कृतैः ।
प्राप्नुयात् कर्म्मभिर्दुःखं शेषं वा यदि चेतरम् ॥२८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके पश्चात् पाँच वायु से वृत और गर्भ से संयुक्त इसके पिता के शरीर से प्रत्येक अङ्ग का रूप उत्पन्न होता है ॥२२॥ इसके अनन्तर माता जो कुछ भी खाया करती है उस उसके आहार से पीया हुआ, चाटा हुआ अन्दर प्रवेशित होता है वह नाभि के स्रोत के द्वारा गर्भ तक प्रवेश करता है उससे देह धारियों के प्राणों का आधार होता है ॥२३॥ इस तरह नौ मास पर्यन्त सवेष्टित शिरोधर, परिक्लेश से युक्त होता हुआ, समस्त गात्रों से वेष्टित होकर अपर्याय क्रम से आया हुआ रहता है । नौमास तक वहाँ गर्भ में रहकर फिर योनि के छिद्र से अवाङ्मुख होता हुआ जन्म ग्रहण किया करता है ॥२४॥ फिर यहाँ पर आकर अनेक पाप कर्म करता है और उन दुष्कर्मों के कारण नरक को प्राप्त किया करता है । असिपत्र वन, शाल्मली छेद भेदों के नाम वाले नरक होते हैं उनमें पाप कर्मों से यातना भोगता है ॥२५॥ वहाँ नरक स्थानों में बहुत बुरी तरह फटकार खाता है तथा शोणित का भोजन करना पड़ता है। ये समस्त अत्यन्त घोर यातनाऐं हैं और कुम्भीपाक नरक की बहुत असह्य यातना होती हैं ॥२६॥ जिस तरह छिन्न किये हुए जल अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं उसी प्रकार छिन्न और भिन्न हुए यातना के स्थान में आते हैं ॥२७॥ इस तरह जीवात्मा अपने ही किये हुए पाप कर्मों से तप्यमान होता हुआ कर्मों के द्वारा दुःख प्राप्त किया करता है । आदि का जो भी शेष अन्य होता है । उसे भी भोगता है ॥२८॥

एकेनैव तु गन्तव्यं सर्वमृत्युनिवेशनम् ।
एकनैव च भोक्तव्यं तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥२९
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति ।
यदनेन कृतं कर्म्म तदेनमनुगच्छति ॥३०
ते नित्यं यमविषये विभिन्नदेहाः क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगैः ।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीराः बह्वीभिः सुभृशमधर्म्मयातनाभिः ॥ ३१
कर्मणाः मनसा वाचा यदभीष्टं निषेव्यते ।
तत् प्रसह्य हरेत् पापं तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥३२
याहग् जातानि पापानि पूर्वं कर्म्माणि देहिनः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संसारं तामसं तादृक् षड्विधं प्रतिपद्यते ।।३३
मानुष्यं पशुभावञ्च पशुभावान्मृगो भवेत् ।
मृगत्वात् पक्षिभावन्तु तस्माच्चैव सरीसृपः ।।३४
सरीसृपत्वाद्गच्छोद्धि । स्थावरत्वन्न सशयः ।
स्थावरत्व पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रै वपरिकीर्तितः ।।३५

समस्त प्राणियों के मृत्यु के स्थान में एक ही को अकेले जाना पड़ता में अर्थात् अन्य वहाँ कोई भी सहायक नहीं हो सकता है । और स्वयं एक ही को वहाँ नरक स्थान में कर्मों का फल भोगना पड़ता है इसलिये सर्वदा सुकृत ही करना चाहिए ।।२८।। जब अन्त समय उपस्थित होता है तो मृत्यु के मुख में प्रस्थान करने वाले इसको कोई भी साथी नहीं मिलता है और न जाते हुए के पीछे ही कोई जाया करता है । इसने यहाँ लोक में जो भी भला-बुरा कर्म किया है वही इसके पीछे साथ जाया करता है ।।३०।। वे वहाँ यमराज के स्थान में विभिन्न देह वाले नित्य ही बराबर बुरे-बुरे सम्प्रयोगों से रुदन करते हुए शुष्क हो जाते हैं और बहुत-सी अधमं यातनाओं से जो कि अत्यन्त ही घोर रूप में प्राप्त होती हैं सब तरह वेदना से पूर्ण शरीर वाले होते हैं ।।३१।। कर्म से मन से और वाणी से जो अभीष्ट का सेवन किया जाता है उस पाप को बलपूर्वक दूर कर देना चाहिए । इससे सुकृत कर्म का ही आचरण करना चाहिए ।।३२।। इस देहधारी पुरुष के जैसे भी पहिले कर्म तथा पाप हुए हैं उनको यह तामस ससार वैसा ही छै प्रकार वाला प्राप्त हुआ करता है ।।३३।। मानुष्य से पशुभाव, पशुभाव से मृग होता है । मृगत्व से पक्षिभाव को प्राप्त होता है और फिर उससे सरीसृप होता है ।।३४।। सरीसृप से स्थावरता को प्राप्त किया करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । जब तक नर के उन्मेष को प्राप्त नहीं होता है बराबर पुनः स्थावरत्व को प्राप्त किया करता है । कुम्हार के चाक की भाँति भ्रमण करता हुआ वहाँ ही पर रहा करता है ।।३५।।

इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारे स्थावरान्तके ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्त्तते ॥३६
सात्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादिः परिकीर्त्तितः ।
पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ॥३७
ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः ।
चतुर्द्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः ।
मर्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिनः ॥३८
ततस्तु परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति ।
संस्कारात् पूर्वधर्मस्य भावनायां प्रणोदितः ।
मानुष्यं भजते नित्यं तस्मान्नित्यं समादधेत् ॥३९

इस प्रकार से संसार में मनुष्य से आदि लेकर स्थावर के अन्त तक तामस भाव जानना चाहिए । यह वहाँ ही परिवर्त्तित होता रहा करता है ॥३६॥ सात्त्विक भी संसार ब्रह्म से आदि लेकर कहा गया है जो कि पिशाच के अन्त तक स्वर्ग स्थानों में देहधारियों का जानना चाहिए ॥३७॥ ब्राह्म में तो केवल सत्त्व ही होता है और स्थावर में केवल तमोगुण ही होता है । चौदह स्थानों के मध्य में रजोगुण विष्टम्भक होता है जो कि मर्म स्थानों के छिद्यमान होने पर वेदना से आर्त्त देहधारी को हुआ करता है ॥३८॥ इसके पश्चात् विप्र परम ब्रह्म का कैसे स्मरण करेगा ? पूर्व धर्म के संस्कार से भावना में प्रेरित होता हुआ मानुष्य का सेवन किया करता है । इसलिये नित्य ही समाधीत होना चाहिए ॥३९॥

॥ पाशुपत योग–महिमा ॥

चतुर्द्दशविधं ह्येतद्बुद्धा संसारमण्डलम् ।
तथा समारभेत् कर्म्म संसारभयपीडितः ॥१
ततः स्मरति संसारचक्रेण परिवर्त्तितः ।
तस्मात्तु सततं युक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः ।
तथा समारभेद्योगं यथात्मानं स पश्यति ॥२
एष आद्यः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः ।
विवृद्धो ह्येष भूतानां न सम्भेदश्च शाश्वतः ॥३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तदेनं सेतुमात्मानं अग्नि वै विश्वतोमुखम् ।
हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत विधानवित् ॥४
हुत्वाष्टावाहुतीः सम्यक् शुचिस्तद्गतमानसः ।
वैश्वानरं हृदिस्थन्तु यथावदनुपूर्वशः ।
अपः पूर्वं सकृत् प्राश्य तुष्णीं भूत्वा उपासते । ५
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ।
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ॥६
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी ।
स्वाहाकारैः परं हुत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः ।
अपः पुनः सकृत् प्राश्य त्र्याचम्य हृदयं स्पृशेत् ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—इस प्रकार से चौदह प्रकार वाले इस संसार के मण्डल को समझ कर संसार के भय से पीड़ित होते हुए वैसे कर्मों के करने का आरम्भ करना चाहिए ॥१॥ इस संसार के चक्र से परिवर्त्तित होते रहने वाला फिर स्मरण किया करता है। इसलिये निरन्तर योग में युक्त होकर ध्यान में परायण युञ्जान होवे और इस तरह से योग का आरम्भ करना चाहिए कि फिर आत्मा का दर्शन प्राप्त कर लेवे ॥२॥ यही आद्य परम ज्योति है, यही सर्वोत्तम सेतु है, यह प्राणियों का विशेष रूप से वर्धित होता है और सम्भेद शास्वित नहीं है ॥ ३ ॥ इसलिये आत्मा स्वरूप सेतु को, विश्वतोमुख अग्नि को जो कि समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित होता है, विधान के ज्ञाता को उसकी उपासना करनी चाहिए ॥४॥ पवित्र होकर उसी में अपने मन को सन्निविष्ट करने वाले को भली-भाँति आठ आहुतियों से हवन करना चाहिए। जो वैश्वानर हृदय में स्थित है उसी के लिये यथावत् क्रम से आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्व में एकबार जल का पान कर फिर मौन होकर उपासना करे ॥५॥ प्रथम आहुति 'प्राणाय स्वाहा'— इससे बताई गई है। दूसरी आहुति 'अपानाय स्वाहा'—इससे देवे और तीसरी आहुति 'समानाय स्वाहा'—इससे देनी चाहिए ॥६॥ 'उदानाय स्वाहा'—इससे चौथी व्यानाय स्वाहा'—इससे पाँचवी आहुति देवे। स्वाहाकारों से पर को हवन कर शेष का इच्छा पूर्वक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भोजन करे । फिर एकबार जल का पान कर तीन बार आचमन करे और हृदय का स्पर्श करना चाहिए ।।७।

ॐप्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः ।
स रुद्रो ह्यात्मनः प्राणा एवमाप्याययेत् स्वयम् ।।८
त्वं देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्वं चतुरो वृषा ।
मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्मभ्यं भद्रमेतद्धुतं हविः ।।९
एवं हृदयमालभ्य पादांगुष्ठे तु दक्षिणे ।
विश्राव्य दक्षिणं पाणिं नाभिं वै पाणिना स्पृशेत् ।
ततः पुनरुपस्पृश्स्य चात्मानमभिसंस्पृशेत् ।।१०
अक्षिणी नासिका श्रोत्रे हृदयं शिर एव च ।
द्वावात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ।।११
तयोः प्राणोऽन्तरात्मास्य बाह्योऽपानोऽत्र उच्यते ।
अन्नं प्राणस्तथापानं मृत्युर्ज्जीवितमेव च ।।१२
अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयं प्रजानां प्रसवस्तथा ।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ।
वर्द्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नन्तदुच्यते ।।१३
तदेवाग्नौ हुतं ह्यन्नं भुञ्जते देवदानवाः ।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि पिशाचाश्चान्नमेव हि ।।१४

इसके अनन्तर 'ओं प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः । स रुद्रो ह्यात्मनः प्राणा एवमाप्याययेत्स्वयम्'—अर्थात् प्राणों की जो ग्रन्थि है इसकी आत्मा विशान्तक रुद्र है । वही रुद्र आत्मा के प्राण हैं । इस प्रकार से स्वयं आप्यायित होना चाहिए ।।८।। आप देवों में भी सबसे बड़े हैं, आप उग्र हैं, आप चतुर वृष हैं । आप हमारी मृत्यु के नाशक हैं । यह हुत हवि हमारे लिये कल्याणप्रद होवे ।।९।। इस प्रकार हृदय का आलभन कर दक्षिण पाद के अंगूठे में विश्रावित कर फिर दक्षिण पाणि और नाभि का पाणि से स्पर्श करना चाहिए । इसके पश्चात् पुनः आचमन कर अपने आपको स्पर्श करे ।।१०।। तथा दोनों नेत्रों को नासिका, दोनों कानों को, हृदय को और शिर को स्पर्श करे ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राण और अपान ये दोनों दो आत्माऐं कही गई हैं ॥११॥ उन दोनों का अन्त-रात्मा प्राण होता है । इसका बाह्य आत्मा अपान है यह कहा जाता है । अन्न प्राण तथा अपान है, मृत्यु और जीवन है ॥१२॥ अन्न को ब्रह्म जानना चाहिएं तथा अन्न को प्रजाओं का प्रसव समझना चाहिए । अन्न से प्राणी होते हैं औरं उनकी स्थिति भी अन्न से कही जाती है तथा भूतों की वृद्धि भी अन्न से ही होती है, इसी लिये अन्न को ऐसा कहा जाता है ॥१३॥ वही अन्न जब अग्नि में हुत होता है तो उस अन्न को देव और दानव खाते हैं। गन्धर्व, यक्ष और राक्षस तथा पिशाच भी अन्न का ही भोग करते हैं ॥१४॥

॥ शौचाचार लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् ।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाप्नुयात् ॥१
उदकार्थी तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम् ।
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्न्नावसीदति ॥२
मानावमानौ द्वोवेतौ तावेवाहुर्विषामृते ।
अवमानं विषं तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥३
यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्न्नावसीदति ।
गुरोः प्रियहिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत् ॥४
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् ।
प्राप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम् ।
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥५
चक्षुःपूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्मानुशासनम् ॥६
आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित् क्वचित् ।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा ॥७

श्रीवायुदेव कहते हैं—इसके आगे शौचाचार का लक्षण बतलाया जाता है जिसको अनुष्ठित करने पर शुद्ध आत्मा वाला होकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ उदक को चाहने वाला शुद्ध मुनियों का उत्तम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पद होता है। जो उनमें प्रमाद से रहित होता है वह मुनि कभी भी अवसन्न नहीं होता है ।।२।। मान और अवमान ये दोनों हैं और इन्हीं दोनों को अमृत तथा विष कहते हैं । उनमें जो अवमान है वही विष होता है और मान को अमृत कहा जाता है ।।३।। जो उनमें अप्रमत्त होता है वह मुनि दुःखित नहीं होता है। जो गुरु के प्रिय कार्य और हितप्रद कर्म में युक्त होता है वह एक सम्वत्सर तक वास करता है ।।४।। जो नियम निर्धारित हैं उनमें अप्रमत्त होता हुआ सर्वदा यमों का पूर्ण पालक होना चाहिए। अनुज्ञा को प्राप्त करके इसके अनन्तर ज्ञान का आगमन उत्तम होता है । सदा धर्म का विरोध न करते हुए ही इस भूमण्डल पर विचरण करना चाहिए ।।५।। नेत्रों से पवित्र करके अर्थात् आँखों से अच्छी तरह देख-भाल के मार्ग में आगे चलना चाहिए तथा वस्त्र से पवित्र करके अर्थात् सर्वदा कपड़े से छानकर ही जल पीना चाहिए। सत्य से पूत करके अर्थात् सचाई से पवित्र की हुई वाणी को बोलना चाहिए, यह धर्म शास्त्र का अनुशासन अर्थात् आदेश है ।।६।। योग का वेत्ता पुरुष श्राद्ध, यज्ञों में कहीं भी आतिथ्य ग्रहण न करे । इस प्रकार से योगी अहिंसक होता है यह विचारणा है ।।७।

वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने ।
विचरेन्मतिमान् योगी न तु तेष्वेव नित्यशः ।।८
यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च ।
युक्तस्तथा चरेद्भैक्षं सतां धर्ममदूषयन् ।।९
भैक्षं चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ।
श्रेष्ठा तु परमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते ।।१०
अत ऊर्द्धं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ।।११
अत ऊर्द्धं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ।
भैक्षचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ।।१२
भैक्षं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव च ।
फलमूलं विपक्वं वा पिण्याकं शक्तितोपि वा ।।१३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धनाः ।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्षमिति स्मृतम् ।।१४

वह्नि के धूम रहित तथा व्यङ्गार होने पर तथा सब जनों के भुक्तवान् होने पर मतिमान् योगी को विचरण करना चाहिए किन्तु उन्हीं घरों में नित्य नहीं करे ।।८।। जिस प्रकार से एवं अवमन्यमान होते हैं और जिस तरह परिभूत होते हैं युक्त को उस प्रकार से सत्पुरुषों के धर्म को दूषित न करते हुए भिक्षा करनी चाहिए ।।९।। योगी पुरुष को गृहस्थों में तथा यथा चार गृहों में भिक्षा चरण करना चाहिए । इसके लिये यही वृत्ति परम श्रेष्ठ शास्त्र में उपदिष्ट की जाती है ।।१०।। इसके आगे द्विज को जो शालीन गृहस्थ हों उनमें, श्रद्धानों में, दान्तों में, श्रोत्रियों में और महान् आत्माओं में भिक्षाचरण करना चाहिए ।।११।। इसके बाद में आगे फिर जो दुष्ट तथा पतित न हों उनमें एवं विवर्णों में भैक्षचर्या करे किन्तु यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ।।१२।। भिक्षा में यवागू, तक्र, पय, यावक, फल मूल अथवा विपक्व पिण्याक अथवा जो भी शक्तिपूर्वक दिया गया ही ग्रहण करे ।।१३।। इतने जो मैंने बताये हैं वे सब योगियों की सिद्धि के बढ़ाने वाले आहार होते हैं । उनके सिद्ध हो जाने पर परम श्रेष्ठ भैक्ष कहा गया है ।।१४।।

अबिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्वोक्ताद्विशिष्यते ।।१५
योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चान्द्रायणं स्मृतम् ।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ।।१६
अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता ।।१७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ।।१८
बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्धः कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते ।।१९
प्राप्यते वाचिरा देवांकुशनेव निवारितः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं ज्ञानेन शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मषः ।
विमुक्तबन्धः शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥२०
वेदैस्तुत्या सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञे जप्यं ज्ञानिनामाहुरग्र्यम् ।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥२१
दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनं च भूतेष्वखिलेष्वथार्जवम् ।
अतीन्द्रियज्ञानमिदं तथार्जवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ॥२२
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैवात्मरतिर्जितेन्द्रियः ।
समाप्नुयुर्योगमिमं महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः ॥२३

जो कुशा के अग्रभाग से मास-मास में जल की बूदों का अशन किया करता है और जो न्याय से भिक्षा किया करता है वह पहिले कहे हुए से भी विशेषता से युक्त होता है ॥१५॥ और योगियों के लिये चान्द्रायण सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। एक दो-तीन और चार चान्द्रायण व्रतों को शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए ॥१६॥ चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना, लोभ न करना, त्याग, अहिंसा और परमार्थिता ये व्रत भिक्षुओं के लिये सर्वोत्तम होते हैं ॥१७॥ क्रोध न करना, गुरु की सेवा, शौच, आहार का हलकापन, नित्य वेद का अध्ययन ये नियम कहे गये हैं ॥१८॥ बीज योनि वाला तथा गुणों के शरीर वाला कर्मों से बँधा हुआ है। अरण्य हाथी की तरह मनुष्यों के लिये विधान किया जाता है ॥१९॥ अङ्कुश से जैसे निवारित होकर शीघ्र ही प्राप्त किया जाता है इसी प्रकार से शुद्ध ज्ञान के द्वारा दग्ध बीज वाला, कल्मष हीन, विमुक्त बन्धन वाला शान्त यह मुक्त कहा जाता है ॥२०॥ वेदों से, स्तुति से, समस्त यज्ञों की क्रिया, यज्ञ में जप ज्ञानियों को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। ज्ञान से सङ्ग और राग से विरहित ध्यान कहा गया है। उसके पाने पर शाश्वत पुरुष की प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ दम, शम, सत्य, अकल्मषत्व, मौन, समस्त प्राणियों में सीधापन तथा आर्जव इसको ज्ञान से विशुद्ध सत्त्व वाले लोग सतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं ॥२२॥ समाहित अर्थात् पूर्ण सावधान, ब्रह्म में तत्पर रहने वाले, अप्रमादी, पवित्र, आत्मा में रति रखने वाले और इन्द्रियों को जीत लेने वाले, महान् बुद्धि वाले, अनिन्दित एवं अमल महर्षिगण इस योग को समापन करें ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

।। परमाश्रय प्राप्ति ।।

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् ।
अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ।।१
अनुज्ञाप्य गुरुं चैव विचरेत् पृथिवीमिमाम् ।
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम् ।।२
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति यस्तुषितश्चरेत् ।
अपि कल्पसहस्रायुर्न्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ।।३
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्धया द्वाराणि ध्याने ह्येवं मनो दधेत् ।।४
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा ।
नदीनां पुलिने चैव नित्यं युक्त सदा भवेत् ।।५
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी व्यवस्थितः ।।६
अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रियः शुभाशुभे हित्य च कर्मणी उभे ।
इदं शरीरं प्रविमुच्य शाश्वतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ।।७

श्रीवायुदेव ने कहा—तीन आश्रमों का त्याग कर परमाश्रम को प्राप्त करे और एक सम्वत्सर के अन्त में सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति कर लेवे ।। १ ।। श्री गुरुचरण की आज्ञा को प्राप्त करके इस भूमण्डल में विचरण करे और जो जानने के योग्य एवं साधक ज्ञान हो उसी ज्ञान की उपासना करनी चाहिए क्योंकि इस समय परम सार स्वरूप ज्ञान ही अत्यावश्यक होता है ।।२।। यह ज्ञान है और यही जानने के योग्य है—इस प्रकार से तुष्ट होकर विचरण करना चाहिए । सहस्र कल्पों की आयु वाला होकर भी जो जानने के योग्य होता है उसे प्राप्त नहीं किया करता है ।।३।। सब प्रकार के सङ्गों को त्याग देने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, हलका तथा स्वल्प । आहार करने वाला, अपनी इन्द्रियों को काबू में रखने वाला बुद्धि से द्वारों को ढाँककर इस प्रकार से मन को ध्यान में लगावे ।।४।। जो बिल्कुल शून्य स्थान हों उनमें, अवकाशों में, गुफाओं में तथा वन में एवं नदियों के पुलिन में नित्य युक्त होते हुए सदा रहना चाहिए

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥५॥ वाणी का दण्ड, कर्म का दण्ड और मन रूपी दण्ड ये तीन प्रकार के दण्ड कहे गये हैं। जिसके पास ये तीन दण्ड होते हैं वही त्रिदण्डी व्यवस्थित होता है ॥६॥ ध्यान में रति रखने वाला अवस्थित होकर तथा अपनी समस्त इन्द्रियों को जीत कर, शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों को त्याग कर इस शरीर को जो त्याग देता है वह शास्त्र की पद्धति से चलने वाला फिर न उत्पन्न होता है और न कभी मृत्यु को ही प्राप्त होता है अर्थात् आवागमन से मुक्त होकर वह मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है ॥७॥

॥ प्रायश्चित विधि ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् ।
प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन यान्यकामकृतानि तु ।
अथ कामकृतेष्याहुः सूक्ष्मधर्मविदोजनाः ॥१
पापञ्च त्रिविधं प्रोक्तं वाङ्मनःकायसम्भवम् ।
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं बध्यते जगत् ॥२
न कर्माणि न चाप्येष तिष्ठतीतिपरा श्रुतिः ।
क्षणमेव प्रयोज्यन्तु आयुषस्तु विधारणात् ॥३
भवेद्धीरोऽप्रमत्तास्तु योगो हि परमं बलम् ।
न हि योगात्परं किञ्चिन्नराणामिह दृश्यते ।
तस्माद्योगं प्रशंसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिणः ॥४
अविद्यां विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा परापरं धीराः परं गच्छन्ति तत्पदम् ॥५
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकापक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥६
उपेत्य तु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।
प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात्सान्तपनं तथा ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—अब इससे आगे यतियों के निश्चय को बतलाते हैं और प्रायश्चित्तों को बतलाया जाता है जो कि तात्त्विक रूप से बिना इच्छा के किये गये हैं। इसके अनन्तर सूक्ष्म धर्म के ज्ञाता मनुष्य कामकृतों को भी कहते

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है ॥ १ ॥ इस लोक में पाप तीन प्रकार का बतलाया गया है जो कि वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होता है । सर्वदा रात-दिन जिस पाप से यह समस्त संसार बाधित होता रहता है ॥ २ ॥ न तो यहाँ जगत् में यह और न कर्म ही कोई भी नहीं रहता है, यह पर-श्रुति है । आयु के विशेष रूप से धारण करने से एक क्षणमात्र ही का प्रयोग करें ॥ ३ ॥ धीर एवं अप्रमत्त होना चाहिए । योग सबसे प्रबल बल होता है । इस संसार में योग से अधिक मनुष्यों का हित साधक अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं देता है । इसी लिये धर्म के तत्व के जानने मनीषीगण योग की ही अत्यधिक प्रशंसा किया करते हैं ॥ ४ ॥ विद्या से अर्थात् ज्ञान से अविद्या के अन्धकार को पार करके तथा सर्वोत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करके धीर पुरुष-परापर को देखकर उस परम पद को जाया करते हैं ॥ ५ ॥ जो यतियों के लिये व्रत तथा उपव्रत बताये गये हैं उनमें एक-एक के अपक्रम करने में प्रायश्चित्त का विधान होता है ॥ ६ ॥ स्वेच्छया स्त्री का उपगमन करे तो प्रायश्चित्त करना चाहिए । प्राणायाम से समायुक्त होते हुए सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥ ७ ॥

ततश्चरति निर्द्देशं कृच्छ्रस्यान्ते समाहितः ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ।
न मर्मयुक्तं वचनं हिनस्तीति मनीषिणः ॥८
तथापि च न कर्त्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ।
अहोरात्राधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः ॥९
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैर्मुनिभिस्तथा ।
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥१०
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥११॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ।
ततः संवत्सर स्यान्ते भूयः प्रक्षीणकल्मषः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥१२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून मृगान् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥१३
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्टा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥१४

इसके अनन्तर कृच्छ्र के अन्त में निर्देश में चरण करना चाहिए और पूर्ण समाहित होकर रहना चाहिए । भिक्षु को पुनः अपने आश्रम में आकर अतन्द्रित होते हुए रहना चाहिए । मनीषी लोग कहते हैं कि कभी मर्मयुक्त वचन के द्वारा हिंसा न करे ॥८॥ तोभी यह दारुण प्रसङ्ग कभी नहीं करना चाहिए । अहो-रात्र से अधिक कोई अधर्म नहीं है–ऐसी श्रुति है । ९॥ देवताओं ने तथा मुनियों ने यह सबसे परा-हिंसा बताई है । जो यह द्रविण है वह भी प्राण के ही समान है क्योंकि प्राण वहिश्वर हो जाया करते हैं । वह उसके प्राणों का ही हरण किया करता है जो कि उसका धन हरण करता है अर्थात् यहाँ प्राण और धन में कुछ भी अन्तर नहीं होता है ॥१०॥ जो कोई भी ऐसा करता है वह परम दुष्ट होता है आचरण से भ्रष्ट तथा व्रत से च्युत हो जाया करता है । उसे फिर निर्वेद प्राप्त करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥ शास्त्र में बताई हुई विधि से एक वर्ष पर्यन्त ऐसा करे, ऐसी श्रुति है । फिर संवत्सर के अन्त में प्रक्षीण कल्मष वाला होता है । इसके बाद में फिर निर्वेद को प्राप्त कर भिक्षु को अतन्द्रित होते हुए चरण करना चाहिए ॥१२॥ समस्त प्राणियों की हिंसा न करे और वह कर्म, मन तथा वाणी किसी के भी द्वारा नहीं करनी चाहिए । यदि बिना इच्छा के भी भिक्षु पशु तथा मृग की हिंसा करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त करना ही चाहिए और वह कृच्छ्राति कृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत है ॥१३॥ यदि कोई यति किसी स्त्री को देख कर इन्द्रियों की दुर्बलता के कारण स्कन्दन करे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के के लिये सोलह प्राणायाम अवश्य ही करने चाहिए ॥१४॥

दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ।
त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥१५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रात्री स्कन्नः शुचिः स्नातोशैव तु धारणाः ।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजः ॥१६
एकान्नं मधु मांसं वा ह्यामश्राद्धं तथैव च ।
अभोज्यानि यतीनाञ्च प्रत्यक्षलवणानि च ॥१७
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात् प्रमुच्यते ॥१८
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाङ्मनः कायसम्भवम् ।
सद्भि. सहः विनिश्चित्य यद्व्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥१९
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्त भूतेषु चरन् स माहितः ।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं सतां परं स गत्वा न पुनर्हि जायते २०

दिन में जो विप्र स्कन्न होता है उसके प्रायचित्त का विधान किया जाता है कि उसे तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१५॥ जो रात्रि में स्कन्न हो अर्थात् स्खलित हो तो उसे शुद्धि स्नान करके केवल बारह ही प्राणायाम कर लेने चाहिए । इन द्वादश प्राणायामों से वह द्विज निष्पाप हो जाता है ॥१६॥ एक ही अन्न, मधु, मांस, आमश्राद्ध, प्रत्यक्ष लवण ये यतियों के अभोज्य बताये गये हैं इनमें किसी भी एक का अतिक्रमण करने में प्रायश्चित्त का विधान होता है । प्राजापत्य कृच्छ व्रत करने से इस पाप से प्रमुक्त होता है ॥१७–१८॥ जो कोई वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होने वाले पाप का व्यतिक्रम करे तो सत्पुरुषों के साथ विशेष रूप से निश्चय करके उसका प्रायश्चित्त जैसा भी वे बतावें करना चाहिए ॥१९॥ यति को सर्वदा विशुद्ध बुद्धि वाला और सुवर्ण तथा मिट्टी के ढ़ेले को एक सान दृष्टि से देखते हुए परम समाहित होकर समस्त प्राणियों में विचरण करना चाहिए । ऐसा यति शाश्वत, ध्रुव और अव्यय और सत्पुरुषों का परम स्थान प्राप्त करता है और फिर इस जगत् में जन्म ग्रहण नहीं करता है ॥२०॥

॥ अरिष्ट वर्णन ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत ।
येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यति चात्मनः ॥१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अरुन्धतीं ध्रुवञ्चैव सोम-च्छायां महापथम् ।
यो न पश्येत्स नो जीवेन्नरः संवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवन्तञ्च पावकम् :
यः पश्येन्न च जीवेत मासादेकादशात्परम् ॥३॥
वमेन्मूत्रं करीषं वा सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान् स जीवति ॥४
अग्रतः पृष्ठतो वापि खण्डं यस्य पदम्भवेत् ।
पांसुले कर्दमे वापि सप्तमासान्न स जीवति ॥५
काकः कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्द्धनि ।
क्रव्यादो वा खगः कश्चित् षण्मासान्नातिवर्त्तते ॥६
बध्ये द्वायसपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा पुनः ।
छायां वा विकृतां पश्येच्चतुः पञ्च स जीवति ॥७

श्रीवायुदेव ने कहा—अब आगे अरिष्टों को बताते हैं, उन्हें ज़ानलो जिस ज्ञान विशेष से अपनी मृत्यु को देखलेता है ॥१॥ जो अरुन्धती, ध्रुव, सोम की छाया और महापथ को नहीं देखता है वह मनुष्य एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहा करता है ॥२॥ जो मनुष्य बिना रश्मियों वाले सूर्य को तथा रश्मियों से युक्त पावक को देखता है वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहा करता है ॥३॥ जो मनुष्य मूत्र, करीष, सुवर्ण अथवा रजत का मन प्रत्यक्ष या स्वप्न में करता है वह दश मास तक जीवित रहता है ॥४॥ रेतीले स्थान में अथवा बीच में आगे या पीछे से जिसके पद खण्ड हों सात मास पर्यन्त जीवन धारण किया करता है ॥५॥ काक, कपोत अथवा गृध्र जिसके मस्तक पर निलीन हो जावे अथवा क्रव्याद या पक्षी बैठ जावे वह मनुष्य छँ मास से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥६॥ कौओं की पंक्तियों से अथवा पांशु की वर्षा से वध्य हो जावे अथवा विकृत छाया को देखे वह मनुष्य चार या पांच मास तक ही जीवित रहता है ॥७॥

अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ।
उदकेन्द्रधनुर्वापि त्रयो द्वौ वा स जीवति ॥८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ।
अशिरस्कं तथात्मानं मासादूर्द्ध्वं न जीवति ॥९
शवगन्धि भवेद्गात्रं वसागन्धि ह्यथापि वा ।
मृत्युर्ह्युपस्थितस्तस्य अर्द्धमासं स जीवति ॥१०
सम्भिन्नो मारुतो यस्य गर्भस्थानानि कृन्तति ।
अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥११
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशान्तु दक्षिणाम् ।
गायन्नथ व्रजेत् स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१२
कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाथ चाङ्गना ।
यन्नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१३
छिद्रं वासश्च कृष्णञ्च स्वप्ने यो विधृयान्नरः ।
भग्नं वा श्रवणं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥१४

मेघाडम्बर के बिना ही जो दक्षिण दिशा में आश्रित बिजली को देखता है अथवा उदक में इन्द्र धनुष को देखा करता है वह तीन या दो मास तक ही जीवित रहा करता है ॥८॥ जलमें अथवा दर्पण में जो अपने आपको नहीं देखता है अथवा बिना शिर वाला अपने आपको देखता है वह मनुष्य एक मास से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥९॥ जिसका शरीर शव की गन्ध के समान गन्धवाला हो जावे अथवा वसा (चर्वी) की गन्ध वाला हो जावे उस की मौत उपस्थित ही समझ लेना चाहिए । वह केवल १५ दिन तक ही जीवित रहा करता है ॥१०॥ सम्भिन्न वायु जिसके गर्भस्थानों को कृन्तित किया करता है और जल से स्पर्श हो जाने पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता है उस मनुष्य की मृत्यु उपस्थित ही समझ लेना चाहिए ॥११॥ जो रीछ या बन्दरों से युक्त रथ में गान करता हुआ दक्षिण दिशा में स्वप्न में जावे उसकी मौत उपस्थित ही जान लेनी चाहिए । १२॥ कृष्ण वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाली श्यामा अथवा जाती हुई अङ्गना स्वप्न में जो दक्षिण दिशा को ले जावे तो वह जीवित नहीं रहता है ॥१३॥ जो स्वप्न में छिद्र और कृष्ण वस्त्र को धारण करता है अथवा भग्न श्रवण को देखे उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिए ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आमस्तकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे ।
दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति ॥१५

भस्माङ्गारांश्च केशांश्च नदीं शुष्कां भुजङ्गमान् ।
पश्येद्यो दशरात्रन्तु न स जीवेत तादृशः ॥१६

कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति ॥१७

सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवा ।
क्रोशन्ती सम्मुखाम्योति स गतायुर्भवेन्नरः ॥१८

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् ।
जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत् ॥१९

भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा ।
दीपगन्धञ्च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥२०

रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम् ।
परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥२१

जो नीचे से मस्तक पर्यन्त पङ्क सागर में निमग्न हो जावे अथवा इस प्रकार का स्वप्न देखे वह तुरन्त ही शेष जीवन वाला हो जाता है ॥१५॥ जो कोई भस्म अङ्गार, केश, नदी जो सूखी हुई हो, और सर्पों को दश रात्रि तक स्वप्न में बराबर देखा करता है ऐसा आदमी जीवित नहीं रहा करता है ॥१६॥ कृष्ण वर्ण वाले और विकट आकार वाले तथा उद्यत हथियारों वाले पुरुषों के द्वारा जो स्वप्न में पाषाणों से ताड़ित किया जाता हो वह मनुष्य तुरन्त ही मृत्युगत हो जाता है और जीवित नहीं रहा करता है ॥१७॥ प्रातः काल में सूर्य के उदय समय में गीदड़ की मादा रोती हुई मुख के सामने से आती है वह मनुष्य गतायु होता है ॥१८॥ जिस पुरुष के केवल स्नान करने ही से हृदय में बहुत ही अधिक पीड़ा होती है और दन्तहर्ष होता है वह मनुष्य गतायु होता है अर्थात् यह समझ लेना चाहिए कि अब उसकी आयु समाप्त हो चुकी है। १९॥ जो बार-बार दिन में अथवा रात्रि में श्वास लिया करता है और दीप गन्ध को नहीं जानता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही समझ लेनी चाहिए ॥२०॥ जो मनुष्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रात्रि में तो देखता हो और दिन में नक्षत्र मण्डल को देखता हो और दूसरे के नेत्रों में अपने आप को नहीं देखता है वह जीवित नहीं रहा करता है ॥२१॥

नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः ।
नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ॥२२
यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्कभासं च वै मुखम् ।
गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२३
मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन् नृत्यश्च यो नरः ।
याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२४
यस्य स्वेदसमुद्भूताः श्वेतसर्षपसन्निभाः ।
स्वेदा भवन्ति ह्यसकृतस्य मृत्युरुपस्थितः ॥२५
उष्ट्रा वा रासभा वापि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः ।
यस्य सोपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ॥२६
द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूपं परं भवेत् ।
घोषं न शृणुयात् कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ॥२७
श्वभ्रे यो निपतेत् स्वप्ने द्वारश्चास्य न विद्यते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८

जिसके एक नेत्र में स्राव होता हो और कान दोनों अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये हों तथा नाक टेढ़ी हो गई हो उस मनुष्य को गतजीवित समझ लेना चाहिये ॥ २२ ॥ जिसकी जिह्वा काली और खरखरी हो गई हो तथा मुखपङ्क की कान्ति के समान कान्ति वाला हो गया हो एवं गण्ड-चिपिटक और रक्त हो गये हों उस मनुष्य की उपस्थिति नहीं समझ लेनी चाहिये ॥ २३ ॥ खुले हुये केशों वाला, हँसता हुआ, गाता हुआ और नाचता हुआ जो मनुष्य दक्षिण दिशा की ओर मुख किये हुये जाता है उसके जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य के पसीने में उत्पन्न होने वाली श्वेत सरसों के सदृश श्वेत कण बार-बार होते हैं उसकी मृत्यु उपस्थित ही जान लेनी चाहिये ॥२५॥ जिस मनुष्य के रथ में ऊँट अथवा गधे जुड़े हुये हों और स्वप्न में दक्षिण की ओर मुख किये हुये जाता हो वह मनुष्य भी जीवित नहीं रहा करता है ॥२६॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यहाँ पर ये दो परम अरिष्ट होते हैं और यह रूप भी पर होता है। कानों में ध्वनि न सुनाई देती हो और नेत्र में ज्योति नहीं देखता हो ॥ २७ ॥ स्वप्न में जो श्वभ्र में निपतित होवे और इसका द्वार न होवे और जो श्वभ्र से नहीं उठता है उसके जीवन का बिल्कुल अन्त समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥

ऊर्द्धा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्त्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा सुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥२९
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं योऽभिहन्यते ।
तं पश्येदथ हन्तारं स हतस्तु न जीवति ॥३०
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः ।
स्मृतिं नोपलभेच्चापि तदन्तं तस्य जीवितम् ॥३१
यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः ।
रक्तं कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥३२
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन् काल उपागते ।
त्यक्त्वा भयविषादश्च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नरः ॥३३
प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः ।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्ज्जिते ॥३४
उदङ् मुखः प्राङ् मुखो वा स्वस्थः स्वाचान्त एव च ।
स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
समकायशिरोग्रीवं धारयेन्नावलोकयेत् ॥३५

जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व हो तथा साम्प्रतिष्ठित रक्त एवं फिर सम्परिवर्त्तमान न हो, मुख की ऊष्मा (गर्मी) तथा नाभि सुषिरा हो एवं मूत्र अत्यधिक उष्ण हो ऐसा व्यक्ति विषम स्थिति में ही रहने वाला होता है ॥ २९ ॥ दिन में अथवा रात्रि में जो प्रत्यक्ष रूप से हन्यमान होता है उस मारने वाले को देखे जो हत हुआ है वह जीवित नहीं रहता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य स्वप्न के अन्त में अग्नि में प्रवेश किया करता है और स्मृति को उपलब्ध नहीं किया करता है उस मनुष्य के जीवन का अन्त ही समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अपना प्रावरण अर्थात् आच्छादन शुक्ल देखता है तथा स्वप्न में रक्त और कृष्ण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देखता है उसकी मृत्यु उपस्थित ही जाननी चाहिये ॥ ३२ ॥ अरिष्ट से सूचित देह में उस काल के उपस्थित होने पर भय और विषाद का त्याग करके बुद्धिमान मनुष्य को उद्गमन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ पूर्व या उत्तर दिशा में बाहिर निकलकर पवित्र हो जावे और अत्यन्त स्थावर समतल देश में जो कि एकान्त एवं जनों से विवर्जित हो, वहाँ पर उत्तर या पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्वस्थता से बैठ जावे तथा आचमन करे। स्वस्तिक पर उपनिष्ट होते हुये महेश्वर को प्रणाम करे। अपने पूरे शरीर को, ग्रीवा को तथा मस्तक को समस्थिति में रक्खे। इधर-उधर किसी भी ओर नहीं देखना चाहिये ॥ ३४—३५ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
प्रागुदक् प्रवणे देशे तस्माद्युंजीत योगवित् ॥३६
प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषोः स्पर्शने तथा ।
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् ॥३७
कालधर्मञ्च विज्ञाय समूहञ्चैव सर्वशः ।
द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते ॥३८
शतमष्ट शतं वापि धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ।
न तस्य धारणायागोद्वायुः सर्वं प्रवर्त्तते ॥३९
ततस्त्वापूरयेद्देहमोङ्कारेण समाहितः ।
अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्वक्षरी भवेत् ॥४०

जिस प्रकार निर्वात स्थान में रक्खा हुआ दीपक बिल्कुल भी उसकी ज्योति नहीं हिलती है वही उपमा यहाँ पर बताई गई है। प्राक्, उदक्, प्रवण देश में योग के ज्ञाता व्यक्ति को अभ्यास करना चाहिये ॥ ३६ ॥ रमण करते वाले प्राण में, नेत्रों में, स्पर्शन अर्थात् त्वगिन्द्रिय में, श्रोत्र में, मन में, बुद्धि में तथा वक्षःस्थल में धारण करे ॥ ३७ ॥ काल के धर्म को और सब ओर के समूह को जानकर द्वादश अध्यात्म हैं यही योग का धारण करना कहा जाता है ॥ ३८ ॥ सौ अथवा आठ सौ धारणा को मस्तक में धारण करना चाहिये। उसकी धारणायागोद्वायु सब प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर समाहित होकर ओङ्कार से देह को आपूरित करना चाहिये। इसके अनन्तर ओङ्कारमय योगी क्षरित न होते हुये अक्षरी हो जाता हैं ॥ ४० ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ ओङ्कार प्राप्ति लक्षण ॥

अत ऊर्द्ध प्रवक्ष्यामि ओङ्कार प्राप्ति लक्षणम् ।
एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यंजनश्चात्र सस्वरम् ॥१
प्रथमा वैद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता ।
तृतीया निर्गुणी विद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम् ॥२
गन्धर्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा ।
पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥३
तथा प्रयुक्तमोङ्कारं प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि ।
तथोङ्कारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत् ॥४
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥५
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म गुहायां निहितं पदम् ।
ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च ॥६
मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ।
तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यतां व्रजेत् ॥७

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बतलाते हैं। यह ओङ्कार तीन मात्रा वाला समझ लेना चाहिये इसमें व्यञ्जन जो होता है वह मुक्त होता है ॥ १ ॥ प्रथमा मात्रा वैद्युती होती है, द्वितीया मात्रा तामसी कही गई है और तृतीया मात्रा निर्गुणी होती है। इस प्रकार से अक्षरों में गमन करने वाली मात्रा को जाननी चाहिये ॥ २ ॥ गान्धार नामक स्वर से समुत्पन्न जो मात्रा है वह गन्धर्वी इस नाम से कही जाती है। पिपीलिका के समान स्पर्श करने वाली मूर्द्धा में प्रयुक्त की हुई दिखाई देती है ॥ ३ ॥ उस प्रकार से प्रयोग में लाया हुआ ओङ्कार मूर्द्धा में प्रतिनिर्वात होता है। इस तरह यह ओङ्कार से परिपूर्ण योगी अक्षर में अक्षरी हो जाता है ॥ ४ ॥ प्रणव धनुष है, आत्मा शर है और उसका लक्ष्य स्थान ब्रह्म होता है। यदि अप्रमत्त होते हुये वध्य हो तो शर की भाँति वह तन्मय हो जाता है ॥ ५ ॥ 'ओम्' यह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एकाक्षर वाला ब्रह्म पद गुहा में निहित है। 'ओम्'— यह तीन वेद हैं—तीन लोक हैं और तीन अग्नि हैं। ये तीनों ऋक्-साम और यजु विष्णु के क्रम हैं ॥ ६ ॥ यहाँ चार मात्राऐं हैं जो कि परमार्थ रूप से समझ लेनी चाहिये। उनमें युक्त जो योगी है वह सालोक्यता को जाता है ॥ ७ ॥

अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकारः स्वरितः स्मृतः।
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इति संगितः ॥८
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवरुच्यते।
सव्यंजनो मकारश्च स्वर्ल्लोकश्च विधीयते ॥६
ओङ्कारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम्।
भुवनान्तश्च सत्सर्वं ब्राह्मं तत्पदमुच्यते ॥१०
मात्रापदं रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिवं पदम्।
एवन्ध्यानविशेषेण तत्पदं समुपासते ॥११
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम्।
उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं पदमिच्छता ॥१२
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम्।
ततः प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते ॥१३
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः।
यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेवं हि ॥१४

इस में अकार को अक्षर समझना चाहिये और उकार स्वरित कहा गया है। मकार प्लुत जानना चाहिये। इस प्रकार से यह तीन मात्रा वाला संक्षिप्त होता है ॥ ८ ॥ इसमें जो अकार है वह भूलोक है और उकार भुवर्लोक कहा जाता है। व्यञ्जन के साथ मकार जो है वह स्वर्लोक होता है ॥ ६ ॥ ओङ्कार जो है वह तीन लोक हैं उसका शिर त्रिविष्टप होता है। वह सब भुवनान्त होता है। ब्राह्म उसका पद कहा जाता है ॥ १० ॥ मात्रा पद रुद्र-लोक है और जो अमात्र है वह शिव-पद होता है। इस प्रकार से ध्यान की विशेषता से उसके पद की समुपासना करते हैं ॥ ११ ॥ इससे ध्यान में रति रखने वाला होवे और नित्य मात्रारहित उस अक्षर की शाश्वत पद की इच्छा रखने वाले के द्वारा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रयत्न के साथ उपासना करनी चाहिये ।। १२ ।। प्रथमा जो मात्रा है वह ह्रस्व होती है इसके पश्चात् दीर्घा मात्रा होती है और उसके आगे फिर तृतीया जो मात्रा होती है वह प्लुता होती है अर्थात् प्लुत वाली होती है ।। १३ ।। ये यथा विधि आनुपूर्वी के क्रम से मात्राऐं जान लेनी चाहिये । जितनी ही हो सकें उतनी ही धारण की जाती हैं ।। १४ ।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिं ध्यायन्नात्मनि यः सदा ।
अत्राष्टमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ।।१५
मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
न स तत् प्राप्नुयात् पुण्यं मात्रया यदवाप्नुयात् ।।१६
अबिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे पिबेन्नरः ।
संवत्सरशतं पूर्णं मात्रया तदवाप्नुयात् ।।१७
इष्टापूर्त्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत् फलम् ।
अभक्षणे च मांसस्य मात्रया तदवाप्नुयात् ।।१८
स्वाम्यर्थे युध्यमानानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् ।
यद्भवेत्तत् फलं दृष्टं मात्रया तदवाप्नुयात् ।।१९
न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ।
यत् फलं प्राप्नुयात्तु सम्यग् मात्रया तदवाप्नुयात् ।।२०
तत्र वै योऽर्द्धमात्रो यः प्लुतो नामोपदिश्यते ।
एषा एव भवेत् कार्या गृहस्थानान्तु योगिनाम् ।।२१
एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्य समलक्षणा ।
योगिनान्तु विशेषेण एश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे ।
अणिमाद्येति विज्ञेया तस्माद्युंजीत तां द्विजः ।।२२

जो सदा आत्मा में इन्द्रियों को, मन को और बुद्धि को ध्यान करते हुए यदि यहाँ पर आठ मात्रा वाले का भी श्रवण करे तो फल को प्राप्त किया करता है ।। १५ ।। मास-मास में अर्थात प्रत्येक मास में जो सौ वर्ष तक अश्वमेधों का सृजन किया करता है वह भी उस पुण्य की प्राप्ति नहीं करता है जो मात्रा के द्वारा पुण्य प्राप्त होता है ।। १६ ।। जो कुशा के अग्रभाग से जल की बिन्दुओं

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को मास-मास में पीता है और बराबर सौ वर्ष तक पीता रहता है उसका जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ इष्टापूर्त्त-यज्ञ का सत्यवाक्य में जो फल होता है तथा मांस के न खाने में जो पुण्य होता है वह पुण्य मात्रा के द्वारा हो जाता है ॥ १८ ॥ अपने स्वामी के लिये युद्ध करते हुए शूरवीरों का जो कि पुनः जगत् में अनिवर्त्ती होते हैं, उनका जो पुण्य-फल होता है वही मात्रा से प्राप्त किया जाता है ॥ १९ ॥ अत्यन्त उग्र तप के द्वारा और भूरि दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वही फल भली भाँति मात्रा के द्वारा प्राप्त किया करते हैं ॥ २० ॥ वहाँ पर जो आधी मात्रा वाला प्लुत इस नाम से कहा जाता है यही गृहस्थ योगियों को करनी चाहिये ॥ २१ ॥ यही मात्रा विशेष रूप से ऐश्वर्य के समान लक्षण वाली होती है और आठ लक्षण वाले ऐश्वर्य में योगियों को विशेष रूप से होती है । अणि-मादि ये जाननी चाहिये । इससे द्विज को उसका युञ्जन करना चाहिये ॥२२॥

एवं हि योगी संयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः ।
आत्मानं विन्दते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विजः ॥२३
ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तकः ॥२४
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूतः स तु जायते ।
योगी सङ्क्रमणं कृत्वा याति वै शाश्वतं पदम् ॥२५
अपि चात्र चतुर्हस्तां ध्यायमानश्चतुर्मुखीम् ।
प्रकृतिं विश्वरूपाख्यां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥२६

अजामेतां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाम् ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।
अष्टाक्षरां षोडशपाणिपादां चतुर्मुखीं त्रिशिखामेकशृङ्गाम् ।
आद्यामजां विश्वसृजां स्वरूपां ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्वं व्रजन्ति ।
ये ब्राह्मणाः प्रणवं वेदयन्ति न ते पुनः संसरन्तीह भूयः ॥२७
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ।
यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः ॥२८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संसारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धनः ।
अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयः ।
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमोङ्कारप्राप्ति लक्षणम् ।।२९

जो इस प्रकार से शुचि, दमनशील, जितेन्द्रिय संयुक्त योगी, आत्मा का लाभ किया करता है वह ब्राह्मण सभी कुछ को प्राप्त कर लेता है ।। २३ ।। ध्यान में चिन्तन करने वाला ब्राह्मण योग के ज्ञान से ऋक्, यजु और सामवेद तथा उपनिषदों को प्राप्त कर लेता है अर्थात् एक मात्र योग के द्वारा सबका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।। २४ ।। समस्त भूतों का लय होकर वह बिना भूतों वाला अभूत हो जाता है । योगी संक्रमण करके शाश्वत पद की प्राप्ति कर लेता है । ।। २५ ।। और यहाँ पर भी चार हाथ की चार मुख वाली विश्व रूप नाम से युक्त प्रकृति को दिव्य चक्षु के द्वारा देखता है ।। २६ ।। लोहित कृष्ण और शुक्ल वर्ण वाली इस अजा को जो बहुत सी प्रजा का सृजन करने वाली अपने रूप में स्थित है, एक अज सेवन करता हुआ अनुशयन करता है और दूसरा अज भुक्त-भोगों वाली इसको त्याग देता है। आठ अक्षर वाली, सोलह हाथ और पदों वाली, चार मुख वाली, तीन शिखा से युक्त और एक श्रृंग वाली, आद्या, अजा और विश्व के सृजन करने वाले स्वरूप वाली को पण्डितगण जानकर अमृतत्व को प्राप्त किया करते हैं । जो ब्राह्मण प्रणव का वेदन किया करते हैं वे फिर यहाँ दुबारा संसार में नहीं आया करते हैं ।। २७ ।। यही ओङ्कार संज्ञा वाला अक्षर ब्रह्म है जो परम माना जाता है । जो इसे भली भांति जानता है तथा इसका फिर ध्यान किया करता है वह इस संसार के चक्र का त्यागकर बन्धनों के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है और अचल तथा निर्गुण शिव स्थान को निस्सन्देह प्राप्त करता है । यह इतना मैंने ओङ्कार की प्राप्ति का लक्षण बता दिया है ।। २९ ।।

नमो लोकेश्वराय सङ्कल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपतिष्ठते तद्वौहितं यद्ब्रह्मणे नमः । सर्वत्र स्थानिने निर्गुणाय सम्भक्तयोगीश्वराय च । पुष्करपर्णमिवाद्भिर्विशुद्धमिव ब्रह्ममुपतिष्ठेत्पवित्रं पवित्राणां पवित्रं पवित्रेण परिपूरितेव पवित्रेण ह्रस्वदीर्घप्लुतमिति तदेतमो-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ङ्कारमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्युपासेत अविद्येशानाय विश्वरूपो न तस्य अविद्येशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तनितं येन नाकस्तयोरन्तरिक्षमिमे वरीयसो देवानां हृदयं विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपम्यं चास्ति ओङ्कारोविश्वविश्वा वै यज्ञः यज्ञो वै वेदः वेदो वै नमस्कारः नमस्कारो रुद्रः नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नमः। इति सिद्धिप्रत्युपस्थानं सायंप्रातर्मध्याह्ने नमः इति। सर्वकामफलोरुद्रः। यथा वृन्तात् फलं पक्वं पवनेन समीरितम्। नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति ॥३०

सङ्कल्प कल्प ग्रहण स्वरूप लोक के स्वामी के लिये नमस्कार है। महान् को उपतिष्ठमान, वह जो हमारा हित है, ऐसे ब्रह्म के लिये नमस्कार है। सब जगह स्थान वाले, निर्गुण और सम्भक्त योगीश्वर के लिये नमस्कार है। जल से कमल पत्र की भाँति विशुद्ध ब्रह्म का उपस्थान कहे। परिपूरित पवित्रता से पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है और ह्रस्वदीर्घ प्लुत स्वरूप वाला उस ओङ्कार को जो शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध से हीन है उसकी उपासना करनी चाहिये। अविद्या के ईशान के लिये उसका विश्वरूप नहीं है ऐसे अविद्येशान के लिये नमस्कार है और योगीश्वर के लिये नमस्कार है जिसने द्यौ को उग्र किया, पृथिवी को दृढ़ बनाया, जिसने स्वः को विस्तृत किया, जिसने नाक (स्वर्ग) बनाया और इस अन्तरिक्ष को किया वरीयान, देवों का हृदय विश्व रूप उसका प्राणापानौपम्य नहीं है। ओङ्कार विश्व-विश्वा है, यज्ञ-यज्ञ है, वेद वेद है और नमस्कार नमस्कार है ऐसे रुद्र के लिये नमस्कार है तथा योगेश्वराधिपति के लिये नमस्कार है। यह सिद्धि का प्रत्युप स्थान है। सायं, प्रातः और मध्याह्न के लिये नमस्कार है। समस्त कामों का फल रुद्र है। जिस प्रकार वृन्त से पका हुआ फल वायु के द्वारा समीरित होता है वैसे ही नमस्कार से अर्थात् रुद्र को किये हुये नमन से पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ ३० ॥

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वधर्मफलो ध्रुवः।
अन्यदेवनमस्कारो न तत् फलमवाप्नुयात् ॥३१
तस्मात् त्रिषवणं योगी उपासीत महेश्वरम्।
दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्म विस्तरम् ॥३२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ओङ्कारं सर्वतः काले सर्वं विहितवान् प्रभुः ।
तेन तेन तु विष्णुत्वं नमस्कारं महायशाः ।।३३
नमस्कारस्तथा चैव प्रणवस्तुवते प्रभुम् ।
प्रणवं स्तुवते यज्ञो यज्ञं संस्तुवते नमः ।
नमस्तुवति वै रुद्रस्तस्याद्रुद्रपदं शिवम् ।।३४
इत्येतानि रहस्यानि यतीनां वै यथाक्रमम् ।
यस्तु वेदयते ध्यानं स परं प्राप्नुयात्पदम् ।।३५

जिस तरह रुद्रदेव के लिये किया हुआ नमस्कार समस्त धर्मों के फल वाला होता है और ध्रुव होता है वैसे अन्य देव के लिये किया हुआ नमस्कार वह फल प्राप्त नहीं कराता है ।। ३१ ।। इसलिये योगी का कर्त्तव्य है कि वह तीनों कालों में महेश्वर की उपासना करे। ब्रह्म दश विस्तारक होता है और वह ब्रह्म विस्तार है ।। ३२ ।। प्रभु ने सर्व काल में सबको ओङ्कार बनाया था। उस-उस से विष्णुत्व होता है। नमस्कार महान् यश वाला है ।। ३३ ।। नमस्कार प्रणव के लिये है, प्रणव प्रभु का स्तवन करता है। यज्ञ प्रणव का स्तवन करता है उस संस्तवन करने वाले के लिये नमस्कार है। नमः—यह रुद्र का स्तवन करता है इसलिये रुद्र पद ही शिव है ।। ३४ ।। यतियों के ये रहस्य हैं। इनको जो यथाक्रम जानता है और ध्यान करता है वह परम पद को प्राप्त किया करता है ।। ३५ ।।

।। कल्प-निरूपण ।।

ऋषीणामग्निकल्पानां नैमिषारण्यवासिनाम् ।
ऋषिः श्रुतिधरः प्राज्ञः सावर्णिर्नाम नामतः ।।१
तेषां सोप्यग्रतो भूत्वा वायुं वाक्यविशारदः ।
सातत्यं तत्र कुर्वन्तं प्रियार्थं सत्रयाजिनाम् ।
विनयेनोपसंगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ।।२
विभो पुराणसंबद्धां कथां वै वेदसंमिताम् ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् प्रसादात्सर्वदर्शिनः ।।३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हिरण्यगर्भो भगवान् ललाटान्नीललोहितम् ।
कथं तत्तोजसं देवं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ॥४
कथं च भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसंभवः ।
रुद्रत्वं चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः ॥५
कथं च विष्णो रुद्रेण सार्द्धं प्रीतिरनुत्तमा ।
सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमया गणाः ॥६
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ।
इत्येवं सततं देवा गायन्ते नात्र संशयः ।
भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरिः ॥७

श्री सूत जी ने कहा—नैमिषारण्य में निवास करने वाले अग्नि के समान ऋषियों में से श्रुति को धारण करने वाला परम पण्डित सावर्णि नाम वाले ऋषि थे ॥ १ ॥ वचन बोलने में महापण्डित उन सब में अग्रणी होकर सबका यजन करने वालों के प्रिय के लिये सर्वदा वहीं रहने वाले वायु के समीप विनय-पूर्वक उपस्थित होकर उस महान् युति वाले वायु से पूछा ॥ २ ॥ सावर्णि ने कहा—हे विभो ! पुराणों से सम्बद्ध तथा वेदों से संमित कथा को सर्वदर्शी आप से सुनने की हम इच्छा करते हैं आपके प्रसाद से उसे भली भाँति श्रवण करेंगे ॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भ भगवान् ने ललाट से नीललोहित अपने पुत्र उस तेजस्वरूप देव को कैसे प्राप्त किया था ? ॥ ४ ॥ कमल से जन्म ग्रहण करने वाले भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने आत्मज शर्व का फिर रुद्रत्व कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ ५ ॥ और भगवान् विष्णु की रुद्र के साथ किस तरह सर्वोत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ? समस्त विष्णुमय देव हैं और सम्पूर्ण गण विष्णुमय हैं ॥ ६ ॥ विष्णु के समान कोई भी गति नहीं होती है । इस प्रकार से समस्त देवता गान किया करते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । वह हरि नित्य ही भव को क्यों प्रणाम किया करते हैं ॥ ७ ॥

एवमुक्ते तु भगवान् वायुः सावर्णिमब्रवीत् ।
अहो साधु त्वया साधो पृष्टः प्रश्नो ह्यनुत्तमः ॥८
भवस्य पुत्रमन्मत्वं ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा ।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च ॥९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वाभ्यामपि च सम्प्रीतिर्विष्णोश्चैव भवस्य च।
यच्चापि कुरुते नित्यं प्रणामं शंकरस्य च।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च श्रृणुत ब्रुवतो मम ॥१०
मन्वन्तरस्य संहारे पश्चिमस्य महात्मनः।
आसीत्तु सप्तमः कल्पः पद्मो नाम द्विजोत्तम।
वाराहः साम्प्रतस्तेषां तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥११
कियता चैव कालेन कल्पः सम्भवते कथम्।
किं च प्रमाणं कल्पस्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१२
मन्वन्तराणां सप्तानां कालसंख्या यथाक्रमम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥१३
कोटीनां द्वे सहस्रे वै अष्टौ कोटिशतानि च।
द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः।
कल्पार्द्धस्य तु संख्यायामेतत् सर्वमुदाहृतम् ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—सावर्णि ऋषि के इस प्रकार से कहने पर भगवान् वायुदेव ने कहा—हे साधो! आपने यह बहुत ही अच्छा अत्युत्तम प्रश्न किया है ॥ ८ ॥ जिस तरह महादेव का ब्रह्मा से पुत्र का जन्म लेना हुआ और ब्रह्मा का पद्म योनित्व जैसे हुआ तथा शंकर का रुद्रत्व जिस प्रकार से हुआ ॥ ९ ॥ विष्णु और शिव इन दोनों की पारस्परिक प्रीति जिस तरह से हुई थी और जो नित्य ही विष्णु शंकर को प्रणाम किया करते हैं इन सब बातों को मैं तुम्हें विस्तार के साथ बताता हूँ और आनुपूर्वी के सहित बताता हूँ आप लोग मुझसे सब श्रवण करें ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तम! महात्मा पश्चिम मन्वन्तर के संहार हो जाने पर पद्म नाम वाला सप्तम कल्प था। उनमें इस समय वाराह कल्प है उसके विस्तार को बताता हूँ ॥ ११ ॥ सावर्णि ने कहा—कल्प कितने समय में होता है और वह कैसे होता है? कल्प का क्या प्रमाण होता है, यह पूछने वाले हम को बतलाइये ॥ १२ ॥ वायु ने कहा—सात मन्वन्तरों की काल की संख्या क्रम के अनुसार बतलाऊँगा। संक्षेप में बतलाते हुए मुझसे सब जान लो ॥१३॥ दो सहस्र आठ सौ करोड़ तथा सत्तर नियुत बासठ करोड़ कल्प के आधे भाग की यह संख्या कह दी गई है ॥ १४ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्वोक्तौ च गुणच्छेदौ वर्षाग्रं लब्धमादिशेत् ।
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः ।
द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च ॥१५
मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम् ।
एष कल्पस्तु विज्ञेयः कल्पार्द्धं द्विगुणीकृतः ॥१६
अनागतानां सप्तानामेतदेव यथाक्रमम् ।
प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम् ॥१७
नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च ।
चतुरशीतिश्चान्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः ॥१८
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ।
एतत् कालस्य विज्ञेयं वर्षाग्रन्तु प्रमाणतः ॥१९
एवं मन्वन्तरं तेषां मानुषान्तः प्रकीर्त्तितः ।
प्रणवान्ताश्च ये देवाः साध्या देवगणाश्च ये ।
विश्वे देवाश्च ये नित्याः कल्पं जीवन्ति ते गणाः ॥२०
अयं यो वर्त्तते कल्पो वाराहः स तु कीर्त्यते ।
यस्मिन् स्वायम्भुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्द्दश ॥२१

पूर्व में उक्त गुणच्छेद लब्ध वर्ष का अग्र बताना चाहिए । एक सौ अठहत्तर करोड़ दो सौ हजार नब्बे नियुत होता है ॥ १५ ॥ मानुष प्रमाण से जितना वैवस्वतान्तर है कल्प के अर्ध भाग को दुगुना करने पर वह कल्प जान लेना चाहिए ॥१६॥ अनागत सातों के काल की संख्या में प्रमाण भी यथाक्रम यही होता है, यह ऐश्वर मत है ॥ १७ ॥ अट्ठावन नियुत तथा अस्सी सौ और चौरासी अन्य प्रयुत प्रमाण से होते हैं ॥ १८ ॥ सप्तर्षिगण—मनु और इन्द्रादि देवगण यह काल का वर्षाग्र प्रमाण जान लेना चाहिए ॥ १९ ॥ इसी प्रकार से उनका मन्वन्तर मानुषान्त कहा गया है । प्रणवान्त जो देवता है, साध्य और जो देवगण हैं और जो नित्य विश्वेदेवा हैं वे सब गण एक कल्प पर्यन्त जीवित रहा करते हैं । यह जो कल्प वरत रहा है वह वाराह इस नाम से कहा जाता है । जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु होते हैं ॥ २०-२१ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतः परिकीर्तितः ।
कस्माच्च कारणाद्देवो वराह इति कीर्त्यते ॥२२
को वा वराहो भगवान् कस्य योनिः किमात्मकः ।
वराहः कथमुत्पन्न एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२३
वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः ।
वाराहश्च यथा कल्पः कल्पत्वं कल्पना च या ॥२४
कल्पयोरन्तरं यच्च तस्य चास्य च कल्पितम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥२५
भवस्तु प्रथमः कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा ।
ज्ञातव्यो भगवानत्र ह्यानन्दः साम्प्रतः स्वयम् ॥२६
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं प्राप्तं वा दिव्यसम्भवम् ।
द्वितीयस्तु भुवः कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ॥२७
भवश्चतुर्थो विज्ञेयः पंचमो रम्भ एव च ।
ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृतः ॥२८

ऋषियों ने कहा—यह नाम से वाराह कल्प क्यों कहा गया है और किस कारण देव वाराह इस नाम से पुकारे जाते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वाराह कौन थे ? किससे उत्पन्न हुए और क्या उनका स्वरूप था ? वाराह उत्पन्न कैसे हुए, यह सभी हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥ २३ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—वाराह जिस तरह से उत्पन्न हुए और जिस अर्थ में कल्पित हुए तथा जिस प्रकार से यह वाराह कल्प हुआ और जो कल्पत्व और कल्पना है ॥ २४ ॥ दो कल्पों में जो अन्तर है उसका और इसका जो कल्पित है वह सभी जैसा हम ने देखा है और सुना है कहेंगे ॥ २५ ॥ पहिले लोक के आदि में भव यह प्रथम कल्प प्रसिद्ध हुआ था । यहाँ भगवान् स्वयं साम्प्रत आनन्द जानने चाहिए ॥ २६ ॥ यह दिव्य ब्रह्म स्थान है अथवा दिव्य-सम्भव है । दूसरा भुवः कल्प है, तीसरा तपः कल्प कहा जाता है । २७ ॥ चतुर्थ भव-कल्प जानना चाहिए और पंचम रम्भ-कल्प होता है । छठा ऋतु कल्प होता है और सातवाँ क्रतु इस नाम से कल्प कहा गया है ॥ २८ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवहनः ।
सावित्रो दशमः कल्पो भुवस्त्वेकादशः स्मृतः ।।२९
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदशः ।
चतुर्द्दशस्तु गन्धर्वो गान्धर्वो यत्र वै स्वरः ।
उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिताः ।।३०
ऋषभस्तु ततः कल्पो ज्ञेयः पंचदशो द्विजाः ।
ऋषयो यत्र सम्भूताः स्वरो लोकमनोहरः ।।३१
षड्जस्तु षोडशः कल्पः षड् जना यत्र चर्षयः ।
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च ।।३२
शरद्धेमन्त इत्येते मनसा ब्रह्मणः सुताः ।
उत्पन्नाः षड्ज संसिद्धाः पुत्राः कल्पे तु षोडशे ।।३३
यस्माज्जातैश्च तैः षड्भिः सद्यो जातो महेश्वरः ।
तस्मात् समुत्थितः षड्जः स्वरस्तूदधिसन्निभः ।।३४
ततः सप्तदशः कल्पो मार्जालीय इति स्मृतः ।
माज्जर्लीयं तु तत् कर्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत् ।।३५

आठवाँ वह्नि नाम वाला कल्प होता है और नवम कल्प हव्य वाहन नाम वाला होता है। सावित्र इस नाम वाला दशम कल्प होता है और भुवः इस नाम से एकादश कल्प प्रसिद्ध होता है।। २९ ।। उशिक बारहवाँ और कुशिक तेरहवाँ कल्प होता है । चौदहवाँ कल्प गन्धर्व होता है जहाँ गान्धर्व स्वर उत्पन्न हुआ जिसके नाद से यहाँ गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। इसके पश्चात् पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ नाम वाला हुआ। जहाँ द्विज ऋषिवर्ग उत्पन्न हुए और लोक मनोहर स्वर उत्पन्न हुआ था ।। ३०-३१ ।। षड्ज सोलहवाँ कल्प है जहाँ छै जन ऋषि हैं। शिशिर और वसन्त, निदाघ और वर्षा, शरद और हेमन्त ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र उत्पन्न हुए और सोलहवें कल्प में षड्ज से संसिद्ध हुए थे ।। ३२-३३ ।। जिससे उत्पन्न उन छै से तुरन्त ही महेश्वर उत्पन्न हुए उनसे उदधि के तुल्य षड्ज स्वर उठ खड़ा हुआ ।। ३४ ।। इसके पश्चात् सत्रहवाँ कल्प मार्जालीय इस नाम से कहा गया है। मार्जालीय वह कर्म है जिससे ब्राह्म की कल्पना की गई है ।। ३५ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टादश उच्यते ।
यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः ।
उत्पन्नः सर्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयंभुवः ॥३६
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकः स्मृतः ।
वैराजो यत्र भगवान् मनुर्वै ब्रह्मणः सुतः ॥३७
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिकः ।
प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः ॥३८
अकामयत गायत्री यजमानं प्रजापतिम् ।
तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धः पुत्रस्तस्य दधीचिनः ॥३६
ततो विंशतिमः कल्पो निषादः परिकीर्त्तितः ।
प्रजापतिस्तु तं दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभवं तदा ।
विरराम प्रजाः स्रष्टुं निषादस्तु तपोऽतपत् ॥४०
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारो जितेन्द्रियः ।
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४१
ऊर्द्ध्वबाहुं तपोग्लानं दुःखितं क्षुत्पिपासितम् ।
निषीदेत्यब्रवीदेनं पुत्रं शान्त पितामहः ।
तस्मान्निषादः सम्भूतः स्वरस्तु स निषादवान् ॥४२

इसके पश्चात् मध्यम इस नाम वाला अठारहवाँ कल्प कहा जाता है। जिसमें धैवत पूजित मध्यम इस नाम वाला स्वर उत्पन्न हुआ। समस्त प्राणियों में मध्यम स्वयम्भुव है ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर उन्नीसवाँ कल्प वैराजक कहा गया है। जहाँ भगवान् वैराज ब्रह्मा के पुत्र मनु हुए हैं ॥ ३७ ॥ उनके पुत्र महात्मा दधीचि परम धार्मिक हुए। त्रिदशेश्वर महान् तेज वाले प्रजापति हुए थे ॥ ३८ ॥ गायत्री ने यजमान प्रजापति की कामना की थी। उससे उस दधीचि का पुत्र स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर बीसवाँ कल्प निषाद इस नाम से परिकीर्त्तित हुआ है। उस समय प्रजापति ने स्वयम्भू से उत्पन्न उसे देखकर प्रजा के सृजन के कार्य से विराम ले लिया था। इसके अनन्तर निषाद ने तपश्चर्या आरम्भ करदी ॥ ४० ॥ निषाद ने एक सहस्र

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिव्य वर्षों तक निराहार और जितेन्द्रिय होकर तपश्चर्या की थी, तब लोक के पितामह महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उससे कहा ॥४१॥ यह निषाद उस समय में ऊर्ध्व बाहुओं वाला—तप से अत्यन्त ग्लान—परम दुःखित और भूख-प्यास से युक्त होकर तप कर रहा था। तब पितामह ने इस शान्त अपने पुत्र से कहा—'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ। इससे निषाद वाला वह निषाद स्वर उत्पन्न हुआ था ॥४२॥

एकविंशतिमः कल्पो विज्ञेयः पञ्चमो द्विजाः।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४३
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः पञ्चैते ब्रह्मणः समाः।
तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वरः ॥४४
यस्मात्परिगतैर्गीतः पञ्चभिस्तैर्महात्मभिः।
स्वरस्तु पञ्चमः स्निग्धः तस्मात्कल्पस्तु पञ्चमः ॥४५
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहनः।
यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम्।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु अवहत् कृत्तिवाससम् ॥४६
तस्य निःश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात्।
निर्जगाम महाकायः कालो लोकप्रकाशनः।
यस्त्वयं पठ्यते विप्रैर्विष्णुर्वै कश्यपात्मजः ॥४७
त्रयोविंशतिमः कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा।
प्रजापतिसुतः श्रीमान् चितिश्च मिथुनश्च तौ ॥४८
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता।
तस्मात्तु चिन्तकः सो वै कल्पः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥४९

हे द्विजगणों ! इक्कीसवाँ कल्प पञ्चम जानना चाहिए। प्राण—अपान—उदान—समान और व्यान ये ब्रह्माजी के मानस पाँच पुत्र जो कि ब्रह्मा के ही तुल्य थे उत्पन्न हुए। उनके द्वारा युक्त अर्थवादियों ने वाणियों के द्वारा महेश्वर की उपासना की थी ॥४३। ४४॥ जिस कारण से महान् आत्मा वाले उन परिगत पाँच गीतों से गाये गये पञ्चम स्वर बहुत ही स्निग्ध हुए इसी कारण से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पञ्चम कल्प हुआ ॥४५॥ बाईसवाँ कल्प तो मेघवाहन इस नाम वाला जानना चाहिए, जहाँ पर महाबाहु विष्णु भगवान् ने मेघ होकर कृत्ति वस्त्र वाले महेश्वर को एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त वहन किया था ॥४६॥ भार से आक्रान्त नि.श्वास लेते हुए उसके मुख से महान् काया वाला लोक को प्रकाश देने वाला काल निकला था जो कि यह विष्णु ब्राह्मणों के द्वारा कश्यप का पुत्र पढ़ा जाता है ॥४७॥ तेईसवाँ कल्प चिन्तक जानना चाहिए। प्रजापति का पुत्र श्रीमान् त्रिति है और वे दोनों का जोड़ा है। ४८॥ ब्रह्म का ध्यान करते हुए ही चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी, यही कारण है जिससे स्वयम्भू के द्वारा वह चिन्तक कल्प कहा गया है ।४९॥

चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूतिः कल्प उच्यते ।
आकूतिश्च तथा देवी मिथुनं सम्बभूव ह ॥५०
प्रजाः स्रष्टुं तथाकूतिं यस्मादाह प्रजापतिः ।
तस्मात् स पुरुषोज्ञेय आकूतिः कल्पसंज्ञितः ॥५१
पञ्चविंशतिमः कल्पो विज्ञातिः परिकीर्त्तितः ।
विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुनं सम्प्रसूयते ॥५२
ध्यायतः पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसंज्ञितम् ।
विज्ञातं वै समासेन विज्ञातिस्तु ततः स्मृतः ॥५३
षड्विंशस्तु ततः कल्पो मन इत्यभिधीयते ।
देवी च शाङ्करी नाम मिथुनं सम्प्रसूयते ॥५४
प्रजा वै चिन्तमानस्य स्रष्टुकामस्य वै तदा ।
यस्मात् प्रजासम्भवनादुत्पन्नस्तु स्वयम्भुवा ।
तस्मात् प्रजासम्भवनाद्भावनासम्भवः स्मृतः ॥५५
सप्तविंशतिमः कल्पो भावो वै कल्पसंज्ञितः ।
पौर्णमासी तथा देवी मिथुनं समपद्यत ॥५६

चौबीसवाँ कल्प आकूति कल्प कहा जाता है। आकूति और देवी दोनों का मिथुन हुआ था ॥५०॥ क्योंकि प्रजापति ने आकूति से प्रजा के सृजन करने के लिये कहा था, इसी से वह पुरुष आकूति कहा गया और उसके नाम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से कल्प जानना चाहिए ।।५१।। पच्चीसवाँ कल्प विज्ञाति नाम से कहा गया है। विज्ञाति और देवी का मिथुन सम्प्रसूत होता है ।।५२।। मन में अध्यात्म संज्ञा वाले का ध्यान करते हुए पुत्र की कामना के होने से संक्षेप जाना गया अतएव विज्ञात होने से वह विज्ञाति कहा गया है ।।५३।। छब्बीसवाँ कल्प मन इस नाम से कहा जाता है और शाङ्करी देवी से यह मिथुन सम्प्रसूत किया जाता है ।।५४।। उस समय प्रजा की चिन्ता करते हुए प्रजा की सृष्टि की कामना वाले के प्रजा के सम्भवन होने से स्वयम्भू के द्वारा उत्पन्न है इसलिये प्रजा के सम्भवन से भावना सम्भव कहा गया है ।।५५।। सत्ताईसवाँ कल्प का नाम भाव कहा हुआ है तथा पौर्णमासी देवी से यह मिथुन उत्पन्न हुआ ।।५६।।

प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
ध्यायतस्तु परं ध्यानं परमात्मानमीश्वरम् ।।५७
अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा रश्मिजालसमावृतः ।
भुवन्दिवञ्च विष्टभ्य दीप्यते स महावपुः ।।५८
ततो वर्षसहस्रान्ते सम्पूर्णे ज्योतिमण्डले ।
आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यत् सूर्यमण्डलम् ।।५९
यस्मादहश्यो भूतानां ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
दृष्टस्तु भगवान् देवः सूर्य्यः सम्पूर्णमण्डलः ।।६०
सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिताः ।
यस्मात् कल्पो ह्ययं दृष्टस्तस्मात्तं दर्शमुच्यते ।।६१
यस्मान्मनसि सम्पूर्णो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुरा वै भगवान् सोमः पौर्णमासी ततः स्मृता ।।६२
तस्मात्तु पर्वदर्शे वै पौर्णमासश्च योगिभिः ।
उभयोः पक्षयोर्ज्येष्ठमात्मनो हितकाम्यया ।।६३

प्रजा के सृजन की कामना रखने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा परमात्मा ईश्वर का ध्यान करते हुए रश्मि जाल से समावृत अग्नि मण्डलीभूत होकर भू और दिव दोनों को विष्टब्ध करके महान् वपु वाला वह दीप्यमान होता है ।।५७-५८।। इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष के अन्त में सम्पूर्ण ज्योति-मण्डल में आविष्ट होने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाली के साथ उत्पन्न होने वाले सूर्य मण्डल को देखा ।।५६।। परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा अदृश्य वह फिर भूतों को भगवान् सम्पूर्ण मण्डल वाले सूर्यदेव दृष्ट हुए अर्थात् पूर्ण रूप से दिखाई देने लगे ।।६०।। समस्त योग और मन्त्र उस मण्डल के साथ ही उत्थित हो गये थे । क्योंकि यह कल्प देखा गया है, इसी से इसका नाम दर्शम्–यह कहा जाता है ।।६१।। क्योंकि पहिले परमेष्ठी ब्रह्म के मन में भगवान् सोम थे, इसके पश्चात् पौर्णमासी कही गई है ।।६२।। इससे पर्वदर्श में योगियों के द्वारा अपने हित की कामना से दोनों पक्षों में पौर्णमास ज्येष्ठ होता है ।।६३।।

दर्शश्च पौर्णमासश्च ये यजन्ति द्विजातयः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ।।६४
योऽनाहिताग्निः प्रयतो वीराध्वानं गतोपि वा ।
समाधाय मनस्तीव्रं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः ।।६५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो मही दिवस्त्वं शर्वो मारुतं पृट ईशिषे ।
त्वं पाशगन्धर्वशिषं पूषा विधत्तपासिना ।
इत्येव मन्त्रं मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विजः ।
अग्निं प्रविशते यस्तु रुद्रलोकं स गच्छति ।।६६
सोमश्चाग्निस्तु भगवान् कालो रुद्र इति श्रुतिः ।
तस्माद्यः प्रविशेदग्निं स रुद्रान्न निवर्त्तते ।।६७
अष्टा विंशतिमः कल्पो बृहदित्यभिसंज्ञितः ।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य स्रष्टुकामस्य वै प्रजाः ।
ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथन्तरम् ।।६८
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहतः सर्वतोमुखः ।
तस्मात्तु बृहतः कल्पो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ।।६९
अष्टाशीतिसहस्राणां योजनानां प्रमाणतः ।
रथन्तरन्तु विज्ञेयं परमं सूर्य्यमण्डलम् ।
तस्मादण्डन्तु विज्ञेयमभेद्यं सूर्यमण्डलम् ।।७०
यत्सूर्यमण्डलञ्चापि बृहत्साम तु भिद्यते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भित्वा चैनं द्विजायान्ति योगात्मानो दृढव्रताः ।
सङ्घातमुपनीताश्च अन्ये कल्पा रथन्तरे ।।७१
इत्येतत्तु मया प्रोक्तं चित्रमध्यात्मदर्शनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि कल्पानां विस्तरं शुभम् ।।७२

जो द्विजाति गण दर्श और पौर्णमास का यजन किया करते हैं, उनकी फिर ब्रह्मलोक से पुनरावृत्ति कदाचन ही होती है ।।६४।। जो व्याहित अग्नि वाला न हो वह वीराध्वा को गया हुआ भी मन को समाहित करके शनैः मन्त्र का उच्चारण करते हैं ।।६५।। मन्त्र यह है—हे अग्ने ! आप रुद्र हैं, असुर हैं, मही हैं, दिव हैं, शर्व हैं और मारुत हैं । आप पूछे हुए हैं, समर्थ हैं, आप पाश-गन्धर्व शिव हैं और विवत्त पाणी के द्वारा पूषा हैं-- इस इतने मन्त्र को मन से द्विज भली-भाँति धीरे से उच्चारण करे । जो अग्नि की अर्चना करता है वह रुद्र के लोक को चला जाता है ।।६५।।६६।। सोम और अग्नि भगवान् काल रुद्र हैं, यह श्रुति है । इसलिये जो अग्नि अचंना करता है वह रुद्र से निवर्तमान नहीं होता है ।।६७।। अट्ठाईसवाँ कल्प 'बृहत्'–इस संज्ञा वाला होता है । पुत्र की इच्छा वाले और प्रजा की सृजन-कामना वाले ब्रह्मा के मन से ध्य न करते हुए बृहत्साम रथन्तर हुआ ।।६८।। क्योंकि वहाँ सर्वतोमुख बृहत् उत्पन्न हुआ था, इसीलिये तत्त्वों के चिन्तकों के द्वारा यह बृहतः कल्प जानने के योग्य हुआ है । ।।६६।। अट्ठासी हजार योजनों के प्रमाण से परम रथन्तर सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । इसलिये यह अण्ड न भेदन करने के योग्य सूर्य-मण्डल जानना चाहिए । ।।७०।। जो बृहत् साम सूर्यमण्डल भी भिद्यमान होता है । दृढ़ व्रत वाले योगात्मा द्विज इसका भेदन करके जाया करते हैं । सङ्घात को उपनीत अन्य कल्प- रथ-न्तर में होते हैं । मैंने यह अध्यात्म दर्शन चित्र बतला दिया है । इससे आगे कल्पों का शुभ विस्तार बताऊँगा ।।७१।।७२।।

।। कल्प-संख्यानिरूपण ।।

अत्यद्भुतमिदं सर्वं कल्पानान्ते महामुने ।
रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणाञ्च प्रकल्पनम् ।।१
न तवाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्माद्विस्तरतः सर्वाः कल्पसंख्या ब्रवीहि नः ॥२
अत्र वः कथयिष्यामि कल्पसंख्यां यथा तथा ।
युगाग्रं च वर्षाग्रन्तु ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥३
एकं कल्पसहस्रन्तु ब्रह्मणोऽब्दः प्रकीर्त्तितः ।
एतदष्टसहस्रन्तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम् ॥४
एकं युगसहस्रन्तु सवनं तत् प्रजापतेः ।
सवनानां सहस्रन्तु द्विगुणं त्रिवृतं तथा ॥५
ब्रह्मणः स्थितिकालस्य चैतत् सर्वं प्रकीर्तितम् ।
तस्य संख्यां प्रवक्ष्यामि पुरस्ताद्वै यथाक्रमम् ॥६
अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामतः परिकीर्तिताः ।
तेषां पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसंज्ञां यथाक्रमम् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! आपने यह अत्यन्त ही अद्भुत कल्पों का सम्पूर्ण रहस्य और मन्त्रों का प्रकल्पन बताया है ॥१॥ तीनों लोकों में ऐसी कुछ भी वस्तु नहीं है जो आपको अविदित हो अर्थात् जिसे आप नहीं जानते हों—तात्पर्य यही है कि आप सभी कुछ जानते हैं । इसलिये आप हमारे सामने समस्त कल्पों की संख्या विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ॥२॥ वायुदेव ने कहा—यहाँ मैं आपके आगे यथातथ्य कल्पों की संख्या–युग का अग्रभाग और परमेष्ठी ब्रह्माजी के वर्षों के अग्रभाग को बतलाता हूँ ॥३॥ एक सहस्र कल्पों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है । इनका आठ सहस्र ब्रह्मा का युग कहा गया है ॥४॥ एक युग सहस्र प्रजापति का सवन होता है । इस तरह सवनों का सहस्र तथा द्विगुण एवं त्रिवृत यह सब ब्रह्मा की स्थिति का काल बताया गया है । उसकी संख्या यथाक्रम पहिले बताऊँगा ॥५॥६॥ कल्पों की अट्ठाईस संख्या नाम से बतला दी गई है । उनकी पहिले कल्प संज्ञा को यथाक्रम कहूँगा ॥७॥

रथन्तरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत ।
कल्पान्ते नाम धेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्च यस्य या ॥८
एकोनविंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ।
यस्मिंस्तत् परमध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिखी ।
उत्पन्नस्तु महातेजाः कुमारः पावकोपमः ।।१०
भीमं मुखं महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम् ।
दीप्तं दीप्तेन वपुषा महास्यं श्वेतवर्च्चसम् ।।११
तं दृष्ट्वा पुरुषः श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः ।
कुमारं लोकधातारं विश्वरूपं महेश्वरम् ।।१२
पुराणपुरुषं देवं विश्वात्मा योगिनां चिरम् ।
ववन्दे देवदेवेशं ब्रह्मा लोकपितामहः ।।१३
हृदि कृत्वा महादेवं परमात्मानमीश्वरम् ।
सद्योजातं ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत् ।
ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हासं जगत्पतिः ।।१४

रथन्तर का साम का ऊपर से समझ लो, जिसकी जो मन्त्रोत्पत्ति है और जो नामधेय हैं ।।८।। उन्नीसवाँ कल्प श्वेत लोहित जानना चाहिए जिसमें ध्यान करने वाले ब्रह्माजी का परम ध्यान है ।।९।। श्वेत उष्णीष (पगड़ी) वाला—श्वेत माला धारण करने वला—श्वेत वस्त्र धारी—महान् तेज से युक्त पावक के समान दीप्ति वाला शिखी कुमार उत्पन्न हुआ ।।१०।। जिसका मुख भीम—महान् रौद्र—सुघोर और श्वेत लोहित है । दीप्त वपु से दीप्यमान—महान् मुख वाले और श्वेत वर्चस उसको देखकर विश्वतोमुख श्रीमान पुरुष ब्रह्माजी ने लोकों के धाता—विश्वरूप—महेश्वर—कुमार और पुराण पुरुष देव-देव को विश्वात्मा लोक पितामह की वन्दना की ।। ११—१२—१३ ।। परमात्मा ईश्वर महादेव को हृदय में स्थित करके ब्रह्म तुरन्त उत्पन्न हुआ है ऐसा ब्रह्माजी ने चिन्तन किया और ज्ञान प्राप्त करके परम प्रसन्न देवेश जगत्पति ने हास्य किया ।। १४ ।।

ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्च्चसः ।
प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपनाः ।।१५
सुदन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दनः ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम् ।।१६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्याग्रे श्वेत वर्णाभः श्वेतनामा महामुनिः ।
विजज्ञेऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञे नरस्त्वसौ ।।१७

तत्र ते ऋषयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम् ।
तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपश्यन्ति वै द्विजाः ।
प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिनः ।।१८

ते सर्वे पापनिर्म्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्च्चसः ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति च ।।१९

ततस्त्रिशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्त्तितः ।
रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्ण मधारयत् ।।२०

ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तविग्रहः ।
रक्तमाल्याम्बर धरो रक्तनेत्रः प्रतापवान् ।।२१

इसके अनन्तर इसके पार्श्व में ब्रह्मवर्चस श्वेत ऋषिगण प्रादुर्भूत हुए जो महान् आत्मा वाले और श्वेतमाल्य तथा अनुलेपन वाले थे ।। १५ ।। सुनन्द, नन्दक, विश्वनन्द और नन्दन ये महान् आत्मा वाले शिष्य थे जिनसे वह ब्रह्म आवृत था ।। १६ ।। उसके आगे श्वेतवर्ण की आभा वाले श्वेत नाम वाले महामुनि उत्पन्न हुए जिससे महान् तेज वाला यह नर उत्पन्न हुआ था ।। १७ ।। वहाँ वे सब ऋषिगण सद्यः उत्पन्न हुए विश्वेश्वर महेश्वर देव को देखते हैं और जो ब्राह्मण उसका दर्शन करते हैं वे प्राणायाम में परायण तथा ब्रह्म में व्यवसाय से युक्त थे ।। १८ ।। वे सब पापों से निर्मुक्त हुए विना मल वाले ब्रह्मवर्चस ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके ब्रह्मलोक को चले जाते हैं ।। १९ ।। इसके पश्चात् श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर तीसवां जो कल्प था वह रक्त–इस नाम से कहा गया है । जहाँ महान् तेज से युक्त रक्त था उसने रक्तवर्ण को धारण किया था ।। २० ।। पुत्र की कामना वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के ध्यान करते हुए महान् तेज वाला रक्त विग्रह से युक्त कुमार उत्पन्न हुआ था जो रक्तमाल्य और रक्त वस्त्र के धारण करने वाला रक्त नेत्रों वाला तथा प्रताप वाला था ।। २१ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम् ।
ध्यानयोगं परङ्गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् ।।२२
स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः ।
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत् ।।२३
एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् ।।२४
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेहं पितामहः ।
दृष्टः परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम ।।२५
तस्माद्ध्यानं परं प्राप्य कल्पे कल्पे महातपाः ।
वेत्स्यसे मां महासत्व लोकधातारमीश्वरम् ।
एवमुक्त्वा ततः शर्वः अट्टहासं मुमोच ह ।।२६
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः ।
सम्बभूवर्म महात्मानो विरेजुः शुद्धबुद्धयः ।।२७
विरजश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ।।२८

उस रक्त-वस्त्र धारी महादेव कुमार को उसने देखकर और पर ध्यान-योग में स्थित होकर विश्व-रूप ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया ।। २२ ।। भगवान परम यन्त्रित ब्रह्मा जी ने उसको प्रणाम करके फिर ब्रह्मा जी ने ब्रह्मात्मक वाम-देव का विशेष रूप से चिन्तन किया ।। २३ ।। इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा ध्यान किये हुए महादेव प्रीति से युक्त मन से पितामह से कहा ।। ३४ ।। हे सत्तम ! पुत्र की कामना रखने वाले और ध्यान करने वाले तुमने पितामह मुझे परम भक्ति से तथा ध्यान के योग से देखा था ।। २५ ।। इसलिये परम ध्यान प्राप्त करके महान् तप वाले कल्प-कल्प में हे महासत्व ! लोकों के धाता ईश्वर मुझको भली भाँति जान लोगे । इस प्रकार से कह कर पश्चात् शर्व ने बड़ा अट्टहास किया था ।। २६ ।। इसके पश्चात् उसके महान् आत्मा वाले चार कुमार उत्पन्न हुए थे और शुद्ध बुद्धि वाले महात्मा विशेष रूप से दीप्तिमान हुए थे ।। २७ ।। वे विरज, विवाह, विशोक और विश्वमानव थे तथा ब्रह्मण्य, वीर, अध्यवसायी और ब्रह्मा के ही तुल्य थे ।। २८ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः ।
रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचनाः ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिनः ।
गृणन्तश्च माहात्मानो ब्रह्म तद्वामदेवकम् ॥३०
अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया ।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्राह्मणाः स्वयम् ।
पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥३१
येऽपिचान्ये द्विजश्रेष्ठा युंजाना वाममीश्वरम् ।
प्रपद्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः ॥३२
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः ।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३३

सब रक्त-वस्त्रों के धारण करने वाले और रक्त-माल्य तथा अनुलेपन से युक्त थे। वे रक्त भस्म से अनुलिप्त अङ्गों वाले, रक्त मुख से युक्त तथा रक्त नेत्रों वाले थे ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्षों के अन्त में वे ब्रह्मण्य-महात्मा और व्यवसायी उस वामदेव ब्रह्म को ग्रहण करने वाले थे ॥ ३० ॥ लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये और शिष्यों के हित की कामना से समस्त धर्म का उपदेश करके वे ब्राह्मण स्वयं पुनः अव्यय रुद्र स्वरूप महादेव में प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ और जो भी अन्य श्रेष्ठ द्विज वाम ईश्वर के पुंजान होते हुए उनके परम भक्त एवं उन ही में परायण रहने वाले थे वे महादेव को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ वे सभी पापों से छुटकारा पाने वाले होकर विमल अर्थात् मल से रहित विशुद्ध होने वाले ब्रह्मवर्चस रुद्र लोक को जाते हैं जहाँ से फिर इस संसार में आवृत्ति दुर्लभ हुआ करती है ॥ ३३ ॥

॥ माहेश्वरावतार-योग ॥

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ।
ब्रह्मा यत्र महातेजाः पीतवर्णत्वमागतः ॥१
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवान् ॥२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पीतगन्धानुलिप्ताङ्ग. पीतमाल्यधरो युवा ।
पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीवो महाभुजः ॥३
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ब्रह्मा लोकेश्वरं प्रभुम् ।
मनसा लोकधातारं ववन्दे परमेश्वरम् ॥४
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं पराम् ।
अपश्यद्‌गां विरूपां च महेश्वरमुखच्युताम् ॥५
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम् ।
चतुर्न्नेत्रां चतुःश्रृङ्गीं चतुर्द्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ।
द्वात्रिंशल्लोकसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखीम् ॥६
स तां दृष्ट्वा महातेजाः महादेवीं महेश्वरीम् ।
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः ॥७

श्री वायुदेव ने कहा इकत्तीसवाँ कल्प पीतवासा इस नाम से कहा गया है जहाँ महान् तेज वाला ब्रह्मा पीत वर्णता को प्राप्त हो गया है ॥ १ ॥ पुत्र के पाने की कामना से युक्त ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के पीत-वस्त्र वाला तथा महान् तेज से युक्त कुमार प्रादुर्भूत हुआ था ॥ २ ॥ वह कुमार पीत गन्ध से अनुलिप्त अङ्ग वाला था और वह युवा पीत-माल्य के धारण करने वाला था। वह महान् भुजाओं वाला पीतवर्ण का ही यज्ञोपवीत धारण करने वाला था और पीत ही मस्तक उष्णीष अर्थात् शिरोवस्त्र पहिने हुए था ॥ ३ ॥ ब्रह्मा ने ध्यान में संयुक्त उस लोकेश्वर प्रभु को देखकर मन से लोक धाता परमेश्वर की वन्दना की ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर वहाँ पर ध्यान में स्थित ब्रह्मा जी ने महेश्वर के मुखच्युत विरूप पर माहेश्वरी गौ को देखा ॥ ५ ॥ वह गौ चार पदों वाली, चार मुखों वाली चार ही हाथों से युक्त और चार स्तन वाली थी तथा उसके चार नेत्र, चार श्रृङ्ग, चार दाढ़ और चार मुख थे। वह बत्तीस लोकों से संयुक्त, सर्वतोमुखी और ईश्वरी थी ॥ ६ ॥ वह महान् तेज वाला उस महादेवी महेश्वरी को देखकर समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित महादेव फिर बोले ॥ ७ ॥

मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ।
एह्येहीति महादेवी सोत्तिष्ठत् प्राञ्जलिर्भृशम् ॥८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु ।
अथ वा महादेवेन रुद्राणी त्वं भविष्यसि ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थं भविष्यसि ।।६
अथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ।
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ।।१०
ब्रह्मा लोकनमस्कार्यः प्रपद्य तां महेश्वरीम् ।
गायत्रीन्तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः ।।११
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ।
जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम् ।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ।।१२
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतः ।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्ति वैराग्यं च ददौ पुनः ।।१३
अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः ।
ततोऽस्य सर्वतो दाप्ताः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ।।१४

मति, स्मृति और बुद्धि, यह गाते हुए और बार-बार यही गायन करते हुए महादेवी आइये-आइये यह कहते हुए वह अत्यन्त प्राञ्जलि होकर वहाँ स्थित हो गये ।। ८ ।। योग से विश्व को आवृत करके इस समस्त जगत् को वश में करो । अथवा आप महादेव के साथ रुद्राणी हो जाओगी । ब्राह्मणों के हित के लिये आप परमार्थ हो जाओगी ।। ६ ।। इसके अनन्तर इसको ध्यान करने वाले, पुत्र की इच्छा वाले परमेष्ठी को देव देवेश ने चार पादों वाली महेश्वरी को दे दिया । इसके पश्चात् उसको ध्यान के योग से परमेश्वरी जान लिया था ।। १० ।। लोकों के द्वारा नमस्कार करने के योग्य ब्रह्मा जी ने उस महेश्वरी के शरण में जाकर इसके पश्चात् रौद्री गायत्री का ध्यान कर ब्रह्मा जी सुयन्त्रित हो गये ।। ११ ।। इस प्रकार से इस वैदिकी विद्या अर्पित रौद्री गायत्री का जप करके रुद्र लोक के द्वारा नमस्कृत महादेवी भली-भांति जाप में संलग्न हो गये थे और फिर ध्यान से युक्त चित्त से महादेव की प्रसन्नता में प्राप्त हो गये थे

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ १२ ॥ इसके अनन्तर महादेव ने पुनः दिव्य योग दिया और ऐश्वर्य, ज्ञान रूपी सम्पत्ति तथा वैराग्य प्रदान किया था ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त ईश्वर ने भीषण एवं दीप्त अट्टहास किया। इससे इसके सब ओर प्रादुर्भूत कुमार दीप्त हो गये ॥ १४ ॥

पीतमाल्याम्बरधराः पीतगन्धविलेपनाः।
पीतोष्णीषशिरस्काश्च पीतास्याः पीतमूर्द्धजाः ॥१५
ततो वर्षसहस्रान्ते उषित्वा विमलौजसः।
योगात्मानस्ततः स्नाता ब्राह्मणानां हितैषिणः ॥१६
धर्मयोगवलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणाम्।
उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥१७
एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ये महेश्वरम्।
अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ॥१८
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्चसः।
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रन्ते त्वपुनर्भवाः ॥१९
ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नामतः ॥२०
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥२१

वे सभी कुमार पीत माल्य तथा अम्बर के धारण करने वाले थे और पीतवर्ण की गन्ध के अनुलेपन से युक्त थे। इनके मस्तक पर उष्णीष अर्थात् शिरोवेष्टन वस्त्र था वह भी पीत था, पीत मुख से युक्त तथा पीत ही केशों वाले थे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर एक सहस्र वर्षों के अन्त में निवास करके विमल ओज वाले, योगात्मा और स्नान किये हुए तथा ब्राह्मणों के हितों के चाहने वाले धर्म के तथा योग के बल से उपेत वे सब दीर्घ सत्र का यजन करने वाले ऋषियों को अपना उपदेश देकर रुद्र ईश्वर योग में प्रविष्ट हो गये ॥ १६-१७ ॥ इस प्रकार से जो इस विधि से महेश्वर को प्रसन्न हुए तथा अन्य लोग भी ध्यान से युक्त नियत आत्मा वाले जितेन्द्रिय थे वे सभी अपने पापों से छूटकर विरज

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और ब्रह्मवर्चस वे महादेव रुद्र में प्रवेश किया करते हैं और फिर उनका जन्म नहीं होता है ॥ १८-१९ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—इसके अनन्तर स्वयम्भू की पीतवर्ण वाले कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम सित कल्प हुआ ॥ २० ॥ उस समय सर्वत्र एकमात्र समुद्र के दिव्य एक सहस्र वर्ष हो जाने पर प्रजा के सृजन की कामना करने वाले ब्रह्माजी परम दुःखित होते हुए चिन्ता करने लगे ॥ २१ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः ।
कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥२२
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् ।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२३
कृष्णाम्बरवरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥२४
स तं दृष्ट्वा महात्मानममरं घोर मन्त्रिणम् ।
ववन्दे देवदेवेशं विश्वेशं कृष्णपिङ्गलम् ॥२५
प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।
मनसा ध्यानसंयुक्तं प्रपन्नस्तु यतीश्वरम् ।
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् ॥२६
एवं वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
मुमोच भगवान् रुद्रः अट्टहासं महास्वनम् ॥२७
अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः ।
चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः ॥२८

इस तरह से चिन्ता करने वाले पुत्र की कामना से युक्त प्रभु परमेष्ठी का ध्यान में संलग्न रहते-रहते ही कृष्णवर्ण हो गया ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर महान् तेज वाले ने प्रादुर्भाव होने वाले कृष्णवर्ण से युक्त महान् वीर्य वाले अपने तेज से देदीप्यमान कुमार को देखा ॥ २३ ॥ वह कुमार काले वस्त्र और शिरोवेष्टन वाला था तथा कृष्ण उपवीत धारण कर रहा था । उसका मस्तक भी कृष्ण था तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त था ॥ २४ ॥ उस महान् आत्मा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले घोर मन्त्र से युक्त अमर उसने देखकर कृष्ण पिङ्गल विश्वेश तथा देव देवेश उसको प्रणाम किया ॥ २५ ॥ प्राणायाम करने में परायण होकर श्रीमान् उसने हृदय में उसको स्थित करके ध्यान से संयुक्त यतियों के स्वामी महेश्वर को मन से प्रसन्न हुआ था और इसके पश्चात् यह अघोर है, ऐसा ब्रह्मा ने उस ब्रह्म का चिन्तन किया था ॥ २६ ॥ इस प्रकार से परमेष्ठी ब्रह्माजी के ध्यान करते हुए भगवान् रुद्र ने उस समय बहुत ही अधिक ध्वनि से युक्त महान् अट्टहास किया था ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् इसके पार्श्व प्रदेश में कृष्णवर्ण वाले तथा कृष्णवर्ण की माला और विलेपन से युक्त महान् आत्मा वाले चार कुमारों का सम्भव (जन्म) हुआ था ॥ २८ ॥

कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषाः कृष्णास्याः कृष्णवाससः ।
तैश्चाट्टहासः सुमहान् हूङ्कारश्चैव पुष्कलः ।
नमस्कारश्च सुमहान् पुनः पुनरुदीरितः ॥२९
ततो वर्षसहस्रान्ते योगात्तत् पारमेश्वरम् ।
उपासित्वा महाभागाः शिष्येभ्यः प्रददुस्ततः ॥३०
योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ॥३१
एवमेतेन योगेन ये चाप्यन्ये द्विजातयः ।
स्मरिष्यन्ति विधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम् ॥३२
ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णरूपे भयानके ।
अन्यः प्रवर्त्तितः कल्पो विश्वरूपस्तु नामतः ॥३३
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे ।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ।
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥३४
विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ।
विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम् ॥३५
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ।
ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम् ॥३६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वे चारों उत्पन्न होने वाले कुमार एकदम कृष्ण वर्ण वाले थे। उनके वस्त्र और शिरोवेष्टन भी कृष्ण थे, कृष्ण वर्ण का ही उन सब का मुख था और कृष्ण वस्त्रधारी थे। उन्होंने सुमहान् अट्टहास और बहुत अधिक हुङ्कार एवं बार-बार सुमहान् नमस्कार का उच्चारण किया था ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये तब योग से उस परम ईश्वर की उपासना करके महाभाग वाले उन्होंने शिष्यों को दे दिया ॥ ३० ॥ योग से सम्पन्न होते हुए योग के बल से वे मन से अमल, निर्गुण विश्व स्वरूप ईश्वर के स्थान में प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार से इसी योग से जो अन्य भी द्विजाति थे जो कि इस विधान के ज्ञाता थे वे अव्यय रुद्र के समीप में गमन करने वाले स्मरण करेंगे ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर उस कृष्ण रूप वाले भयानक कल्प के समाप्त हो जाने पर फिर अन्य कल्प प्रवृत्त हुआ जिसका नाम विश्व रूप था ॥ ३३ ॥ संहार के निवृत्त हो जाने पर और फिर इस चराचर के सृष्ट हो जाने पर पुत्र की कामना रखने वाले तथा ध्यान में संलग्न रहने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा के महान् नाद (ध्वनि) वाली विश्व रूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई अर्थात् सरस्वती ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३४ ॥ विश्व माल्य को धारण करने वाले तथा विश्व के अम्बर के धारण करने वाले, विश्व यज्ञोपवीत के धारी, विश्व का उष्णीष धारण करने वाले, विश्वगन्ध, विश्व स्थान और महान् भुजा वाले उसका युक्तात्मा ब्रह्मा ने मन से ध्यान करके उस सर्वत्र गमन करने वाले, सब के स्वामी ईशान देव की वन्दना की ॥ ३५-३६ ॥

ओमीशानं नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम्।
उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि ॥३७
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्भिः स्तुत्वा महेश्वरम्।
उवाच भगवान् ब्रह्मा प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥३८
यदिदं विश्वरूपन्ते विश्वगं विश्वमीश्वरम्।
एतद्वेदितुमिच्छामि कश्चायं परमेश्वरः ॥३९
कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुःशृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दन्ता चतुःस्तनी ॥४०
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता ।
किन्नामधेया कोऽस्यात्मा किंवीर्या वापि कर्मतः ॥४१

हे महादेव ! ओमीशान आपके लिये नमस्कार है इस प्रकार से ध्यान में संलग्न होने वाले एवं प्रणाम करते हुए पितामह से भगवान् ईश ने कहा— मैं तुम से बहुत ही प्रसन्न हूँ, बतलाओ तुम क्या चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त प्रणत होकर और अपनी वाणियों से महेश्वर की बहुत कुछ स्तुति करके परम प्रसन्न चित्त से ब्रह्माजी ने कहा ॥ ३८ ॥ जो आपका यह विश्व रूप है, विश्व में सर्वत्र गमन करने वाला और इस विश्व का ईश्वर स्वरूप है इसे मैं जानना चाहता हूँ कि यह परमेश्वर कौन है ? ॥ ३९ ॥ और मैं यह भी ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ कि यह भगवती चार पादों वाली तथा चार मुखों वाली, चार सींग, चार मुख, चार दाँत एवं चार स्तनों वाली देवी कौन है जिसके चार हाथ हैं चार नेत्र है । यह विश्वरूपा कैसे कही गई है ? इसका क्या नाम है, इसकी आत्मा कौन हैं, इसका वीर्य (पराक्रम) क्या होता है और इसका कर्म क्या है, यह सभी मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४०-४१ ॥

रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्द्धनम् ।
शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथम् ॥४२
अयं यो वर्त्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृतः ।
यस्मिन् भवादयो देवाः षड्विंशन्मनवः स्मृताः ॥४३
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यदा प्राप्तं त्वया विभो ।
तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥४४
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः ।
पुरस्तात्तव देवेश तान्शृणुष्व महामुने ॥४५
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दस्ते महालयः ।
गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागतः ॥४६
त्वयि योगश्च साङ्ख्यश्च तपो विद्याविधिः क्रिया ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋतं सत्यञ्च यद्ब्रह्म अहिंसा सन्ततिक्रमाः ॥४७
ध्यानं ध्यानवपुः शान्तिर्विद्याऽविद्यामतिर्धृतिः ।
कान्तिः शान्तिः स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धिः सरस्वती ।
तुष्टिः पुष्टि क्रिया चैव लज्जा क्षान्तिः प्रतिष्ठिता ॥४८
षडविंशत्तद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञिता ।
प्रकृतिं विद्धि तां ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम् ॥४९

महेश्वर ने कहा—यह समस्त मन्त्रों का रहस्य है और यह पावन तथा पुष्टि के वर्धन करने वाला है। तुम अब मुझ से इस परम गोपनीय विषय को सुनो जो कि आदि सर्ग में जैसा था ॥ ४२ ॥ जो यह कल्प इस समय वर्त्तमान है वह विश्वरूप इस नाम वाला कहा गया है जिसमें भवादि देव छब्बीस मनु कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ हे विभो ! यह ब्रह्म-स्थान है जब कि आपने इसे प्राप्त किया है। तब से ही लेकर यह तेईसवाँ कल्प कहा गया है ॥ ४४ ॥ हे देवेश ! आपके सम्मुख ही जो सैकड़ों और सहस्रों स्वयम्भू बीत गये उनकी कथा बतलाता हूँ। उस समय तुम्हारा नाम आनन्द था ॥ ४५ ॥ तुम्हारा महालय भी आनन्द ही होता है। गालव्य गोत्र तप से तुम मेरे पुत्रता को प्राप्त हुए हो ॥ ४६ ॥ तुममें योग, सांख्य, तप, विद्या विधि, क्रिया, ऋत, सत्य जो ब्रह्म है वह, अहिंसा, सन्तति क्रम, प्रतिष्ठित हैं ॥ ४७ ॥ ध्यान-ध्यान का वपु, शान्ति, विद्या, अविद्यामति, धृति, कान्ति, शान्ति, स्मृति, मेधा, लज्जा, शुद्धि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, लज्जा और क्षान्ति ये सब तुम में प्रतिष्ठित हैं ॥ ४८ ॥ ये छब्बीस गुण बत्तीस अक्षरों की संज्ञा से युक्त हैं। हे ब्रह्मन् ! उसको आपकी प्रसूति महेश्वरी प्रकृति समझना चाहिए ॥ ४९ ॥

सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयम्भुवः ।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्त्तिता ।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥५०
अजामेतां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं संप्रसृजमानां सुरूपाम् ।
अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्धा ॥५१
एवमुक्त्वा महादेवः अट्टहासमथाकरोत् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वलितास्फोटितरवं कहाकहनदन्तथा ।।५२
ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः सर्वरूपाः कुमारकाः ।
जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्ध मुण्डश्च जज्ञिरे ।।५३
ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः ।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु उपासित्वा महेश्वरम् ।।५४
धर्मोपदेशं नियतं कृत्वा योगमयं दृढम् ।
शिष्टानां नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ।।५५

वह यह भगवती देवी स्वयम्भू की तत्प्रसूति है और यह चतुर्मुखी, जगद्योति, प्रकृति और गौ कही गई है । तत्त्वों के चिन्तन करने वाले पुरुष इसको प्रधान और प्रकृति कहते हैं ।। ५० ।। बुद्धिमान् ! मैं अज हूँ, यह अजा, लोहिता, कृष्ण शुक्ला, विश्व का संप्रजन करने वाली सुरूपा, विश्वरूप वाली, गौ और गायत्री जानी गई है ।। ५१ ।। महादेव ने इस प्रकार से कहकर अट्टहास किया और वलित एव स्फोटितरव वाला कहकहे की ध्वनि की ।। ५२ ।। इसके अनन्तर उसके पार्श्व देश में जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड दिव्य सर्वरूप कुमार उत्पन्न हुए ।। ५३ ।। इसके पश्चात् महान् ओज से युक्त यथोक्त योग के द्वारा उन्होंने दिव्य एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर की उपासना की ।। ५४ ।। फिर योगमय नियत दृढ़ धर्मोपदेश करके शिष्टों में नियत आत्मा वाले ईश्वर रुद्र में प्रविष्ट हो गये ।। ५५ ।।

।। शार्व–स्तोत्र ।।

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम् ।।१
एतत्सहस्रपयन्तमहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम् ।
यामाद्यास्तु गणाः सप्त रोमवन्तश्चतुर्द्दश ।।२
सशरीराः श्रयन्ते स्म जनलोकं सहानुगाः ।
एवं देवेष्वतीतेषु महर्ल्लोकाज्जनं तपः ।।३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवाः सर्वे महौजसः ।
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ।।४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समेत्य देवैस्ते देवाः प्राप्ते सङ्कालने तदा ।
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्द्दश ।।५
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा ।
शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेष्वथ गतेषूर्द्ध्वं कल्पवासिषु वै जनम् ।।६
तत्संहृत्या ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्वान् दाहवृष्ट्या युगक्षये ।।७

श्री वायुदेव ने कहा—मुनिगण भारतवर्ष में चार युग कहते हैं, कृत, त्रेता, द्वापर और तिष्य ये चार युग हैं ।। १ ।। इन युगों का एक सहस्त्र जब तक होता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । यामादि सात गण और रोम वाले चौदह शरीर एवं अनुगों के साथ जनलोक का सेवन करते थे । इस प्रकार से देवों के अतीत हो जाने पर महर्लोक से जन और फिर तपलोक का सेवन करते हैं ।। २-३ ।। मन्वन्तरों के व्यतीत हो जाने पर महान् ओज से युक्त समस्त देव होते हैं । इसके पश्चात् कल्पवासियों में उनके ऊर्ध्व सायुज्य को प्राप्त हो जाने पर वे देव देवों के एकत्रित होकर उस समय सङ्कालन प्राप्त होने पर वे चौदहगण महर्लोक का परित्याग कर देते हैं ।। ४-५ ।। उस समय अवशिष्ट भूतादि, स्थावरान्त, वे शून्य लोक, महान् भुवादि और देव जो कि कल्पवासी थे अर्द्धभाग में जनलोक में चले जाने पर इसके उपरान्त उस संहृति से ब्रह्मा देव, ऋषिगण और दानवों को संस्थापित करते हैं और युग के क्षय में सब की दाह वृष्टि से सस्थापना किया करते हैं ।। ६-७ ।

योऽतीतः सप्तमः कल्पो मया वः परिकीर्तितः ।
समुद्रैः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवैः ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ।।८
माययैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।
जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ।।९
नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः ।
अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किमप्यचिन्त्यं युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् ।
महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ।
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आत्मारामेण क्रीडार्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ॥१२
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ।
वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ॥१३
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः ।
हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥१४

जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो गया वह मैंने तुमको बतला दिया है । सात समुद्र जो गाढ़ एकीभूत महार्णव हैं उनसे एक अतिघोर तमोमय विभाग से रहित अर्णव हो गया था ॥ ८ ॥ उस एक समुद्र में मैंने शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले, मेघ की आभा के सदृश आभा से युक्त, कमल के समान नेत्रों वाले, किरीटधारी, लक्ष्मी के स्वामी हरि को देखा जो कि नारायण के मुख से उद्गीर्ण हुए और वह आठवें पुरुषोत्तम थे । उनके आठ भुजाऐं थीं, महान् चौड़ा वक्षःस्थल था और जो समस्त लोकों की योनि अर्थात् उद्भव स्थान कहे जाते हैं । योग के वेत्ता युक्त आत्मा वाले किसी अचिन्त्य का योग में स्थित होकर ध्यान करते थे ॥ ९-१० ॥ एक सहस्र फनों से युक्त अप्रतिम वर्चस वाले महाभोगपति के उस महान् उच्छ्य वाले भोग को फैलाकर उस कनक के समान प्रभा वाले महान् पर्य्यङ्क पर शयन करते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार से वहाँ शयन करने वाले प्रभविष्णु विष्णु ने जो कि अपने आप में रमण करने वाले हैं उनने केवल क्रीड़ा के लिये अपनी नाभि में एककमल नाल की सृष्टि की थी॥१२॥ वह पङ्कज नाल सौ योजन के विस्तार वाला तथा तरुण सूर्य के समान वर्चस वाला था, इसका वज्र के सदृश दण्ड तथा इसकी महान् ऊँचाई थी, इसकी रचना प्रभविष्णु ने लीला से ही की थी ॥ १३ ॥ इस तरह क्रीड़ा करने वाले

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसके समीप में देव की उपासना करने वाले, हेम ब्रह्माण्ड से उत्पन्न, सुवर्ण के समान वर्ण वाले, इन्द्रियों से परे ब्रह्माजी यदृच्छा से आये जो कि चार मुखों से युक्त, विशाल नेत्रों वाले थे ॥ १४ ॥

श्रिया युक्तेन मध्येन सुप्रभेण सुगिन्धना ।
तं क्रीडमानं पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा तु भेजिवान् ॥१५
स विस्मयमथागम्य शस्य संपूर्णया गिरा ।
प्रोवाच को भगान् शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६
अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः :
उदतिष्ठत पर्य्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥१७
प्रत्युवाचोत्तरं चैव क्रियते यच्च किञ्चन ।
द्यौरन्तरिक्षं भूतञ्च परं पदमहं प्रभुः ॥१८
तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत् ।
कस्त्वं खलु समःयातः समीपं भगवान् कुतः ।
कुतश्च भूयो गन्तव्यं कुत्र वा ते प्रतिश्रयः ॥१९
को भवान् विश्वमूर्तिस्त्वं कर्त्तव्यं किञ्च ते मया ।
एवं ब्रुवाणं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः ॥२०
यथा भवास्तथा चाहमादिकर्त्ता प्रजापतिः ।
नारायणसमाख्यातः सर्वं वै मयि तिष्ठति ॥२१

ब्रह्माजी ने श्री से युक्त, सुन्दर प्रभावाले, सुगन्ध से अन्वित नवीन कमल से क्रीड़ा करते हुए उनका दर्शन कर उनकी सेवा करना आरम्भ कर दिया ॥१५॥ इसके उपरान्त वह अत्यन्त आश्चर्य में भरकर शस्य सम्पूर्ण वाणी से बोले, इस जल के मध्य में आश्रय लेकर शयन करने वाले आप कौन हैं? ॥१६॥ इसके अनन्तर भगवान् अच्युत उन ब्रह्माजी के इस शुभप्रश्न स्वरूप वचन को सुन कर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले होते हुए पर्यङ्क से उठ बैठे ॥१७। और उन्होंने ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर दिया कि जो कुछ भी किया जाता है और अन्तरिक्ष (आकाश) एवं भूत उन सबमें मैं परम पद प्रभु हूं ॥१८॥ उन ब्रह्मा जी से इस तरह भगवान् विष्णु ने कह कर फिर वे यह बोले, अन्य कौन हैं

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जो यहाँ पर आये हो और आप कहाँ से आये हैं ? यहाँ आपका आगमन किस लिये हुआ है और फिर कहाँ जाना है तथा आपका आश्रय स्थान कौन सा है ? ॥१९॥ आप विश्वमूर्त्ति कौन हैं और मुझ से आप को क्या करना है ? इस प्रकार से बोलने वाले भगवान् विष्णु को पितामह ब्रह्माजी ने उत्तर दिया ॥२०॥ जिस प्रकार आप हैं वैसे ही आदि कर्त्ता प्रजापति मैं भी हूँ । मुझे नारायण इस नाम से कहा गया है और यह सभी कुछ मेरे अन्दर ही रहता है अर्थात् स्थिति प्राप्त करता है ॥२१॥

सविस्मयं पर श्रुत्वा ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसम्भवः ॥२२
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ।
इमानष्टादशद्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान् ।
प्रविश्य स महातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान् सनातनान् ॥२३
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महायशाः ।
अहाऽस्य तपसो वीर्य्यं पुनः पुनरभाषत ॥२४
पर्य्यटन् विधिधान् लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रमान् ।
ततो वर्षसहस्रान्तेनान्तं हि ददृशे तदा ॥२५
तदाऽस्य वक्त्रन्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रारिकेतनः ।
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत् ॥२६
भगवन् आदि मध्यञ्च अन्तं कालदशोर्न च ।
नाहमन्तं प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥२७
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः ।
भवानप्येवभेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ।
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान् द्विजोत्तम ॥२८

लोकों के कर्त्ता ब्रह्माजी ने परम आश्चर्य के साथ इस को सुन कर भगवान् ने विश्व सम्भव भगवान विष्णु को अनुज्ञात किया ॥२२॥ कौतूहल से वह महान् योगी ब्रह्मा के मुख में प्रविष्ट हो गये । उस महान् तेज वाले ने प्रवेश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करके समुद्रों और पर्वतों के सहित इन अठारह द्वीपों को चातुर्व्वर्ण्य से समाकुल एवं सनातन ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों को सबको ब्रह्मा के उदर में देखकर महान् यश वाले विष्णु ने मन में सोचा, हो-हो, इसके तप का कितना आश्चर्यपूर्ण पराक्रम है ? इस के अनन्तर वे बार-बार बोले ॥२३-२४॥ विष्णु अनेक लोक और विविध भाँति के आश्रमों का पर्यटन करते रहे पर एक सहस्र वर्षों के अन्त में भी उनका अन्त उन्होंने नहीं देखा ॥२५॥ तब उस समय इनके मुख से पन्नगेन्द्रारि केतन अर्थात् पन्नग सर्पों के शिरोमणि के शत्रु गरुड़ के केतन वाले ने निकल कर अजात शत्रु अर्थात् ऐसे जिन का कोई शत्रु उत्पन्न ही न हुआ हो, भगवान् इसके अनन्तर पितामह ब्रह्माजी से बोले ॥२६॥ हे अनघ ? हे भगवान् ? आदि, मध्य और अन्तकाल और दिशा का अन्त तथा आपके उदर का अन्त मैं नहीं देख पारहा हूँ ॥२७॥ इस प्रकार से कह कर भगवान् हरि फिर पितामह से यह बोले-हे द्विजोत्तम ! ऐसे ही आप भी मेरे शाश्वत उदर में प्रवेश करके उपमा से रहित इन लोकों को देखें ॥२८॥

मनः प्रह्लादनी वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ।
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः ॥२९
तानेव लोकान् गर्भस्थः पश्यन् सोऽचिन्त्यविक्रमः ।
पर्यटित्वादिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरे ॥३०
ज्ञात्वागमन्तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः ।
विभुर्मनः कर्त्तुमियेष चाशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ॥३१
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितान्युपलक्ष्यते ।
सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविन्दत ॥३२
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामहः ।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ।
विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥३३
एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कात्स्न्र्यतः ।
प्रवर्त्तमाने संहर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ॥३४
ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शूलपाणिर्ममहादेवो हैमचीराम्बरच्छदः ।
आगच्छद् यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः ॥३५

उनकी अनेकों प्रसन्नता प्रदान करने वाली इस वाणी को सुनकर तथा उसका भली भाँति अभिनन्दन करके पितामहने श्रीपति के उदर में प्रवेश कियाथा ॥२६॥ चिन्तन करने के योग्य विक्रम वाले भगवान् हरि ने गर्भ में स्थित होते हुए उन्हीं लोकों को देखकर और चारों ओर पर्यटन करके आदि देव हरि का अन्त उन्होंने नहीं देखा ॥३०॥ उन पितामह के आगम को जान कर भगवन् विष्णु ने समस्त द्वारों को बन्द करके विभुने मन में यह करने की इच्छा की कि शीघ्र ही सुख पूर्वक इस महान् जलौध में शयन कर जाऊं ॥३१॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी को समस्त द्वार पिहित दिखलाई दिये तब ब्रह्माजी ने अपने स्वरूप को सूक्ष्म बनाकर नाभि में द्वार प्राप्त किया था ॥३२॥ तब पितामह ने कमल सूत्र के अनुमार्ग के द्वारा अनुगमन करके फिर चतुरानन ने कमल से अपने रूप का उद्धार किया था। उस अरविन्द में स्थित होकर पद्म के गर्भ के समान द्युति वाले ब्रह्मा विशेष रूप से शोभित हुए ॥३३॥ इस बीच में उन दोनों में एक-एक को पूर्ण तथा हर्ष के उत्पन्न हो जाने से उस समुद्र के मध्य में पूर्ण समघ्नाष हुआ था ॥३४॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अपरिमेय आत्मा वाले प्राणियों के स्वामी ईश्वर हैमचीराम्बर को धारण करने वाले शूल हाथ में लिये हुए महादेव वहाँ आगये जहाँ कि नागभोग के पति वह अनन्त हरि वर्त्तमान थे ॥३५॥

शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यन्तपीडिताः ।
उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः ।
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत ।
अबिन्दवो हि स्थूलोष्णाः कम्पते चाम्बुजं भृशम् ।
एतं मे संशयं ब्रूहि किञ्चान्यत् त्वञ्चिकीर्षसि ॥३७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम् ।
श्रुत्वाप्रतिमकर्माह भगवानसुरान्तकृत् ॥३८
किन्नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम् ।
वदन्ति प्रियमत्यर्थं विप्रियेपि च ते मया ॥३९
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ।
किन्न्वत्र भगवांस्तस्मिन् पुष्करे जातसम्भ्रमः ॥४०
किं मया यत् कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ।
भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्वतः ॥४१
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रान्तु तत्वगाम् ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभास्को ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ॥४२

शीघ्र विक्रम करने वाले उसके पादों से अत्यन्त पीड़ित आकाश में शीघ्र मोटी जल की बिन्दु उद्भूत हुईं थी। वे अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल थीं। वहाँ पर वायु बहुत ही अधिक चलने लगी ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्मा जी ने महान् आश्चार्य देखकर भगवान विष्णु से कहा—ये परम स्थूल एवं उष्ण जल की बूंदें इस कमल को बहुत ही अधिक कँपाती हैं। आप मेरे इस संशय को बतलाइये, आप और क्या करना चाहते हैं? ॥ ३७ ॥ पितामह के मुख से उद्भूत इस वाक्य को सुनकर असुरों के अन्त करने वाले अप्रतिम अर्थात् अनुपम कर्म करने वाले भगवान बोले ॥ ३८ ॥ निश्चय ही मेरी इस नाभि में क्या अन्य प्राणी आलय करने वाले हैं ऐसा कहते हैं। मेरे द्वारा तुम्हारे अत्यन्त विप्रिय होने पर भी इसे अत्यन्त प्रिय ही कहते हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार से मन से ध्यान करके यह उत्तर बोले। क्या यहाँ पर आप उस कमल में सम्भ्रम वाले हो गये हैं ॥ ४० ॥ हे देव! मैंने जो किया है हे पुरुष श्रेष्ठ! उस अनुत्तम प्रिय को मुझे बोल रहे हैं आप किस लिये ऐसा कर रहे हैं ठीक-ठीक मुझे बतलाइये ॥ ४१ ॥ इस तरह बोलने वाले देवेश से अम्बुज की आभा वाले वेदों के निधि प्रभु ब्रह्मा जी ने तत्व वाली जो लोक यात्रा थी उसे बतलाया था ॥४२॥

योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया ।
यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ।
तथैव दृष्टाः कात्स्न्र्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततो वर्षसहस्रान्ते उपावृत्तस्य मेऽनघ ।
नूनं मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुनः ॥४४
ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन चेतसा ।
लब्धो नाभ्यां प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ॥४५
माभूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन ।
इत्येषानुगतिर्विष्णोः कार्याणामौपसर्गिकी ॥४६
यन्म यानन्तरं कार्यं मयाध्यवसितं त्वयि ।
त्वाञ्चाबाधितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया ।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुनः ॥४७
न तेऽन्य थावमन्तव्यो मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽपकृतन्तव ।
तस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ॥४८
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुन्तेजोमयं गुरुम् ।
स चोवच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यम् ॥४९

आपकी इच्छा से जो मैंने पहिले आप के उदर में प्रवेश किया था तब मैंने आपके उदर में पूर्ण रूप से, उसी रूप से समस्त लोक देखे जैसे कि है प्रभो ! आपने मेरे उदर में सम्पूर्ण लोक देखे थे ॥ ४३ ॥ हे अनघ ! फिर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त इधर-उधर वहाँ पर पर्यटन करने वाले मुझ को मात्सर्य के भाव से वश में करने की इच्छा वाले आपने शीघ्र ही समस्त द्वार घटित कर दिये अर्थात् बन्द कर दिये थे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! इसके अनन्तर मैंने अपने चित्त से सोच-विचारकर नाभि में प्रवेश प्राप्त किया जिससे कि पद्मसूत्र से मेरा फिर विनिर्गम हुआ ॥ ४५ ॥ आपके मन को थोड़ा-सा भी किसी प्रकार का व्याघात न होवे, यह विष्णु के कार्यों की औपसर्गि की अनुगति होती है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर जो मुझे करना चाहिए मैंने आप में अध्यवसित (निश्चित) कर लिया है। तुमको कोई भी बाधा न करने की इच्छा वाले मैंने यह इच्छा से क्रीड़ा-पूर्वक शीघ्र समस्त द्वार पुनः घटित कर दिये ॥ ४७ ॥ आपको इस विषय में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुछ अन्य प्रकार की बात नहीं समझनी चाहिए। आप मेरे मान्य एवं पूजा करने के योग्य होते हैं। हे कल्याण स्वरूप! आपका जो भी मैंने कुछ अपकार किया है उसे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इसलिये मेरे द्वारा कहे हुए आप पद्म से अवतरण करें ॥ ४८ ॥ मैं तेजपूर्ण गुरु आपको सहन नहीं कर सकता हूँ। इस पर वह बोले—वर माँग लो, मैं पद्म से अवतरण करता हूँ ॥ ४९ ॥

पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनम्।
सत्य धनो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः ॥५०
अद्यप्रभृति सर्वेश श्वेतोष्णीषविभूषणः।
पद्मयोनिरितीत्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि।
पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सर्वलोकाधिप प्रभो ॥५१
ततः स भगवान् ब्रह्मा वरं गृह्य किरीटिनः।
एवं भवतु चेत्यक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः ॥५२
प्रत्यासन्नमथायातं बालार्काभं महाननम्।
भूतमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ॥५३
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री व्यस्तशिरोरुहः।
दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुखः ॥५४
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली।
मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नदमानोऽतिभैरवम् ॥५५
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः।
व्याप्य सर्वा दिशो द्याश्च इत एवाभिवर्त्तते ॥५६

भगवान् विष्णु ने कहा—हे अरिघ्न! मेरे पुत्र हो जाओ बहुत ही अच्छा आनन्द प्राप्त करोगे। सत्य धन वाले और महान् योगी आप प्रणव स्वरूप स्तुति करने के योग्य हैं ॥ ५० ॥ हे सर्वेश! आज से लेकर श्वेत शिरोवेष्टन से विभूषित आप पद्मयोनि इस नाम मे विख्यात हो जाओगे। हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! हे समस्त लोकों के अधिप! तुम मेरे पुत्र हो जाओ ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर उन भगवान् ब्रह्मा जी ने किरीटी (विष्णु) के वरदान को ग्रहण करके "ऐसा ही होगा" यह कहकर प्रसन्न आत्मा वाले और मत्सरता से रहित हो

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गये थे ॥ ५२ ॥ समीप में आये हुए बाल सूर्य के समान आभा वाले महान् आनन (मुख) से युक्त हुए अत्यन्त अद्भुत नारायण को देखकर बोले– ॥ ५३ ॥ अप्रमेय अर्थात् समझ में नहीं आने के योग्य, महान् मुख से युक्त द्रंष्ट्राधारी, व्यस्त बालों वाले, दश भुजाओं से युक्त, त्रिशूल के चिह्न वाले, नेत्रों से विश्वतोमुख, स्वयं लोकों के स्वामी, साक्षात् विकृत स्वरूप वाले, मूँज की मेखलाधारी, महान् ऊर्द्ध मेढ़ से ध्वनि करते हुए, हे विष्णो ! यह कौन ऐसा पुरुष है जो तेज की राशि और महाद्युति वाला है और समस्त दिशा में व्याप्त होकर इधर की ओर ही आ रहा है ॥ ५४–५५–५६ ॥

तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणम ब्रवीद् ।
पद्भयान्तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ।
वेगेन महताकाशे व्यथिताश्च जलाशयाः ॥५७
छटाभिर्विष्णुतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्म सम्भवः ।
घ्राणजेन च वातेन कम्पमानं त्वया सह ।
दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम् ॥५८
स एष भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः ।
भवानहञ्च स्तोत्रेण ह्यु पतिष्ठाव गोध्वजम् ॥५९
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभास्कं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।
न भवान् न्यूनमात्मानं लोकानां योनिमुत्तमम् ॥६०
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं माञ्च वेत्ति सनातनम् ।
कोऽयं भोः शङ्करो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ॥६१
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत ।
मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः ॥६२
मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षों वरप्रदः ।
हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरुषोऽव्ययः ॥६३

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा– जिससे विक्रम से पदों के तल निपातन से समुद्र में महान् वेग से, आकाश में समस्त जलाशय व्यथित हो गये हैं, छटाओं के द्वारा विष्णु से भी अधिक पद्म-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्भव सिच्यमान होते हैं और घ्राण से उत्पन्न वायु से आपके साथ कम्पमान होकर मेरे नाभि से उत्पन्न इस स्वच्छन्द महान् पद्म को भी कँपा रहे हैं वह यह भगवान् ईश हैं जो अनादि और अन्त करने वाले विभु हैं। मैं और आप इन गोध्वज की स्तोत्र के द्वारा स्तुति करें ॥ ५७–५८–५६ ॥ इसके पश्चात् क्रोध-युक्त ब्रह्मा अम्बुज की आभा वाले केशव से बोले—आप उत्तम लोकों की योनि, लोकों के करने वाले मुझको सनातन ब्रह्म को न्यूनात्मा नहीं जानते हैं। यह शङ्कर कौन है जो हम दोनों से भी अधिक बन रहा है ! ॥ ६०–६१ ॥ उनके उस क्रोध से उत्पन्न वाक्य को सुनकर विष्णु ने कहा—हे कल्याण ! ऐसा महान् आत्मा वाले की परिवाद (निन्दा) मत कहो ॥ ६२ ॥ यह महान् मायायोग का ईश्वर, धर्म, दुराधर्ष, वर प्रदान करने वाले, इस जगत् के हेतु, पुराण और अव्यय पुरुष हैं ॥ ६३ ॥

जीवः खल्वेष जीवानां ज्योतिरेकं प्रकाशते ।
बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम् ॥६४
प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः ।
अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः ।
यः कः स इति दुःखार्त्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ॥६५
एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः ।
एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्म विष्णुमभाषत ॥६६
भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः ।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥६७
ज्ञात्वा चैवं समुत्पत्ति ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा ।
इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥६८
अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते ।
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ॥६९
द्वैधीभावेन चात्मानं प्रविष्टस्तु व्यवस्थितः ।
निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः ॥७०

यह जीवों का निश्चय ही जीव है और एक ज्योति को प्रकाशित करते

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं। यह देव शङ्कर स्वयं बच्चों के खिलौनों से क्रीड़ा किया करते हैं ॥ ६४ ॥ नित्य ही प्रसव के धर्म वाले इनके प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, प्रकृति, तम ये नाम कहे जाते हैं। वह कौन है जो दुखों के आर्त्त होने वाले यतियों के द्वारा खोजा जाया करता है? वह यही शिव हैं ॥ ६५ ॥ यह बीज वाले हैं, आप बीज हैं, मैं योनि हूँ जो कि सनातन हूँ। इस प्रकार से कहे गये विश्वात्मा ब्रह्म से बोले—॥ ६६ ॥ आप योनि हैं अर्थात् वह स्थान हैं जहाँ बीज पड़ा करता है, मैं बीज हूँ और महेश्वर बीज वाले हैं, यह मुझे बहुत बड़ा संशय हो रहा है इसलिये आप इस मेरे सन्देह का छेदन करने में समर्थ हों ॥ ६७ ॥ लोक-तन्त्री ब्रह्मा के द्वारा समुत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर भगवान हरि ने इस परम सा-दृश्य प्रश्न को बतलाया था ॥ ६८ ॥ इससे अधिक महान् अन्य कोई भी भूत नहीं है। शिव महान् का परम धाम और अध्यात्मवादियों का पद होता है ॥ ६९ ॥ अपने स्वरूप के दो विभाग कर प्रविष्ट होते हुए यह व्यवस्थित रहते हैं। सूक्ष्म अव्यक्त एक निष्कल स्वरूप है और दूसरा सकल अर्थात् कलाओं से युक्त महेश्वर स्वरूप होता है ॥ ७० ॥

अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ।
पुरा लिङ्गं भवद्बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम् ॥७१
मयि योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात् ।
हिरण्मयमपारन्तद्योन्यामण्डमजायत ॥७२
शतानि दशवर्षाणामण्डं चाप्सु प्रतिष्ठितम् ।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥७३
कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः ।
उल्वन्तस्य महोत्सेधं योऽसौ कनकपर्वतः ॥७४
ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभुः ।
हिरण्यगर्भो भगवानहं जज्ञे चतुर्भुजः ॥७५
ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा कृतम् ।
अतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च ।
कोऽयमत्रे त्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ॥७६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रियदर्शनास्सुतनवो येऽतीताः पूर्वजास्तव ।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ।
भुवनानलसङ्काशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।।७७

इस माया की विधि को जानने वाले तथा अगम्य एवं गहन का पहिले आदि सर्गिक प्रथम लिङ्ग बीज हुआ जो कि आप हैं ।। ७१ ।। काल के पर्याय से वह बीज योनि स्वरूप मुझ में समायुक्त हुआ । वह उस समय योनि में अपार हिरण्मय अण्ड के रूप में उत्पन्न हो गया था ।। ७२ ।। वह अण्ड दश सहस्र वर्ष तक जल में ही प्रतिष्ठित रहा फिर अन्त में हजार वर्ष के बाद वह वायु के द्वारा दो कर दिया गया ।। ७३ ।। उसका एक कपाल अर्थात् आधा भाग ने द्यौ को उत्पन्न किया और दूसरे कपाल से क्षिति उत्पन्न हुई । उल्वन्त का महोत्सेध जो है वह यह कनक पर्वत है ।। ७४ ।। इसके पश्चात् उससे प्रबुद्ध आत्मा वाला देवों में श्रेष्ठ प्रभु देव हिरण्यगर्भ आप और चार भुजाओं वाला मैं उत्पन्न हुआ ।।७५।। फिर एक सहस्र वर्ष के अन्त में वायु ने पुनः दो टुकड़े किये । तारा, सूर्य, चन्द्र से रहित शून्यलोक को देखकर यहाँ पर यह कौन है ऐसा अभिध्यान करने पर उस समय वे कुमार हुये ।। ७६ ।। देखने में परम प्रिय, सुन्दर शरीर वाले आप के जो पहिले होने वाले पूर्वज थे वे ही एक सहस्र वर्षों के अन्त में आपके अब आत्मज हैं ! जो भुवन की अग्नि के समान तथा पद्मपत्र के तुल्य विशाल नेत्रों वाले हैं ।। ७७ ।।

श्रीमान् सनत्कुमारस्तु ऋभुश्चै वोर्द्ध रेतसौ ।
सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दनः ।
उत्पन्नाः समकालं ते बुद्ध्याऽतीन्द्रियदर्शनाः ।।७८
उत्पन्नाः प्रतिघात्मानो जगदुश्च तदैव हि ।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः ।।७९
अस्य सौम्यं बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम् ।
जीवितं मरणं चैव संभवश्च पुनः पुनः ।।८०
स्वप्नभूतं पुनः स्वर्गे दुःखानि नरकांस्तथा ।
विदित्वा चागमं सर्वमवश्यं भवितव्यताम् ।।८१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋभुं सनत्कुमारश्च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा आत्मजाः सनकादयः ।
वैवर्त्तेन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ॥८२
ततस्तेष्वपवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु ।
भविष्यसि विमूढस्तु मायया शङ्करस्य तु ॥८३
एवं कल्पे तु वैकल्पे संज्ञा नश्यति तेऽनघ ।
कल्पशेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ॥८४
सा चैषा ह्यैश्वरी माया जगतः समुदाहृता ।
स एष पर्वतो मेरुर्देवलोक उदाहृतः ॥८५

उन कुमारों में श्रीमान् सनत्कुमार तो ऋभु और ऊर्द्ध्वरेता थे और सनातन, सनक एवं सनन्दन ये सब एक ही काल में उत्पन्न हुये थे और बुद्धि से अतीन्द्रिय दर्शन वाले थे ॥ ७८ ॥ ये प्रतिघात्मा उत्पन्न होते ही उसी समय कहने लगे कि तीनों तापों से रहित रहते हुए कुछ भी कर्मों को आरम्भ नहीं करेंगे ॥ ७९ ॥ इसके सौम्य और बहुत-से क्लेशों से पूर्ण तथा बुढ़ापा एवं शोक से युक्त जीवन और मरण को तथा बार-बार जन्म ग्रहण करना, स्वप्न के सदृश स्वर्ग में वास तथा दुःख एवं नरकों को जानकर तथा समस्त आगम और भविष्यता का ज्ञान प्राप्त करके और ऋभु सनत्कुमार को आपके वश में रहने की स्थिति में देखकर तीन जो सनकादिकुमार थे वे गुणों को त्यागकर महान् ओज वाले वे तीनों वैवर्त्तमार्ग के ज्ञान से निवृत्त हो गये थे ॥ ८०–८१–८२ ॥ इसके अनन्तर उन तीनों सनकादिक के अपवृत्त हो जाने पर तुम शङ्कर की माया से विशेष रूप से मूढ़ हो जाओगे ॥ ८३ ॥ हे अनघ ! इस प्रकार से वैकल्प कल्प में आप की संज्ञा नष्ट हो जाती है और कल्प में शेष जो प्राणी हैं वे सूक्ष्म और पार्थिव हैं ॥ ८४ ॥ वह यह जगत् की ऐश्वरी माया कही गई है । और वह यह मेरु पर्वत जो है सो देवलोक बताया गया है ॥ ८५ ॥

तवैवेदं हि माहात्म्यं दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ।
ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् ॥८६
महादेवं महायोगं भूतानां वरदं प्रभुम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रणवात्मानमासाद्य नमस्कृत्या जगद्गुरुम् ।
त्वाञ्च माञ्चैव संक्रुद्धो निःश्वासान्निर्द्हेदयम् ।।८७
एवं ज्ञात्वा महायोगं अभ्युत्तिष्ठन् महाबलः ।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ।।८८
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः ।
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्त्तमानैस्तथैव च ।
नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ।।८९
नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ।
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ।।९०
अमेढ्रायोर्द्धमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे ।
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अपूर्वप्रथमाय च ।।९१
नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः ।
गह्वराय धनेशाय हैमचीराम्बराय च ।।९२

आपके ही इस माहात्म्य को तथा आत्मा से ही अपने आपको देखकर एवं ईश्वर के सद्भाव तथा अम्बुजेक्षण मुझको जानकर महान् योग वाले प्राणियों को वर देने वाले प्रभु महादेव को जो कि प्रणव के स्वरूप वाले हैं, प्राप्त करके जगत् के गुरु को नमस्कार करके यह संक्रुद्ध होकर तुमको और मुझको निश्वास से निर्दग्ध कर देते हैं ।।८६।।८७।। इस प्रकार से महान् बल वाले इस महायोग का ज्ञान प्राप्त करके अभ्युत्थित होता हुआ मैं तुमको आगे करके उस अनल के समान प्रभा वाले की स्तुति करूँगा ।।८८।। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गरुड़ध्वज विष्णु ने ब्रह्माजी को आगे करके अतीत (गुजरे हुए) आगे आने वाले तथा वर्त्तमान नामों से और छान्दसों के द्वारा इस स्तोत्र का उच्चारण किया था ।।८९।। सुन्दर व्रत वाले, अनन्त तेज से युक्त भगवान् आपके लिये नमस्कार है । क्षेत्र के अधिपति बीज वाले शूली के लिये नमस्कार है ।।९०।। मेढ्र से रहित तथा ऊर्द्ध मेढ्र वाले वैकुण्ठरेता आपके लिये नमस्कार है । ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा अपूर्व प्रथम के लिये नमस्कार है ।।९१।। हव्य पूज्य और सद्य उत्पन्न होने वाले के लिये नमस्कार है । गह्वर-धनेश और हैमचीराम्बर धारण करने वाले के लिये नमस्कार है ।।९२।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च।
वेदकर्म्मावदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥६३
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः।
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ॥६४
विद्युदशनिमेघानां गर्ज्जितप्रभवे नमः।
उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ॥६५
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः।
नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः ॥६६
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः।
धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ॥६७
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः।
नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ॥६८
निमेष प्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः।
अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ॥६६

हमारे सदृश प्राणियों के प्रभव स्थान के लिये नमस्कार है। वेद-कर्म और अवदान द्रव्यों के जन्म देने वाले के लिये नमस्कार है ॥६३॥ योग दर्शन के उत्पन्न करने वाले तथा सांख्य को प्रभव देने वाले के लिये नमस्कार है। ध्रुव निशीथ ऋषियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥६४॥ विद्युत्-वज्र और मेघों तथा गर्जन के प्रभव स्वरूप के लिये नमस्कार है। समस्त समुद्रों को जन्म देने वाले तथा सम्पूर्ण द्वीपों को उत्पन्न करने वाले के लिये नमस्कार है ॥६५॥ पर्वतों के प्रभव स्थान के लिये तथा वर्षों के उत्पत्ति स्वरूप वाले के लिये नमस्कार है। नद और नदियों के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥६६॥ औषधियों के तथा वृक्षों के प्रभु के लिये नमस्कार है। धर्म के अध्यक्ष तथा धर्म स्वरूप एवं समस्त स्थितियों के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥६७॥ समस्त रसों के तथा सम्पूर्ण रत्नों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है। क्षण और कलाओं के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥६८॥ निमेष-काष्ठा अहोरात्र-अर्द्धमास और मासों के प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है ॥६६॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नम ऋतूनां प्रभवे संख्यायाः प्रभवे नमः ।
प्रभवे च परार्द्धस्य परस्य प्रभवे नमः ॥१००
नमः पुराणाप्रभवे युगस्य प्रभवे नमः ।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥१०१
कल्पोदये निबद्धानां वार्त्तानां प्रभवे नमः ।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नमः ॥१०२
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः ।
नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः ॥१०३
पितृणां पतये चैव पशूनां पतये नमः ।
वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च ॥१०४
सुचारुचारुकेशाय ऊर्द्ध्वचक्षुःशिराय च ।
नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥१०५

समस्त ऋतुओं के स्वामी तथा सम्पूर्ण संख्या के प्रभु के लिये नमस्कार है। परार्द्ध के प्रभु तथा पर के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१००॥ पुराणों के प्रभु–युग के अधिपति और चारों प्रकार के सर्ग के स्वामी अनन्त चक्षु वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०१॥ कल्प के उदय के समय में वार्त्ताओं के प्रभु के लिये नमस्कार है। इस विश्व के प्रभु तथा ब्रह्मादि के स्वामी के लिये नमस्कार है ॥१०२॥ समस्त विद्याओं के स्वामी तथा प्रभु के लिये नमस्कार है। समस्त व्रतों के तथा सम्पूर्ण मन्त्रों के प्रभु के लिये नमस्कार है ॥१०३॥ पितृगण के स्वामी एवं पशुओं के प्रभु के लिये नमस्कार है। वाणी के वृषभ तथा पुराणों के वृषभ के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०४॥ सुन्दर केशों वाले के लिये तथा ऊर्द्ध्व चक्षु एवं शिर वाले के लिये नमस्कार है। पशुओं के पति तथा वृष एवं इन्द्र ध्वज के लिये नमस्कार है ॥१०५॥

प्रजापतीनां पतये सिद्धानां पतये नमः ।
गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः ॥१०६
गोकर्णाय च गोष्ठाय शंकुकर्णाय वै नमः ।
वाराहायाप्रमेयाय रक्षोधिपतये नमः ॥१०७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नमो ह्यप्सरसांपतये गणानां (पतये) ह्रीमये नमः।
अम्भसां पतये चैव तेजसां पतये नमः ॥१०८
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्रीमते नमः।
बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥१०९
दीर्घश्रृङ्गैक श्रृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने।
नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ॥११०
भूताय च भविष्याय वर्त्तमानाय वै नमः।
सुवर्च्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ॥१११
वरदाय वरेण्याय नमः सर्वगताय च।
नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ॥११२

समस्त प्रजापतियों के पति तथा समस्त सिद्धों के स्वामी के लिये नमस्कार है। गरुड़ तथा उरग एवं सर्पों के एवं पक्षियों के पति के लिये नमस्कार है ॥१०६॥ गोकर्ण-गोष्ठ और शंकु कर्ण के लिये नमस्कार है। वाराह–अप्रमेय और राक्षसों के अधिपति के लिये नमस्कार है ॥१०७॥ अप्सराओं के पति तथा गणों के स्वामी और ह्रीमय के लिये नमस्कार है। जलों के पति तथा तेजों के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार है ॥१०८॥ श्री लक्ष्मी के स्वामी=श्रीमान् और ह्रीमान् के लिये नमस्कार है। बल तथा अबल के समूह स्वरूप एवं अक्षोभ्य और क्षोभण स्वरूप के लिये नमस्कार है ॥१०९॥ दीर्घश्रृङ्ग वाले, एक श्रृङ्ग वाले, ककुद वाले वृषभ के लिये नमस्कार है। स्थैर्य के वपु वाले तथा तेज स्वरूप एवं सुन्दर प्रभा वाले के लिये नमस्कार है ॥११०॥ भूत-भविष्य तथा वर्त्तमान के लिये नमस्कार है। सुन्दर वर्चस वाले वीर-शूर और अतिग के लिये नमस्कार है ॥१११॥ वरदान देने वाले, वरेण्य और सबमें निवास करने वाले के लिये नमस्कार है। भूत-भव्य-भव और महान् के लिये नमस्कार है ॥११२॥

जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च।
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥११३
भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥११४
नमः पाशाय हस्ताय नमः स्वाभरणाय च ।
हुताय अपहुताय प्रहुतप्रशिताय च ॥११५
नमोऽस्त्विष्टाय मूर्त्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च ।
नम ऋताय सत्याय भूताधिपतये नमः ॥११६
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च ।
अहिंसायाथ लोकानां पशुमन्त्रौषधाय च ॥११७
नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने ।
नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्रग्विणे ॥११८
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च ।
सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥११९

तप स्वरूप जनरूप और वरद के लिये नमस्कार है। वन्दना करने के योग्य-मोक्ष स्वरूप-जन और नरक के लिये नमस्कार है ॥११३॥ भव-भजमान इष्ट, याजक, अभ्युदीर्ण, दीप्त, तत्त्व, निर्गुण के लिये नमस्कार है ॥११४॥ पाश हस्त और स्वाभरण के लिये नमस्कार है। हुत, अपहुत, प्रहुत तथा प्रशित के लिये नमस्कार है ॥११५॥ इष्ट-मूर्त्त और अग्नि सोम ऋत्विज के लिये हमारा नमस्कार है। ऋत एवं सत्य तथा भूतों के अधिपति के लिये नमस्कार है ।११६। सदस्य के लिये तथा दक्षिणावभृथ के लिये नमस्कार है। अहिंसा के लिये तथा लोकों के पशु-मन्त्र एवं औषध के लिये नमस्कार है ॥११७॥ तुष्टि के प्रदान करने वाले त्र्यम्बक और सुन्दर गन्ध वाले के लिये नमस्कार है। इन्द्रियों के पति, परिहार तथा स्रग्धारी के लिये नमस्कार है ॥११८॥ विश्व-विश्वरूप और विश्व से अक्षि मुख–सभी ओर हाथ और पद वाले, अप्रमित और रुद्र के लिये नमस्कार है ॥११९॥

नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः ।
नमः सिद्धाय मेध्याय चेष्टाय त्वव्ययाय च ॥१२०
सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ।
सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥१२१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नमो नमः सुपर्णाय तपनीयनिभाय च ।
विरूपाक्षायत्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥१२२
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च ।
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥१२३
पिशिताय पिशङ्गाय पिताय च निषङ्गिणे ।
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः ॥१२४
नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे ।
नमः श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च ॥१२५
नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय वहुरूपिणे ।
नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥१२६

हव्य और कव्य तथा हव्य-कव्य के लिये नमस्कार है । सिद्ध, मेध्य चेष्ट और अव्यय के लिये नमस्कार है ॥१२०॥ सुवीर, सुघोर, अक्षोम्य क्षोभण, सुमेघा, सुप्रजा, दीप्त और भास्कर के लिये नमस्कार है ॥१२१॥ सुपर्ण और तपनीय के तुल्य के लिये नमस्कार है विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, और महान् ओज वाले के लिये नमस्कार है ॥१२२॥ दृष्टि के हनन करने वाले के लिये नमस्कार है और सौम्य नेत्र वाले के लिये नमस्कार है । धूम्र, श्वेत, कृष्ण और लोहित के लिये हमारा नमस्कार है, ॥१२३॥ पिशित, पिशङ्ग, पीत ओर निषङ्ग वाले के लिये हमारा नमस्कार है विशेषता से युक्त तथा निर्विशेष के लिये नमस्कार है ॥१२४॥ पद्म जैसे वर्ण वाले, मृत्यु के नाश करने वाले तथा मृत्यु स्वरूप के लिये नमस्कार है । श्याम, गौर, कद्रु और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१२५॥ कान्त सन्ध्या के समान अभ्र वर्ण वाले तथा बहुत, से रूप वाले के लिये नमस्कार है । कपाल हाथ में रखने वाले, दिशाओं के वस्त्र वाले अर्थात् तनग्न था कपर्दी के लिये नमस्कार है ॥१२६॥

अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव बिभ्राणाय कृशानवे ॥१२७
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च ।
अर्कप्रभशरीराय वलिने रंहसाय च ॥१२८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय प्रसृताय च ।
सुमेधसेऽक्षमालाय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥१२९
चित्राय चित्रवर्णाय विचित्राय धराय च ।
चेकितानाय तुष्टाय नमस्त्व निहिताय च ॥१३०
नमः क्षान्ताय शान्ताय वज्रसंहनाय च ।
रक्षोघ्नाय मखघ्नाय शितिकण्ठोर्द्ध रेतसे ॥१३१
अरिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च ।
समादाय प्रमोदाय इरिणायैव ते नमः ॥१३२
प्रणवप्रणवेशाय भक्तानां शर्मदाय च ।
मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञहराय च ॥१३३

अप्रमेय–शर्व, अवध्य, वर, आगे और पीछे विभ्राण, कृशानु के लिये नमस्कार है ॥१२७॥ दुर्ग, महान्, रोध, कपिल, सूर्य की प्रभा से युक्त शरीर वाले के लिये, बली और रंहस के लिये नमस्कार है ॥१२८॥ पिनाकी, प्रसिद्ध, स्फीत, प्रसृत, सुमेधा, अक्षों की माला वाले, दिग्वासा तथा शिखण्डी के लिये नमस्कार है ॥१२९॥ चित्र,चित्र-वर्ण, विचित्र, धर, चेकितान, तुष्ट और अनिहित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३०॥

क्षान्त, शान्त, वज्र संहनन, राक्षसों के हनन करने वाले, मखों के नाशक, शितिकण्ठ और उद्ध्वंरेता के लिये नमस्कार है ॥१३१॥ शत्रुओं के नाशक, कृतान्त, तीक्ष्ण आयुधों के धारण करने वाले, मोह के सहित, प्रमोह स्वरूप और और इरिण के लिये नमस्कार है ॥१३२॥ प्रणव के प्रणवेश, भक्तों को कल्याण प्रदान करने वाले, मृगव्याध, दक्ष और दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विध्वंस करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३३॥

सर्वभूताय भूताय सर्वेशातिशयाय च ।
पुरभेत्रे च शान्ताय सुगन्धाय वरेशवे ॥१३४
पुष्पवन्तस्वरूपाय भगनेत्रान्तकाय च ।
कणादाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च ॥१३५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रवे: करालचक्राय नागेन्द्रदमनाय च।
दैत्यानामन्तकायाथो दिव्याक्रन्दकराय च ॥१३६
श्मशानरतिनित्याय नमस्त्र्यम्बकधारिणे।
नमस्ते प्राणपालाय धवमालाधराय च ॥१३७
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिष्टुताय च।
नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च ॥१३८
जटिने दण्डिने तुभ्यं व्यालयज्ञोपवीतिने।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय वाद्यनृत्यप्रियाय च ॥१३९
मन्यवे शीतशीलाय सुगीतिगायते नमः।
कटककराय भीमाय चोग्ररूपधराय च ॥१४०

सर्वभूत, भूत, सर्वेश के अतिशय के लिये, पुर के भेदन करने वाले, शान्त सुगन्ध और नरेश के लिये नमस्कार है ॥१३४॥ पुष्पवन्त स्वरूप, भग नेत्रान्तक, कणाद, वरिष्ठ और काम के अङ्गों को दहन करने वाले के लिये नमस्कार है ॥१३५॥ सूर्य के कराल चक्र के लिये तथा नागेन्द्र के दमन के लिये, दैत्यों के अन्तक के लिये और दिव्यों को आक्रन्द करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१३६॥ श्मशान रति के लिये तथा त्र्यम्बकधारी के लिये नमस्कार है। प्राणों के पालन करने वाले, धनकी माला के धारण करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१३७॥

प्रहीण शोक वाले अनेक भूतों के द्वारा परिष्टुत, नर और नारीके शरीर वाले तथा देवी के प्रिय करने वाले के लिये नमस्कार है ॥१३८॥ जटाओं के धारण करने वाले, दण्डधारी, व्यालों (सर्पों) के यज्ञोपवीत पहिनने वाले तुम्हारे लिये नमस्कार है। नृत्य करने के स्वभाव वाले तथा वाद्य एवं नृत्य पर प्यार करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१३९॥ मन्यु स्वरूप, शील के स्वभाव वाले तथा सुन्दर गीतों के गायन करने वाले, कटक कर, भीम और उग्ररूप धारण करने वाले के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४०॥

विभीषणाय भीमाय भगप्रमथनाय च।
सिद्धसङ्घातगीताय महाभागाय वै नमः ॥१४१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च ।
नदते कूर्दते चैव नमः प्रमुदिताय च ॥१४२
नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च ।
ध्यायते जृम्भते चैव तुदते द्रवते नमः ॥१४३
चलते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे ।
नमः कृताय कम्पाय मुण्डाय विकराय च ॥१४४
नमः उन्मत्तवेषाय किङ्किणीकाय वै नमः ।
नमो विकृतवेषाय क्रूरोग्रामर्षणाय च ॥१४५
अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च ।
नमः प्रियाय वादाय मुद्रामणिधराय च ॥१४६
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रतिमाय च ।
नमो गणाय गुह्याय अगम्यागमनाय च ॥१४७

विशेषरूप से भीषण, भीम, भग के प्रमथन करने वाले, सिद्धों के संघात (समुदाय) के द्वारा गान किये हुए तथा महाभाग के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४१॥ अट्टहास को छोड़ने वाले, क्ष्वेड़ित से आस्फोटित कूर्दन करने वाले और प्रमुदित के लिये हमारा नमस्कार है ॥१४२॥ अद्भुत, शयन करने वाले, धारण करते हुए प्रस्यान किये हुए, ध्यान करने वाले, जृम्भा लेते हुए, तुदन करते हुए और द्रवित होते हुए आपके लिये नमस्कार है ॥१४३॥ चलते हुए क्रीड़ा करते हुए, लम्बोदर शरीर वाले, कृत्त, कम्प, मुण्ड और विकिर के लिये नमस्कार है ॥१४४॥

उन्मत्त वेष वाले, किङ्किणीक, विकृत वेष वाले क्रूर, उग्र और अमर्षण के लिये नमस्कार है ॥१४५॥ अप्रमेय, दीप्त, दीप्त, निर्गुण, प्रिय, और मुद्रा मणि के धारण करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥१४६॥ तोक, तनु और गुणों से अप्रतिम गण, गुह्य अगम्य और अगमन के लिये नमस्कार है ॥१४७

लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ ।
सर्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानन्तवोदरम् ॥१४८
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णन्तारागणविभूषितम् ।
तारापथ इवा भाति श्रीमान् हारस्तवोरसि ॥१४९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिशो दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिताः ।
विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपमः ॥१५०
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषितः ।
दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षमनौपम्यं मुख तव ॥१५१
पद्ममालाकृतोष्णीषं शीर्षण्यं शोभते कथम् ।
दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्ये भूर्ह्यनिलो बले ॥१५२
तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्दः शैत्यमप्सु च ।
अक्षरोत्तमनिष्पन्दान् गुणानेतान्विदुर्बुधाः ॥१५३
जपो जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वरः ।
पुरेशयो गुहावासी खेचरी रजनीचरः ॥१५४

यह लोकों की धात्री भूमि है और ये चरण सज्जनों के द्वारा सेवित हैं। समस्त सिद्धि योगों का आपका उदर अधिष्ठान है ॥ १४८ ॥ मध्य में विस्तीर्ण अन्तरिक्ष है जो कि तारागणों से विभूषित है। आपके उरस्थल में श्री से सम्पन्न हार तारापथ की भाँति शोभा देता है ॥ १४६ ॥ ये दश दिशाऐं आपकी भुजाऐं हैं जो कि केयूर और अङ्गदों से विभूषित हैं। नील अम्बुदों के समूह के समान विस्तीर्ण परिणाह है ॥ १५० ॥ आपका यह कण्ठ हेमसूत्र से विभूषित होकर परम शोभा वाला हो रहा है। दंष्ट्रा की करालता से दुर्धर्ष और उपमा से रहित आपका मुख है ॥ १५१ ॥ पद्मों की मालाओं से शिरोवेष्टन वाला शीर्षण्य किस प्रकार से शोभा दे रहा है जैसे सूर्य में दीप्ति, चन्द्र में वपु, स्थिरता में भूमि और बल में अनिल होता है ॥ १५२ ॥ अग्नि में तीक्ष्णता, चन्द्र में प्रभा, आकाश में ध्वनि और जल में शीतलता इन अक्षर और उत्तम निष्पन्द वाले गुणों को बुध लोग जानते हैं ॥ १५३ ॥ महादेव महेश्वर जप, जप्य, महान योगी, पुरेशय, गुह्यवासी, खेचर और रजनीचर हैं ॥ १५४ ॥

तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्द्धनः ।
हयशीर्षो धराधाता विधाता भूतिवाहनः ॥१५५
बोद्धव्यो बोधनो नेता धूर्वहो दुष्प्रकम्पकः ।
बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनञ्जयः ॥१५६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पताकाध्वजिनीपतिः ।
कवची पट्टिशी शङ्खी पाशाहस्तः परश्वभृत ॥१५७
अगमस्त्वनघः शूरो देवराजारिमर्दनः ।
त्वां प्रसाद्य पुराऽस्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि ॥१५८
अग्निस्त्वं चार्णवान् सर्वान् पिबन्नैव न तृप्यसे ।
क्रोधागारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः ॥१५९
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्वं शिष्टपूजितः ।
वेदानामव्ययः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः ॥१६०
हव्यञ्च वेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः ।
प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे ॥१६१

भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा,
लोकानान्त्वं कर्त्ता त्वादिसर्गः ।
साङ्ख्या प्रकृतिभ्यः परमं त्वां विदित्वा,
क्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति ॥१६२

योगेन त्वान्ध्यानिनो नित्ययुक्ताः,
ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान् ।
येऽन्ये मर्त्यास्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते,
कर्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते ॥१६३
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः ।
कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः ।
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुते ॥१६४

यह महेश्वर तप की खान, गुह के गुरु, नन्दन और नन्दिवर्धन हैं। हयशीर्ष, धरा के धाता, विधाता तथा भूति को वहन करने वाले हैं ॥ १५५ ॥ यह बोध करने के योग्य, बोधन, नेता, धूर्वह, दुष्प्रकम्पक, बृहद्रथ, भीम कर्म करने वाले, बृहत्कीर्त्ति और धनञ्जय हैं ॥ १५६ ॥ यह महेश्वर घण्टाप्रिय ध्वजी, छत्रधारी, पताकाध्वजिनी के स्वामी, कवचधारी, पट्टिशधारण करने वाले, शङ्खधारी, हाथ में पाश ग्रहण करने वाले और परश्वभृत हैं ॥ १५७ ॥ यह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अगम, अनघ, शूर, देवराज के शत्रुओं को मर्दन करने वाले हैं। आपको प्रसन्न कर हमने युद्ध में पहिले शत्रुओं को मारा था ॥ १५८ ॥ आप अग्नि स्वरूप हैं समस्त समुद्रों का पान करते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं। आप क्रोध के घर हैं, प्रसन्न आत्मा वाले हैं, काम के नाशक तथा काम के प्रदान करने वाले प्रिय हैं ॥ १५९ ॥ आप ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, ब्रह्मचारी, गौओं का नियंत्रण करने वाले तथा शिष्ट पुरुषों के द्वारा पूजित हैं। आप वेदों के अव्यय-कोश हैं और आपने यज्ञ की कल्पना की है ॥ १६० ॥ हव्य वेद का वहन करता है और हव्य वाहन वेदोक्त का वहन करता है। हे महादेव ! आपके प्रसन्न होने पर हम सब प्रसन्न होते हैं ॥ १६१ ॥ आप भवानी के स्वामी, आदिमान् न होने वाले, धामों के समूह, लोकों के ब्रह्मा, आदिसर्ग और आप॰ कर्त्ता हैं। सांख्य शास्त्र के ज्ञाता आपको प्रकृतियों से पर जान कर क्षीण ध्यान वाले वे मृत्यु में प्रवेश नहीं करते हैं ॥ १६२ ॥ ध्यान करने वाले योग के द्वारा आप में नित्य युक्त होते हुए जानकर फिर उन समस्त भोगों का त्याग कर देते हैं। जो अन्य मनुष्य आपकी शरणागति में जाते हैं वे विशुद्ध होकर कर्मों से दिव्य भोगों का सेवन किया करते हैं ॥ १६३ ॥ अप्रमेय तत्व को जैसे अपनी शक्ति से जानते हैं वैसे ही परमात्मा आपका अपार माहात्म्य का कीर्त्तन किया। आप जो भी कोई हों वह हों, हमारे लिये सर्वत्र शिव होवें। आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥ १६४ ॥

॥ प्रकर्ण २५—मधुकैटभ उत्पत्ति ॥

संपिबन्निव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः।
प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवच्च स्वकीर्त्तनात् ॥१
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः।
पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचनः ॥२
ततः स भगवान् देवः श्रुत्वा वाक्यामृतं तयोः।
जानन्नपि महाभागः प्रीतपूर्वमथाब्रवीत् ॥३
कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ।
समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन् घोरे जलप्लवे ॥४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ताव् चतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ।
भगवन् किञ्च तथ्येन विज्ञातेन त्वया विभो ।
कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारस्मृते त्वया ॥५
उवाच भगवान् देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण वदाम्यहम् ॥६
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ।
भवन्तौ माननीयौ वै मम ह्यर्हतरावुभौ ।
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—उन दोनों को भली भाँति पान करते हुए की भाँति देखकर मधु पिङ्ग एवं आयत नेत्रों वाले महेश्वर अपने कीर्त्तन से अत्यन्त प्रहृष्ट मुख वाले हो गये ॥ १ ॥ उमा के स्वामी, विरूप नेत्रों वाले, दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले, पिनाकधारी, खण्ड परशु, भूत प्रान्त और तीन नेत्र वाले उन भगवान महादेव ने इन दोनों के वचनामृत को सुनकर फिर महाभाग जानते हुए भी प्रीति के साथ बोले—॥ २-३ ॥ इस घोर जल के विप्लव में परस्पर में हित के चाहने वाले महान आत्मा वाले आप दोनों कौन हैं ? आप कमल के समान नेत्रों वाले यहाँ इकट्ठे होते कौन हैं ? ॥ ४ ॥ उन दोनों महात्माओं ने परस्पर में भली भाँति देखकर कहा—हे भगवान ! हे विभो ! तथ्य को जानने वाले आपके बिना अनन्त सुख इच्छाचार कहाँ हो सकता है ॥ ५ ॥ भगवान् देव मधुर और स्निग्ध वाणी से बोले—हे हिरण्यगर्भ ! हे कृष्ण ! मैं आप दोनों से कहता हूँ, मैं आपकी इस भक्ति से प्रसन्न हो गया हूँ जो कि शाश्वताक्षर से युक्त हैं। अब आप दोनों ही मेरे परम माननीय और अतियोग्य हो गये हैं। मैं आज इतना प्रसन्न हूँ कि वरों में अतिश्रेष्ठ क्या तुम दोनों को वरदान दूँ ॥ ६-७ ॥

तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीत् ।
ब्रूहि ब्रूहि महाभाग वरो यस्ते विवक्षितः ॥८
प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो पुत्रमिच्छामि धूर्वहम् ।
ततः स भगवान् ब्रह्मा वरेप्सुः पुत्रलिप्सया ॥९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथ विष्णुरुवाचेदं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
वीरमप्रतिमं पुत्रं यत्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ॥१०
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्वं देवदेवं महेश्वरम् ।
स तस्य वाक्यं सपूज्य केशवस्य पितामहः ॥११
ईशानं वरदं रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यानि सह विष्णुना ॥१२
यदि मे भगवान् प्रीतः पुत्रकामस्य नित्यशः ।
पुत्रो मे भव विश्वात्मन् स्वतुल्यो वापि धूर्वहः ।
नान्यं वरमहं वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर ॥१३
तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा ।
निष्कल्मषममायश्च बाढमित्यब्रवीद्वचः ॥१४

उनके द्वारा इस प्रकार मे कहने पर विष्णु भगवान् ब्रह्माजी से बोले—हे महाभाग ! बोलो-बोलो जो भी वर आपको विवक्षित हो ॥ ८ ॥ हे विष्णो ! मैं प्रजा को कामना रखने वाला हूँ । मैं धुरी का वहन करने वाला पुत्र चाहता हूँ । इसके पश्चात् पुत्र की लिप्सा से वर की चाहना रखने वाले वह भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर प्रजा की इच्छा वाले प्रजापति से भगवान् विष्णु ने यह कहा—कि जो आप परम वीर और अनुपम धुरी के वहन करने वाला पुत्र चाहते हो तो आप देवों के देव महेश्वर को ही पुत्रत्व के रूप में अभियुक्त करें । तब पितामह ने केशव भगवान् के इस वचन का आदर किया ॥ १०-११ ॥ कृताञ्जलि होकर वर देने वाले ईशान रुद्र को प्रणाम करके विष्णु के साथ ही पुत्र की कामना रखने वाले ब्रह्माजी ये वाक्य बोले ॥ १२ ॥ यदि आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हैं तो नित्य ही पुत्र को कामना रखने वाले मेरे हे विश्वात्मन् ! आप पुत्र होवें अथवा अपने ही सदृश धुरी का वहन करने वाला पुत्र दो । मैं इसके अतिरिक्त कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ । हे महेश्वर ! आप जब प्रसन्न हैं तो यही वरदान मुझे देवें ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी की इस प्रार्थना को सुनकर भग के नेत्रों का हनन करने वाले भगवान् महेश्वर बिना किसी कल्मष तथा माया के 'अच्छा यही होगा' यह वचन बोले ॥ १४ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यदा कार्यसमारम्भे कस्मिंश्चित्तव सुव्रत ।
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वां समुपेष्यति ।
आत्मैकादश ये रुद्रा विहिताः प्राण हेतवः ॥१५
सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्तः सहानुगः ।
ऋषिर्म्मित्रो महात्मा वै ललाटाद्भविता तदा ॥१६
प्रसादमतुलं कृत्वा ब्रह्मणस्तादृशं पुरा ।
विष्णुं पुनरुवाचेदं ददामि च वरन्तव ॥१७
स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः ।
सर्वमेतत् कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि ।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरम्बुदवाहन ॥१८
एवमुक्तस्ततो देवस्तमभाषत केशवम् ।
विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहन्तव शाश्वत ॥१९
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गमं स्थावरश्च यत् ।
विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥२०
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम् ।
भवानृतमहं सत्यं भवान् ऋतुरहं फलम् ॥२१

हे सुव्रत ! जब तुम्हारे किसी कार्य के समारम्भ में कार्य की सिद्धि न होने पर आपको क्रोध आवेगा तब अपने एकादश रुद्र जो प्राणों के हेतु स्वरूप बनाये हैं वह मैं एकादश स्वरूप वाला हाथ में शूल धारण किये हुए अनुचरों के साथ महात्मा ऋषि मित्र उस समय ललाट से होऊँगा ॥ १५-१६ ॥ उस समय ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार का अतुल प्रसाद करके फिर विष्णु भगवान् से यह बोले—मैं आपको वरदान देता हूँ ॥ १७ ॥ तब महाभाग वह विष्णु भव अर्थात् महेश्वर से यह वचन बोले—हे देव ! यह सब किया गया है यदि मुझ पर आप अत्यन्त परितुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे अम्बुद वाहन ! आप में मेरी सुप्रतिष्ठित भक्ति होवे ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से कहे हुए महादेव ने केशव से कहा—हे विष्णो ! हे शाश्वत ! हे देव ! आप सुनो मैं आप से बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १९ ॥ प्रकाश और अप्रकाश, स्थावर और जङ्गम जो यह विश्व का रूप है

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह सब रुद्र और नारायण के स्वरूप वाला ही है ।। २० ।। मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं । आप रात्रि हैं तो मैं दिन हूँ । आप ऋत हैं तो मैं सत्य हूँ, आप ऋतु हैं तो मैं फल हूँ ।। २१ ।।

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयं यज्जपित्वा सदा जनाः ।
मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः ।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ।।२२
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम् ।
भवानर्द्धशरीरं मे त्वहन्तव यथैव च ।।२३
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम् ।
त्वञ्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः ।।२४
त्वञ्च मे हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः ।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम् ।।२५
तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ ।
एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्द्धानमीश्वरः ।।२६
ततः सोऽन्तर्हिते देवे संप्रहृष्टस्तदा पुनः ।
अशेत शयने भूप प्रविश्यान्तर्जले हरिः ।।२७
तं पद्मं पद्मगर्भाभं पद्माक्षः पद्मसम्भवः ।
सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्मं तदासनम् ।।२८

आप ज्ञान हैं तो मैं ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु हुँ । जिसका जप करके सर्वदा मनुष्य जो सुकृत करने वाले हैं आपके प्रसन्न होने पर मुझ में प्रवेश किया करते हैं । हम दोनों के सहित ही गति है और युग के क्षय में अन्य कोई भी गति नहीं होती है ।। २२ ।। अपने आपको प्रकृति समझो और मुझे शिव को पुरुष जानलो । आप मेरे आधे शरीर हैं और इसी प्रकार से मैं आपका भी आधा शरीर हूँ ।। २३ ।। मैं वाम पार्श्व हूँ और मेरे लिये श्याम श्रीवत्स का लक्षण है । और आप वाम से इतर अर्थात् दक्षिण पार्श्व हैं और मैं नील लोहित हूँ ।। २४ ।। हे विष्णो ! आप मेरे हृदय हैं और मैं आपके हृदय में स्थित हूँ । आप समस्त कार्यों के कर्ता हैं और मैं उन सब का अधिदैवत हूँ ।। २५ ।। हे

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वत्स ! हे अम्बुद प्रभ ! सो अब आइये, आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। इस प्रकार से कहकर विष्णु के देव ईश्वर अन्तर्धान हो गये ।। २६ ।। इसके पश्चात् महादेव के अन्तर्हित हो जाने पर वह भगवान् विष्णु फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर हे भूप ! हरि ने जल में अन्दर प्रवेश किया और अपनी शैया में शयन करने लगे ।। २७ ।। पद्म के समान नेत्र वाले, पद्म से समुत्पन्न, सम्प्रहृष्ट मन वाले ब्रह्माजी ने पद्मगर्भ की आभा वाले उस ब्राह्म आसन का सेवन किया ।। २८ ।।

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमावुभौ ।
महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ।।२९
ऊचतुश्चैव वचनं भक्ष्यो वै नौ भविष्यसि ।
एवमुक्त्वा तु तौ तस्मिन्नन्तर्द्धानं गतावुभौ ।।३०
दारुणन्तु तयोर्भावं ज्ञात्वा पुष्करसम्भवः ।
माहात्म्यं चात्मनो बुद्धा विज्ञातुमुपचक्रमे ।।३१
कर्णिकाघटन भूयो नाभ्यजानाद्यदा गतिम् ।
ततः स पद्मनालेन अवतीर्य्य रसातलम् ।
कृष्णा जिनोत्तरासङ्गन्ददृशेऽन्तर्जले हरिम् ।।३२
स च तं बोधयामास विबुद्धं चेदमब्रवीत् ।
भूतेभ्यो मे भयं देव त्रायस्वोत्तिष्ठ शंकुरु ।।३३
ततः स भगवान् विष्णुः सप्रहासमरिन्दमः ।
न भेतव्यं न भेतव्यमित्युवाच मुनिः स्वयम् ।।३४
तस्मात्पूर्वं त्वया चोक्तं भूतेभ्यो मे महद्भयम् ।
तस्माद्भूतादिवाक्यैस्तौ दैत्यौ त्वं नाशयिष्यसि ।।३५

इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् वहाँ पर भी अप्रतिम, महाबल वाले महासत्व से युक्त दो भाई मधु और कैटभ यह वचन बोले कि हमारे भक्ष्य होओगे, इतना कहकर वे दोनों वहाँ फिर अन्तर्धान हो गये ।। २९-३० ।। पुष्कर सम्भव ब्रह्माजी ने उन दोनों के इस दारुण भाव को जानकर और अपना माहात्म्य समझ कर इसके जानने का उपक्रम किया ।। ३१ ।। फिर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जब कर्णिका धटन गति को नहीं जाना तो इमके उपरान्त उनने कमल नाल के द्वारा रसातल में अवतरण किया और वहाँ जल के भीतर कृष्णाजिन के उत्तरा सङ्ग वाले हरि का दर्शन किया ॥ ३२ ॥ वहाँ उन्होंने उनको बताया और विशेष रूप बुद्ध होने वाले उनसे यह कहा—हे देव ! मुझे भूतों से भय होता है, आप उठिये, मेरी रक्षा कीजिए और मेरा कल्याण करिये ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु जो कि शत्रुओं के दमन करने वाले हैं, हास के सहित बोले—आप को डरना नहीं चाहिए और डरो मत, यह वचन स्वयं मुनि ने कहे ॥ ३४ ॥ इससे पूर्व आपने कहा था कि भूतों से मुझे महान् भय हो रहा है सो भूतादि वाक्यों के द्वारा आप उन दोनों दैत्यों का नाश कर देंगे ॥ ३५ ॥

भूर्भुव.स्वस्ततो देवं विविशुस्तमयोनिजम् ।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा तमेवासीनमागतम् ॥३६
गते तस्मिंस्ततोऽनन्त उद्गीर्य भ्रातरौ मुखात् ।
विष्णुं जिष्णुश्च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षताम् ।
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमनं पुनः ॥३७
चक्राते रूप सादृश्यं विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ ।
कृतसादृश्यरूपौ तौ तावेवाभिमुखौ स्थितौ ॥३८
ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माणं दारुणं वचः ।
अस्माकं युध्यमानानां मध्ये वै प्राश्निको भव ॥३९
ततस्तौ जलमाविश्य संस्तभ्यापः स्वमायया ।
चक्रतुस्तुमुलं युद्धं यस्य येनेप्सितं तदा ॥४०
तेषान्तु युध्यमानानां दिव्यं वर्षशतङ्गतम् ।
न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्य सन्यवर्त्तत ॥४१
लक्षणद्वयसंस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ ।
सादृश्याद्व्याकुलमना ब्रह्मा ध्यानमुपागमत् ॥४२

इसके अनन्तर "भूर्भुवः स्व." ये उस अयोनिज देव के अन्दर प्रविष्ट हो गये । इसके पश्चात् उनने प्रदक्षिणा की और उसी आसन पर पुनः आ गये और बैठ गये ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् उस अनन्त में दो भाई मुख से उद्गीर्ण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होकर विष्णु और जिष्णु से बोले ब्रह्मा की रक्षा करो क्योंकि पुनः उन दोनों मधु और कैटभ का आगमन जान लिया था ॥ ३७ ॥ विष्णु और जिष्णु के रूप की समानता उन दोनों ने बनाली थी और सादृश्य रूप वाले होकर उन दोनों के ही सामने में स्थित हो गये थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दैत्य ब्रह्माजी से बोले और अत्यन्त दारुण वाक्य कहे कि हमारे युद्ध करने वालों के मध्य में प्रयश्निक बन जाओ ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् वे दोनों जल में प्रविष्ट होकर अपनी माया से उन्होंने जल को स्तम्भित कर दिया और फिर वहाँ उन दोनों ने उस समय तुमुल युद्ध जैसा भी जिसने चाहा किया था ॥ ४० ॥ उनको वहाँ युद्ध करते हुए दिव्य एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अन्योन्य का युद्ध करने के मद की अधिकता का अभिमान कम नहीं हुआ ॥ ४१ ॥ लक्षण द्वय के संस्थान से रूप वाले वे स्थित इङ्गित वाले थे । उन दोनों के समान रूपता से व्याकुल मन वाले ब्रह्माजी ध्यान में स्थित हो गये थे ॥ ४२ ॥

स तयोरन्तरं बुद्धा ब्रह्मा दिव्येन चक्षुषा ।
पद्मकेसरजं सूक्ष्मं ववन्ध कवचन्तयोः ।
आमेखलञ्च गात्रञ्च ततो मन्त्र मुदाहरत् ॥४३
जपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता ।
पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ।
तां दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ भयाद्वर्णविवर्जितौ ॥४४
ततः प्रोवाच तां कन्यां ब्रह्मा मधुरया गिरा ।
काऽत्र त्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ॥४५
साम्ना संपूज्य सा कन्या ब्रह्माणं प्राञ्जलिस्तदा ।
मोहिनीं विद्धि मां मायां विष्णोः सन्देशकारिणीम् ॥४६
त्वया सङ्कीर्त्यमानाऽहं ब्रह्मन् प्राप्ता त्वरायुता ।
अस्याः प्रीतमना ब्रह्मा गौणं नाम चकार ह ॥४७
मया च व्याहृता यस्मात्त्वञ्चैव समुपस्थिता ।
महाव्याहृतिरित्येव नाम ते विचरिष्यति ॥४८
उत्थिता च शिरो भित्त्वा सावित्री तेन चोच्यते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एकानंशात् यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ॥४९

तब ब्रह्माजी ने उन दोनों का अन्तर समझ कर उन दोनों के पद्म केशर से उत्पन्न सूक्ष्म कवच बाँध दिया था । मेखला और गात्र तक इसके पश्चात् मन्त्र का उच्चारण किया ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर जप करते हुए उनके विश्व-रूप से समुत्थित एक कन्या हुई जो कि पद्म हाथ में ग्रहण किये हुए और सती तथा पद्म एवं चन्द्र के समान मुख वाली थी । वे दोनों दैत्य उसे देखकर बहुत ही व्यथित तथा भय से वर्ण विवर्जित हो गये ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने मधुर वाणी से उस कन्या से कहा—हे अनिन्दते ! आप कौन हैं ? और मैं आपको क्या समझूँ ? आप सत्य-सत्य मुझे बतलाने की कृपा करें ॥ ४५ ॥ तब उस कन्या ने सामवेद से ब्रह्मा की पूजा करके और प्राञ्जलि होकर कहा— मुझको आप विष्णु भगवान् की सन्देश का पालन करने वाली मोहिनी समझ लीजिए ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा संकीर्त्यमान होती हुई मैं यहाँ बहुत ही शीघ्रता से प्राप्त हुई हूँ । तब प्रसन्न मन वाले ब्रह्माजी ने इसका गौण नाम किया ॥ ४७ ॥ क्योंकि आप मेरे द्वारा व्याहृत हुई हैं और अब यहाँ उपस्थित हो गई हैं इस लिये अब से आपका नाम महाव्याहृति संसार में प्रचलित हो जायगा ॥ ४८ ॥ वह शिर का भेदन करके उत्थित हुई थी इसलिये वह सावित्री इस नाम से भी कही जाती है । क्योंकि बिना अंश वाली एक हैं इसलिये अनेक अंश वाली भी हो जाँयगी ॥ ४९ ॥

गौणानि तावदेतानि कर्मजान्यपराणि च ।
नामानि ते भविष्यन्ति मत्प्रसादात् शुभानने ॥५०
ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् ।
अनावृतं नौ मरणं पुत्रत्वञ्च भवेत्तव ॥५१
तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनयद्यमसादनम् ।
अनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ॥५२
एवन्तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह ।
प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ॥५३
पुत्रत्वमीशेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विष्णुना जिष्णुना सार्द्धं मधुकैटभयोस्तथा ।
सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५४
अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः ।
सक्षेपसंप्लवङ्घोरं स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ॥५५
स तस्य वचसा देवः सहारमकरोत्तदा ।
महीं निस्थावरां कृत्वा प्रकृतिस्थांश्च जङ्गमान् ॥५६

ये आपके गौण नाम हैं और दूसरे कर्मों से उत्पन्न होने वाले भी नाम होते हैं। हे शुभानने ! मेरे प्रसाद से इस प्रकार आपके बहुत से नाम होंगे ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर पीड़ित होते हुए उन दोनों ने यह वरदान माँगा हम दोनों का मरण अनावृत हो और आपका पुत्रत्व होवे ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर ऐसा ही हो, यह कहकर हित की कामना से शीघ्र ही यमालय को प्राप्त कर दिया विष्णु कैटभ को और जिष्णु मधु को ले गये ॥ ५२ ॥ इस प्रकार से विष्णु और जिष्णु के हाथ वे दोनों दैत्य मारे गये थे । तब प्रसन्न ब्रह्माजी ने लोकों के हित की कामना से यह सब किया था ॥ ५३ ॥ अब जिस तरह से अपने आपको पुत्रत्व के रूप में ईश ने दिया था वह समझ लो । तब विष्णु और जिष्णु के साथ युद्ध में मधु और कैटभ के व्यतिक्रान्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने विष्णु से कहा—॥ ५४ ॥ आज सौ वर्ष का पूरा समय समाप्त हो गया है और अब मैं भी संक्षेप तथा संप्लव से घोर अपने स्थान को जाता हूँ ॥ ५५ ॥ उसके इस वचन से देव ने तब संहार कर दिया था । इस भूमि को बिना स्थावर वाली तथा जङ्गमों को प्रकृति में स्थित कर दिया था ॥ ५६ ॥

यदि गोविन्द भद्रन्ते क्षिप्तस्ते यादसां पतिः ।
ब्रूहि यत् करणीयं स्यान्मया ते लक्ष्मि वर्द्धन ॥५७
बाढं शृणु त्वं हेमाभ पद्मयोने वचो मम ।
प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ॥५८
तन्तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽभूदनृणो भवान् ।
चतुर्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व वा ॥५९
अवाप्य संज्ञाङ्गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रं ततो महत् ।।६०
तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यवर्द्धत ।।६१
सक्रोधाविष्टनेत्राभ्यामापतन्नश्रुबिन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ।।६२
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरभ्यलङ्कृताः ।
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ।।६३

हे गोविन्द ! हे लक्ष्मिवर्धन ! आपका कल्याण हो, आपने समुद्र का क्षेप कर दिया है, अब मुझे बतलाइये कि मुझे क्या करना चाहिए ।। ५७ ।। विष्णु ने कहा—अच्छा, हे पद्मयोनि ! हे हेमाभ ! आप अब मेरा वचन श्रवण करो कि आपने महेश्वर से पुत्र की कामना से वरदान प्राप्त करने का प्रसाद लाभ किया था ।। ५८ ।। अब आप मुझ से अनृण हो गये हैं और उस वरदान को सफल बनाइये । आप अब चार प्रकार के प्राणियों का सृजन करें अथवा विशेष रूप से सृजन करने का कार्य करें ।। ५६ ।। इस प्रकार से पद्मयोनि पितामह ने गोविन्द से संज्ञा प्राप्त करके प्रजा के सृजन करने के मन वाले होकर फिर वहाँ महान् उग्र तपश्चर्या करने का आरम्भ कर दिया था ।। ६० ।। जब इस तरह से ब्रह्माजी बहुत समय तक तप करते रहे और कुछ भी उसका फल नहीं हुआ तो फिर उनको महान् दुःख उत्पन्न हुआ और उस दुःख से क्रोध बढ़ गया था ।। ६१ ।। जब ब्रह्माजी के नेत्र क्रोध से पूर्णतया आविष्ट हो गये तो फिर उनसे आँसुओं की बूँदें निकल पड़ीं थीं । तब फिर उन अश्रु बिन्दुओं से वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले महाभाग, महान् सत्त्व, स्वस्तिकों से अलंकृत होते हुए महान् विष वाले तथा फैले हुए केशों वाले सर्प प्रादुर्भूत हो गये थे ।। ६२-६३ ।।

सर्पांस्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
अहो धिक् तपसा मह्यं फलमीदृशकं यदि ।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ।।६४
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मूर्च्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान् प्रजापतिः ॥६५
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात् कारुण्यपूर्वकम् ।
आत्मैकादश ते रुद्राः प्रोद्भूता रुदतस्तथा ।
रोदनात् खलु रुद्रास्ते रुद्रत्वं तेन तेषु तत् ॥६६
ये रुद्राः खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः ।
प्राणाः प्राणभृतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः ॥६७
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च ।
तस्य प्राणान् ददौ भूयस्त्रिशूलो नीललोहितः ।
ललाटात् पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मकः ॥६८
ब्रह्मणः सोऽददात् प्राणानात्मजः स तदा प्रभुः ।
प्रहृष्टवदनो रुद्रः किंचित् प्रत्यागतासवम् ।
अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माणं परमं वचः ॥६९
उपयाचस्व मां ब्रह्मन् स्मर्तुं मर्हसि चात्मनः ।
मां च वेत्थात्मजं रुद्रं प्रसाद कुरु मे प्रभो ॥७०

ब्रह्माजी ने सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाले उन सर्पों को देखकर अपने आपको बहुत कुछ बुरा समझा था, अहो ! इस मेरे तप को धिक्कार है । यह मुझे ऐसा उसका फल मिला है कि मैंने सबसे पूर्व यह लोकों के विनाश करने वाली प्रजा ही आदि में उत्पन्न की है ।।६४।। उस समय ब्रह्माजी को बहुत ही तीव्र मूर्छा हो गई जो कि क्रोध और अमर्ष से ही पैदा हुई थी । तब प्रजापति ने उस मूर्छा के अभिताप से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था ।।६५।। उनके उस अप्रतिम वीर्य वाले के देह से करुणा के साथ एकादश रुद्र रुदन करते हुए उत्पन्न हुए ! क्योंकि वे रोदन कर रहे थे इसलिये ही उनमें रुद्रत्व के नाम की प्रसिद्धि हुई थी ।।६६।। जो रुद्र हैं वे प्राण हैं और जो प्राण हैं वे तदात्मक हैं । समस्त भूतों में अवस्थित प्राणधारियों के उन्हें प्राण समझना चाहिए ।।६७।। अत्यन्त उग्र महत्त्व और साधु से चरित उसके प्राणों को नीललोहित त्रिशूली ने फिर दे दिया था जो कि पद्मयोनि ब्रह्माजी के ललाट से एकादशात्मक प्रभु उत्पन्न हुए थे ।।६८।। उस आत्मज प्रभु ने ब्रह्माजी को प्राणों को दिया था ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और कहा—हे प्रभो ! आप मुझको अपना आत्मज रुद्र समझें और मुझ पर प्रसन्नता करें ॥७०॥

श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य प्रभूतश्च मनोगतम् ।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रे फुल्लाम्बुजप्रभः ॥७१
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ।
उवाच भगवान् ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥७२
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः ।
को भवान् विश्वभूततिस्त्वं स्थित एकादशात्मकः ॥७३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा ।
ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्यात्मजैः सह ॥७४
यत्ते वर महं ब्रह्मन् याचितो विष्णुना सह ।
पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ॥७५
लोकेषु विश्रुतैः कार्यं सर्वैर्विश्वात्मसम्भवैः ।
विषादन्त्यज देवेश लोकांस्त्वं स्रष्टुमर्हसि ॥७६
एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमनाभवत् ।
रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ॥७७

ब्रह्माजी ने इस परम सुन्दर वचन को सुनकर जिसे कि मन में वे चाहते ही थे, पितामह को बहुत ही प्रसन्नता हुई और उनके नेत्र विकसित कमलों के समान हो गये थे ।।७१।। इसके अनन्तर प्रत्यागत प्राणों वाले भगवान् ब्रह्मा विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले होकर अत्यन्त स्निग्ध और गम्भीर वाणी से बोले ।।७२।। हे महाभाग ! आप मेरे मन को बहुत ही आनन्दित कर रहे हैं । आप अब मुझे बतलाइये कि एकादश स्वरूप वाले विश्व की भूति स्वरूप आप कौन हैं ? ।।७३।। इस प्रकार से भगवान् ब्रह्मा के द्वारा कहे गये जो कि ब्रह्माजी अनन्त तेज से उस समय युक्त थे, भगवान् रुद्र ने अपने आत्मजों के साथ ब्रह्माजी को प्रणाम करके उत्तर दिया था ।।७४।। हे ब्रह्मन् ! आपने भगवान् विष्णु के साथ मुझसे जो वरदान माँगा था कि आप स्वयं या आपके ही तुल्य धुरी को वहन करने वाला मेरा पुत्र होवे ।।७५।। हे देवेश !

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आप लोकों में समस्त विश्वात्म सम्भव एवं विश्रुतों के द्वारा जो कार्य लोकों के सृजन का करना चाहते हैं उसे अब विषाद को त्याग कर करें ॥७६॥ इस तरह से कहे हुए ब्रह्माजी के मन को बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर भगवान ब्रह्मा लोकान्त में नील लोहित रुद्र से कहने लगे ॥७७॥

साहाय्यं मम कालर्थिं प्रजाः सृज मया सह ।
बीजी त्वं सर्वभूतानां तत्प्रपन्नस्तथा भव ।
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शङ्करः ॥७८
ततः स भगवान् ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषितः ।
मनोऽग्रे सोऽसृजद्देवो भूतानां धारणां ततः ।
जिह्वां सरस्वतीञ्चैव ततस्तां विश्वरूपिणीम् ॥७९
भृगुमङ्गिरसं दक्षं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
वसिष्ठञ्च महातेजाः ससृजे सप्त मानसान् ॥८०
पुत्रानात्मसमानन्यान् सोऽसृजद्विश्वसम्भवान् ।
तेषां भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ॥८१
ओङ्कारप्रमुखान् वेदानभिमान्याश्च देवताः ।
एवमेतान् यथाप्रोक्तान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥८२
दक्षाद्यान् मानसान् पुत्रान् प्रोवाच भगवान् प्रभु ।
प्रजाः सृजत भद्रं वो रुद्रेण सह धीमता ॥८३
अनुगम्य महात्मानं प्रजानां पतयस्तदा ।
वयमिम्छामहे देव प्रजाः स्रष्टुं त्वया सह ।
ब्रह्मणस्त्वेष सन्देशस्तव चैव महेश्वर ॥८४

आप अब मेरी सहायता करें और मेरे साथ में रहकर मेरे कार्य के लिए प्रजा का सृजन करो । आप समस्त प्राणियों के बीज हैं । अब आप उसी रूप में प्रपन्न हो जावें । तब तो 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—इस प्रकार से भगवान् शङ्कर ने ब्रह्माजी की इस वाणी को ग्रहण कर लिया था ॥७८॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने जो कि कृष्णाजिन से विभूषित थे, सबसे आगे मन का सृजन किया फिर देव ने प्राणियों की धारणा का सृजन किया । इसके उपरान्त विश्व-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रूपिणी जिह्वा तथा सरस्वती की सृष्टि की थी ॥७९॥ इसके अनन्तर भृगु, अङ्गिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सात मानस पुत्रों को महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने उत्पन्न किया ॥८०॥ फिर उनने अपने ही तुल्य अन्य विश्व-सम्भव पुत्रों का सृजन किया फिर उनके अनुमार्ग से मुख से गौओं को जन्म दिया ॥८१॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ओङ्कार की प्रमुखता वाले वेदों को तथा अन्य देवताओं को और इस प्रकार से यथाप्रोक्त इन सबको उत्पन्न किया। ॥८२॥ भगवान् प्रभु ने इन सृजन किए हुए दक्ष आदि मानस पुत्रों से कहा—आप सब धीमान् रुद्र के साथ प्रजा का सृजन करो। आपका कल्याण होगा॥ ॥८३॥ तब उस समय प्रजाओं के पति सब महान् आत्मा वाले के पास जाकर पहुँचे और कहा—हे देव ! हम सब आपके साथ प्रजा का सृजन करने की इच्छा करते हैं। हे महेश्वर ! यह ब्रह्माजी का तथा आपका सन्देश है ॥८४॥

तैरेवमुक्तो भगवान् रुद्रः प्रोवाच तान् प्रभुः।
ब्रह्मणश्चात्मजा मह्यं प्राणान् गृह्य च वै सुराः ॥८५
कृत्वाग्रजाग्रजानेतान् ब्राह्मणानात्मजान्मम।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् सप्तलोकान्ममात्मकान्।
भवन्तः स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति वः ॥८६

तेनैवमुक्ताः प्रत्यूचुः रुद्रमाद्यन्त्रिशूलिनम्।
यथाज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ॥८७
अनुमान्य महादेवं प्रजानां पतयस्तदा।
ऊचुर्दक्षं महात्मानं भवान् श्रेष्ठः प्रजापतिः।
त्वां पुरस्कृत्य भद्रन्ते प्रजाः स्रक्ष्यामहे वयम् ॥८८

एवमस्त्विति वै दक्षः प्रत्यपद्यत भाषितम्।
तैः सह स्रष्टुमारेभे प्रजाकामः प्रजापतिः।
सर्गस्थिते ततः स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजत् ॥८९
अथास्य सप्तमेऽतीते कल्पे वै सम्बभूवतुः।
ऋभुः सनत्कुमारश्च तपो लोकनिवासिनौ।
ततो महर्षीनन्यान् स मानसानसृजत प्रभु ॥९०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनके द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उनसे कहा—आप सब देवता ब्रह्माजी के पुत्र हों सो तुम सब मेरे लिये प्राणों को ग्रहण करो। मेरे आत्मज आगे जन्म लेने वाले इन अग्रज ब्राह्मणों को पहिले करके मेरे स्वरूप वाले ब्रह्मादि से स्तम्ब पर्यन्त सात लोकों की आप लोग सृष्टि करने के योग्य होते हैं। मेरे इस वचन से आपका कल्याण होगा ॥८५॥८६॥ इस तरह रुद्र के द्वारा कहे गये उन्होंने आद्य त्रिशूली रुद्र से कहा—हे देव ! जैसी भी आप आज्ञा प्रदान करते हैं वही सब किया जायगा ॥८७॥ तब समस्त प्रजापतियों ने महादेव का सम्मान करके महात्मा दक्ष से कहा कि आप सबमें परम श्रेष्ठ प्रजापति हैं। हम सब आपको ही आगे करके प्रजा का सृजन करेंगे। आपका भद्र हो ॥८८॥ तब दक्ष प्रजापति ने कहा—ऐसा ही होगा और प्रजा की कामना वाले दक्ष ने उन सबके साथ सृष्टि करने को काम का आरम्भ कर दिया। सर्ग के स्थित होने वाले स्थाणु में फिर ब्रह्माजी ने सर्ग का सृजन किया था ॥८९॥ इसके अनन्तर सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर तपोलोक के निवास करने वाले ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। फिर इसके पश्चात् प्रभु ने अन्य मानस महर्षियों का सृजन किया था ॥९०॥

॥ प्रकर्ण २६—स्वरोत्पत्ति वर्णन ॥

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते।
त्वयोक्तानि यथातत्त्वं लोकानुग्रहकारणात् ॥१
तत्र वै संशयो मह्यमवता (वा) रेषु शूलिनः।
किं कारणं महादेवः कलिं प्राप्य सुदारुणम्।
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतारं करोति वै ॥२
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो।
अवतारं कथञ्चक्रे एतदिच्छामि वेदितुम् ॥३
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदिह लोके परत्र च।
भक्तानामुपदेशार्थं विनयात् पृच्छतो मम।
कथय स्व महाप्राज्ञ यदि श्राव्यं महामतम् ॥४
एवं पृष्टोऽथ भगवान् वायुर्लोकहिते रतः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इदमाह महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ॥५
एतद्गुप्ततमं लोके यन्मान्त्वं परिपृच्छसि ।
तत्सर्वं श्रृणु गाधेय उच्यमानं यथाक्रमम् ॥६
पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! अहो ! आपने तो विस्मय करने के योग्य रहस्यों को बतला दिया है और वह भी लोकों पर अनुग्रह करके यथातत्त्व वर्णन किया है ॥१॥ उसमें भगवान् शूली के अवतारों में हमको बड़ा संशय होता है। क्या कारण है कि महादेव पूर्व युगों को छोड़कर इस सुदारुण कलियुग को प्राप्त कर अवतार ग्रहण करते हैं ॥२॥ हे प्रभो ! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर कैसे अवतार लिये। यह सब हम जानने की इच्छा रखते हैं ॥३॥ आपको तो कोई भी बात इस लोक की हो चाहे परलोक की हो अविदित नहीं है। भक्तों के उपदेश के लिये विनय के साथ पूछने वाले मुझको हे महाप्राज्ञ ! यह सब बतलाइये, यदि यह महामत श्रवण कराने के योग्य है तो अवश्य श्रवण कर लें ॥४॥ श्री लोमशजी ने कहा—इस प्रकार से पूछे गये भगवान् वायुदेव जो कि सर्वदा लोक के हित में अनुराग रखने वाले थे, महान् तेज वाले लोकों के द्वारा नमस्कृत वायुदेव ने यह कहा ॥५॥ यह लोक में परम गोपनीय विषय है जो कि आप मुझसे इस समय पूछ रहे हैं। हे गाधेय ! वह सब यथाक्रम कहा हुआ मुझसे श्रवण करो ॥६॥ पहिले एकार्णव के हो जाने पर दिव्य एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तब प्रजा के सृजन करने की कामना वाले ब्रह्माजी अत्यन्त दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥७॥

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतः कुमारकः ।
दिव्यगन्धः सुश्रापेक्षी दिव्यां श्रुतिमुदीरयन् ॥८
अशब्दस्पर्शरूपान्तामगन्धां रसवर्जिताम् ।
श्रुतिं ह्युदीरयन् देवो यामविन्दच्चतुर्म्मुखः ॥९
ततस्तु ध्यानसंयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम् ।
चिन्तयामास मनसा त्रितयं कोऽन्वयन्त्विवति ॥१०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं तदक्षरम् ।
अशब्दस्पर्शरूपञ्च रसगन्धविवर्जितम् ॥११
अथोत्तमं स लोकेषु स्वमूर्त्तिञ्चापि पश्यति ।
ध्यायन्वै स तदा देवमथैनं पश्यते पुनः ॥१२
तं श्वेतमथ रक्तञ्च पीतं कृष्णं तदा पुनः ।
वर्णस्थं तत्र पश्येत न स्त्री न च न पुंसकम् ॥१३
तत्सर्वं सुचिरं ज्ञात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ।
तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षरः ॥१४

इस तरह चिन्ता में मग्न रहते हुए उसके कुमार प्रादुर्भूत हुए जो कि दिव्य गन्ध वाले और सुधापेक्षी थे तथा दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहे थे ॥ ॥८॥ चतुर्मुख देव ने शब्द-स्पर्श और रूप से रहित अन्त वाली तथा गन्धहीन एवं रस वर्जित श्रुति का उच्चारण करते हुए लाभ किया था ॥९॥ इसके पश्चात् ध्यान में संयुक्त होकर भैरव तपश्चर्या में स्थित होकर मन से सोचने लगे कि यह त्रितय कौन है ॥१०॥ उनके चिन्तन करते हुए शब्द-स्पर्श रूप से रहित तथा रस और गन्ध से वर्जित वह अक्षर प्रादुर्भूत हुआ ॥११॥ इसके अनन्तर उसने लोकों में अपनी मूर्ति को देखा । तब देव का ध्यान करते हुए पुनः इस देव को ही देखा ॥१२॥ पहिले श्वेत फिर रक्त-पीत तथा कृष्ण वर्ण में स्थित उसको वहाँ देखा, न तो वहाँ कोई स्त्री थी और न कोई पुरुष ही था। ॥१३॥ उस सबका बहुत समय तक ध्यान करके और उस अक्षर का चिन्तन करते हुए उसके चिन्तन करने वाले के कण्ठ से अक्षर उठता है ॥१४॥

एकमात्रो महाघोषः श्वेतवर्णः सुनिर्मलः ।
स ओंकारो भवेद्वेदः अक्षरं वै महेश्वरः ॥१५
ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षरं वै स्वयम्भुवः ।
प्रादुर्भूतन्तु रक्तन्तु स देवः प्रथमः स्मृतः ॥१६
ऋग्वेदं प्रथमं तस्य त्वग्निमीले पुरोहितम् ।
एतां दृष्ट्वा ऋचं ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ।
तदक्षरं महातेजाः किमेतदिति लोककृत् ॥१७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वरः ।
द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ॥१८
ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम् ।
प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ॥१९
इषे त्वोर्ज्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुनः ।
ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रन्तु यजुः स्मृतम् ॥२०
ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम् ।
द्विमात्रं चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षरं पुनरीश्वरः ॥२१

एकमात्र–महाघोष–श्वेत वर्ण वाला तथा सुनिर्मल वह ओङ्कार अक्षर को महादेव ने वेद समझा था ॥१५॥ उस अक्षर का चिन्तन करने वाले स्वयम्भू के रक्त प्रादुर्भूत हुआ और वह प्रथम देव कहा गया है ॥१६॥ उसके प्रथम ऋग्वेद को "अग्निमीले पुरोहितम्" इस ऋचा को ब्रह्माजी ने देखा और फिर चिन्तन में लग गये, महान् तेज वाले तथा लोकों के कर्त्ता ने विचार किया कि यह अक्षर क्या है ? ॥१७॥ इस प्रकार से उसके चिन्तन करते हुए महेश्वर ने उससे ईशत्व से दो मात्रा वाला द्विमात्र अक्षर उत्पन्न किया ॥१८॥ इसके पश्चात् फिर द्विमात्र अक्षर का चिन्तन किया । फिर उसके छेदन में रक्त वर्ण वाला यजुः प्रादुर्भूत हुआ ॥१९॥ जिसकी ऋचा यह है—"इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुनः" । ऋग्वेद तो एकमात्र है और यजु द्विमात्र कहा गया है ॥२०॥ इसके पश्चात् वेद को द्विमात्र देखकर फिर ईश्वर ब्रह्मा उस अक्षर को द्विमात्र चिन्तन करने में संलग्न हो गये थे ॥२१॥

तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कारः सम्बभूव ह ।
ततस्तदक्षरं ब्रह्मा ओङ्कारं समचिन्तयत् ॥२२
अथापश्यत्ततः पीतामृचं चैव समुत्थिताम् ।
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२३
ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ।
चिन्तयित्वा च भगवांस्त्रिसन्ध्यं यत्त्रिरक्षरम् ।
त्रिवर्णं यत् त्रिषवणमोङ्कारं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥२४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततश्चैव त्रिसंयोगात् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ।
लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्यं च सहितं त्रिदिवं त्रिकम् ॥२५
त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रियोगं चैव शाश्वतम् ।
तस्मात्तदक्षरं ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभुः ॥२६
तस्मात्तदक्षरं सोऽथ ब्रह्मरूपं स्वयम्भुवः ।
चतुर्द्दशमुखं देवं पश्यते दीप्ततेजसम् ।
तमोङ्कारं स कृत्वादौ विज्ञेयः स स्वयम्भुवः ॥२७
चतुर्मुखमुखात्तस्मादजायन्त चतुर्द्दश ।
नानावर्णाः स्वरा दिव्यमाद्यं तच्च तदक्षरम् ।
तस्मात् त्रिषष्टिवर्णा वै अकारप्रभवाः स्मृताः ॥२८॥

इस प्रकार से उनके चिन्तन करते हुए ओङ्कार समुत्पन्न हुआ । इसके पश्चात् उस अक्षर ओङ्कार का ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ॥२२॥ इसके अनन्तर समुत्थित पीत वर्ण वाली ऋचा को देखा जिसका स्वरूप है—"अग्न आयाहि वीतये, गृणा नो हव्य दातये" ॥२३॥ इसके पश्चात् उस महान् तेज वाले ने समुपस्थित वेदों को देखकर भगवान् ने तीनों सन्ध्याओं में जो त्रिरक्षर था उसका चिन्तन किया जोकि तीन वर्ण वाला त्रिषवण ब्रह्म की संज्ञा से युक्त ओङ्कार था ॥२४॥ इसके पश्चात् तीन के संयोग से तीन वर्ण वाला वह अक्षर लक्ष्य और अलक्ष्य से प्रदृश्य, हित के सहित, त्रिदिव, त्रिक, त्रिमात्र, त्रिपद, त्रियोग और शाश्वत वह अक्षर था उसका प्रभु ब्रह्माजी ने चिन्तन किया था ॥२५॥२६॥ इससे वह स्वयम्भू के ब्रह्म रूप उस अक्षर को चतुर्दश मुख वाले देव को जोकि दीप्त तेज वाला था देखा । उसने उस ओङ्कार को आगे करके उसे स्वयम्भू का ही जानना चाहिए ॥२७॥ उस चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मुख से चौदह उत्पन्न हुए और नाना. वर्ण वाले स्वर तथा आद्य वह दिव्य अक्षर उत्पन्न हुए । इससे अकार प्रभव तिरेसठ वर्ण कहे गये हैं ॥२८॥

ततः साधारणार्थाय वर्णानान्तु स्वयम्भुवः ।
अकाररूप आदौ तु स्थितः स प्रथमः स्वरः ॥२९
ततस्तेभ्यः स्वरेभ्यस्तु चतुर्द्दश महामुखाः ।
मनवः सम्प्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरे स्वराः ॥३०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः ।
ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः ॥३१
मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनुः स्वायम्भुवः स्मृतः ।
अकारस्तु स विज्ञेयः श्वेतवर्णः स्वयम्भुवः ॥३२
द्वितियात्तु मुखात्तस्य आकारो वै मुखः स्मृतः ।
नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्णः पाण्डुर उच्यते ॥३३
तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषां वरः ।
यजुर्मयः स चादित्यो यजुर्वेदो यतः स्मृतः ॥३४
ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापवान् ।
ततः क्षत्रं प्रवर्त्तन्ति तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रियः ॥३५

इसके अनन्तर वर्णों के साधारण अर्थ के लिये स्वयम्भू का अकार रूप आदि में स्थित हुआ जोकि प्रथम स्वर कहा जाता है ॥२६॥ इसके उपरान्त उन स्वरों से चौदह महामुख मनु उत्पन्न होते हैं जोकि मन्वन्तर में दिव्य स्वर हैं ॥३०॥ चतुर्दश मुख वाला जो अकार है वह ब्रह्म की संज्ञा से युक्त है ब्रह्म-कल्प अर्थात् ब्रह्म के ही सदृश, सर्व वर्ण और प्रजापति कहा गया है ॥३१॥ उसके प्रथम मुख से स्वायम्भुव मनु कहा गया है वह अकार तो स्वयम्भू का श्वेत वर्ण जानना चाहिए ॥३२॥ द्वितीय उसके मुख से आकार मुख कहा गया है वह नाम स्वारोचिष है और उसका वर्ण पाण्डुर कहा गया है ॥३३॥ उसके तीसरे मुख से यजु में श्रेष्ठ इकार है। वह आदित्य यजुर्मय है इसीसे वह यजुर्वेद कहा गया है ॥३४॥ ईकार प्रताप वाला रक्तवर्ण से युक्त मनु जानने के योग्य है। इससे क्षत्र प्रवृत्त होता है। इसीलिये क्षत्रिय रक्त होता है ॥३५॥

चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकारः स्वर उच्यते ।
वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्रः स मनुस्तामसः स्मृतः ॥३६
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते ।
पीतको वर्णतश्चैव मनुश्चापि चरिष्णवः ॥३७
ततः षष्ठान्मुखात्तस्य ओङ्कारः कपिलः स्मृतः ।
वरिष्ठश्च ततः षष्ठो विजयः स महातपाः ॥३८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सप्तमात्तु मुखात्तस्य ततौ वैवस्वतो मनुः ।
ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णतः कृष्ण उच्यते ॥३६
अष्टामात्तु मुखात्तस्य ॠकारः श्यामवर्णतः ।
श्यामाक्षरसवर्णश्च ततः सावर्णिरुच्यते ॥४०॥
मुखात्तु नवमात्तस्य लृकारो नवमः स्मृतः ।
धूम्रो वर्णतश्चापि धूम्रश्च मनुरुच्यते ॥४१
दशमात्तु मुखात्तस्य लृकारः प्रभुरुच्यते ।
समश्चैव सवर्णश्च बभौ सावर्णिको मनुः ॥४२

उसके चतुर्थ मुख से उकार स्वर कहा जाता है । यह वर्ण से ताम्र कहा गया है और वह तामस मनु प्रसिद्ध हुआ है ॥३६॥ उसके पंचम मुख से ऊकार नाम वाला उत्पन्न होता है । यह वर्ण से पीत तथा चरिष्णु मनु कहा गया है ॥३७॥ इसके पश्चात् उसके छठे मुख से ओङ्कार हुआ जो कपिल कहा गया है । वह षष्ठ सब में वरिष्ठ, विजय और महान् तप वाला है ॥३८॥ उसके सप्तम मुख से वैवस्वत मनु हुए जिसका स्वर ऋकार है और वर्ण कृष्ण कहा जाता है ॥३९॥ उसके अष्टम मुख से ॠकार हुआ वर्ण श्याम है । श्यामाक्षर सवर्ण होता है इसी लिये वह सावर्णी कहा जाता है ॥४०॥ नवम मुख से उसके लृकार हुआ जो नवम कहा गया है। वह वर्ण से धूम्र होता है और धूम्र मनु ही कहा जाता है ॥४१॥ उसके दशम मुख से लृकार होता है जोकि प्रभु कहा जाता है । वह सम और सवर्ण है इसी लिये सावर्णिक मनु इस नाम से कहा गया है ॥४२॥

मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते ।
पिशङ्गो वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ॥४३
द्वादशात्तु मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते ।
पिशङ्गो भस्मवर्णाभः पिशङ्गो मनुच्यते ॥४४
त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते ।
पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्ण उत्तमः ॥४५
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते ।
कर्बूरो वर्णतश्चैव मनुः सावर्णिरुच्यते ॥४६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पतः ।
विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा ॥४७
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद् वृता हि वै ।
तस्मात्तेषां सवर्णत्वाद न्वयस्तु प्रकीर्तितः ॥४८
सवर्णाः सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजाः ।
तस्मात् प्रजानां लोकेऽस्मिन् सवर्णाः सर्वसन्धयः ॥४९
भविष्यन्ति यथाशैलं वर्णाश्च न्यायतोऽर्थतः ।
अभ्यासात्सन्धयश्चैव तस्माज्ज्ञेयाः स्वरा इति ॥५०

एकादश मुख से उसके एकार हुआ जो मनु कहा जाता है। वर्ण से यह पिशङ्ग होता है इसी लिये पिशङ्ग इस नाम से कहा जाता है ॥४३॥ उसके बारहवें मुख से ऐकार नाम वाला हुआ। वह पिशङ्ग और भस्म के वर्ण की आभा के समान आभा वाला था इसे पिशङ्ग मनु कहा जाता है ॥४४॥ उसके तेरहवें मुख से ओकार वर्ण उत्पन्न हुआ है। यह पञ्च वर्णों से युक्त उत्तम वर्ण ओकार है ॥४५॥ उसके चौदहवें मुख से औकार वर्ण हुआ। वह वर्ण से कर्बुर और सावार्णी मनु कहा जाता है ॥४६॥ ये मनु स्वर और वर्ण कल्प से जानने चाहिए। ये स्वर और वर्ण से ही यथातत्व और हैं ॥४७॥ क्योंकि स्वर पर स्वर में सर्वाङ्गत हुए हैं। इसीलिये उनके सवर्ण होने से अन्वय कहा गया है ॥४८॥ ये सवर्ण और कल्प में होने वाले सदृश उत्पन्न हुए हैं। इसलिये इस लोक में प्रजाओं के सर्व सन्धि वाले ये सवर्ण होते हैं ॥४९॥ यथाशैल न्याय से और अर्थ से ये होंगे। अभ्यास से सन्धियाँ भी हैं इसी से इन्हें स्वर जानना चाहिए ॥५०॥

॥ प्रकर्ण २७—ऋषि वंश कीर्त्तन ॥

भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदुःखयोः ।
शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ।
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तर विचारणौ॥१
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सा तु नारायणं देवं पतिमासाद्य शोभनम् ।
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत ।।२

तस्यास्तु मानसाः पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिणः ।
ये वहन्ति विमानानि देवानां पुण्यकर्मणाम् ।।३

द्वे तु कन्ये स्मृते भार्य्ये विधातुर्धातुरेव च ।
आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ।।४

पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ ।
मनस्विन्यां मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह ।।५

सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्द्धन्यायामजायतः ।
पीवर्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकराः स्मृताः ।
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः । ६

पाण्डोश्च पुण्डरीकायां द्युतिमानात्मजोऽभवत् ।
उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ।
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणां परस्परम् ।
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीते मरीचेः शृणुत प्रजाः ।।७

श्री सूतजी ने कहा—भृगु से ख्याति ने सुख-दुःख के स्वामी समस्त प्राणधारियों को शुभ तथा अशुभ को ग्रहण करने वाले, मन्वन्तर के विचार करने वाले धाता और विधाता दो देव उत्पन्न किये थे ।। १ ।। उनकी ज्येष्ठ भगिनी लोकभाविनी श्री देवी थी । उसने नारायण देव को अपना पति प्राप्त किया जो कि परम शोभन थे । उस साध्वी देवी से नारायण के पुत्र बल और उत्साह उत्पन्न हुए ।। २ ।। उसके अन्य दिव्यचारी मानस पुत्र थे जो कि पुण्य-कर्म करने वाले देवों के विमानों का वहन किया करते हैं ।। ३ ।। दो कन्याऐं हुई जो विधाता और धाता की भार्या हुई थीं । उन दोनों के आयति और नियति नाम वाले दृढ़व्रत दो पुत्र हुए ।। ४ ।। पांडु और मृकण्डु ब्रह्मकोश तथा सनातन हुए । मनस्विनी में मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए ।। ५ ।। उसका पुत्र वेदशिरा हुआ जो मूर्द्धन्या में उत्पन्न हुआ था । वेदशिरा से पीवरी में वंश चलाने वाले पुत्र कहे गये हैं । ये सब वेद के पारगामी ऋषिगण मार्कण्डेय प्रसिद्ध हुए ।। ६ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाण्डु से पुण्डरीका में द्युतिमान आत्मज हुआ। द्युतिमान और सृजमान दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों के पुत्र और पौत्र आपस में भार्गवों के हुए। स्वायम्भुव के अन्तर व्यतीत हो जाने पर अब मरीचि की प्रजा के विषय में श्रवण करिये ॥ ७ ॥

पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम्।
प्रजायते पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत।
तुष्टिः पृष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ॥८
पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौ पुत्रवुदपादयत्।
विरजश्चैव धर्मिष्ठं पर्वसश्चैव तावुभौ ॥९
विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः।
सुधामसुतवैराजः प्राच्यान्दिशि समाश्रितः ॥१०
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्र. प्रतापवान्।
पर्वसः सर्वगणानां प्रविष्टः स महायशाः ।.११
पर्वसः पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ।
यज्ञवामश्च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च।
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ॥१२
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः ॥१३
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा।
तथैव भरताग्निश्च कीर्त्तिमन्तश्च तावुभौ ॥१४

मरीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास उत्पन्न होता है। और उसके जो कन्याऐं हुईं उन्हें समझ लो। तुष्टि, पुष्टि, त्विषा, अत्यचिति और शुभा ये कन्याऐं हुईं ॥ ८ ॥ पूर्णमास ने सरस्वती में ही पुत्र उत्पन्न किये थे जिनका नाम विरज और धर्मिष्ठ पर्वस था। ये दोनों पुत्र थे ॥ ९ ॥ विरज का पत्र बड़ा विद्वान सुधामा इस नाम से विश्रुत था। सुधामा का पुत्र वैराज था जो कि पूर्व दिशा का आश्रय लेकर स्थित रहता था ॥ १० ॥ लोकपाल, सुधर्मात्मा और प्रताप वाला गौरी पुत्र पर्वस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समस्त गणों में प्रविष्ट हुआ और वह महान यश वाला था ॥ ११ ॥ पर्वस ने पर्वसा में दो पुत्र उत्पन्न किये। श्रीमान यशवाम और दूसरा सुत काश्यप था। उन दोनों के गोत्र कर वे धर्म निश्चित पुत्र हुए ॥ १२ ॥ अङ्गिरा की पत्नी स्मृति ने दो पुत्र पैदा किए और चार परम पवित्र तथा लोक विश्रुत कन्या उत्पन्न की थीं ॥ १३ ॥ जिन कन्याओं के नाम सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति था तथा दो पुत्र कीर्त्तिमान और भरताग्नि थे ॥ १४ ॥

अग्नेः पुत्रन्तु पर्जन्यं संहूती सुषुवे प्रभुम् ।
हिरण्यरोमा पर्जन्यो मारीच्यामुदपादयन् ।
आभूतसंप्लवस्थायी लोकपालः स वै स्मृतः ॥१५
जज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ ।
वरिष्ठं धृतिमन्तञ्चाप्युभावङ्गिरसां वरौ ॥१६
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च येऽतीता वै सहस्रशः ।
अनसूयापि जज्ञे तान् पञ्चात्रे यानकल्मषान् ॥१७
कन्याञ्चैव श्रुतिं नाम माता शङ्खपदस्य या ।
कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः ॥१८
सत्यनेत्रश्च हव्यश्न आपोमूर्तिः शनीवरः ।
सोमश्च पंचमस्तेषामासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
यामेऽतीते सहातीताः पंचात्रेया प्रकीर्तिताः ॥१९
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यत्रिणा वै माहत्मना ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे यामे शतशोऽथ सहसशः ॥२०
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तालिस्तत्सुतोऽभवत् ।
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
मध्यमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रयः ॥२१

अग्नि से संहूती ने प्रभु पर्जन्य पुत्र का प्रसव किया था। पर्जन्य ने मरीचि में हिरण्यरोमा उत्पन्न किया जो कि वह आभूत संप्लव तक स्थायी रहने वाला लोकपाल कहा गया है ॥ १५ ॥ धेनुका ने कीर्तिमान से दो कल्मष-हीन पुत्रउत्पन्न किये। वरिष्ठ और धृतिमान ये दोनों आङ्गिरसों में परमश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

थे ॥ १६ ॥ उन दोनों के सहस्रों पुत्र तथा पौत्र थे जो अतीत हैं। अनसूया ने भी अकल्मष पाँच अत्रियों को जन्म दिया ॥ १७ ॥ और एक कन्या उत्पन्न की जिसका नाम श्रुति था और जो शङ्खपद की माता थी जो प्रजापति पुलह कर्दम की पत्नी थी ॥ १८ ॥ पाँचों के नाम—सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनिवर और पाँचवाँ सोम उनमें से था जो कि स्वायम्भुव अन्तर में थे। याम के व्यतीत होने पर ये पाँच आत्रेय जो कहे गये हैं सहातीत हो गये थे ॥ १६ ॥ उनके पुत्र और पौत्र महात्मा अत्रि ने स्वायम्भुवान्तर याम में सैंकड़ों तथा सहस्रों उत्पन्न किये थे ॥ २० ॥ पुलस्त्य की भार्या प्रीति में उसका पुत्र दत्तात्रि हुआ था। पूर्व जन्म में स्वायम्भुव अन्तर में वह अगस्त्य कहा गया है। मध्यम देव बाहु और विनीत नाम वाला, ऐसे वे तीन हैं ॥ २१ ॥

स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता।
पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी त्वग्नेः स्मृता शुभा ॥२२
पौलस्त्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः।
दत्तालेः सुषुवे पत्नी सुजङ्घादीन् बहून् सुतान्।
पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥२३
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः।
ते चाग्निवर्चसः सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ॥२४
कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः।
ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभा कन्या च पीवरी ॥२५
कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्य जनयत्सुतान्।
पुत्रं शङ्खपदं चैव कन्यां काम्यां तथैव च ॥२६
स वै शङ्खपदः श्रीमान् लोकपालः प्रजापतिः।
दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्यां दत्त्वा प्रियव्रते ॥२७
काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायम्भुवसमान् सुतान्।
दशकन्याद्वयं चैव यैः क्षत्रं सम्प्रवर्तितम् ॥२८

उनकी भगिनी छोटी सद्वती नाम वाली प्रसिद्ध है। जो पर्जन्य की शुभ्रा माता और अग्नि की शुभ्रा पत्नी कही गयी है ॥ २२ ॥ पुलस्त्य ऋषि के भी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रीति पुत्र धीमान दत्तात्रि की पत्नी ने सुजङ्घादि बहुत-से पुत्रों का प्रसव किया था। वे सब स्वायम्भुवान्तर में पौलस्त्य इस नाम से विख्यात् तथा कहे गये थे॥ २३ ॥ क्षमा ने प्रजापति पुलह के पुत्रों को उत्पन्न किया। वे सब ही अग्निवर्चस थे जिनकी कीर्त्ति लोकों में प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥ वे कर्दम, अम्बरीष और सहिष्णु ये तीन हैं और घनक पीवान ऋषि तथा पीवरी शुभ कन्या थी ॥ २५ ॥ कर्दम की पत्नी श्रुति आत्रेयी ने पुत्रों को जन्म दिया। पुत्र शङ्खपद था तथा काम्या कन्या थी ॥ २६ ॥ वह श्रीमान शङ्खपद लोकों का पालक और प्रजापति था। दक्षिण दिशा में रत होकर काम्या को प्रियव्रत के लिये दे दिया था। काम्या ने प्रियव्रत से स्वायम्भुव के समान पुत्रों की प्राप्ति की थी। पुत्र दश थे और दो कन्या उनमें थीं जिन्होंने यहाँ क्षत्र को सम्प्रवृत्त किया था ॥ २७–२८ ॥

पुत्रो धनकपीवांश्च सहिष्णुर्नाम विश्रुतः।
यशोधारी विजज्ञे वै कामदेवः सुमध्यमः ॥२९
ऋतोः क्रतुसमः पुत्रो विजज्ञे सन्ततिः शुभा।
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध रेतसः।
षष्ट्येतानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुताः ॥३०
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम्।
आभूतसंप्लवात्सर्वे पतङ्गसहचारिणः ॥३१
स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते।
पर्वसस्य स्नुषे ते वै पूर्णमाससुतस्य वै ॥३२
ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे।
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा ॥३३
जननी सा द्युतिमतः पाण्डोस्तु महिषी प्रिया।
अस्यां त्विमे यवीयांसो वासिष्ठाः सप्त विश्रुताः ॥३४
रजः पुत्रोऽर्द्ध बाहुश्च सवनश्चाधनश्च यः।
सुतपाः शुक्ल इत्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः ॥३५
रजसो वाप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रतीच्यां दिशि राजन्य केतुमन्तं प्रजापतिम् ।।३६
गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम् ।
स्वायम्भुवेन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ।।३७
इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्त्तितः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ।।३८

पुत्र धनक पीवान् था जो सहिष्णु के नाम से विश्रुत हुआ। यशोधारी ने सुमध्यम कामदेव को उत्पन्न किया ।। २९ ।। ऋतु का क्रतु के तुल्य ही पुत्र हुआ और वह शुभा सन्तति थी । इनकी कोई भी भार्या नहीं थी और न इनका कोई पुत्र ही था क्योंकि वे सभी ऊर्द्ध रेता थे । ये सब साठ हजार थे जो वालखिल्य इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।। ३० ।। सूर्य को परिवृत करके ये अरुण के आगे जाया करते हैं और भूत संप्लव से लेकर ये सब पतङ्ग (सूर्य) के ही सहचरण करने वाले होते हैं ।। ३१ ।। भगिनी दो छोटी थीं जिनका नाम पुण्या और आत्म सुमति था । वे दोनों पर्वस की स्नुपा थी जो कि पूर्णमास का पुत्र था ।। ३२ ।। ऊर्जा में वसिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी ।। ३३ ।। वह द्युतिमान् की माता थी और पाण्डु की प्यारी रानी थी । इसमें ये यवीयान् सात वासिष्ठ प्रसिद्ध हुए थे ।। ३४ ।। रज, पुत्र, अर्द्धवाहु, सवन, अधन सुतया और शुक्ल ये सब सप्तर्षि कहे गये हैं ।। ३५ ।। यशस्विनी मार्कण्डेयी रज से जनन किया । प्रतीची दिशा में प्रजापति राजन्य केतुमान् को उत्पन्न किया ।। ३६ ।। उन महात्मा वासिष्ठों के नामों से गोत्र हैं । ये स्वायम्भुव अन्तर में अतीत हो गये हैं । अब अग्नि की प्रजा का श्रवण करो ।। ३ ।। यह ऋषियों का सर्ग अनुबन्ध के सहित कह दिया गया है । अब विस्तार से तथा आनुपूर्वी के साथ अग्नि की प्रजा को सुनो ।। ३८ ।।

।। प्रकर्ण २८—अग्नि वंश वर्णन ।।

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ।।१
पावकः पवमानश्च पावमानश्च यः स्मृतः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शुचिः शौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तु ते ।।२
निर्म्मथ्य पवमानस्तु शुचिः शौरस्तु यः स्मृतः ।
पावका वैद्युताश्चैव तेषां स्थानानि यानि वै ।।३
पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते ।
पावकात् सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ।।४
देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितृणां कव्यवाहनः ।
सहरक्षोऽसुराणान्तु त्रयाणान्तु त्रयोऽग्नयः ।।५
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु ।
वक्ष्यामि नामतस्तेषां प्रविभागं पृथक् पृथक् ।।६
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुतः ।
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ।।७

स्वायम्भुवान्तर में जो यह अग्नि था वह बहुत अभिमान वाला था। यह ब्रह्माजी का मन से उत्पन्न होने वाला मानस पुत्र था उससे स्वाहा उत्पन्न हुई ।। १ ।। यह पावक, पवमान और पावमान, इन नामों से कहा गया है। शुचि, शौर और विज्ञेय ये तीन स्वाहा के पुत्र थे ।। २ ।। पवमान निर्मथन करके शुचि और शौर जो कहा गया है। पावक और वैद्युत उनके ये स्थान हैं ।। ३ ।। पवमान का आत्मज कव्यवाहन कहा जाता है। पावक से सहरक्ष और शुचि का पुत्र हव्यवाह था ।। ४ ।। देवों का जो अग्नि है वह हव्यवाह होता है और पितृगण का जो अग्नि होता है वह कव्यवाहन कहा जाता है। सहरक्ष नामक जो अग्नि है वह असुरों का कहा गया है। इस प्रकार इन तीनों के पृथक्-पृथक् तीन ये अग्नि होते हैं ।। ५ ।। इनके जो पुत्र तथा पौत्र हैं वे उनचास हैं। उनके पृथक्-पृथक् प्रविभाग नाम से बतलाये जायँगे ।। ६ ।। वैद्युत नामक जो अग्नि है वह लौकिक अग्नि है और प्रथम ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मौदन अग्नि उसका पुत्र है जो भरत इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है ।। ७ ।।

वैश्वानरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपां रसः ।
अमृतोऽथर्वणा पूर्वं मथितः पुष्करोदधौ ।
सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ चाथर्वणः सुतः ।।८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽथर्वणः सुतः ।
तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ् चाथर्वणः सुतः ।।६
अथ यः पवमानोऽग्निर्निर्मन्थाः कविभिः स्मृतः ।
स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्तयः पुत्रद्वयं स्मृतम् ।।१०
शंस्यस्त्व हवनीयोऽग्निर्यः स्मृतो हव्यवाहनः ।
द्वितीयस्तु सुतः प्रोक्तः शुक्रोऽग्निर्यः प्रणीयते ।।११
तथा सभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्ने. सुतावुभौ ।
शंस्यास्तु षोडश नदीश्चकमे हव्यवाहनः ।
योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ।।१२
कावेरीं कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनान्तथा ।
गोदावरीं वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ।।१३
विपाशां कौशिकीञ्चैव शतद्रुं सरयून्तथा ।
सीतां सरस्वतीञ्चैव ह्लादिनीं पावनीं तथा ।।१४

उसका वैश्वानरमुख, मह काव्य और अपांरस, अमृत ये नाम हैं पहिले अथर्वणों ने पुष्करोदधि में मथन किया था । वह अथर्वा लौकिक अग्नि है जो दध्यङ् चाथर्वण का पुत्र है ।। ८ ।। अथर्वा भृगु को समझना चाहिए । अङ्गिरा अथर्वण का पुत्र है । उससे वह लौकिक अग्नि दध्यङ् चाथर्वण पुत्र है ।। ६ ।। इसके अनन्तर जो पवमान अग्नि है वह कवियों के द्वारा निर्मन्था कहा गया है । वह गार्हपत्य अग्नि जानना चाहिए । उससे दो पुत्र कहे गये हैं ।।१०।। जो अग्नि हव्यवाहन कहा गया है वह आहवनीय अग्नि कहे जाने के योग्य है । दूसरा जो सुत कहा गया है जो शुक्र अग्नि प्रणीत किया जाता है ।। ११ ।। उसी प्रकार से शंस्याग्नि के सभ्य और अवसथ्य ये दो पुत्र हैं । शंस्य तो सोलह हैं । हव्य वाहन ने नदी को चाहा । जो यह आहवनीय अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है ।। १२ ।। कावेरी, कृष्ण वेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी तथा पावनी ये नदियों के सोलह स्थान हैं ।। १४ ।।

तासु षोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आत्मानं व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः ॥१५
धिष्ण्यो दिव्यभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णयः ।
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्त्तिताः ॥१६
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे ।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः ।
तान् शृणुध्वं समासेन कीर्त्यमानान् यथा तथा ॥१७
ऋतुः प्रवाहणोऽग्नीध्रः पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ।
विधीयन्ते यथास्थानं सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥१८
अनिर्देश्यान्यवाच्यानामग्नीनां शृणुत क्रमम् ।
सम्राडग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ॥१९
सम्राडग्निः स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः ।
अधस्तात्पर्षदन्यस्तु द्वितीयः सोऽत्र दृश्यते ॥२०
प्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२१

इन उपर्युक्त सोलह नदियों में अपने आपको सोलह में पृथक्-पृथक् विभाग करके उनमें अपने आपको कर दिया और वह धिष्णीषु हो गया ॥१५। उनमें धिष्ण्य दिव्यभिचारिण्य जो उत्पन्न हुए वे धिष्णय हुए। क्योंकि वे धिष्णीषुओं में उत्पन्न हुए थे इससे वे धिष्णय कहे गये हैं ॥ १६ ॥ इतने ये नदी पुत्र हैं जो धिष्णीषु में ही उत्पन्न हुए थे। उनमें विहार करने के योग्य जो उपस्थेय अग्नि हैं अब उनको संक्षेप से कहे जाने वालों को यथा तथा श्रवण करो ॥१७॥ ऋतु प्रवाहण, अग्नीध्र और पहिले दूसरे धिष्णि सौत्य दिवस में सवन के क्रम से यथा स्थान किये जाते हैं ॥ १८ ॥ अनिर्देश्य अन्य वाच्य अग्नियों के क्रम को सुनो। द्वितीयोत्तर वैदिक जो कृशानु होता है वह सम्राट् अग्नि है ॥ १९ ॥ आठ सम्राट् अग्नि कहे गये हैं जिनका कि द्विज उपस्थान किया करते हैं। नीचे अन्य पर्षद् तो यहाँ पर वह द्वितीय दिखलाई देता है ॥ २० ॥ प्रतद्वोचे नभो नाम वाला वह चार विभावित होता है। ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २१ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri[Funding : IKS

हव्यसूर्य्याद्यसंसृष्टः शामित्रे स विभाव्यते ।
विश्वस्याथ समुद्रोग्निर्ब्रह्मस्णाने स कीर्त्यते ॥२२
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्य्यां स कीर्त्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥२३
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखीयकः ।
अनुद्देश्योप्यहिर्बुध्न्यः सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः ॥२४
शंस्यस्यैव सुताः सर्वे उपस्थेया द्विजैः स्मृताः ।
ततो विहरणीयांश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ॥२५
क्रतुप्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।
विह्रियन्ते यथास्थानं सौत्योह्नि सवनक्रमात् ॥२६
पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः ।
शान्तिश्चाग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः सत्य उच्यते ॥२७
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते ।
अवक्षुरच्छावाकस्तु भुवः स्थाने विभाव्यते ॥२८

हव्य सूर्यादि से असंसृष्ट वह शामित्र कर्म में प्रकट होता है । विश्वस्याथ समुद्र अग्नि वह ब्रह्म स्थान में कीर्त्तित किया जाता है ॥ २२ ॥ ऋतु धामा और सुज्योति अग्नि जो होता है वह औदुम्बरी में कहा जाता है । ब्रह्म ज्योति वसु नाम वाला वह ब्रह्म स्थान में कहा जाता है ॥ २३ ॥ अजैक पादुपस्थेय शालामुखीयक वह अनुद्देश्य भी अहिर्बुध्न्य वह अग्नि गृहपति कहा गया है ॥ २४ ॥ ये सब शंस्य के ही पुत्र हैं और द्विजों के द्वारा उपस्थान करने के योग्य कहे गये हैं । अब इसके अनन्तर विहरणीय आठ उसके पुत्र हैं उन्हें बतलाते हैं ॥ २५ ॥ ऋतु, प्रवहण, अग्नीध्र और वहाँ पर स्थित दूसरे धिष्णि जो यथा स्थान विहरणीय होते हैं और सौत्य दिवस में सवन के क्रम से हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् पौत्रेय जो हव्यवाहन कहा गया है, शान्ति और प्रचेता अग्नि द्वितीय सत्य कहा जाता है ॥ २७ ॥ तथा विश्वदेव अग्नि जो है वह तो ब्रह्म स्थान में कहा जाता है । अवक्षु और अच्छावाक तो भुवः स्थान में विभावित (प्रकट) होता है ॥ २८ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उशीराग्निः सवीर्यस्तु नैष्ठीयः संविभाव्यते ।
अष्टमस्तु व्यरत्तिस्तु मार्जालीयः प्रकीत्तितः ॥२९
धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येनान्येन चैव हि ।
तयोर्यः पावको नाम स चापां गर्भ उच्यते ॥३०
अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयः सम्यक् प्राप्याप्सु हूयते ।
हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निर्जठरे यो नृणां स्थितः ॥३१
मन्युमान् जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्निः सुतः स्मृतः ।
परस्परोच्छ्रितः सोऽग्निर्भूतानां ह विभुर्महान् ॥३२
पुत्रः सोऽग्नेर्मन्युमतो घोरः संवर्त्तकः स्मृतः ।
पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखः ॥३३
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते ।
सहरक्षसुतः क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम् ॥३४
क्रव्यादोऽग्निः सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान् ।
इत्येते पावकस्याग्नेः पुत्रा ह्येवं प्रकीर्तिताः ॥३५

सवीर्य उशीराग्नि तो नैष्ठीय सम्भावित होता है । जो आठवाँ व्यरत्ति है वह तो मार्जालीय कहा गया है ॥ ९ ॥ जो धिष्ण्य विहरणीय अन्य सौम्य के द्वारा होते हैं उनमें एक पावक नाम वाला है वह अपां गर्भ कहा जाया करता है ॥ ३० ॥ वह अवभृथ अग्नि जानना चाहिए जो भली-भाँति प्राप्य जलों में हूयमान किया जाता है । उसका पुत्र हृच्छय अग्नि होता है जो मनुष्यों के जठर में स्थित होता है ॥ ३१ ॥ जठर की रहने वाली जाठर अग्नि का विद्वान् मन्युमान् अग्नि सुत कहा गया है । परस्पर में उच्छ्रित वह अग्नि भूतों का महान् विभु होता है ॥ ३२ ॥ वह मन्युमान् अग्नि का पुत्र घोर सम्वर्त्तक कहा गया है । वह जल का पान करता हुआ बड़वामुख समुद्र में निवास किया करता है ॥ ३३ ॥ समुद्र में निवास करने वाले का पुत्र सहरक्ष विभावित होता है । सहरक्ष का पुत्र क्षाम होता है वह मनुष्यों के घरों को जला दिया करता है ॥ ३४ ॥ क्रव्याद अग्नि उसका पुत्र है जो मरे हुए मनुष्यों के शव का भोजन किया करता है । इतने ये पावक अग्नि के पुत्र हैं जो कि इस प्रकार से कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततः शुचेस्तु यैः सोरेर्गन्धर्वैरसुरावृतैः ।
मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निः समिध्यते ॥३६
आयुर्नामाथ भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ।
आयुषो महिमान् पुत्रः स शावान्नामतः सुतः ॥३७
पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः ।
पुत्रश्च सवनस्याग्नेरद्भुतः स महायशाः ॥३८
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान् स्मृतः ।
प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुंक्ते हविः सदा ॥३९
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ।
अनीकवान् वासृजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ।
सुरभिर्वसुरत्नादौ प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥४०
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश ।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥४१
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः ॥४२

इसके अनन्तर शुचि सौरि का जिन असुरावृत गन्धर्वों के द्वारा अरणी में मथन किया हुआ अग्नि है वह अग्नि समिद्ध किया जाता है ॥ ३६ ॥ वह भगवान् आयु नाम वाला होता है जो पशु में प्रणीत किया जाता है । आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् पुत्र है वह शावान् नाम वाला पुत्र कहा गया है ॥ ३७ ॥ पाक यज्ञों में जो अभिमानी अग्नि है वह सवन कहा गया है । सवन अग्नि का पुत्र वह महान् यश वाला अद्भुत होता है ॥ ३८ ॥ अद्भुत अग्नि का भी पुत्र विविचि होता है जो कि महान् कहा गया है । वह भीमों के प्रायश्चित्त में सर्वदा हवन किये हुए हवि को खाया करता है ॥ ३९ ॥ विविचि अग्नि का पुत्र अर्क है उसके पुत्र ये होते हैं जिनके नाम अनीकवान्, वासृजवान्, रक्षोहा, पितृ कृत् और सुरभि हैं जो रुक्मवान् वसुरत्नादि में प्रविष्ट हो गया है ॥ ४० ॥ ये शुचि नामक अग्नि की प्रजा हैं और चौदह वह्नि हैं । ये वह्नि कहे गये हैं जो कि अध्वरों में प्रणीत होते हैं ॥ ४१ ॥ सुरोत्तम यामों के साथ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आदि सर्ग में अतीत हुए हैं जो स्वायम्भुव अन्तर में पहिले जो अग्नि थे वे अभिमानी थे ॥ ४२ ॥

एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह ।
स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन् हव्यवाहनाः ॥४३
काम्यनैमित्तिकाजस्रेष्वेते कर्मस्ववस्थिताः ।
पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लैर्यामैः सुतैः सह ।
देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥४४
इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह ।
तैरेव तु प्रसङ्ख्यातमतीतानागतेष्वपि ॥४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ।
सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ह्यवभृथा स्तथा ।
प्रजानां पतयः सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृताः ॥४६
स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ॥४७
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च देवैरिह सहाग्नयः ।
अनागतैः सुरैः सार्द्धं वर्त्तन्तेऽनागताग्नयः ॥४८
इत्येष विनयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथातथम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च पितृणां वक्ष्यते ततः ॥४९

ये सब यहाँ पर चेतन और अचेतनों में विहरणीय अग्नि हैं । संसार में स्थानाभिमानी हव्यवाहन पहिले थे ॥ ४३ ॥ ये सब कामना वाले काम्य-कर्म तथा नैमित्तिक एवं अजस्र कर्मों में अवस्थित रहा करते हैं । पहिले अतीत मन्वन्तर में शुक्ल याम पुत्रों के साथ तथा मनु के जो कि प्रथम था उसके अन्तर में पुण्यशील महात्मा और देवों के साथ था ॥ ४४ ॥ ये सब मैंने स्थानियों के स्थान बतला दिये हैं उनके द्वारा ही अतीत और अनागतों में भी प्रसंख्यात हैं ॥ ४५ ॥ समस्त मन्वन्तरों में जातवेदों के लक्षण कहे गये हैं । ये सब तपस्वी और सभी अवभृथ थे । ये सब प्रजाओं के पति और ज्योतिष्मान् कहे गये हैं ॥ ४६ ॥ स्वारोचिष आदि और सावर्ण्य अन्त वाले सातों मन्वन्तरों में सब में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनेक रूप और विविध प्रयोजनों के द्वारा जानने के योग्य होते हैं ॥ ४७ ॥ ये अग्नि वर्त्तमान देवों के साथ रहते हैं और अनागत सुरों के साथ अनागताग्नि होते हैं ॥ ४८ ॥ इतना यह मैंने अग्नियों का विनय यथातथ (ठीक-ठीक) कह दिया है । अब इसके आगे विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी के साथ पितृगणों का बतलाया जायगा ॥ ४९ ॥

॥ प्रकर्ण २९—देववंश वर्णन ॥

ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान् पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अम्भांसि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवताः ॥१
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे पितरोऽस्य वै ।
तेषान्निसर्गः प्रागुक्तो विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥२
देवासुरमनुष्याणां दृष्ट्वा देवोऽभ्यभाषत ।
पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे वोपयक्षिनाः ॥३
मध्वादयः षड़तवस्तान् पितृन परिचक्षते ।
ऋतवः पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥४
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि ।
एते स्वायम्भुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ॥५
अग्निष्वात्ताः स्मृता नाम्ना तथा बर्हिषदश्चवै ।
अयज्वानस्तथा तेषामासन् वै गृहमेधिनः ।
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्नयः ॥६
यज्वानस्तेषु ये ह्यासन् पितरः सोमपीथिनः ।
स्मृता बर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिणः ।
ऋतव. पितरो देवाः शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में पुत्रों के सृजन करने वाले ब्रह्मा जी के मनुष्य असुर और देवों ने उन जलों को उत्पन्न किया ॥ १ ॥ पितृ की भाँति मन्यमान इससे पितर उत्पन्न हुए। उनका निसर्ग तो इसके पूर्व में ही कह दिया गया है किन्तु अब इस समय उसका विस्तार कहा जाता है ॥२॥ देवासुर मनुष्यों का सर्ग देखकर देव बोले—पितृ की भाँति मन्यमान ने उपाया-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षित उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ मधु आदि ये छै ऋतुऐं हैं उनको पितृ कहते हैं। "ऋतु पितर और देव है" इस प्रकार वाली यह वैदिकी श्रुति है ॥ ४ ॥ समस्त व्यतीत हुए तथा अनागत मन्वन्तरों में भी शुभ स्वायम्भुव मन्वन्तर में ये सब पहिले उत्पन्न हुये हैं ॥ ५ ॥ ये नाम से अग्निष्वात्त तथा वर्हिषद कहे गये हैं। उनके अयज्वा गृहमेधी थे। जो अनादित अग्नि थे वे अग्निष्वात्त कहे गये हैं ॥ ६ ॥ उनमें जो यज्वा थे वे सोमपीथी पितर थे। वे अग्निहोत्री पितर वर्हिषद कहे गये हैं। ऋतु पितर और देव हैं, यह इस शास्त्र में निश्चित मत होता है ॥ ७ ॥

मधुमाधवौ रसौ ज्ञेयौ शुचिशुक्रौ तु शुष्मिणौ।
नभश्चैव नभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ ॥८
इषश्चैव तथोर्जश्च सुधावन्तावुदाहृतौ।
सहश्चैव सहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ।
तपश्चैव तपस्यश्च घोरावेतौ तु शैशिरो ॥६
कालावस्थास्तु षट् तेषाम्मासाख्या वै व्यवस्थिताः।
त इमे ऋतवः प्रोक्ताश्चेतनाचेतनास्तु वै ॥१०
ऋतवो ब्रह्मणः पुत्रा विज्ञेयास्तेऽभिमानिनः।
मासार्द्धमासस्थानेषु स्थानं च ऋतवोर्त्तवाः ॥११
स्थानानां व्यतिरेकेण ज्ञेयाः स्थानाभिमानिनः।
अहोरात्रं च मासाश्च ऋतवश्चायनानि च ॥१२
संवत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिनः।
निमेषाश्च कलाः काष्ठा मुहूर्त्ता वै दिनक्षपाः ॥१३
एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्थास्ववस्थिताः।
तन्मयत्वात्तदात्मानस्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥१४

मधु और माधव रस जानने के योग्य हैं। शुचि और शुक्र शुष्मी हैं। नभ और नभस्य ये दोनों जीव उदाहृत हुए हैं। ८ ॥ इष और ऊर्ज ये दोनों सुधावान् कहे गये हैं। सह और सहस्य ये दोनों मन्युमान् कहे गये हैं। तप और तपस्य ये दोनों घोर शैशिर कहे गये हैं ॥ ९ ॥ उनके काल की अवस्था छै होती हैं जो कि मासों के नाम से व्यवस्थित हैं। वे ही ये ऋतु, चेतन और अचे-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तन कही गई हैं ॥ १० ॥ ऋतुऐं अभिमानी ब्रह्मा के पुत्र हैं ऐसा जानना चाहिए । मासार्धमास स्थानों में ऋतुओं का स्थान है ॥ ११ ॥ स्थानाभिमानी के स्थानों के व्यतिरेक से ही अहोरात्र, मास, ऋतु और आयतन होते हैं ॥१२॥ कालावस्थाभिमानी के सम्वत्सर स्थान होते हैं। इसी प्रकार से निमेष, कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, दिन और क्षपा स्थान होते है ॥ १३ ॥ इनमें जो स्थानी हैं वे सब कालावस्थाओं में अवस्थित हैं। तन्मय होने से वे तदात्मा होते हैं उनको अब कहता हूँ सो भलीभाँति समझ लो ॥ १४ ॥

पर्वाण्यास्तिथयः सन्ध्याः पक्षा मासार्द्धसंज्ञिताः ।
द्वावर्द्धमासौ मासस्तु द्वौ मासावृतुरुच्यते ॥१५
ऋतुत्रयं चायनं द्वे अयने दक्षिणोत्तरे ।
संवत्सरः सुमेकस्तु स्थानान्येतानि स्थानिनाम् ॥१६
ऋतवः सुमेकपुत्रा विज्ञेया ह्यष्टधा तु षट् ।
ऋतुपुत्राः स्मृताः पंच प्रजास्त्वार्त्तवलक्षणाः ॥१७
यस्माच्चैवार्त्तवेयास्तु जायन्ते स्थाणुजङ्गमाः ।
आर्त्तवाः पितरश्चैव ऋतवश्च पितामहाः ॥१८
सुमेकात्तु प्रसूयन्ते म्रियन्ते च प्रजातयः ।
तस्मात् स्मृतः प्रजानां वै सुमेकः प्रपितामह ॥१९
स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्तिताः ।
तदाख्यास्तन्मयत्वाच्च तदात्मनाश्च ते स्मृताः ॥२०
प्रजापतिः स्मृतो यस्तु स तु संवत्सरो मतः ।
संवत्सरः स्मृतो ह्यग्निः ऋतमित्युच्यते द्विजैः ॥२१

पर्वण्य तिथियाँ होती हैं। सन्ध्या पक्ष मास का अर्धभाग है, इस संज्ञा वाला होता है। दो अर्धमास ही एक मास होता है अर्थात् दो पक्षों का एक मास होता है। और इसी प्रकार से दो मासों का एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और वे दक्षिण तथा उत्तर इस नाम से दो अयन होते हैं। दो अयनों का एक सम्वत्सर होता है। स्थानियों के ये ही स्थान होते हैं ॥ १५–१६ ॥ ऋतु सुमेक के पुत्र जानने चाहिए वे आठ प्रकार से छै होते हैं। ऋतुओं के पुत्र आर्त्तव लक्षण वाले पाँच होते हैं ॥ १७ ॥ क्योंकि वे

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्त्त्रेय स्थाणु जङ्गम उत्पन्न होने हैं। आर्तव पितर हैं और ऋतु पितामह होते है ॥ १८ ॥ ये सब सुमेरु से प्रसूत होते हैं और प्रजाति मरते हैं। इसीलिये सुमेरु जो होता है वह प्रजाओं का प्रपितामह कहा गया है ॥ १९ ॥ ये स्थानों में स्थानी और स्थानात्मा कहे गये हैं। तन्मय होने से उसी नाम से आख्यात और तदात्मा कहे गये हैं ॥ २० ॥ जो इनका प्रजापति कहा गया है वह सम्वत्सर मानः गया है। सम्वत्सर अग्नि कहा गया है और द्विजों के द्वारा ऋप भी वह कहा जाता है ॥ २१ ॥

ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः।
मासाः षड़ृतवो ज्ञेयास्तेषां पंचार्त्तवाः सुताः ॥२२
द्विपदांचतुष्पदांचैव पक्षिसंसर्पतामपि।
स्थावराणां च पंचानां पुण्यं कालार्त्तवं स्मृतम् ॥२३
ऋतुत्वमार्त्तवत्वंच पितृत्वंच प्रकीर्तितम्।
इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चार्त्तवाश्च ये ॥२४
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे।
तस्मादेतेऽपि पितर आर्त्तवा इति नः श्रुतम् ॥२५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु स्थिताः कालाभिमानिनः।
स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठन्तीह प्रसंयमात् ॥२६
अग्निष्वात्ता वर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः।
जज्ञाते च पितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥२७
मेना च धारिणी चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम्।
पितरस्ते निजे कन्ये धर्मार्थं प्रददुः शुभे।
त उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यो चैव ते उभे ॥२८

ऋत इस नाम से ही उससे ऋत उत्पन्न हुए हैं। मास छै ऋतुऐं समझनी चाहिए और उनके पाँच आर्त्तव पुत्र होते हैं ॥ २२ ॥ द्विपद, चतुष्पद पक्षी, संसर्पण करने वाले और स्थावर इन पाँचों को पुण्य कालार्त्तव कहा गया है ॥ २३ ॥ ऋतुत्व, आर्त्तवत्व और पितृत्व कहा गया है। ये सब ऋतु और जो आर्त्तव हैं वे सब पितर जानने के योग्य होते हैं ॥ २४ ॥ उनसे ही समस्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राणी ऋतु काल से उत्पन्न हुए हैं। इसलिये ये आर्त्तव भी पितर हैं ऐसा हमने सुना है ॥ २५ ॥ समस्त मन्वन्तरों में ये कालाभिमानी तथा स्थानाभिमानी प्रसंयम से यहाँ रहा करते हैं ॥ २६ ॥ अग्निष्वात्त और बर्हिषद ऐसे ये दो प्रकार के पितर कहे गये हैं। इन पितरों से लोक प्रसिद्ध दो कन्याऐं उत्पन्न हुई थी ॥ २७ ॥ जिनका नाम मेना और धारिणी है। जिन दोनों के द्वारा ही यह समस्त विश्व धारण किया हुआ होता है। पितरों ने वे अपनी दोनों कन्याओं को धर्म के लिए दे दिया था। वे शुभ दोनों ही ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं ॥ २८ ॥

अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषां मेना तु मानसी।
धारणी मानसी श्चैव कन्या बर्हिषदां स्मृता ॥२९
मेरोस्तु धारणीं नाम पत्न्यर्थं व्यसृजन् शुभाम्।
पितरस्ते बर्हिषदः स्मृता ये सोमपीथिनः ॥३०
अग्निष्वात्तास्तु तां मेनां पत्नीं हिमवते ददुः।
स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान् निबोधत ॥३१
यस्ते हिमवतः पत्नी मैनाकं सान्वसूयत।
गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधेः ।
मैनाकस्यानुजः क्रौञ्चः क्रौञ्चद्वीपो यतः स्मृतः ॥३२
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम्।
मन्दरं सुषुवे पुत्रं तिस्रः कन्याश्च विश्रुताः ॥३३
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चायतिः पुनः।
धातुश्चैवायतिः पत्नी विधातुर्नियतिः स्मृता ॥३४
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वन्तयोर्वै कीर्तिताः प्रजाः।
सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ॥३५
सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनबर्हिषः।
सवर्णा साथ सामुद्री दशप्राचीनबर्हिषः।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥३६

जो अग्निष्वात्त कहे गये हैं उनकी मेना मानसी है और धारणी तथा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मानसी कन्या वर्हिषदों की है ॥ २९ ॥ मेरु के लिये धारणी नाम वाली शुभ कन्या को पत्नी बनाने के लिये देदी । वे बर्हिषद पिता जो थे वे सोमपीथि कहे गये हैं ॥ ३० ॥ अग्निष्वात्तों ने उस मेना कन्या को हिमवान् को पत्नी बनाने के लिये दे दिया था । वे दौहित्र कहलाये गये हैं अब उसके दौहित्रों को जान लो ॥ ३१ ॥ हिमाचल की पत्नी मेना ने मैनाक का प्रसव किया । सरिताओं में श्रेष्ठ जो गङ्गा थी वह लवणोदधि की पत्नी थी । मैनाक का छोटा भाई क्रौञ्च था जिससे क्रौञ्चद्वीप कहा गया है ॥ ३२ ॥ मेरु पर्वत की पत्नी धारणी थी जिसने दिव्य औषधियों से युक्त मन्दर गिरि को पुत्र रूप में उत्पन्न किया और तीन प्रसिद्ध कन्यायें भी उत्पन्न की थीं ॥ ३३ ॥ जिन तीनों कन्याओं के वेला, नियति और तीसरी आयति ये नाम थे । आयति धाता की पत्नी हुई, विधाता की पत्नी नियति कही गई हैं ॥ ३४ ॥ स्वायम्भुव अन्तर में पूर्व में उन दोनों की सन्तति कहदी गई है । वेला ने सागर से एक अनिन्दित अर्थात् बहुत अच्छी कन्या का प्रसव किया था । सावर्णि केद्वारा प्राचीन वर्हिष की सामुद्री पत्नी हुई । वह सवर्णा थी इसलिये सामुद्री थी । दश प्राचीन वर्हिष थे । वे सब धनुर्वेद के पारङ्गत प्रचेतस नाम वाले थे ॥ ३५-३६ ॥

॥ देववंश वर्णन ॥

त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
देवा यामा इति ख्याताः पूर्वं ये यज्ञसूनवः ॥१
अजिता ब्रह्मणः पुत्रा जिता जिदजिताश्च ये ।
पुत्राः स्वायम्भुवस्यैते शुक्रनाम्ना तु मानसाः ॥२
तृप्तिमन्तो गणा ह्येते देवानान्तु त्रयः स्मृताः ।
छन्दोगास्तु त्रयस्त्रिंशत्सर्वे स्वायम्भुवस्य ह ॥३
यदुर्ययातिर्द्वौ देवौ दीधयः स्ववसो मतिः ।
विभासश्च क्रतुश्चैव प्रजातिर्विशतो द्युतिः ॥४
वायसो मङ्गलश्चैव यामा द्वादश कीर्तिताः ।
अभिमन्युरुग्रदृष्टिः समयोऽथ शुचिश्रवाः ।
केवलो विश्वरूपश्च सुपक्षो मधुपस्तथा ॥५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तुरीयोनिर्हंपुश्चैव युक्तो ग्रावाजिनस्तु ते ।
यमिनो विश्वदेवाद्यै यविष्ठोऽमृतवानपि ॥६
अजिरो विभुर्विभावश्च मृलिकोऽथ दिदेहकः ।
श्रुतिश्रृणो बृहच्छुक्रो देवा द्वादश कीर्तिताः ॥७

त्रेतायुग मुख में पहिले स्वायम्भुव अन्तर में जो देव थे वे यामा इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं और जो पहिले यज्ञ सूनु थे ॥ १ ॥ ब्रह्मा के अजित पुत्र थे और जित और जिदजिता जो पुत्र थे ये स्वायम्भुव के थे और शुक्र नाम से मानस पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ ये तृप्तिमन्त देवों के तीन गण कहे गये हैं और छान्दोग तो संख्या में तेतीस सब हैं जो स्वायम्भुव के होते हैं ॥ ३ ॥ यदु और ययाति दो देवता, दीधय, स्रवस, मति, विभास, ऋतु, प्रजापति, विशत, द्युति, वायस, मङ्गल ये बारह याम कहे गये हैं । अभिमन्यु, उग्र, दृष्टि, समय, शुचिश्रवा, केवल, विश्वरूप, सुपक्ष, मधुप, तुरीय, निर्हंयु, युक्त और ग्रावाजिन ये यामिन हैं । विश्वदेवाद्य, यविष्ठ, अमृतवान्, अजिर, विभु, विभाव, मृलिक, दिदेहक, श्रुति श्रृण, वृहच्छुक्र ये द्वादश देव कीर्त्तित हुए हैं ॥ ४-५-६-७ ॥

आसन् स्वायम्भुवस्यैते अन्तरे सोमपायिनः ।
त्विषिमन्तो गणा ह्येते वीर्यवन्तो महाबलाः ॥८
तेषामिन्द्रः सदा ह्यासीद्विश्वभुक् प्रथमो विभुः ।
असुरा ये तदा तेषामासन् दायादबान्धवाः ॥९
सुपर्णयक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
अष्टौ ते पितृभिः सार्द्धं नासत्या देवयोनयः ॥१०
स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीताः प्रजास्त्वासां सहस्रशः ।
प्रभावरूपसम्पन्ना आयुषा च बलेन च ॥११
विस्तरादिह नोच्यन्ते मा प्रसङ्गो भवत्विह ।
स्वायम्भुवो निसर्गश्च विज्ञेयः साम्प्रतं मनुः ॥१२
अतीते वर्त्तमानेन दृष्टो वैवस्वतेन सः ।
प्रजाभिर्देवताभिश्च ऋषिभिः पितृभिः सह ॥१३
तेषां सप्तर्षयः पूर्वमासन्ये तान् निबोधत ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१४
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
अग्नीध्रश्चातिवाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ॥१५
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ।
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः ॥१६

ये सब स्वायम्भुव अन्तर में सोमपायी थे। ये त्विषिमान्, महान् बल वाले और वीर्यशील गण थे ॥ ८ ॥ उनमें इन्द्र सदा विश्व का भोग करने वाला प्रथम विभु था। जो असुर थे वे उनके दाय प्राप्त करने वाले बान्धव थे ॥ ९ ॥ सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच उरग, राक्षस ये आठ पितृगण के साथ नासत्य देवयोनि है ॥ १० ॥ स्वायम्भुव अन्तर में इनकी सहस्रों प्रजा व्यतीत हो गई जो कि प्रभाव, रूप, आयु और बल से सम्पन्न थे ॥ ११ ॥ यहाँ उनका पूर्ण विस्तार से वर्णन नहीं किया जाता है। यहाँ उसका प्रसङ्ग न होवे। स्वायम्भुव निसर्ग अब मनु जानना चाहिए ॥ १२ ॥ अतीत में वर्त्तमान वैवस्वत ने उसे देखा था जो कि प्रजाओं के, देवताओं के, ऋषियों के और पितरों के साथ में था ॥ १३ ॥ उनमें सप्तर्षि पहले जो थे अब उनके विषय में समझ लो भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ ये सात स्वायम्भुव अन्तर में थे। अग्नीध्र अतिबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र ये स्वायम्भुव मनु के महान् ओज वाले दश पुत्र थे ॥ १४-१५-१६ ।

वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजानः प्रथमेऽन्तरे ।
सासुरन्तत्सगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
सपिशाचमनुष्यञ्च सुपर्णाप्सरसाङ्गणम् ॥१७
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि ।
बहुत्वान्नामधेयानां सङ्ख्या तेषां कुले तथा ॥१८
या वै व्रजकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कालेन बहुनातीता अयनाब्दयुगक्रमैः ॥१९
क एष भगवान् कालः सर्वभूतापहारकः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कस्य योनिः किमादिश्च किन्तत्त्वं स किमात्मजः ।।२०
किमस्य चक्षु का मूर्तिः के चास्यावयवाः स्मृताः ।
किंनामधेयः कोऽस्यात्मा एतत् प्रब्रूहि पृच्छताम् ।।२१

प्रथम मन्वन्तर में वायु के द्वारा कहे हुए महान् सत्त्व वाले राजा थे । वह सुरों के सहित, गन्धर्वों से युक्त, यक्ष, उरग और राक्षसों के सहित, पिशाचों से युक्त तथा मनुष्यों के सहित और सुपर्ण तथा अप्सराओं के गण से युक्त था ।। १७ ।। बहुत, से नामों की संख्या उनके कुल में थी क्योंकि बहुत सारे नाम थे उन सब का आनुपूर्वी के साथ वर्णन करने का कार्य सौ वर्ष में भी पूर्ण नहीं किया जा सकता है ।। १८ ।। जो व्रज-कुल के नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे वे अयन वर्ष और युग के क्रम से बहुत अधिक काल में अतीत हो गये हैं ।।१६।। ऋषियों ने कहा—यह भगवान् काल जो कि समस्त प्राणियों के अपहरण करने वाला है, कौन है ? किसकी यह योनि है ? इसके आदि में क्या था ? इस का वास्तविक तत्त्व क्या है ? और यह किस का आत्मज है ? ।। २० ।। इसके नेत्र क्या हैं ? इसकी मूर्त्ति कैसी है ? और इसके अन्य शरीरावयव कैसे कहे गये हैं ? इसका नाम क्या है ? इसकी आत्मा क्या है ? हम सब यह बात आप से पूछ रहे हैं, कृपा कर हमें आप यह सब बताइये ।। २१ ।।

श्रूयतां कालसद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
सूर्ययोनिर्निमेषादिः सङ्ख्याचक्षुः स उच्यते ।।२२
मूर्त्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च सः ।
संवत्सरशतं त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ।
साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापतिः ।।२३
पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्थां निबोधत ।
दिनार्द्धमासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ।।२४
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ।।२५
वत्सरः पञ्चमस्तेषां कालः स युगसंज्ञितः ।
तेषान्तु तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्रीसूतजी ने कहा— अब आप सब लोग इस काल का सद्भाव मुझसे श्रवण करे और उसको सुनकर हृदय में अवधारण भी करें। इसकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं। इसकी संख्या चक्षु निमेष आदि होते हैं जोकि कहा जाता है ॥२२॥ अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्र ही इसकी मूर्त्ति है और निमेष ही इसकी मूर्त्ति के अवयव होते है। कलात्मक सौ सम्वत्सर ही इसका नाम होता है। वर्त्तमान-भूत और भविष्य के स्वरूप वाला वह प्रजापति हैं ॥२३॥ प्रकृष्ट रूप से विभज्य पाँचों को ही काल की अवस्था जान लो जोकि पाँच विभाग दिन-अर्धमास (पक्ष) ऋतु- मास और अयन ये होते हैं इन्हीं पाँचों का विभाग है और उसी से काल को अवस्था होती है ॥२४॥ सम्वत्सर प्रथम होता है—दूसरा परिवत्सर, तृतीय इद्वत्सर, और चौथा अनुवत्सर तथा पञ्चम वत्सर होता है। उनका जो काल होता है वही युग इस संज्ञा से युक्त होता है। अब उनका मैं तत्त्व बतलाता हूँ आप लोग उस भली भाँति समझ लेवें ॥२५॥२६॥

ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः।
आदित्ये यस्त्वसौ सारः कालग्निः परिवत्सरः ॥२७
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः खगः।
स इडावत्सरः सोमः पुराणे निश्चलो मतः ॥२८
यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः।
आशुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ॥२९
अहङ्कारात् रुदन् रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणस्त्वयः।
स रुद्रो वत्सरस्तेषां विजज्ञे नीललोहितः।
तेषां हि तत्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥३०
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगात् कालात्मा प्रपितामहः।
ऋक्साम यजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ॥३१
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः।
प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः ॥३२
यस्मात् कालविभागानां मासत्वं यनयोरपि।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुः कर्मणां तथा ।
योजितः प्रविभागानां दिवसानाञ्च भास्करः ।।३३

जो ऋतु अग्नि कहा गया है वह सम्वत्सर माना गया है । यह आदित्य का सार है, कालाग्नि परिवत्सर होता है ।।२७।। शुक्ल कृष्ण गति है और जलों का सारमय खग हैं । वह इड़ावत्सर सोम है जो कि पुराण में निश्चय किया गया है ।।२८।। जो यह सप्त-सप्त तनुओं से लोकों को तपता है वह लोक का आशुकर्त्ता वायु है और वत्सर होता है ।।२९।। अहङ्कार से रुदन करता हुआ रुद्र ब्रह्मा से सद्भूत हुआ । वह रुद्र उनका नीललोहित वत्सर उत्पन्न हुआ । अब मैं उनका कहा गया तत्त्व बतलाता हूँ जिसे आप समझ लेवें ।।३०।। अङ्गों और प्रत्यङ्गों के संयोग से कालात्मा अर्थात् काल के स्वरूप वाला प्रपितामह है जो कि ऋक्-साम और यजु का जन्मस्थान है और पाँचों का पति ईश्वर है ।।३१।। वह अग्नि यजु और सोम है वह प्रजापति है । जो सम्वत्सर कहा गया है और मनीषियों के द्वारा जो अग्नि सूर्य कहा गया है ।।३२।। क्योंकि काल के विभागों का, मास, ऋतु और अयन का तथा ग्रह, नक्षत्र, शीत, उष्ण वर्षा, आयु, कर्मों का और प्रविभाग दिवसों का भास्कर ही योजित है ।।३३।।

वैकारिकः प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः ।
एकेनैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तुः पितामहः ।।३४

आदित्यः सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः ।
प्रभवश्चात्य यश्चैव भूतानां तेन भास्करः ।।३५
ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः परिवत्सरः ।
सोमः सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामहः ।।३६
आजीवः सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः ।
अवेक्षमाणः सततं बिभर्ति जगदंशुभिः ।।३७
तिथीनां पर्वसन्धीनां पूर्णिमादर्शयोरपि ।
योनिर्निशाकरो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापतिः ।।३८
तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छन्दआत्मकः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि ॥३९

कर्मभिः प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्त्तकः ।

प्राणापानसमानानां वायूनाञ्च प्रवर्तकः ॥४०

वैकारिक–प्रसन्न आत्मा वाला, ब्रह्मा पुत्र प्रजापति हैं । एक दिन, मास और ऋतु पितामह वह ॥३४॥ आदित्य, सविता भानु, जीवन और ब्रह्मा के द्वारा सत्कार प्राप्त होने वाला, प्रभव और प्राणियों का अत्यय वह होता इसीसे भास्कर कहा जाता है । ॥३५॥ ताराभिमानी तीसरा परिवत्सर जानना चाहिए । सोम समस्त औषधियों का स्वामी होता है इसी कारण से वह प्रपितामह होता है या कहा गया है ॥३६॥ यह समस्त जीवों का आजीव है योग क्षेम के करने वाला और ईश्वर है । सर्वदा निरीक्षण करता हुआ इस जगत् का किरणों के द्वारा भरण किया करता है ॥३७॥ तिथियों का तथा पर्व सन्धियों का एवं पूर्णिमा और दर्शक का भी जो निशाकर योनि होता है और जो अमृतात्मा एवं प्रजापति है ॥३८॥ उससे वह पितृमान ऋक्-यजु और छन्द स्वरूप वाला सोम प्राणापान समानादि तथा व्यान और उदानात्मक कर्मों के के द्वारा लोक में प्राणियों की समस्त चेष्टाओं का प्रवर्त्तक होता है और प्राण अपान एवं समान वायुओं का प्रवर्त्तक होता है ॥३९॥४०॥

पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृति जलात्मनाम् ।

समानकालकरणः क्रियाः सम्पायन्निव ॥४१

सर्वात्मा सर्वलोकानामावहः प्रवहादिभिः ।

विधाता सर्वभूतानां क्षमी नित्यं प्रभञ्जन ॥४२

योनिरग्नेरपां भूमे रवेश्चन्द्रमसश्च यः ।

वायुः प्रजापतिर्भूतं लोकात्मा प्रपितामहः ॥४३

प्रजापति मुखैर्देवैः सम्यगिष्टफलार्थिभिः ।

त्रिभिरेव कपालैस्तु अम्बकैरोषधिक्षये ।

इज्यते भगवान् यस्मात्तस्मात्त्र्यम्बक उच्यते ॥४४

गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव या स्मृता ।

त्र्यम्बका नामतः प्रोक्ता योनयः सवनस्य ताः ॥४५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः ।
त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रि कपालः स वै स्मृतः ॥४६
इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभि, ।
यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः ।
सैकं षट्क विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतवः किल ॥४७

पाँचों इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जलात्मकों का समान काल करने वाला तथा क्रियाओं को मानों सम्पादन करता हुआ- सर्वात्मा और प्रवहादि के द्वारा समस्त लोकों का आवहन करने वाला तथा समस्त भूतों का विधाता और क्षमी प्रभञ्जन नित्य होता है ॥४१॥४२॥ जो अग्नि, जल, भूमि, सूर्य और चन्द्रमा का जन्म स्थान योनि है वह वायु भूतों का प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह है ॥४३॥ भली भाँति इष्ट फलों के अर्थी प्रजापति प्रधान देवों के द्वारा तथा तीनों ही कपालों के द्वारा और ओषधि क्षयमें अम्बकों के द्वारा भगवान् का यजन किया जाता है इसी कारण से वह त्र्यम्बक इस नाम से कहे जाते हैं ॥४४॥ गायत्री, त्रिष्टुप् जगती जो कही गई हैं और नाम से त्र्यम्बका कही गई है वे सवन की योनि हैं ॥४६। एकत्वभूत उन तीनों प्रकार वाली से अपने वीर्य से तीन साधन के पुरोडाश वाला है इसी लिये वह त्रिकपाल कहा गया है ॥४८॥ यह इतना पांच वर्ष का मनीषियों ने युग कहा है और यही पञ्च प्रकार के स्वरूप वाला द्विजों के द्वारा सम्वत्सर कहा गया है। वह एक षट्क पैदा किया जोकि मधु आदि ऋतुऐं हैं ॥४७॥

ऋतुपुत्रार्त्तवः पञ्च इति सर्गः समासतः ।
इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु ॥४८
नदी वेगसमायुक्तं कालो धावति संहरन् ।
अहोरात्रकरस्तस्मात् स वायुरभवत्पुनः ॥४९
एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम् ।
पितरः सर्व लोकानां लोकात्मानः प्रकीर्तिताः ॥५०
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्रादुद्यन् समभवद्भवः ।
ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः ॥५१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते ।
आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः ।।५२
अग्निः संवत्सरः सूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च ।
युगाभिमानी कालात्मा नित्यं संक्षेपकृद्विभुः ।
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स इद्वत्सर उच्यते ।।५३
रुद्राविष्टो भगवता जगत्यस्मिन् स्वतेजसा ।
आश्रयाश्रयसंयोगात्तनुभिर्नामभिस्तथा ।।५४

ऋतुओं के पुत्र आर्त्तव पाँच हैं। संक्षेप से यही सर्ग होता है। यह प्राणियों के जीवनों का पवमान होता है ।।४८।। नदी के वेग के समान ही काल सबका संहार करता हुआ दौड़ा करता है, अहोरात्र करने वाला है इससे वह फिर वायु हो गया था ।।४९।। ये सब प्रजाओं प्रधान पति हैं, और समस्त देहधारियों के पति हैं और समस्त लोकों के पितर है अतएव वे लोकात्मा प्रकल्पित हुए हैं ।।५२।। ध्यान में स्थित ब्रह्माजी के मुख से भव उत्पन्न हुए थे जोकि ऋषि, विप्र, महादेव, भूतात्मा और प्रपितामह हैं। ।।५०।। समस्त प्राणियों के ईश्वर प्रणव के लिये उपपन्न होते हैं। आत्म वेश से भूतों के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सम्भव होते हैं ।।५२।। अग्नि, सम्वत्सर, सूर्य, चन्द्रमा और वायु ये युगाभिमानी काल के स्वरूप वाले विभु और नित्य ही संक्षेप करने वाले होते हैं उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं वह इद्वत्सर कहे जाते हैं ।।५३।। आश्रयाश्रय के संयोग से तनुओं से तथा नामों के द्वारा इह जगती तल में भगवान के द्वारा अपने तेज रुद्राविष्ट होते हैं ।।५४।।

ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम् ।
द्वितीयं भद्रसंयोगं सन्ततस्यैककारकम् ।।५५
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च कालत्वञ्चास्य यत्परम् ।
तस्माद्वै सर्वथा भद्रस्तद्वद्‌भिरभिपूज्यते ।।५६
पतिः पतीनां भगवान् प्रजेशानां प्रजापतिः ।
भवनः सर्वभूतानां सर्वेषां नीललोहितः ।
ओषधीः प्रतिसन्धत्ते रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः ।।५७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding IKS

इत्येषां यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः ।
बहुत्वात् परिसङ्ख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥५८
इमं वंशं प्रजेशानां महतां पुण्यकर्मणाम् ।
कीर्त्तयन् स्थिरकीर्त्तीनां महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥५९

इसके अनन्तर उसके वीर्य से लोकों पर अनुग्रह करने वाला सन्तत का एक करने वाला द्वितीय भद्र संयोग होता है ॥ ५५ ॥ देवत्व, पितृत्व और इसका कालत्व यत्पर है उससे सर्वथा भद्र उसी के भाँति विद्वानों के द्वारा अभिपूजित होते हैं ॥ ५६ ॥ भगवान् पतियों के भी पति और प्रजा के ईशों के भी प्रजापति तथा समस्त प्राणियों जन्म स्थान एवं नील लोहित हैं । रुद्र पुनः पुनः क्षीण हुई ओषधियों का सन्धान करते हैं ॥ ५७ ॥ इनकी जो सन्तति है वह प्रमाण के स्वरूप में कही नहीं जा सकती है । बहुत होने के कारण उनकी परिसंख्या भी नहीं की जा सकती है क्योंकि पुत्र और पौत्रों का कुछ भी अन्त नहीं है ॥ ५८ ॥ महान् एवं पुण्य कर्म वाले इन प्रजेशों का जो यह वंश है जिनकी कि कीर्त्ति स्थिर है उसका कीर्त्तन करते हुए महती सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥

॥ प्रकर्ण ३०–युगधर्म निरूपण ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम् ।
ओङ्कारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णश्चादितः स्मृतम् ॥१
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा ।
ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥२
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे ।
चतुर्द्दश महात्मानो देवानां ये तु दैवताः ॥३
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वगः सर्वयोगवित् ।
अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ॥४
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभिः सह ।
अक्षरान्निःसृताः सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥५
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परमं पदम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञितः ।।६
कृतं त्रेता द्वापरञ्च युगादिः कलिना सह ।
परिवर्त्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ।।७
देवतास्तु तदोद्विग्नाः कालस्य वशमागताः ।
न शक्नुवन्ति तन्मानं संस्थापयितुमात्मना ।।८

श्री वायुदेव ने कहा—इसके आगे अब हम प्रणव का विनिश्चय कहेंगे। ओङ्कार जो अक्षर ब्रह्म है और यह आदि से तीन वर्ण वाला कहा गया है ।।१।। जो-जो जिसका जैसा भी वर्ण और देवता विहित किया गया है वैसा ही ऋक्, यजु, साम, वायु, अग्नि और जल होता है ।। २ ।। उस अक्षर से ही फिर अन्य उत्पन्न हुए हैं। वे चौदह महान् आत्मा वाले हैं जो कि देवों के भी देवता होते हैं ।। ३ ।। उनमें सर्वगत, सवंग और सर्वयोग का वेत्ता लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये आदि, मध्य तथा अन्त कहा जाता है ।। ४ ।। सप्तर्षि, इन्द्र और जो देव हैं वे पितरों के साथ सब अक्षर देवों के देव महेश्वर से ही निःसृत हुए हैं ।। ५ ।। यहाँ और परलोक में हितार्थ के लिये परम पद कहते हैं। मैंने युग की संज्ञा से युक्त काल पहिले ही बतला दिया है ।। ६ ।। कृतयुग, त्रेता, द्वापर युगादि इस कलियुग के साथ परिवर्त्तमान उनके द्वारा ही चक्र की भाँति भ्रम-माण होने पर तब देवगण अत्यन्त उद्विग्न होकर इस काल के वश में आ गये और अपने से उस मान की संस्थापना न कर सके हैं ।। ७-८ ।।

तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै ।
ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपाः ।।९
समाधाय मनस्तीव्रं सहस्रं परिवत्सरान् ।
प्रपन्नास्ते महादेवं भीताः कालस्य वै तदा ।।१०
अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः ।
कोऽस्य विद्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ।।११
अथ दृष्ट्वा महादेवस्तं तु कालञ्चतुर्मुखम् ।
न भेतव्यमिति प्राह को वः कामः प्रदीयताम् ।।१२
तत्करिष्याम्यहं सर्वं न वृथायं परिश्रमः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उवाच देवो भगवान् स्वयङ्कालः सुदुर्जयः ।।१३
यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते ।
एतत् कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम् ।
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः ।।१४

उस समय वे वाग्यत अर्थात् मौन होकर मन्वन्तर के आदि में देवता, ऋषिगण और महान् तप वाला इन्द्र सहस्रों परिवत्सर पर्यन्त तीव्र मन को समादित करके तब काल से डरे हुए मह देव के शरण में प्राप्त हुए ।। ९-१० ।। यह चार मूर्त्ति तथा चार मुखों वाला देवों का ईश काल था। हे महेश्वर! हे महादेव! अगाध इसको कौन जानता है ।। ११ ।। इसके अनन्तर उस चार मुखों वाले काल को महादेव जी ने देखकर कहा—डरो मत। आपका क्या काम है मुझे बताओ । १२ ।। सुदुर्जय स्वयं भगवान् कालदेव ने कहा—वह सब मैं तुम्हारा क र्य करूँगा। यह तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होगा ।। १३ ।। जो यह इसका श्वेत मुख जो कि चार जिह्वा वाला लक्षित होता है यह कृतयुग नाम वाला उस काल का मुख है। यह सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्मा देव हैं और वैवस्वत मुख है ।। १४ ।।

यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया ।
त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत् त्रेतायुगं द्विजाः ।।१५
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात ।
ततोऽत्र इज्यते यज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नयः ।
इष्ट्वा चैवाग्नयो विप्राः कालजिह्वा प्रवर्त्तते ।।१६
यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम् ।
द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद्युगम् ।।१७
यदेतत् कृष्णवर्णाभं तुरीयं रक्तलोचनम् ।
एकजिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ।।१८
ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयङ्करम् ।
कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ।।१९
न मुखं नापि निर्वाणं तस्मिन् भवति वै युगे ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति ॥२०
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते ।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥२१

जो यह रक्त वर्ण की आभा वाला मेरे द्वारा आपका तृतीय कहा गया है तीन जीभ वाला इसको चाटता हुआ हे द्विजो ! वह त्रेतायुग है ॥ १५ ॥ यहाँ पर भगवान् महेश्वर से यज्ञ करने में प्रवृत्ति होती है । तब से यहाँ यज्ञ का याजन किया जाता है । तीन जीभ और तीन ही अग्नि हैं । हे द्विजो ! अग्नि यजन करके काल जिह्वा की प्रवृत्ति होती है ॥ १६ ॥ यह जो दो जीभ वाला रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाला भयानक मुख है यहाँ दो पाद वाला हो जाऊँगा । यह द्वापर नाम वाला युग है ॥ १७ ॥ यह जो चतुर्थ कृष्ण वर्ण की आभा वाला रक्त लोचन एक जीभ वाला अधिक श्याम को बार-बार चाटने वाला है वह घोर समस्त लोकों को भयङ्कर कलियुग है । यह चौथा कल्प का भीषण मुख है ॥ १९ ॥ इस युग में न तो कोई सुख ही होता है और न निर्वाण (मोक्ष) ही होता है । इस युग में प्रजा भी सब काल से ग्रस्त रहा करेगी ॥ २० ॥ कृतयुग में ब्रह्मा पूजा के योग्य होते हैं । त्रेता में यज्ञ कहा जाता है । द्वापर में विष्णु पूजे जाते हैं और मैं चारों में पूज्य होता हूँ ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलास्त्रयः ।
सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥२२
अहं जनो जनयिता (वः) कालः कालप्रवर्त्तकः ।
युगकर्ता तथा चैव परं परपरायणः ॥२३
तस्मात् कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात् ।
अभयार्थञ्च देवानामुभयोर्लोकयोरपि ॥२४
तदा भव्यश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः ।
तस्माद्भयं न कार्यं च कलिं प्राप्य महौजसः ॥२५
एवमुक्तास्ततः सर्वा देवता ऋषिभिः सह ।
प्रणम्य शिरसा देवं पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥२६
महातेजा महाकायो महावीर्यो महाद्युतिः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भीषणः सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः ॥२७
एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः ।
लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ॥२८

ब्रह्मा, विष्णु और यज्ञ ये तीनों काल की ही कलाऐं हैं। समस्त कालों में चतुर्मूर्त्ति महेश्वर होते हैं ॥ २२ ॥ मैं जन हूँ हमारा जनन करने वाला काल है जो काल का प्रवर्त्तक होता है तथा वह युग का करने वाला और पर परायण होता है ॥ २३ ॥ इससे लोकों के हित कारण से कलियुग को प्राप्त करके दोनों लोकों में देवों का अभयार्थ हूँ ॥ २४ ॥ हे सुरोत्तमो ! तत्र उस समय मैं भव्य और पूज्य हो जाऊँगा । इससे महान् ओज वालो ! कलियुग को पाकर कुछ भी भय नहीं करना चाहिए ॥ २५ ॥ इस प्रकार से ऋषियों के साथ समस्त देव कहे गये और उन्होंने शिर से देव को प्रणाम करके फिर वे जगत् के पति से बोले ॥ २६ ॥ देवर्षियों ने कहा—महान् तेज वाला, महान् काय वाला और महान् वीर्य वाला तथा महाद्युति से युक्त समस्त प्राणियों के लिये भीषण काल चार मुखों वाला कैसे हुआ है ॥ २७ ॥ श्री महादेव जी ने कहा—यह काल चार मूर्तियों वाला, चार दाढ़ों वाला और चार मुख वाला लोकों के संरक्षण के लिये सभी ओर से अतिक्रमण करता है ॥ २८ ॥

नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे ।
कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात् ॥२९
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ।
तस्मात्तु सर्वभूतानि कालः कलयते सदा ॥३०
विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्ततिः ।
तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तायुगक्रमात् ॥३१
एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसप्ततिः ।
यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ॥३२
एवमुक्त्वा तु भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।
नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३३
एवं स काले भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुनः पुनः संहरते सृजते च पुन पुनः ।।३४
अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृदानवैः ।
पूज्यते भगवानीशो भयात् कालस्य तस्य वै ।।३५

समस्त चराचर में इसको कुछ भी असाध्य नहीं होता है । यह काल ही प्राणियों का सृजन किया करता है और यही क्रम से उनका संहार करता है ।। २९ ।। सभी काल के वश में जाने वाले होते हैं किन्तु यह काल किसी के भी वश में रहने वाला नहीं होता है । इसीलिये समस्त प्राणियों को यह काल सदा कलन किया करता है ।। ३० ।। इसके विक्रम के इकहत्तर पद हैं जो पहिले कहे गये हैं । वे यहाँ परिवृत्त युगों के क्रम से मन्वन्तर होते हैं ।। ३१ ।। एक पद का परिक्रम करके जो कि इकहत्तर पद हैं । जब काल प्रक्रमण किया करता है तब मन्वन्तर का क्षय होता है ।। ३२ ।। इस प्रकार से भगवान् ने देवर्षि पितृ और मानवों से कहा और उप कहने के पश्चात् उन सबके द्वारा नमस्कृत होकर वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये ।। ३३ ।। इस प्रकार से वह भगवान् काल में देव, ऋषि, पितर और मानवों को पुनः पुनः सृजन किया करते हैं और बार-बार सहार भी किया करते हैं ।। ३४ ।। इसीलिये उस काल के भय से मन्वन्तर में देवर्षि पितृ दानवों के द्वारा भगवान् ईश पूजे जाते हैं ।। ३५ ।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विजः ।
पन्नस्य महादेवं तस्य पुण्यफलं महत् ।
तस्माद्देवा दिवं गत्वा अवतीर्य च भूतले ।।३६
ऋषयश्चैव देवाश्च कलिम्प्राप्य सुदारुणम् ।
तप इच्छन्ति भूयिष्ठं कर्त्तुं धर्मपरायणाः ।
अवतारान् कलिं प्राप्य करोति च पुनः पुनः ।।३७
एवं कालान्तरे सर्वे येऽतीता वै सहस्रशः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् देवराजर्षयस्तथा ।।३८
देवापिः पौरवो राजा मनुश्चेक्ष्वाकुवंशजाः ।
महायोगबलोपेताः कालान्तरमुपासते ।।३९
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्तिष्ये त्रेतायुगे कृते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सप्तर्षिभिश्चैव सार्द्ध भाव्ये त्रेतायुगे पुनः ।
गोत्राणां क्षत्रियाणाञ्च भविष्यास्ते प्रकीर्तिताः ॥४०
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह ।
कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ।
नराः पातकिनो ये वै वर्त्तन्ते ते कलौ स्मृताः ॥४१
मन्वन्तराणां सप्तानां सान्तानार्था श्रुतिः स्मृतिः ।
एवमेतेषु सर्वेषु युगक्षयक्रमस्तथा ॥४२

इसीलिये द्विज को इस कलियुग में समस्त प्रयत्नों से तपश्चर्या करनी चाहिए। महादेव की शरणागति में जाने वाले को उसके पुण्य का महान् फल होता है । इससे देवता स्वर्ग में जाकर फिर इस भूतल में अवतरित होते हैं ॥ ३६ ॥ ऋषिगण और देववृन्द इस सुदारुण कलियुग को पाकर धर्म परायण होते हुए बहुत अधिक तप करने की इच्छा किया करते हैं और इस कलियुग को प्राप्त करके पुनः पुनः अवतारों को किया करते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से कलान्तर में हजारों ही जो सब हैं वे अतीत हो गये हैं । इसी तरह से इस वैवस्वत अन्तर में देवराजर्षि अतीत हो गये हैं ॥ ३८ ॥ देवापि पौरव राजा मनु और इक्ष्वाकु के वंश में जन्मने वाले जो कि महान् योग के बल से युक्त थे कालान्तर की उपासना करते हैं ॥ ३९ ॥ उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर त्रेतायुग के तिष्य होने पर फिर सप्तर्षियों के साथ भाव्य त्रेता युग में गोत्र और क्षत्रियों के भविष्य प्रकीर्त्तित किये गये हैं ॥ ४० ॥ द्वापर के अन्त में ऋषियों के साथ क्षत्रिय प्रतिष्ठित होते हैं । कृतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर इस कलियुग में मनुष्य जो हैं वे सब पातकी होते हैं ऐसा कहा गया है ॥ ४१ ॥ सात मन्वन्तरों की सान्तानार्थ श्रुति और स्मृति है । तथा इसी प्रकार से इन सब में युगों के क्षय होने का क्रम होता है ॥ ४२ ॥

परस्परं युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः ।
यथा वै प्रकृतिस्तेभ्यः प्रवृत्तानां यथा क्षयम् ॥४३
जामदग्न्योन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ।
क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिवं गतानहं तुभ्यं कीर्त्तयिष्ये निबोधत ।।४४
ऐडमिक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते ।
राजानः श्रोणिबन्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया भुवि ।।४५
ऐडवशेऽथ सम्भूता यथा चेक्ष्वाकवो नृपाः ।
तेभ्य एव शतं पूर्णं कुलानामभिषेचितम् ।।४६
तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः ।
भोजन्तु त्रिशतं क्षत्रं चतुर्द्धा तद्यथादिशम् ।।४७
तेष्वतीतास्तु राजानो ब्रुवतस्तान्निबोधत ।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानां हैहयानां तथा शतम् ।।४८
धार्त्तराष्ट्रास्त्वेकशतं अशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं वै ब्रह्मदत्तानां कुलानां वीर्यिणां शतम् ।।४९

परस्पर में युगों का और ब्रह्म क्षत्र का उद्भव होता है उनके लिये जैसी प्रकृति होती है और प्रवृत्तों का जैसे क्षय होता है तथा जमदग्नि के पुत्र राम के द्वारा समस्त क्षत्रियों का निर्विशेष हो जाने पर इस भूमि के अधिप क्षत्रियों ने समस्त स्त्रियाँ कुलटा करदी थीं, उन दिवंगतों के विषय में हम कहेंगे सो तुम श्रवण करो ।। ४३-४४ ।। इक्ष्वाकु वंश की ऐड प्रकृति बतलाई जाती है । राजा लोग श्रेणी में बद्ध तथा भूमि पर अन्य क्षत्रिय हुए ।। ४५ ।। ऐड वंश में जिस प्रकार से इक्ष्वाकु वंश वाले राजा हुए थे उनके ही सैकडों कुल यहाँ अभिषिक्त हुए थे ।। ४६ ।। तभी फिर भोज वंश वालों का दुगुना विस्तार कहा गया है। भोज वंश के तीन सौ क्षत्रिय चारों ओर सब दिशाओं में थे ।। ४७ ।। उनके समाप्त होने पर जो राजा लोग व्यतीत हुए उनके विषय में बोलते हुए मुझसे श्रवण करो । सौ प्रतिविन्ध्यों के तथा सौ वंश हैहयों के हुए ।। ४८ ।। धार्त्तराष्ट्र एक सौ राजा हुए और अस्सी जनमेजय के वंशज हुए । फिर सौ ब्रह्मदत्तों के वंश वाले तथा वीर्यी कुलों के एक सौ राजा हुए थे ।।४९।।

ततः शतन्तु पौलानां शतं काशिकुशादयः ।
तथापरं सहस्रन्तु येऽतीताः शशबिन्दवः ।
इजानास्तेऽश्वमेधैस्तु सर्वे नियुतदक्षिणैः ।।५०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं संक्षेपतः प्रोक्ता न शक्या विस्तरेण तु ।
वक्तुं राजर्षयः कृत्स्ना येऽतीतास्तैर्युगैः सह ॥५१
एते ययातिवंशस्य बभूवुर्वंशवर्द्धनाः ।
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते ये लोकान् धारयन्ति वै ॥५२
लभन्ते च वरान् पञ्च दुर्लभान् ब्रह्मलौकिकान् ।
आयुः पुत्रा धनं कीर्तिरैश्वर्यं भूतिरेव च ॥५३
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य धीमताम् ।
तथोक्ता लौकिकाश्चैव ब्रह्मलोकं व्रजन्ति वै ॥५४
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥५५
कृते वै प्रक्रियापादश्चतुःसाहस्र उच्यते ।
तस्माच्चतुःशतं सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥५६

इसके अनन्तर पौल वंश वालों के सौ और काशि कुशादिक सौ हुए। इसके पीछे दूसरे हजारों हुए और शशविन्दु वाले अतीत हुए ये सब अश्वमेध यज्ञों का यजन करने वाले थे जिन यज्ञों में नियुतों की संख्या में दक्षिणा दी गई थी ॥ ५० ॥ इस तरह से हमने इन सब का वर्णन संक्षेप में ही किया है क्योंकि इनका विस्तार के साथ वर्णन किया नहीं जा सकता है। जो राजर्षि समस्त उन युगों के साथ अतीत हो गये हैं उनका भी विस्तार से कथन नहीं हो सकता है ॥ ५१ ॥ ये सब ययाति राजा के वंश के बढ़ाने वाले हुए थे। उन द्युतिमानों के विषय में वर्णन किया गया है जो लोकों को धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्म लौकिक पाँच वरों को प्राप्त किया करते हैं। ये पाँच वर आयु, पुत्र, धन, कीर्त्ति और ऐश्वर्य विभूति हैं ॥ ५३ ॥ इन धीमानों के पञ्च वर्ग के ध्यान से तथा धारण एवं श्रवण करने से यथोक्त लौकिक भी वे ब्रह्मलोक को जाया करते हैं ॥ ५४ ॥ कृतयुग चार सहस्र वर्षों का था उसकी उतनी ही शती संध्या थी और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का था ॥ ५५ ॥ कृत में प्रक्रिया पाद चार सहस्र वाला कहा जाता है। उसका चार शत सन्ध्या तथा उसी प्रकार का सन्ध्यांश था ॥ ५६ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्रेतादीनि सहस्राणि संख्यया मुनिभिः सह ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशस्त्रिशतः स्मृतः ।।५७
अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्रस्तु सङ्ख्यया ।
द्वापरे द्वे सहस्रे तु वर्षाणां सम्प्रकीर्तितम् ।।५८
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशो द्विशतस्तथा ।
उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ।।५९
कलिं वर्षसहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ।
तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशः शतमेव च ।।६०
संहारपादः संख्यातश्चतुर्थो वै कलौ युगे ।
ससन्ध्यानि सहांशानि चत्वारि तु युगानि वै ।।६१
एतद् द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् ।
एवं पादैः सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च ।।६२
सन्ध्यासन्ध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे ।
एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ।।६३
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम् ।
यथा युगं चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम् ।
चतुष्पादं सुराणान्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ।।६४

त्रेतादि युग मुनियों के साथ संख्या से सहस्र थे । उसकी त्रिशती संध्या तथा त्रिशत वाला सन्ध्यांश कहा गया है ।। ५७ ।। त्रेता का अनुषङ्ग पाद संख्या से तीन सहस्र वाला था । द्वापर में दो सहस्र वर्ष कहे गये हैं ।। ५८ ।। उस द्वापर युग की भी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्यांश भी दो सौ वाला था । उपोद्घात तीसरा द्वापर में पाद कहा जाता है ।। ५९ ।। संख्या के ज्ञाता विद्वज्जन कलियुग को एक सहस्र वर्ष वाला बताते हैं । उसकी भी सन्ध्या एक सौ वाली शतिका है और उसका सन्ध्यांश भी उसी प्रकार वाला एक सौ का है । कलियुग में चतुर्थ संहार पाद होता है । इस तरह सन्ध्या के साथ तथा अंशों के सहित चार युगों का वर्णन किया गया है ।। ६१ । यह बारह सहस्र का चतुर्युग होता है जिसको कि अब बतलाया गया है । इसी प्रकार से पादों से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्लोकों के पाँच-पाँच सहस्र हैं ॥ ६२ ॥ तथा सन्ध्या और सन्ध्यांशकों के द्वारा दूसरे दो सहस्र होते हैं. इस तरह से कवि लोग पुराणों को बारह सहस्र वाले कहा करते हैं ॥ ६३ ॥ जिस तरह वेद चार पादों वाला है उसी प्रकार से युग भी चार पादों वाला होता है। जिस तरह विधाता ने स्वयं युग को चार पाद वाला बनाया है उसी तरह से पहिले ब्रह्माजी ने सुरों के भी चतुष्पाद का निर्माण किया था ॥ ६४ ॥

॥ प्रकर्ण ३१—स्वायम्भुव-वंश-कीर्तन ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ॥१
देवाश्च विविधा ये च तस्मिन् मन्वन्तरेऽधिपाः ।
ऋषयो मानवाश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिनः ॥२
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशं स्वायम्भुवस्य तु ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत ॥३
मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समाः ।
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ॥४
ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षन्निवेशिता ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥५
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।
प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥६
प्रियव्रतात् प्रजावन्तः वीरान् कन्या व्यजायत ।
कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अतीत और अनागत मन्वन्तरों में सब में यहाँ पर सब नाम और रूप से तुल्याभिमानी उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ अनेक देव जो कि उस मन्वन्तर में अधिप थे ऋषिवृन्द और मानवगण ये सभी तुल्य अभिमान वाले थे ॥ २ ॥ स्वायम्भूव का वंश महर्षियों का सर्ग कह दिया गया है। अब विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से वर्णन किये जाने वाले का श्रवण करो ॥३॥ स्वायम्भुव मनु के उसी के समान दश पुत्र थे जिनके द्वारा यह सातों द्वीपों से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समन्वित समस्त पृथ्वी परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ यह भूमि प्रतिवर्ष निवेशित होती हुई समुद्र तथा आकरों वाली है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले आद्य त्रेतायुग में उस समय यह पृथ्वी इसी तरह से युक्त थी ॥ ५ ॥ राजा प्रियव्रत के पुत्र तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्रों के द्वारा यह प्रजा का सर्ग, तपश्चर्या और योग से निवेशित की गई थी ॥ ६ ॥ राजा प्रियव्रत से जो कि प्रजा वाला एवं वीर था कन्या उत्पन्न हुई थी वह कन्या महान् भाग्य वाली थी जो प्रजापति कर्दम को ब्याही गई थी ॥ ७ ॥

कन्ये द्वे शतपुत्रांश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते उभे ।
तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश ॥८
अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभुः ।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः सर्व एव च ॥९
प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ।
द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांस्तांश्च निबोधत ॥१०
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम् ।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥११
शाल्मलौ तु वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान् ।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ॥१२
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ।
शाकद्वीपेश्वरश्चापि हव्यश्चक्रे प्रियव्रतः ॥१३
पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् प्रभुः ।
पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४

दो कन्या, सौ पुत्र और सम्राट् कुक्षि वे दोनों थे, उन दोनों के प्रजापति के समान शूर भाई दश थे ॥ ८ ॥ उनके नाम ये हैं—अग्नीध्र, वपुष्मान्, मेधा, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और सर्व ये दश हैं ॥९॥ राजा प्रियव्रत ने सात इन राजाओं का सात द्वीपों में अभिषेक करके उन द्वीपों में धर्म नियुक्त कर दिया था, उन द्वीपों के विषय में अब श्रवण करो ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जम्बूद्वीप में महान् बल वाले अग्नीध्र को वहाँ का स्वामी बनाया था। प्लक्ष द्वीप में उसने मेधातिथि को वहाँ का राजा नियुक्त किया था ।। ११ ।। शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् को राजा अभिषिक्त किया था। कुश द्वीप में ज्योतिष्मान् को प्रियव्रत प्रभु ने राजा बनाया था ।। १२ ।। क्रौञ्चद्वीप में द्युतिमान् को राजा होने की आज्ञा दी थी। प्रियव्रत ने शाकद्वीप में हव्य को वहाँ का राजा बनाया था ।। १३ ।। पुष्कर द्वीप में सवन का अभिषेक किया था। पुष्कर द्वीप में सवन का भी महावीत नाम वाला पुत्र हुआ था। और एक धातकि पुत्र था ये दोनों पुत्र पुत्रवानों में परम श्रेष्ठ थे ।। १४ ।।

महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते ।।१५
हव्यो व्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपेश्वरान् प्रभुः ।
जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् ।
वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमञ्च महाद्रुमम् ।।१६
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ।
कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ।।१७
सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्तितम् ।
मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ।।१८
वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम् ।
मोदाकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम् ।।१९
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमन्तु महाद्रुमम् ।
एषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ।।२०
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ।।२१

महावीत महात्मा ने उस नाम से वर्ष स्थापित किया था और धातकि के नाम से भी धातकीखण्ड कहा जाता है ।। १५ ।। हव्य ने शाक द्वीप के स्वामी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सात पुत्र थे जिनके नाम, जलद, कुमार,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुकुमार, मणिचक, वसुमोद, सुमोदाक और सातवाँ महाद्रुम है। ये सातों पुत्रों के नाम हैं ॥ १६ ॥ जलद का जलद प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमार का कौमार दूसरा वर्ष कहा गया है ॥ १७ ॥ तृतीय सुकुमार का सुकुमार इसी नाम वाला वर्ष कहा गया है। मणिचक का चौथा मणीचक वर्ष है इसी नाम से कहा जाता है ॥ १८ ॥ पांचवाँ वसुमोदका वसुमोदक और मोदाक का छठा मोदाक वर्ष कहा गया है ॥१९॥ सातवाँ महाद्रुम के नाम का महाद्रुम वर्ष है। ये इनके नामों से सात वर्ष होते हैं ॥ २० ॥ क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् के पुत्र हुए उनके नाम, कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि ये द्युतिमान् राजा के पुत्र हुए थे ॥ २१ ॥

तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः।
उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरस्यापि पीवरः ॥२२
अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्यते।
मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुन्दुभिः स्मृतः।
एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वराः ॥२३
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैते सुमहौजसः।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः।
षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥२४
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम्।
तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥२५
पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम्।
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥२६
तेषां द्वीपाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु।
आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिः समलंकृताः ॥२७
शाल्मलस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा ॥२८

इन सातों द्युतिमान् के पुत्रों के अपने २ नामों से क्रौञ्चद्वीप के अन्दर आश्रय वाले शुभ देश हुए। उष्ण का उष्ण, पीवर का पीवर इस नाम वाला

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देश था ॥२२॥ अन्धकारक के देश का नाम भी अन्धकार ही कहा जाता है। मुनि का मुनि देश और दुन्दुभि का दुन्दुभि इसी नाम वाला देश था। ये सात जनपद क्रौञ्च द्वीप में परम भास्वर अर्थात् देदीप्यमान थे ॥२३॥ इसी तरह कुश द्वीप में महान् ओज वाले ज्योतिष्मान् के सात पुत्र हुए। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है ॥२४॥ उद्भिद ने प्रथम वर्ष–वेणुमण्डल, दूसरा–तृतीय स्वैरथाकार–चौथा लवण–पाँचवाँ धृतिमान्–छठा प्रभाकर और सप्तम कपिल इस नाम वाला वर्ष था जो कि इन्हीं नामों से सब प्रसिद्ध हैं ॥२५॥२६॥ उनके कुश द्वीप में द्वीप उन्हीं के समान हुए थे जो कि आश्रम एवं आचार से युक्त प्रजाओं से समलंकृत थे ॥२७॥ शाल्मलि द्वीप के वपुष्मान् के सात पुत्र हुए जो उसी द्वीप के अधिप हुए थे। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस और सुप्रभ ये नाम वाले थे ॥२८॥

श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहितः।
जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारितः ॥२९
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानस स्यापि मानसः।
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः ॥३०
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम्।
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः ॥३१
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै।
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः।
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२
तानि तेषां सनामानि सप्तवर्षाणि भागशः।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥३३
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभिः।
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः ॥३४
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै।
ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥३५

श्वेत का श्वेत देश था तथा रोहित का रोहित, जीमूत का जीमूत,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हरित का हारित, वैद्युत का वैद्युत, मानस का मानस और सुप्रभ का सुप्रभ देश था और ये सातों पुत्र देशों के पालक थे जो कि देश उन्हीं सातों के नामों से प्रसिद्ध हैं ॥२९॥३०॥ जम्बू द्वीप के बाद में सात द्वीप कहूँगा। मेधा तिथि के सात पुत्र हुए थे जो कि प्लक्ष द्वीप के स्वामी राजा हुए थे ॥३१॥ उनमें जो सबसे बड़ा था वह शान्तमय था। उनके भी सात पुत्र हुए थे। फिर शान्तमय के पीछे शिशिर, सुखोदय, आनन्द, ध्रुव, क्षेमक और सातवाँ शिव ये नाम वाले सात पुत्र थे ॥३२॥ उन सातों के नामों से ही विभाग पूर्वक सात वर्ष हुए। उन्होंने पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन सातों को निवेशित किया था ॥३३॥ मेधा तिथि के उन सात द्वीपों में निवास करने वाले पुत्रों ने वर्णों तथा आश्रमों के आचार से युक्त प्लक्ष द्वीप में प्रजा का सृजन किया था ॥३४॥ प्लक्ष द्वीपादि में तथा शाक द्वीपान्तरों में पाँचों में वर्णाश्रम के विभाग से धर्म जानने के योग्य है ॥३५॥

सुखमायुश्च रूपञ्च बलं धर्मश्च नित्यशः।
पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वं साधारणं स्मृतम् ॥३६
सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूद्वीपं निबोधत।
आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम्।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥३७
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः।
ज्येष्ठो नाभि रिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः ॥३८
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः।
रम्यः स्यात्पञ्चमः पुत्रो हरिन्मान् षष्ठ उच्यते ॥३९
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वो ह्यष्टमः स्मृतः।
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत ॥४०
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वन्तु पिता ददौ।
हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किम्पुरुषाय तत् ॥४१
नैषधं यत् स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ।
मध्यमं यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ॥४२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुख, आयु, रूप, बल और धर्म नित्य ही इन पाँचों द्वीपों में समस्त साधारण रूप में स्थित कहे गये हैं ।।३६।। सात द्वीपों से परिक्रान्त जम्बू द्वीप को जानना चाहिए । राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र, ज्येष्ठदायाद, कन्या पुत्र और महाबल को उस जम्बू द्वीप में वहाँ का राजा अभिषिक्त करके बनाया था ।३७। उसके पुत्र भी प्रजापति के समान ही ओज वाले हुए थे । उनमें जो सबसे बड़ा ज्येष्ठ था वह 'नाभि'—इस नाम से प्रसिद्ध था । उसका छोटा भाई किम्पुरुष था ।।३८।। तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य और षष्ठ हरिन्मान् तथा सातवाँ कुरु एवं अष्टम भद्राश्व कहा गया है, नवम केतुमाल था । अब उनके देशों के विषय में बतलाया जाता है उसका श्रवण करो ।।३९।।४०।। पिता ने नाभि को हिम नाम वाला दक्षिण देश दिया था और जो हेमकूट वर्ष था वह किम्पुरुष को दिया था ।।४१।। नैषध जो वर्ष था वह हरिवर्ष को दिया और जो सुमेरु के मध्यम था वह उसने इलावृत को दे दिया था ।।४२।।

नीलन्तु यत् स्मृतं वर्ष रम्यायतत् पिता ददौ ।
श्वेतं यदुत्तरं तस्मात् पित्रा दत्तं हरिन्मते ।।४३
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ ।
वर्षं माल्यवतश्चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ।।४४
गन्धमादनवर्षन्तु केतुमाले न्यवेदयत् ।
इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागशः ।।४५
आग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत ।
यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ।।४६
इत्यैतैः सप्तभिः कृत्स्नाः सप्तद्वीपा निवेशिताः ।
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ।।४७
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु ।
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ।।४८
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ।
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वशः ।।४९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जो नील इस नाम वाला वर्ष था, वह पिता ने रम्य नाम वाले पुत्र को दिया । जो श्वेत था उसे पिता के द्वारा हरिन्मान् को दिया गया था ।।४३।। जो शृङ्गवान् के उत्तर में वर्ष था उसे कुरु नामक पुत्र को दिया । माल्यवान् का जो वर्ष था वह भद्राश्व को दिया गया ।।४४।। गन्धमादन नाम वाला वर्ष केतुमाल को दे दिया था । ये सब महान् भाग से नौ वर्ष हैं ।।४५।। उन सबमें आग्नीध्र ने उन पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया था और सबको क्रम के अनुसार ही दिया गया फिर वह धर्मात्मा स्वयं तपश्चर्या में स्थित हो गया था ।।४६।। इन सातों ने समस्त सप्त द्वीप निवेशित किये थे, ये सब प्रियव्रत के पुत्र थे तथा स्वायम्भुव मनु के पौत्र थे ।।४७।। जो किम्पुरुष आदि शुभ अष्ट वर्ष थे, उनको स्वभाव से ही बिना किसी प्रयत्न के सुख प्राप्त सिद्धि थी ।।४८।। वहाँ उनमें किसी भी प्रकार का विपर्यय नहीं था और वहाँ पर जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला कुछ भी भय नहीं होता था । उनमें कोई भी धर्म तथा अधर्म की बात भी नहीं थी और उनमें कोई भी उत्तम-मध्यम तथा अधम होने वाली बात भी नहीं थी । उनमें कोई भी युग की अवस्था नहीं थी और सभी को किसी भी क्षेत्र में ऐसा नहीं होता था ।।४९।।

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत ।
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।।५०
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ।
सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ।।५१
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।
तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।।५२
भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः ।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्ययोजयत् ।
पुत्र संक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ।।५३
तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् ।
तैजसस्यात्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ।।५४
परमेष्ठो सुतश्चाथ निधने तस्य शोभनः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ॥५५
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भुवस्तस्य सुतः स्मृतः ।
उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रताविश्चापि तत्सुतः ॥५६

अब मैं नाभि के सर्ग को बतलाऊँगा उसको हिमाह्व में आप लोग श्रवण करें। नाभि ने जो कि महान् द्युति से युक्त था, मेरुदेवी में पुत्र को उत्पन्न किया था। उसका नाम ऋषभ था जो समस्त क्षत्रियों का पूर्वज तथा राजाओं में परम श्रेष्ठ था ॥५०॥ फिर ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। वह भरत भी अपने पुत्र को राज्यासन पर अभिषिक्त करके स्वयं संन्यास की अवस्था में स्थित हो गया था ॥ ५१ ॥ हिम नाम वाला दक्षिण जो वर्ष था वह भरत के लिये दिया था। इसी से उसके नाम से यह भारतवर्ष ऐसा प्रसिद्ध हुआ जिसे बुध लोग भली-भाँति जानते हैं ॥५२॥ भरत का पुत्र सुमति नाम वाला परम धार्मिक और महान् विद्वान् था। वह राज्य सारा उसी को भरत ने दे दिया था। जब पुत्र ने राज्यश्री को संक्रामित कर लिया तो फिर राजा ने संन्यास लेकर तपस्या के लिये वन गमन कर दिया ॥५३॥ तेज का पुत्र प्रजापति अमित्रजित था। तैजस का आत्मज विशेष विद्वान् इन्द्रद्युम्न इस नाम से संसार में प्रसिद्ध था ॥५४॥ और शोभन परमेष्ठी पुत्र उसके निधन होने पर प्रतीहार कुल में उसके नाम से उसके अन्वय से उत्पन्न हुआ था और वह प्रतिहर्त्ता—इस नाम से विख्यात हुआ। उस बुद्धिमान् प्रतिहर्त्ता के उन्नेता और उसके भुव सुत हुआ। उद्गीथ नाम वाला उसका पुत्र हुआ और उसका भी पुत्र प्रतावि हुआ था ॥५५॥५६॥

प्रतावेस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः ।
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ॥५७
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८
धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ।
भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ॥५९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अग्जिस्य रजः पुत्रः शतजिद्रजसो मतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्राजानः सर्व एव ते ॥६०
विश्वज्योतिः प्रधाना यैस्तैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ।
तैरिदं भारतं वर्षं सप्तखण्डं कृतं पुरा ॥६१
तेषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं भारती धरा ।
कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यान्येकसप्ततिः ॥६२
येऽतीतास्तैर्युगैः सार्द्धं राजानस्ते तदन्वयाः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः ॥६३
एष स्वायम्भुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत् ।
ऋषिभिर्दैवतैश्चापि पितृगन्धर्वराक्षसैः ॥६४
यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभिः ।
तेषां सृष्टिरियं लोके युगैः सह विवर्त्तते ॥६५

प्रतावि का पुत्र विभु और इसका पुत्र पृथु हुआ। पृथु का पुत्र नक्त हुआ और नक्त का आत्मज गय नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥५७॥ गय का पुत्र नर हुआ और नर का आत्मज विराट् नाम वाला उत्पन्न हुआ था। विराट् का पुत्र महावीर्य हुआ तथा उसका पुत्र धीमान् उत्पन्न हुआ ॥५८॥ धीमान् का सुत महान् और महान् का पुत्र भौवन नामक उत्पन्न हुआ था। भौवन का सुत त्वष्टा और इसका पुत्र अरिज नाम वाला उत्पन्न हुआ ॥५९॥ अरिज का पुत्र रज हुआ और शतुजित रज का पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र उत्पन्न हुए वे सभी राजा हुए थे ॥६०॥ ये सब विश्व ज्योति के प्रधान वाले थे और उनके द्वारा ये सन्तति पर्याप्त रूप से वर्द्धित हुई थी, उन्होंने ही इस भारतवर्ष को सात खण्डों वाला पहिले किया था ॥६१॥ उनके वंश में प्रसूत होने वालों के द्वारा इस भारत की भूमिका पूर्ण रूप से भोग किया गया। कृत त्रेतादि से युक्त इकहत्तर युग नाम वाले पर्यन्त इस भारती भूमि को भुक्त किया था ॥६२॥ उन युगों के साथ जो राजा अतीत हो गये थे वे उस अन्वय (वंश) वाले थे जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में हुए थे ॥६३॥ यह स्वायम्भुव सर्ग है जिससे यह समस्त जगतीतल पूरित हो रहा है जिनमें ऋषि, देवता, पितृगण, गन्धर्व और राक्षस सभी हैं। इनके अतिरिक्त यक्ष, भूत, पिशाच,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनुष्य, मृग और पक्षी आदि सब हैं। इनकी यह सृष्टि लोक में युगों के साथ विवर्त्तित होती है ॥६५॥

॥ भुवन विन्यास ॥

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥१
ऐतद्वेदितु मिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
एतत् श्रुत्वा वचस्तेषांमब्रवील्लोमहर्षणः ॥२
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहितः ॥३
पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्याचलस्य हि ।
पूवपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः ॥४
तथा जनपदानां च विस्तर श्रोतुमर्हथ ।
अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ॥५
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ।
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ॥६
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् । ७

ऋषियों ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु प्रजा के सर्ग में होते है ॥१॥ हे सत्तम ! हम इसे जानना चाहते हैं सो आप यह हमें बतलाइये। ऋषिगण के इस वचन को सुनकर लोमहर्षण महर्षि उनसे कहने लगे ॥२॥ उस समय में महात्मा ऋषियों से पौराणिक सूतजी फिर पूर्ण तथा समाहित होकर यह सब विषय विस्तारपूर्वक उनसे बोले ॥३॥ श्रीसूत जी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! पूर्वपश्चायत् इस दक्षिण हिमवान् पर्वत के पुण्य तीर्थ में दक्षिण की ओर से जो जनपद हैं उनका पूरा विस्तृत वर्णन आप सब सुनने के योग्य होते है। यहाँ पर भारतवर्ष में जो प्रजा है वह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आपके सामने मैं वर्णन करूँगा ॥५॥ शुभ और अशुभ के फल का उदय स्वरूप यह तो मध्यम चित्र होता है जोकि समुद्र के उत्तर में और हिमाचल के दक्षिण में है ॥६॥ यह जो वर्ष है इसका नाम भारत है और यहाँ जो प्रजा निवास किया करती है वह भारती प्रजा कही जाती है। प्रजाओं के भरण करने के कारण से मनु भी भरत ऐसा कहा गया है। निरुक्ति करने के वचन से भी यह वर्ष कहा गया है ॥७॥

ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥८
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदाः प्रकीर्तिताः ।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥९
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥१०
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥११
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै ।
तिर्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥१२
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥१३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्त्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१४॥

इससे यहाँ स्वर्ग, मोक्ष और मध्य श्रान्त गम्यामान होता है अर्थात् प्राप्त किया जाता है। अन्यत्र भूमि में मनुष्यों का निश्चय ही कर्म का विधान नहीं होता है ॥८॥ इस भारतवर्ष के नौ भेद कहे गये हैं जोकि समुद्र के अन्तरित हैं ऐसा समझना चाहिए और वे परस्पर में अगम्य होते हैं ॥९॥ इन्द्रद्वीप-कसेरु-ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और यह जो उनमें सागर से संवृत नवम द्वीप है यह द्वीप दक्षिणोत्तर में एक सहस्र योजन वाला होता है ॥१०॥११॥ यह कुमारी से गङ्गा प्रभव तक लेकर आयत है और देखा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्तर में नौ सहस्त्र विस्तीर्ण होता है ॥१२॥ यह द्वीप नित्य ही अन्तोः में म्लेच्छों से उपविष्ट है। पूर्व में इसके अन्त में किरात लोग हैं और पश्चिम में यवन कहे गये हैं ॥१३॥ मध्य में इसके भाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं, जोकि इज्या, युद्ध, वाणिज्य आदि के द्वारा अपना वर्त्तन करते हुए व्यवथित रहते हैं ॥१४॥

तेषां संव्यवहारोऽयं वर्त्तते तु परस्परम्।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥१५
सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी। १६
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते।
कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडिह कीर्त्यते ॥१७
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः।
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥१८
सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमातृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥१९
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः।
अभिजाताः सर्वगुणा विपुलाश्चित्रसानवः ॥२०
मन्दरः पर्वत श्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा।
कोलाहलः ससुरसः मैनाको वैद्युतस्तथा ॥२१

उनका परस्पर में ऐसा सुन्दर व्यवहार रहता है कि वर्णों का अपने अपने कर्मों में धर्म, अर्थ और काम से युक्त व्यवहार रहता है ।१५॥ सङ्कल्प पञ्चम आश्रमों की विधि के अनुसार यहाँ पर जिन में स्वर्ग तथा अपवर्ग के लिये मानवो प्रवृत्ति रहा करती है ॥१६। जो यह नवमद्वीप है वह तिर्यक् (टेढ़ा) आयत है ऐसा कहा जाता है। इस पूरे को जो जीत कर शासन किया करता है वही यहाँ पर सम्राट कहा जाता है ॥१ ॥ यह लोक तो सम्राट् और अन्तरिक्ष विराट कहा गया है और जो अन्य लोक हैं वह स्वराट्

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहे गये हैं। उसका विस्तार फिर कहा जायगा ॥१८॥ इसमें सात सुपर्वा कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं जिनके नाम महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य और पारियात्र हैं। ये ही सात कुल पर्वत कहे गये हैं ॥१९॥ इन सात कुल पर्वतों के समीप में रहने वाले सहस्रों अन्य पर्वत हैं जोकि अभिजात [सुन्दर-नूतन] समस्त गुणों से युक्त, विपुल और चित्र शिखरों वाले हैं ॥२०॥ मन्दर पर्वतों में बहुत ही श्रेष्ठ पर्वत है। वैहार, दर्दुर, कोलाहल, ससुरस, मैनाक, वैद्युत पर्वत हैं ॥२१॥

पातन्धमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुर पर्वतः।
गन्तुप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च ॥२२
पुष्पगिर्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा।
श्रीपर्वतश्च कारुश्च कूटशैलो गिरिस्तथा ॥२३
अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यशः ॥२४
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥२५
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः।
गोमती धुतपापा च चा बाहुदा च दृषद्वती ॥२६
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा।
इक्षुर्लोहित इत्येता हिमवत्पाद निःसृता ॥२७॥
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च।
वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥२८
परा चर्म्मण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि।
शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥२९

इसके अतिरिक्त पातन्धम नाम वाला गिरि है तथा पाण्डुर पर्वत है, गन्तुप्रस्थ, कृष्णगिरि, गोर्द्धनगिरि, पुष्पगिरि, उज्जयन्त, रैवतक, श्रीपर्वत, कारु, कूटशैल गिरि हैं ॥२२॥ उन से अन्य जो पर्वत हैं वे छोटे और स्वल्प उपयोगी परिज्ञात हुए हैं। जनपद उन से मिले हुए हैं जो नित्य ही आर्य और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

म्लेच्छों से युक्त रहते हैं ॥ २३-२४ ॥ जिसके द्वारा ये नदियाँ पाई जाती हैं उन नदियों के नाम—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धुतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, इक्षु और लोहित ये सब नदियाँ हिमवान् के पाद से निकली हुई हैं ॥ २५-२६-२७ ॥ वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना, सतीरा, महती, परा, चर्मवती, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा, अवन्ती—ये पारियात्राश्रया कही गई हैं ॥२८-२९॥

शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा ।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ॥३०
तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ॥३१
सितेरजा शुक्तिमती मक्रुणा त्रिदिवा क्रमात् ।
ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदकाः ॥३२
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मद्रा च निषधा नदी ।
वेन्वा वैतरणी चैव शितिबाहुः कुमुद्वती ॥३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्यथ वञ्जुला ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा ।
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिः सृताः ॥३५

और शोण महान् नद है तथा नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पली, विपाशा, जम्बुला, बालुवाहिनी, सितेरजा, शुक्तिमती, मक्रुणा, त्रिदिवा, ये सब नदियाँ ऋक्षपाद नामक पर्वत के पाद से प्रसूत होने वाली और मणि के समान सब कुछ जल वाली नदियाँ हैं ॥ ३०-३१-३२ ॥ तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्वा, मद्रा, निषधा नदी, वेन्वा, वैतरणी, शितिवाहु, कुमुद्वत्ती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तशिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्याचल के पाद से प्रसूत होने वाली और शुभ तथा परम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पवित्र जल वाली हैं ।। ३३-३४ ।। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिण पथ की ओर वाली तथा सह्याद्रि पर्वत के पाद से निकली हुई हैं ।। ३५ ।।

कृतमाला ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती ।
मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ।।३६
त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुलाः त्रिदिवा च या ।
लांगुलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ।।३७
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
कूपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।।३८
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ।।३९
तासां नद्युपनद्यऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्त्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ।।४०
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वरैः ।
वत्साः किसष्णाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ।।४१
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ।।४२

कृतमाला, ताम्रवर्णा, पुष्पजाती, उत्पलावती, ये समस्त नदियां मलयाचल से उत्पन्न होने वाली तथा शुभ एवं शीतल जल वाली हैं ।। ३६ ।। त्रिसामा, ऋतुकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लांगुलिनी, वंशधरा, महेन्द्र तनया अर्थात् ये सब महेन्द्राचल से उत्पन्न होने वाली नदियाँ कही गई हैं ।। ३७ ।। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कूपा, पलाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से प्रसूत होने वाली हैं ।। ३८ ।। ये सभी नदियाँ पुण्य अर्थात् परम पवित्र हैं, सरस्वती हैं और सब गङ्गा एवं समुद्र में जाने वाली हैं। ये सब विश्व की माताऐं और जगती तल के समस्त पापों का हरण करने वाली कही गई हैं ।। ३९ ।। इन नदियों से निकलने वाली उपनदियाँ भी सैकड़ों तथा सहस्रों ही हैं। वे ये सब कुरुपाञ्चाल, शाल्व और सजाङ्गला हैं ।। ४० ।। शूरसेना,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भद्रकारा और शतपथेश्वरों के द्वारा बोधा वत्सा, किसष्णा, कुल्या, कुन्तला, काशिकोसला हैं ।। ४१ ।। इसके अनन्तर पार्श्व में ही तिलङ्ग, मगध जो कि वृकों के सहित हैं, मध्यदेश में ये प्राय: जनपद कहे गये हैं ।। ४२ ।।

सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ।। ४३
तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा ।।४४
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः ।
अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरम. ।।४५
वाह्लीका वाढधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ।।४६
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ।
शका ह्रदाः कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिकाः ।।४७
रमटा रद्धकटकाः केकया दशमानिकाः ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।।४८
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराः प्रियलौकिकाः ।
पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ।।४९
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्चः कसेरुकाः ।
लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडैः सह ।.५०
अपगाश्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातयः ।
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा ।।५१
चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ।
एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान् देशान्निबोधत ।।५२

सह्य पर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ कि गोदावरी नदी है पृथ्वी में और समस्त इस भूमण्डल में यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है ।। ४३ ।। वहाँ पर गोवर्द्धन पर्वत है जो कि सुरराज के द्वारा विनिर्मित किया गया है। यह राम की प्रिया के लिये स्वर्ग है तथा यहाँ पर वृक्षादि एवं ओषधियाँ सब भरद्वाज मुनि

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने ही उसके प्रिय करने के लिये अवतरित किये हैं। अन्तःपुर वन का उद्देश उसने परम सुन्दर उत्पन्न किया है ।। ४४-४५ ।। वाह्लीक, वाढधान, आभीर, कालतोयक, अपरीत, पह्लव और चर्म खण्डिक शूद्र जा'त वाले लोग होते हैं। गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शक, ह्रद, कुलिन्द, परित, हारपूरिक, रमट, रद्ध कटिक, केकय, दशमानिक ये क्षत्रियोपनिवेश तथा वैश्य एवं शूद्र कुल हैं ।। ४६-४७-४८ ।। काम्बोज, दरद, बर्बर, प्रियलौकिक, पीन, तुषार, पह्लव और बाह्यतोदर हैं। आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक, लम्पाक, स्तनया तथा जुहुडों के सहित पीड़िक, अपग और अलिमद्र ये सब किरातों की जातियाँ होती हैं। तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, तङ्गण, चूलिक बाहुक तथा पूर्ण दर्वा ये सब देश उत्तर के हैं अर्थात् उत्तर दिशा में होने वाले प्रदेश होते हैं। अब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वालों को श्रवण करो ।। ४९-५०-५१-५२ ।।

अन्ध्रवाकाः सुजरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ।
तथा प्रवङ्गवङ्गेया मालदा मालवर्तिनः ।।५३
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमर्थकाः ।
प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्तामलिप्तकाः ।
माला मगधगोविन्दाः प्राच्यां जनपदाः स्मृताः ।।५४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथ वासिनः ।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चौल्याः कुल्यास्तथैव च ।।५५
सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ।।५६
अभीराः सह चैषीकाः आटव्याश्च वराश्च ये ।
पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ।।५७
पौनिका मौनिकाश्चैव अस्मका भोगवर्द्धनाः ।
नैर्णिकाः कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ।।५८
दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत ।
शूर्पाकाराः कोलवनाः दुर्गाः कालीतकैः सह ।।५९
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ।
तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः ।।६०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्ध्रवाक सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिर, प्रवङ्ग वङ्ग, मालदा, मालवर्त्ती, ब्रह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, गेयमर्थक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, तामलिप्तक, माला, मगध और गोविन्द ये सब जन पद प्राची दिशा में कहे गये हैं ॥ ५३ ५४ ॥ इसके अनन्तर दक्षिणापथ वासी जनपद हैं जिनके नाम पाण्डय, केरल, चौल्य कुल्य, सेतुक, मूषिक, कुमन, वनवासिक है। महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, अभीर, चैषीक, आटव्र, वरा, पुलिन्द्र, विन्ध्य भूलीक और दण्डकों के सहित वैदर्भ, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैर्णिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्‌भिद और नलकालिक ये सब दक्षिणात्य प्रदेश होते हैं। इनके अतिरिक्त जो दूसरे हैं अब उनका श्रवण करो। शूर्पाकार, कोलवन, कालीतक, पुलेय, सूराल, रूपस, तापस, तुरसित ये सब परक्षर हैं ॥ ५५-५६।५७-५८-५९-६० ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः।
भानुकच्छाः समा हेयाः सहसा शाश्वतैरपि ॥६१
कच्छीयाश्च सुराष्ट्रश्च अनर्त्ताश्चार्बुदैः सह।
इत्येते सम्परीताश्च श्रृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ॥६२
मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ॥६३
तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिकास्तथा।
तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट्सुरा निषधैः सह ॥६४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः।
एते जनपदाः सर्वे विन्ध्य पृष्ठनिवासिनः ॥६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
निगर्हरा हंसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ॥६६
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः।
त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥६७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम्।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥६८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नासिक से आद्य लेकर जो नर्मदा के अन्तर में हैं वे शाश्वतों के द्वारा सहसा भानुकच्छ के समान हेय हैं । कच्छीय, सुराष्ट्र, आवर्त्त, अर्बुद ये सब सम्परीत होते हैं । अब विन्ध्य वासियों को श्रवण करो । मालव, करूष, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोसल, कोसल, त्रैपुर तथा वैदिक, तुमुर, तुम्बुर, षटसुर, निषध, अनुप, तुण्डिकेर, वीतिहोत्र, अवन्ती ये समस्त जनपद विन्ध्य के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं ॥ ६१-६२-६३-६४-६५ ॥ इसके आगे जो पर्वताश्रयी देश हैं उन्हें बतलाया जाता है निगर्हर, हंसमार्ग, क्षुपण, तङ्गण, खस, कुशप्रावरण, हूण, दर्व, सहूदक, त्रिगर्त, मालव, किरात, तामस ये पर्वतों पर आश्रय वाले प्रदेश हैं । कवि लोग भारतवर्ष में चार युग कहते हैं उनके नाम कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार होते हैं । उनका निसर्ग बतलायेंगे । ऊपर से जानलो ॥ ६६-६७-६८ ॥

॥ प्रकर्ण ३३-ज्योतिष प्रचार (१) ॥

अधःप्रमाण मूर्द्धञ्च वर्ण्यमानं निबोधत ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम् ।
अनन्तधातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिताः ॥१
जननी सर्वभूतानां सर्वभूतधरा धरा ।
नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२
नाननदनदीशैला नैकजातिसमाकुला ।
अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३
नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रयाः स्थिताः ।
पर्वताकाशसंस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्चयाः ॥४
आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाग्निः सर्वलौकिकः ।
अनन्तः पठ्यते चैव व्यापकः सर्वसम्भवः ॥५
तथाकाशमनालम्बं रम्यं नानाश्रयं स्मृतम् ।
अनन्तं प्रथितं सर्वं वायुश्चाकाशसम्भवः ॥६
आपः पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता ।
आकाशञ्चापरमधः पुनर्भूमिः पुनर्ज्जलम् ॥७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्री सूतजी ने कहा—अब आप लोग अधःप्रमाण और ऊर्द्ध जो कि मेरे द्वारा वर्ण्यमान होगा उसका श्रवण करें। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और पाँचवीं ज्योति ये अनन्त धातुऐं हैं जो व्यापक कही गई हैं ।। १ ।। समस्त प्राणियों के जनन करने वाली जननी तथा सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाली धरा होती है जो कि अनेक प्रकार के जनपदों से आकीर्ण है तथा विविध प्रकार के अधिष्ठान एवं नगरों वाली है ।। २ ।। इस धरा में नाना भाँति के नद, नदी तथा पर्वत हैं और अनेक प्रकार की जातियों से यह समाकुल हो रही है। यह पृथिवी देवी अनन्त एवं बहुत विस्तार वाली गाई जाती है ।। ३ ।। नदी, नद और समुद्र में रहने वाले तथा छोटे-छोटे आश्रमों में स्थित, पर्वत एवं आकाश में रहने वाले तथा इस भूमण्डल के अन्दर में रहने वाले जल भी अनन्त हैं उन्हें भी बिना अन्त वाले जानना चाहिए। इसी भाँति समस्त लोक में रहने वाला यह अग्नि भी व्यापक एवं सर्व सम्भव तथा अनन्त पढ़ा जाता है ।। ४-५ ।। इसी प्रकार से यह आकाश बिना अवलम्ब वाला, सुन्दर एवं अनेकों का आश्रय कहा गया है। यह सब अनन्त प्रथित है। और वायु आकाश से उत्पन्न होने वाला है ।। ६ ।। जल पृथिवी में है और जल के ऊपर यह पृथ्वी स्थित है। आकाश ऊपर है फिर नीचे जल है और फिर भूमि है ।। ७ ।।

एवमन्तमनन्तस्य भौतिजस्य न विद्यते।
पुरा सुरैरभिहितं निश्चितन्तु निबोधत ।।८
भूमिजलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा।
स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले ।।९
दशयोजनसाहस्रमेकभौमं रसातलम्।
साधुभिः परिविख्यातमेकैकं बहुविस्तरम् ।।१०
प्रथममतलञ्चैव सुतलन्तु ततः परम्।
ततः परतरं विद्याद्वितलं बहुविस्तरम् ।।११
ततो गभस्तलं नाम परतश्च महातलम्।
श्रीतलञ्च ततः प्राहुः पातालं सप्तमं स्मृतम् ।।१२
कृष्णभौमञ्च प्रथमं भूमिभागश्च कीर्त्तितम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाण्डुभौमं द्वितीयन्तु तृतीयं रक्तमृत्तिकम् ।।१३
पीतभौमश्चतुर्थन्तु पंचमं शर्करातलम् ।
षष्ठं शिलामयञ्चैव सौवर्णं सप्तमन्तलम् ।।१४

इस प्रकार से इस भौतिक की अनन्तता है और इसका अन्त कभी नहीं होता है। पहिले देवों ने जो कहा है अब आप जो भी निश्चित है उसका श्रवण करो ।। ८ ।। भूमि, जल तथा आकाश यह इनकी परम्परा होती है जो कि जानने के योग्य है। इस सप्तम रसातल में यह स्थिति जानने के योग्य होती है ।। ९ ।। दश सहस्र योजन वाला यह एक भौम रसातल है। साधु पुरुषों के द्वारा यह एक-एक बहुत विस्तार से युक्त परिविख्यात है ।। १० ।। इनमें जो प्रथम है वह अतल नाम वाला है। इसके आगे सुतल होता है। इसके भी आगे बहुत विस्तार वाला वितल होता है ।। ११ ।। इस के आगे गभस्तल नाम वाला है और फिर आगे महातल है । इस के आगे श्रीतल कहा गया है और पाताल सातवाँ कहा गया है ।। १२ ।। प्रथम भाग कृष्ण भौम है जो कि भूमिका भाग कीर्त्तित किया गया है। पाण्डु भूमि वाला पाण्डु भौम दूसरा भाग है। तीसरा रक्त भूमि वाला अर्थात् जिसमें लाल मिट्टी है ऐसा भाग है। पीतभौम चौथा भाग होता है। पांचवाँ भाग शर्करा तल वाला होता है और छठवाँ भाग शिलाओं से पूर्ण है तथा सातवाँ भाग सौवर्ण होता है अर्थात् हेममय है ।। १३-१४ ।।

प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ।
नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ।।१५
पुरञ्च शंकुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ।
निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसकुलम् ।।१६
राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चालयम् ।
लोहिताक्षकलिङ्गानां नगरं श्वापदस्य तु ।।१७
धनञ्जयस्य च पुरं माहेन्द्रस्य महात्मनः ।
कालियस्य च नागस्य नगरं कलसस्य च ।।१८
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ॥१९
द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षसः ।
महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ॥२०
हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ।
शंखाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ॥२१

इनमें जो प्रथम तल है उसमें असुरों के स्वामी का मन्दिर ख्यात है । इन्द्र के शत्रु महानाद वाले नमुचि का यह आलय है ॥ १५ ॥ शंकुकर्ण का नगर है और कबन्ध का मन्दिर है । और निष्कुल से इसका पुर परम प्रहृष्ट मनुष्यों से संकुल अर्थात् घिरा हुआ है ॥ १६ ॥ अत्यन्त भीम अर्थात् भयानक शूलदन्त राक्षस का आलय है । लोहिताक्षक लिङ्गों का और श्वापद का नगर है ॥ १७ ॥ माहेन्द्र महात्मा धनञ्जय का नगर है तथा कालिय नाग का और कलस का वहाँ पर नगर है ॥ १८ ॥ इस प्रकार से वहाँ पर नाग दानव और राक्षसों के सहस्रों नगर हैं । ये सब कृष्णभौम प्रथम तल में ही जानने के योग्य होते हैं और इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १९ ॥ हे विप्रो ! द्वितीय तल में भी दैत्यों के स्वामी राक्षस प्रथम महाजम्भ का नगर है ॥ २० ॥ और फिर वहाँ हयग्रीव, कृष्ण, और निकुम्भ का मन्दिर है । शंख नाम वाले और गोमुख का पुर एवं नगर है ॥ २१ ॥

राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ।
पुरञ्च कुरुपादस्य महोष्णीषस्य चालयम् ॥२२
कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ।
कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ॥२३
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ॥२४
तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः ।
अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ॥२५
तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा ।
शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

च्यवनस्य च विज्ञेयं राक्षसस्य च मन्दिरम् ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च ।।२७
विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च ।
हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ।।२८

इसके अतिरिक्त वहाँ पर नील, मेघ और क्रथन राक्षस का पुर है तथा कुरुपाद और महोष्णीष का आलय है ।। २२ ।। कम्बल नाग का और अश्वतर का पुर है । कद्रू के पुत्र महान् आत्मा वाले तक्षक का नगर है ।। २३ ।। इस प्रकार से वहाँ पर नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर हैं । हे विप्रो ! इस द्वितीय तल में ऐसे अनेक नगर हैं जो कि पाण्डुभौम इस नाम वाला है । इसमें भी तनिक संशय नहीं है ।। २४ ।। तीसरे तल में महात्मा प्रह्लाद का पुर प्रसिद्ध है तथा महात्मा दैत्येन्द्र अनुह्लाद का नगर है ।। २५ ।। वहाँ पर इनके अतिरिक्त तारक नाम वाले का पुर, त्रिशिरा का पुर, और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से समाकुल शिशुमार का पुर है ।। २६ ।। वहाँ पर च्यवन राक्षस का मन्दिर है सो जान लेना चाहिए तथा राक्षसेन्द्र कुम्भिल और खर का पुर भी है ।।२७।। तथा अत्यन्त क्रूर विराध का पुर और उल्कामुख का पुर है । एवं हेमक, नाग तथा पाण्डुरक के भी वहाँ पर पुर हैं ।। २८ ।।

मणिमन्त्रस्य च पुरं कपिलस्य च मन्दिरम् ।
नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ।।२९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
तृतीयेऽस्मिंस्तले विप्राः पीतभौमे न संशयः ।।३०
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः ।
गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च ।।३१
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुमालेर्बहुविस्तरम् ।
मुञ्जस्य लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ।।३२
बहुयोजनसाहस्रं बहुपक्षिसमाकुलम् ।
नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ।।३३
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४
वैदूर्य्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ।
पुरञ्च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥३५

वहाँ तीसरे तल में मणिमन्त्र का पुर तथा कपिल का मन्दिर है। उरगों के स्वामी नन्द का एवं विशाल का मन्दिर है ॥ २९ ॥ हे विप्रो इस तृतीय तल में, जो कि पीतभौम है, नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों ही पुर एवं मन्दिर हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ अब आगे चौथे तल में दैत्यों में सिंह महात्मा कालनेमि के, गजकर्ण के तथा कुञ्जर के पुर एवं मन्दिर हैं ॥ ३१ ॥ तथा राक्षसेन्द्र सुमालि का बहुत विस्तार वाला पुर है। मुञ्ज लोकनाथ वृत्रवक्त्र के आलय हैं ॥ ३२ ॥ इस चतुर्थ रसातल में बहुत से सहस्र योजन के विस्तार वाला और बहुत से पक्षियों समाकुल घिरा हुआ वैनतेय का सुरम्य नगर है ॥ ३३ ॥ पाँचवाँ जो शर्करा भौम तल है उसमें जो कि बहुत योजनों के विस्तार वाला है दैत्यों में सिंह के समान एवं बुद्धिमान् विरोचन का नगर है ॥ ३४ ॥ वैदूर्य, अग्नि जिह्व और हिरण्याक्ष का आलय (घर) है तथा धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व का पुर भी है ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ।
कर्म्मारस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥३६
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥३७
षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् ।
सुपर्णिणः सुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ।
राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥३८
तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान् वासुकिर्नाम नागराट् ॥३९
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ।
षष्टे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥४०
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुरं बलेः प्रमुदितं नरनारीसमाकुलम् ॥४१
असुराशीविषैः पूर्णमुद्धृतैर्देवशत्रुभिः ।
मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र वै नगरं महत् ॥४२

राक्षसेन्द्र एवं शाली महामेघ का पुर है। तथा इसी तल में कमरि, नाग, स्वस्तिक तथा जय के भी पुर हैं ॥३६॥ इस प्रकार से पाँचवें शर्करा निलय में नाग, दानव तथा राक्षसों के सहस्रों ही पुर स्थित हैं सो जानलेने चाहिए ॥३७॥ अब छठा तल जो है इसमें दैत्यों के पति केसरी का उत्तम नगर है। एवं सुपर्वा, सलोमा और महिष के नगर हैं। राक्षसेन्द्र महात्मा उत्क्रोश का नगर है ॥३८॥ वहाँ पर छठे तल में सुरसा का पुत्र और शतशीर्ष बड़ी ही प्रसन्नता से युक्त हैं और वहाँ कश्यप का पुत्र श्रीमान् नागराट् वासुकि नाम वाला है ॥३९॥ इस छठे शिलाभौम विख्यात रसातल में नाग, दानव और राक्षसों के हजारों ही पुर हैं ॥४०॥ अब सातवें तल में जोकि सब से पीछे वाला है पाताल नाम वाले में नर और नारियों से समाकुल बलि का बहुत ही प्रमुदित नगर है ॥४१॥ वहाँ पर असुर और आशीविषों से पूर्ण और उद्धृत देवों के शत्रुओं से युक्त मुचुकुन्द दैत्य का एक बहुत बड़ा नगर है ॥४२॥

अनेकैर्दितिपुत्राणां समुदीर्णैर्महापुरैः ।
तथैव नागनगरैर्ऋद्धिमद्भिः सहस्रशः ॥४३
दैत्यानां दानवानाञ्च समुदीर्णैर्महापुरैः ।
उदीर्णं राक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम् ॥४४
पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने ।
आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामरः ॥४५
धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुजः ।
विशालभोगो द्युतिमांश्चित्रमालाधरो बली ॥४६
रुक्मश्रृङ्गारवदातेन दीप्तास्येन विराजता ।
प्रभुर्मुखसहस्रेण शोभते वै स कुण्डली ॥४७
स जिह्वामालया देवो लोलज्वालानलार्चिषा ।
ज्वालामालापरिक्षिप्तः कैलास इव लक्ष्यते ॥४८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता ।
बालसूर्य्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः ॥४६

वहाँ सप्तम तल में अनेक दिति के पुत्रों के समुदीर्ण महान् पुरों से, तथा नागों के नगरों से जोकि बहुत ही ऋद्धिमान् हैं और संख्या में भी सहस्रों हैं, दैत्य और दानवों के समुदीर्ण महान् पुरों से तथा उदीर्ण राक्षसों के आवास स्थानों से जोकि बहुत से हैं यह सप्तम तल समाकुल हैं ॥४३॥४४॥ हे विप्रेन्द्रो बहुत योजनों के विस्तार वाले इस पतालान्त में महात्मा अजरामर रक्तार विन्दाक्ष है ॥४५॥ वहाँ धीन शङ्खोदरवपु, नीलवासा, महाभुज, विशालभोग, द्युतिमान्, चित्रमालाधर, बली, रुक्मशृङ्ग से अवदात (श्वेस) दीप्तमुख से विराजमान सहस्र मुख से प्रभुकुण्डली शोभा देता है ॥४६॥४७॥ वहाँ पर वह देव लोल (चंचत) ज्वाला के अनल की अर्चि वाली जिह्वाओं की माला से परिक्षिप्त कैलास की भाँति दिखाई देते हैं ॥४८॥ वहाँ पर वह दुगुने सहस्र नेत्रों की शोभा से जोकि बाल सूर्य की अभिताम्रता के सदृश है स्निग्धमण्डल शोभायमान होते हैं ॥४६॥

तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते ।
तरुणादि त्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्द्धनि ॥५०
जटाकरालो द्युतिमान् लक्ष्यते शयनासने ।
विस्तीर्ण इव मेदिन्यां सहस्रशिखरो गिरिः ॥५१
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबलैः ।
उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम् ॥५२
स राजा सर्वनागानां शेषो नाम महाद्युतिः ।
सा वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्यादायां व्यवस्थिता ॥५३
सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्या रसातलाः ।
देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ॥५४
अतः परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभि. ।
देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम् ॥५५
पृथिव्यग्न्यम्बुवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः ।
महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते: नात्र संशयः ॥५६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुन्द और इन्दु के समान वर्ण वाले उसकी अक्षमाला विराजमान है। वह ऐसी प्रतीत होती है जैसे हिमाच्छादित श्वेत पर्वत के शिखर पर तरुण सूर्यों की माला हो ।।५०।। जटाओं से कराल द्युति वाले उस अपने शयनासन पर ऐसे दिखाई देते हैं जैसे भूमि पर सहस्र शिखरों वाला कोई पर्वत फैला हुआ हो ।।५१।। वह महान् नागों का स्वामी महान् भाग वाले और महान् भोग वाले तथा महान् बल वाले महान् नागों के द्वारा महान् तेज से युक्त स्वयं उपास्यमान होते हैं ।।५२।। वह समस्त नागों के राजा है और महान् द्युति वाले शेष नाम वाले हैं। वह अहि की तनु अर्थात् शरीर वैष्णवी अर्थात् विष्णु से सम्बन्ध रखने वाली है जोकि मर्यादा में व्यवस्थित है ।।५३।। ये सातों ही व्यवहार के योग्य रसातल कहे गये है। ये सब सर्वदा देव, असुर, महानाग और राक्षसों के निवास भूमि बने हुए हैं ।।५४।। इससे आगे स्थान देखने तथा गमन करने के अयोग्य है जिसमें कि बड़े सिद्ध और साधुभी नहीं जासकते हैं। यह आगे क्या है इसे देवगण भी नहीं जानते हैं और व्यवहार से सर्वथा रहित ही है ।।५५।। हे द्विजोत्तमो ! ऋषियों के द्वारा पृथिवी, अग्नि. जल, वायु और आकाश का महत्व इसी प्रकार से वर्णन किया जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।५६।।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ।
प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ।।५७
सप्तानाञ्च समुद्राणां द्वीपानान्तु स विस्तरः ।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ।।५८
पर्यासपारिमाण्यन्तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ।
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।।५९
अवति त्रीनिमान् लोकान् यस्मात् सूर्यः परिभ्रमन् ।
अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ।।६०
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः ।
महितत्वा महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ।।६१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तरम् ।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥६२
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ।
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद्‌द्विगुणः शशी ॥६३

इससे आगे सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में बतलाऊँगा । ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जब तक भ्रमण किया करते हैं वे दोनों मण्डलों से समाश्रित होते हुए अपनी प्रभा से प्रकाशित होते हैं ॥५७॥ सात समुद्रों का और द्वीपों का यह विस्तार है पृथिवी का तो इस विस्तार का अर्धभाग है जोकि बाह्य से अन्य में होता है ॥५८॥ चन्द्र और आदित्य पर्याप्त के पारिमाण्य को प्रकाशित किया करते हैं और पर्याप्त के पारिमाण्य से तुल्य ही दिव कहा गया है ॥५९॥ यह सूर्य परिभ्रमण करता हुआ तीनों लोकों की जिस कारण रक्षा किया करता है वह अव धातु प्रकाश नाम वाला है और अवन करने से ही वह रवि कहा गया है ॥६०॥ इससे आगे अब चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहा जाता है । महितत्व के कारण से मही यह शब्द इस वर्ष में निपातित किया जाता है ॥६१॥ इस भारतवर्ष का सुविस्तार विष्कम्भ है अनन्तर भास्कर के मण्डल के योजन समझलो ॥ ॥६२॥ भास्कर का विस्तार नौ योजन सहस्र अर्थात् नौ योजन वाला है । इसके विस्तार से तिगुना इसके मण्डल का ही विष्कम्भ है । भास्कर से दुगुना चन्द्रमा है ॥६३॥

अतः पृथिव्यां वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ।
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥६४
इत्येतदिह सङ्ख्यातं पुराणं परिमाणतः ।
तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभिः ॥६५
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥६६
तस्मात्तु साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् ।
दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः ॥६७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शतार्द्ध कोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नतः स्मृता ।
तस्या वार्धप्रमाणेन मेरोर्वै चातुरन्तरम् ॥६८॥
पृथिव्या वार्ध विस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्तितः ।
मेरुमध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेकादश स्मृताः ॥६९
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या वार्धविस्तरः ॥७०

इसलिये पृथिवी का प्रमाण योजनों के साथ बतलाता हूँ । सातद्वीपी और सप्त समुद्रों वाली का विस्तार और जो मण्डल है यह यहाँ पर परिमाण से पुराण ने संख्या की है । वह आजकल के होने वाले अभिमानियों के द्वारा प्रसंख्या के लिये बतलाता हूँ ॥६४॥६५॥ जो अभिमान करने वाले व्यतीत हो गये वे यहाँ आज के समय में होने वालों के तुल्य ही थे । जो देवता थे वे भी नामों और अपने रूपों से सब व्यतीत हो गये हैं ॥६६॥ इससे साम्प्रत अर्थात् इस समय में होने वाले देवों से वसुधा तल को बतलाता हूँ । साम्प्रतों के द्वारा ही पूर्णरूप से दिव का सन्निवेश होता है ॥६७॥ यह पृथ्वी पूणंतया पचास करोड़ विस्तार वाली कही गई । उसके अर्ध प्रमाण से मेरु का चातुरन्तर होता है ॥६८॥ पृथिवी का आधा विस्तार योजनाग्र से प्रकीर्तिति होता है । मेरु के मध्य से प्रतिदिशा में ग्यारह करोड़ कहे गये हैं ॥६९॥ सौ हजार नवासी और पचास सहस्र पृथिवी का अर्ध विस्तार है ॥७०॥

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोटयस्तु विस्तारः संख्यातः स चतुर्दिशम् ॥७१
तथा शतसहस्राणमेकोनाशीतिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः ॥७२
विस्तारात् त्रिगुणश्चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ।
गणितं योजनाग्रन्तु कोटयस्त्वेकादश स्मृताः ॥७३
तथा शतसहस्रन्तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु ।
इत्येतद्वै प्रसङ्ख्यातं पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ॥७४
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर्यासः सन्निवेशस्न भूमस्तावत्तु मण्डलम् ।।७५
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ।।७६
पर्यासपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ।
उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डललम् ।। ७७

पृथिवी का विस्तार पूर्णतः योजनों के द्वारा समझना चाहिए । चारों दिशाओं में अर्थात् सभी ओर तीन करोड़ विस्तार संख्यात किया गया है ।।७१।। सात द्वीप और सात समुद्र वाली इस पृथिवी का विस्तार सौ हजार उन्यासी कहा जाता है । ७२।। इस विस्तार से तिगुना पृथिवी के अन्त का मण्डल होता है । योजनाग्र से गिना गया है और ग्यारह करोड़ कहे गये हैं ।।७३ । उसी प्रकार से सैंतीस अधिक सौ सहस्र यहपृथिव्यन्त का मण्डल प्रसंख्यात किया गया है ।।७४।। दिव में तारकाओं के सन्निवेश का जितना मण्डल है सन्निवेश का पर्यास और भूमि का मण्डल उतना ही है।।७५।। इसलिये पर्यास के पारिमाण्य से भूमि का दिव के ही तुल्य होता है ऐसा कहा गया है । सातों लोकों का यह मान कहा गया है ।।७६।। पर्यास के परिमाण्य से और मण्डल के अनुगत से लोकों के ऊपर ऊपर छत्र की तरह परिमण्डल होता है ।।७७।।

संस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तवः ।
एतदण्डकटाहष्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ।।७८
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः ।
महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः ।।७९
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः ।
स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक् पृथक् ।।८०
दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्बहिः ।
धार्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परम् ।।८१
अस्याण्डस्य समन्ताच्च सन्निविष्टो घनोदधिः ।
पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्यते ।।८२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घनोदधिपरेणाथ धार्य्यते घनतेजसा ।
बाह्यतो धनतेजस्तु तिर्य्यगूर्द्धन्तु मण्डलम् ॥८३॥
समन्तादघनवातेन धार्य्यतेमाणं प्रतिष्ठितम् ।
घनवातात्त थाकाशमाकाशश्च महात्मना ॥८४

जिनमें जन्तुगण निवास करते हैं उनकी संस्थिति विहित हुई और इस अण्ड कटाह का प्रमाणभी कह दिया गया है ॥७८॥ इस अण्ड के भीतर ये लोक हैं, सात द्वीप है और यह पृथ्वी है । तीनों लोकों में भूर्लोक, भुवः लोक और तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है । महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सातवां सत्य लोक है ॥७९॥ ये सात लोक किये गये और छत्र के आकार वाले व्यवस्थित होते हैं । ये सातों अपने २० आवरणों से जोकि अति सूक्ष्म हैं पृथक्-पृथक् धार्यमाण हैं ॥८०॥ वाहि दशभाग अधिक उन प्रकृतियों से और विशेष समुत्पन्नों से परस्पर में ये धार्यमाण होते हैं । ८१॥ इस अण्ड के चारों ओर घना समुद्र सन्निविष्ट होता है । इस समस्त भूमण्डल को घन जल से धारण किया जाता है ।८२। इस घनोदधि के परे घन तेज से धारण किया जाता है । बाहिर से घन तेज का तिर्यक् और ऊद्र्ध्व मण्डल होता है ।।८३॥ चारों ओर घन वात के द्वारा यह धार्यमाण होता हुआ प्रतिष्ठित होता है घन बात से आकाश और महान् आत्मा वाले से आकाश प्रतिष्ठित होता है ॥८४॥

भूतादिना वृत्तं सर्वं भूतादिर्महता वृतः ।
वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ॥८५
पुराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते ॥८६
मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ॥८७
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानस्यवै मूर्द्धनि ।
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ॥८८
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमतः ॥८९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।
तुल्या माहेन्द्रपुर्य्या तु सोमस्यापि विभावरी ॥९०
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्द्दिशम् ।
स्थिता धर्म्मव्यवस्थायै लोकसंरक्षणाय च ॥९१

यह सब भूतादि के द्वारा वृत है और यह सब भूत आदि महान् अर्थात् महत् से वृत होता है और वह महान् अव्ययात्मा एवं अनन्त प्रधान के द्वारा आवृत होता है ॥८५॥ अब लोकपालों के पुरों को क्रम के अनुसार बताया जायगा और ज्योतिर्गण के प्रचार का प्रमाण भी बताया जायगा ॥८६॥ प्राची अर्थात् पूर्व दिशा में मानस के मूर्धापर मेरु है जिसके ओकसार वाली हेम परिष्कृत माहेन्द्री है ॥८७॥ मानस के मस्तक पर ही मेरु के दक्षिण में संयमनपुर में वैवस्वत यम निवास किया करता है ॥८८॥ और मानस के मूर्धापर मेरु के पश्चिम दिशा में धीमान वरुण देव की परमरम्य सुखा नाम वाली नगरी है ॥८९॥ मानस के ही मूर्धापर उत्तर दिशा में मेरु के माहेन्द्र पुरी के तुल्य ही सोम की विभावरी पुरी है ॥९०॥ मानस के उत्तर पृष्ठ पर चारों दिशाओं में लोकपाल धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोकों के संरक्षण करने के वास्ते स्थित रहा करते हैं ॥९१॥

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥९२
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥९३
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ।
वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥९४
सुखायामर्द्धरात्रञ्च मध्यगः स्याद्रविर्यदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥९५
विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेन्द्यामस्तमेति च ।
तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णो विधीयते ॥९६
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्वाह्णः परिकीर्त्यते ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तेषामपररात्रञ्च ये जना उत्तरापथे ॥९७
देशा उत्तरपूर्व्वा ये पूर्व्वरात्रन्तु तान् प्रति ।
एवमेवोत्तारेष्वर्को भवनेषु विराजते ॥९८

लोकपालों के ऊपर के भाग में सब ओर से दक्षिण अयन में काष्ठागत सूर्य की जो गति होती है उसे आप लोग समझ लेवें ॥९२॥ दक्षिण प्रक्रम में सूर्य फेंके हुए तीर की भाँति दौड़ लगाता है और निरन्तर ज्योतिर्गण के चक्र को लेकर चारों ओर जाया करता है ॥९३॥ जिस समय भगवान् भुवन भास्कर अमरावती में मध्यगामी होते हैं तब वहाँ पर वैवस्वत संयमन में उदय कहा जाता है ॥९४॥ जब रविदेव मध्यगामी होते हैं तब सुखापुरी में अर्धरात्रि होती है। सुखा में और इसके अनन्तर वारुणी में उत्तिष्ठ मान होते हुए वह दिखलाई दिया करते हैं ॥९५॥ विभा में आधीरात होती है और माहेन्द्री वह अस्ताचलगामी होते हैं। तब दक्षिण पूर्व वालों का अपराह्ण किया जाता है ॥९६॥ दक्षिणा परदेश वालों का पूर्वाह्ण परिकीर्त्तित होता है। उनके अपर में रात्रि होती है जो जन उत्तरापथ में निवास किया करते हैं ॥९७॥ जो देश उत्तर पूर्व होते हैं उनके प्रति पूर्वरात्रि होती है। इसी प्रकार से ही उत्तर भुवनों में सूर्यदेव विराजमान हुआ करते हैं ॥९८॥

सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने चार्य्यमा यदा ।
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ॥९९
रात्र्यर्द्धं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च ।
सोमपुर्यां विभायान्तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः ॥१००
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रविः ।
अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥१०१
स शीघ्रमेति पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ।
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रविः ॥१०२
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति ।
उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ॥१०३
पूर्वाह्णे चापराह्णे तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तपत्येकन्तु मध्याह्ने तैरेव तु सरश्मिभिः ॥१०४
उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन् रविः ।
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५

सुखा में तथा वारुणी में मध्याह्न में जब अर्यमान होते हैं तब विभावरी में और सोमपुरी में विभावसु उत्थित होते हैं अर्थात् उगते हैं ॥ ९९ ॥ उस समय अमरावती में रात्रि का आधा भाग होता है और यम के यहाँ अस्ताचल-गामी हुआ करते हैं । सोमपुरी और विभा में मध्याह्न में दिवाकर हुआ करते हैं ॥ १०० ॥ जिस समय महेन्द्र की अमरावती में सूर्य उदित हुआ करते हैं तब संयमन में आधी रात होती है और वारुणी में अस्त होते हैं ॥ १०१ ॥ वह भास्कर अलात के चक्र की भाँति शीघ्र ही आया करते हैं जाते हैं । आकाश में नक्षत्रों के भ्रममाण होते हुए सूर्य भ्रमण किया करते हैं ॥ १०२ ॥ इस प्रकार से चारों द्वीपों में दक्षिणान्त से प्रसर्पण किया करते हैं । उदय और अस्त मन के द्वारा यह बार-बार उत्थित हुआ करते हैं ॥ १०३ ॥ पूर्वाह्न में और अप-राह्न में वह दो-दो देवालय वाले होते हैं । एक को तो मध्याह्न में तपते हैं और वह उन्हीं रश्मियों के द्वारा वर्धमान होने वालियों से उदित होते हुए मध्याह्न तक सूर्य तपन किया करते हैं इसके पश्चात् ह्रास को प्राप्त होती हुई किरणों से वह अस्ताचल को चले जाया करते हैं ॥ १०४-१०५ ॥

उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृते पूर्वापरे दिशौ ।
यावत्पुरस्तात्तपति तावद् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ॥१०६
यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः ।
यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते ॥१०७
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ।
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥१०८
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ।
उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोगिरापश्च कृष्णच्छाया च मेदिनी ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ।
रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ।।११०
लेखयावस्थितः सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ।
ऊर्द्ध्वं गतः सहस्रन्तु योजनानां स दृश्यते ।।१११
प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ।।११२

इस प्रकार से उदय और अस्तमयों के द्वारा पूर्वापर दिशाऐं कही गई हैं । जब तक आगे वह तपते हैं तब तक पृष्ठ में पार्श्व का होना होता है ।। १०६ ।। जहाँ पर उगते हुए सूर्यदेव दिखलाई देते हैं उनका वह उदय कहा गया है । जहां पर वह प्रकाश को प्राप्त होते हैं उनका वह अस्त कहा जाया करता है ।। १०७ ।। सब वर्षों के उत्तर में मेरु होता है और लोकालोक पर्वत सब के दक्षिण में होता है । सूर्य के विशेष दूर हो जाने से तथा भूमि की लेखा से आवृत होने से उसकी किरणें ह्रियमान हो जाया करती हैं । इसी कारण से वह रात्रि में दिखलाई नहीं दिया करते हैं ।। १०८ ।। ग्रह नक्षत्र और ताराओं का तथा भास्कर का दर्शन उच्छ्राय के प्रमाण से जानना चाहिए । जो अनोदय होता है वही अस्त कहा जाता है ।। १०९ ।। अग्नि और जल शुक्ल छाया वाले हैं और मेदिनी कृष्ण छाया वाली होती है । विशेष दूरी के भाव के होने के कारण से ही उद्यत सूर्य की विरश्मिता होती है अर्थात् किरणों के दर्शन का अभाव रहा करता है । जब उसकी विरश्मिता होती है तो उसमें रक्तता का अभाव रहा करता है और लालिमा के भाव का अभाव होने से उष्णता का भी अभाव रहता है ।। ११० ।। लेखा से अवस्थित सूर्य जहाँ-जहाँ पर भी दिखलाई देता है तो वह सहस्रों योजन ऊपर गया हुआ दिखलाई दिया करता है ।।१११।। भगवान् भुवन भास्कर के अस्त में गमन करने पर सौरी प्रभा पाद से अग्नि में आविष्ट हो जाया करती है इस लिये रात्रि में दूर से प्रकाशित होती है ।।११२।।

उदितस्तु पुनः सूर्यः अस्तमाग्नेयमाविशत् ।
संयुक्तो वह्निना सूर्यस्ततः स तपते दिवा ।।११३
प्राकाश्यञ्च तथौष्ण्यञ्च सूर्याग्नेयी च तेजसी ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥११४
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिंश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥११५
अस्तं याति पुनः सूर्ये दिनं वै प्रविशत्यपः ।
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ॥११६
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः ॥११७
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते ।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यावेक्ष्यमहः स्मृतम् ॥११८
एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः ।
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्त्तेनैव गच्छति ॥११९

पुनः जब वह उदित होता है तो सूर्य आग्नेय अस्त में आविष्ट हो जाता है और वह्नि से संयुक्त होता हुआ वह सूर्य फिर दिन में तपा करता है ॥११३॥ प्रकाश का होना तथा उष्णता का होना ये दोनों ही सूर्य तथा अग्नि के तेज होते हैं। ये दोनों परस्पर में अनुप्रवेश करके ही दिन और रात्रि में आप्यायित्त हुआ करते हैं ॥ ११४ ॥ भूमि के उत्तर अर्द्धभाग में तथा दक्षिण में सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि जल में आविष्ट हो जाती है। इसी लिये जल दिवारात्रि के प्रवेशन से ताम्र हो जाते हैं ॥ ११५ ॥ फिर सूर्य के अस्तंगत हो जाने पर दिन जल में प्रविष्ट हो जाया करता है। इसी लिये जल शुक्ल हो जाते हैं। रात्रि दिन के प्रवेशन होने के कारण से ही ऐसा हुआ करता है ॥ ११६ ॥ इस क्रम के योग से भूमि के अर्द्ध दक्षिणोत्तर में सूर्य के उदयास्तमान वेला में अहोरात्र जल में प्रवेश किया करते हैं ॥ ११७ ॥ जो सूर्य के प्रकाश के नाम वाला होता है वही दिन कहा जाया करता है और जो तामसी अर्थात् प्रकाश के अभाव में अन्धकार से पूर्ण होती है वह रात्रि के नाम वाली कही जाया करती है। इससे रात्रि की व्यवस्था होती है और जो सूर्यावेक्ष्य है अर्थात् जिस समय में सूर्य देखने के योग्य होता है वह दिन कहा गया है ॥ ११८ ॥ इस प्रकार से जब

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सूर्य पुष्कर के मध्य से सर्पण किया करता है तो पृथ्वी का त्रिशांशक मुहूर्त्त भर में ही चला जाता है ॥ ११९ ॥

योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य इमां संख्यां निबोधत ।
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ॥१२०
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।
मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ॥१२१
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ।
पर्य्यागच्छेत्तादादित्यो माघे काष्ठान्तमेव हि ॥१२२
सर्पते दक्षिणायान्तु काष्ठायां तन्निबोधत ।
नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ॥१२३
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥१२४
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२५
मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मृता ॥१२६

योजनाग्र से मुहूर्त्त की इस संख्या को समझ लो। वह पूर्ण सौ सहस्रों की इकत्तीस कही गई है ॥ १२० ॥ तथा अन्य पचास सहस्र अधिक सूर्य की यह मुहूर्त्त वाली गति का विधान किया जाता है ॥ १२१ ॥ इसी गति के योग से जब दक्षिण दिशा को सूर्य पर्यागमन किया करता है तब सूर्य माघ में दिशा के अन्त को ही प्राप्त होता है ॥ १२२ ॥ दक्षिण दिशा में जब गमन किया करता है इसे भी समझ लो। नौ करोड़ योजनों से परिमण्डल प्रसंख्यात होता है ॥ १२३ ॥ तथा सौ सहस्र चालीस और पाँच अहोरात्र से सूर्य की यह गति होती है ऐसा विधान किया जाता है ॥ १२४ ॥ दक्षिण से जिस समय यह सूर्य विनिवृत्त होता हुआ विषुवस्थ हो जाता है और क्षीरोद समुद्र के उत्तरान्त दिशाओं में भ्रमण करता हुआ आता है ॥ १२५ ॥ विषुवच्चा का जो मण्डल होता है योजनों के द्वारा उसे भी जान लो। विषुवच्चा भी तीन करोड़ विस्तीर्ण कही गई है ॥ १२६ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः ।
श्रवणे चोत्तरां काष्ठाश्चित्रभानुर्यदा भवेत् ।
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥१२७
उत्तरायाञ्च काष्ठायां प्रमाणं मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥१२८
अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च ।
अष्टपञ्चाशतञ्चैव योजनान्यधिकानि तु ॥१२९
नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा ।
मूलं चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रयः ।
अभिजित्पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रयः ॥१३०
काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः ।
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥१३१
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्चयोजनैः ।
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥१३२
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ।
ते तु वक्ष्यामि संख्याय योजनैस्तन्निबोधत ॥१३३

इसी प्रकार से सौ सहस्र और एकाधिक अस्सी श्रवण में उत्तर दिशा में जब सूर्य होता है तो वह शाकद्वीप षष्ठ की उत्तरान्त दिशाओं का विचरण करता हुआ ही होता है ॥ १२७ ॥ उत्तर दिशा में मण्डल का प्रमाण जो होता है वह द्विजों के द्वारा योजनाग्र से एक करोड़ प्रसंख्यात किया गया है ॥ १२८ ॥ यहाँ पर योजनों के अस्सी नियुत और अट्ठावन अधिक योजन होते हैं ॥१२९॥ नागवीथी, उत्तरावीथी और अजवीथी ये दक्षिण मूल और आषाढ़ में अजवीथी ये तीन उदय होते हैं। अभिजित नक्षत्र से पूर्व स्वाति में नागवीथी तीन उदय होते हैं ॥ १३० ॥ दिशाओं में जो अन्तर होता है उनको पुनः योजनों के द्वारा बतलाया जायगा। यह सौ हजार एक सौ इकत्तीस और अन्य तेतीस अधिक अर्थात् तेतीस योजनों के द्वारा योजनाग्र से दिशाओं का अन्तर प्रतिष्ठित होता है ॥ १३१-१३२ ॥ दिशाओं में और लेखाओं में जो दक्षिणोत्तर अन्तर हुआ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करते हैं उनकी संख्या करके योजनों के द्वारा बतलाया जायगा उन्हें भी आप लोग समझ लेवें ॥ १३३ ॥

एकैकमन्तरन्तस्या नियुतान्येकसप्तति: ।
सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्तति: ॥१३४
लेखयो: काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयो: स्मृतम् ।
अभ्यन्तरन्तु पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ॥१३५
बाह्यतो दक्षिणे चैव सततन्तु यथाक्रमम् ।
मण्डलानां शतं पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥१३६
चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसु: ।
प्रमाणं मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥१३७
एकविंशद्योजनानां सहस्राणि समासत: ।
शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनानां प्रकीर्त्तिते ॥१३८
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते ।
एतत्प्रमाणमाख्यातं योजनैर्मण्डलं हि तत् ॥१३९
विष्कम्भो मण्डलस्यैष तिर्यक् स तु विधीयते ।
प्रत्यहञ्चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०

उसका एक-एक का अन्तर एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर नियुत है । सहस्र अतिरिक्त हैं इसके बाद भी अन्य पिचहत्तर हैं ॥ १३४ ॥ लेखाओं तथा बाह्याभ्यन्तर दिशाओं में यह अन्तर कहा गया है । और अभ्यन्तर तो उत्तरायण में मण्डलों का परिगमन करता है ॥ १३५ ॥ वायु से दक्षिण में निरन्तर क्रम के अनुसार एकसौ अस्सी मण्डलों के उत्तर में तथा उसी प्रकार से दक्षिण में भी विभावसु विचरण किया करता हैं । मण्डल का प्रमाण भी योजनाग्र से समझ लो ॥ १३६-१३७ ॥ संक्षेप से इक्कीस सहस्र तथा फिर अन्य दोसौ योजन कहे गये हैं । १३८ ॥ इक्कीस अधिक योजनों के द्वारा मण्डल का प्रमाण कहा गया है ॥ ११९ ॥ मण्डल का जो विष्कम्भ होता है वह तिर्यक् (तिरछा) विधान किया जाता है । सूर्य प्रतिदिन मण्डल क्रम पूर्वक उनका विचरण किया करता है ॥ १४० ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्त्तते ।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥१४१
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिञ्च कालेनाल्पेन गच्छति ।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणोत्तरे ॥१४२
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्नानुचरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४३
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥१४४
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणां चरते रविः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां निगच्छति ॥१४५
अष्टादशमुहूर्त्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥१४६
त्रयोदशार्द्धमर्धेन ऋक्षाणाञ्चरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥१४७
ततो मन्दतरं ताभ्याञ्चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै यथा ॥१४८
त्रिंशन्मुहूर्त्तानि वाहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि सः ॥१४९

कुलाल (कुम्हार) का चक्र पर्यन्त जिस तरह शीघ्र ही लौट आता है उसी प्रकार से दक्षिण प्रक्रम में सूर्य भी शीघ्र निवृत हो जाता है ॥१४१॥ इससे इस प्रकृष्ट भूमि को अल्पकाल में ही जाता है । सूर्य बारह मुहूर्त्तों में ही दक्षिणोत्तर में शीघ्र चला जाया करता है ॥१४०॥ दिन मे सूर्य नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध का अनुसरण किया करता है और अठारह मुहुर्त्तों में रात्रि में नक्षत्रों का चरण किया करता है ॥१४३॥ जिस प्रकार से कुम्हार के चक्र का मध्य भाग मन्द गति से प्रसर्पण किया करता है वैसे ही उदगयन में सूर्य देव भी मन्द विक्रम वाले हुए चला करते हैं ॥१४४॥ नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध के अर्ध से सूर्य चरण किया करता है । इसी कारण से अल्प भूमि को भी वहुत अधिक काल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में जाया करता है ।।१४५।। अठारह मुहूर्त्तों में उत्तरायण पश्चिम में दिन हुआ करता है उसमें भी वह बहुत धीमी गति वाला होता हुआ विचरण किया करता है ।। १४६ ।। सूर्य नक्षत्रों के त्रयोदशार्ध को अर्ध से चरण किया करता है। रात्रि में अठारह मुहूर्त्तों में नक्षत्रों का चरण किया करता है ।। १४७ ।। इसके अनन्तर उन दोनों से जिस प्रकार कुछ और मन्द चक्र भ्रमण किया करता है और मृत्पिण्ड की भाँति मध्य में स्थित ध्रुव जैसे भ्रमण करता है ।। १४८ ।। तीस मुहूर्त्तों को ही अहोरात्र कहते हैं। ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य में वह मण्डलों का भ्रमण किया करता है ।। १४९ ।।

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते ।
ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते ।।१५०
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तञ्च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ।।१५१
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता ।
तथैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ।।१५२
दक्षिणे प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्रं विधीयते ।
गतिः सूर्यस्य नक्तं वै मन्दा चापि तथा स्मृता ।।१५३
एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु ।
तथा विचरते मार्गं समेन विषमेण च । १५४
लोकालोके स्थिता ये ते लोकपालाश्चतुर्दिशम् ।
अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु ।
भजन्नसावहोरात्रमेवङ्गतिविशेषणैः ।।१५५
दक्षिणे नागवीथ्यायां लोकालोकस्य चोत्तरम् ।
लोकसन्तारको ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ।।१५६
पृष्ठे यावन् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते ।
पार्श्वयोः पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्वतः ।।१५७

जिस प्रकार कुलाल के चक्र की नाभि वहाँ पर ही रहा करती है ध्रुव को भी उसी प्रकार का जान लेना चाहिए। वह वहाँ पर ही परिवर्त्तन किया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करता है ।। १५० ।। दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करने वाले रात और दिन सूर्य की गति भी मन्द और शीघ्रता वाली हो जाती है ।।१५१।। उत्तर प्रक्रम में चन्द्रमा की गति दिन में मन्द कही गई है । उसी भाँति रात में सूर्य की गति शीघ्रता वाली हुआ करती है ।। १५२ ।। दक्षिण प्रक्रम में दिन में शीघ्र होने का विधान होता है । रात्रि में सूर्य की गति मन्द उसी भाँति कही गई है ।। १५३ ।। इस प्रकार से गति विशेष के द्वारा रात और दिन का विभाग करते हुए सम और विषम के द्वारा उसी प्रकार मार्ग का विचरण क्रिया करता है ।। १५४ ।। लोकालोक में जो स्थित हैं वे चारों दिशाओं में लोकपाल हैं । उनके ऊपर अगस्त्य वेग से चरण करते हैं जो कि इस प्रकार से गति विशेषणों से रात दिन सेवन करने वाले हैं ।। १५५ ।। दक्षिण में नागवीथी में लोकालोक पर्वत के उत्तर में वैश्वानर पथ से बाहिर यह लोक सन्तारक है ।। १५६ ।। पृष्ठ में सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा जब तक आगे भली-भाँति प्रकाशित होती है लोकालोक के पीछे और पार्श्वों में सब ओर तब तक प्रकाश दिया करती है ।। १५७ ।।

योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध्वन्तूच्छ्रितो गिरिः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्वतः परिमण्डलः ।।१५८
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ।।१५९
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्त्वतः परम् ।
लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ।।१६०
लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्यः परिग्रहम् ।
तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यदन्तरम् ।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ।।१६१
सूर्यं हि ग्रसमानानां सन्ध्याकाले हि रक्षसाम् ।
प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम् ।
अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरणं तथा ।।१६२
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रार्थयन्ति सहस्रांशुमुदयन्ति दिने दिने ।
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।।१६३
अथ सूर्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः ।
सन्ध्येति समुपासन्तः क्षेपयन्ति महाजलम् ।।१६४
ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ।।१६५

यह गिरि दश सहस्र योजन उच्छ्रित ऊपर को है और सब ओर से परिमण्डल प्रकाशयुक्त तथा अप्रकाश वाला है ।। १५८ ।। लोकालोक गिरि के भीतर नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य तथा ताराओं के गणों के साथ समस्त ग्रह प्रकाश दिया करते हैं ।। १५९ ।। इतनाही लोक है और इसके आगे तो निरालोक ही है । लोकालोक तो एक प्रकार का ही होता है और निरालोक अनेक प्रकार वाला होता है ।। १६० ।। जिस कारण से सूर्य लोकालोक के परिग्रह का सन्धान करता है इसी लिये उषा और व्युष्टि का जो अन्तर होता है उसको सन्ध्या कहा करते हैं । विप्रों के द्वारा उषा को रात्रि और व्युष्टि को दिन कहा गया है ।। १६१ ।। सन्ध्या के समय में सूर्य का ग्रास करने वाले उन दुरात्मा राक्षसों को प्रजापति के नियोग से शाप है देह का अक्षयत्व तथा वे मरण को प्राप्त कराये गये थे ।। १६२ ।। मन्देहा नाम वाले विख्यात राक्षस तीन करोड़ हैं जो दिन-दिन में उगने वाले सूर्य की प्रार्थना करते हैं । ये दुरात्मा ताप देते हुए सूर्य को खाना चाहते हैं ।। १६३ ।। इसके अनन्तर उनका और सूर्य का महा-दारुण युद्ध हुआ था । तब ब्रह्माजी, देवगण, और सत्तम ब्राह्मण सन्ध्या इसकी उपासना करते हुए महाजल का क्षेप किया करते हैं ।। १६४ ।। ओङ्कार ब्रह्म से संयुक्त और गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित वह जल है । उस वज्रभूत जल से वे दैत्य दग्ध होते हैं ।। १६५ ।।

ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्द्ध्वमुत्तिष्ठते शतम् ।।१६६
ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थैः समरीचिभिः ।।१६७
काष्ठानिमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ।।१६८
ह्रासवृद्धी त्वह र्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् ।
सन्ध्या मुहूर्तमानन्तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ।।१६९
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तागते तु वै ।
प्रातस्तनः स्मृतः कालो भागस्त्वह्नः स पंचमः ।।१७०
तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमूहूर्त्तस्तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तस्तु तस्मात्कालाच्च सङ्गवात् ।।१७१
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ।
त्रय एव मुहूर्त्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ।।१७२

इसके अनन्तर महान् तेज से युक्त और महान् द्युति तथा पराक्रम वाले सहस्र शत योजन ऊर्ध्व में उत्थित होते हैं ।। १६६ ।। इसके पश्चात् वालखिल्य मुनि, कृतार्थ मरीचि और ब्राह्मणों के द्वारा परिवारित भगवान् प्रयाण करते हैं ।। १६७ ।। दश और पाँच निमेषों की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं से कलान्त होता है और तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है तथा तीस मुहूर्त्तों की रात्रि तथा दिन सम होते हैं ।। १६८ ।। दिन के भागों से यथाक्रम दिनों की ह्रास और वृद्धि होती है । मुहूर्त के मान तक सन्ध्या ह्रास और वृद्धि में सम कही गई है ।। १६९ ।। इसके अनन्तर तीन मुहूर्त्त आदित्य के आगत होने पर लेखा प्रभृति होती हैं । जो प्रातस्तन होता है वह काल कहलाता है वह दिवस का पांचवाँ भाग होता है ।। १७० ।। उस प्रातस्तन काल से तीन मुहूर्त्त वाला सङ्गव होता है । उस सङ्गव काल से तीन मुहूर्त्त वाला मध्याह्न होता है ।। १७१ ।। उस मध्यन्दिन काल से अपराह्न यह कहा गया है । उस मध्यम काल से तीन ही मुहूर्त्त होते हैं ।। १७२ ।।

अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न उच्यते ।
दशपञ्चमुहूर्त्ताह्वै मुहूर्त्तास्त्रय एव च ।।१७३
दशपंचमुहूर्त्तं वै अहर्विषुवति स्मृतम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दशपंचमुहूर्त्ताद्वै रात्रिन्दिवमिति स्मृतम् ॥१७४
वर्द्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते त्वहः ॥१७५
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवन्तद्विभाव्यते ।
अहोरात्रं कलाश्चैव सप्त सोमः समश्नुते ॥१७६
तथा पंचदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते ।
द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतुः ।
ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेऽयने वर्षमुच्यते ॥१७७
निमेषादिकृतः कालः काष्ठाया दश पंच च ।
कलायास्त्रिंशतः काष्ठा मात्राशोतिद्वयात्मिका ॥१७८
शतघ्नैकोनकास्त्रिशन्मात्रात्रिशत् षडुत्तरा ।
द्विषष्टिभाक् त्रयोविंशन्मात्रायाञ्च चला भवेत् ॥१७९
चत्वारिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युतिः ।
सप्ततिञ्चापि तत्रैव नवतिं विद्धि निश्चये ॥१८०

अपराह्न के व्यतीपात हो जाने पर जो काल होता है वह सायाह्न कहा जाता है। दश पाँच मुहूर्त से तीन ही मुहूर्त होते हैं ॥ १७३ ॥ दश पञ्च मुहूर्त्त वाला विषुवान् में अह कहा गया है। दश पाँच मुहूर्त्त से रात्रिन्दिनं यह कहा गया है ॥ १७४ ॥ दक्षिण और उत्तर अयन में रात्रि दिन बढ़ता है और ह्रास को प्राप्त होता है। अह रात्रि का ग्रास करता है और रात्रि अह का ग्रास किया करती है। इसी तरह से इन दोनों का ह्रास तथा वर्धन हुआ करता है ॥ १७५ ॥ शरद और बसन्त के मध्य में वह विषुवत् विभावित होता है। अहोरात्र और कला सात इनको सोम समशन किया करता है ॥ १७६ ॥ उसी प्रकार से पन्द्रह दिन का पक्ष कहा जाता है। दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों के अन्तर में एक ऋतु होता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और दो अयनों का एक वर्ष कहा जाया करता है ॥ १७७ ॥ दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह कला का निमेषादि कृत काल होता है। तीस कला का काष्ठा और अशीति (अस्सी) द्वयकी मात्रा होती है ॥ १७८ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शतघ्नैकोनका त्रिशत षट् उत्तर वाली मात्रा बासठ के भजन वाली तेईस मात्रा में चल होती है ।। १७६ ।। चालीस सहस्र सौ और आठ विद्युति सत्तर और वहाँ ही नब्बे निश्चय में जानो ।। १८० ।।

चत्वार्येव शतान्याहुर्विद्युतौ वैधसंयुगे ।
चरांशो ह्येष विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ।।१८१
संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः ।
निश्चयः सर्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ।।१८२
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितोयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ।
पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसंज्ञितः ।।१८३
विंशशतं भवेत्पूर्णं पर्वणां तु रवेर्युगम् ।
एतान्यष्टादशस्त्रिंशदुदयो भास्करस्य च ।।१८४
ऋतवस्त्रिंशतः सौरा अयनानि दशैव तु ।
पञ्चत्रिंशत् शतं चापि षष्टिर्मासाश्च भास्करः ।।१८५
त्रिंशदेव त्वहोरात्रं स तु मासश्च भास्करः ।
एकषष्टिस्त्वहोरात्रा दनुरेको विभाव्यते ।।१८६
अह्नान्तु त्र्यधिकाशीतिः शतं चाप्यधिकं भवेत् ।
मान तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेयं भुवनस्य तु ।।१८७

वैधसंयुग विद्युति में चारसौ ही कहते हैं । यहाँ चरांश जानना चाहिए । यहाँ पर नालका कारण है ।। १८१ ।। सम्वत्सर आदि पाँच चार मान से विकल्पित होते हैं । समस्त काल का निश्चय युग ऐसा कहा जाता है ।। १८२ ।। प्रथम सम्वत्सर होता है, दूसरा परिवत्सर होता है, तीसरा इद्वत्सर और चौथा अनुवत्सर तथा पांचवाँ वत्सर होता है । इस प्रकार से उनका काल परिसंज्ञित होता है ।। १८३ ।। बीस सौ पर्वों का पूर्ण रवि का युग होता है । ये अठारह तीस भास्कर का उदय है ।। १८४ ।। सौर ऋतुऐं तीस और दश ही अयन होते हैं । पैंतीस और सौ तथा साठ मास भास्कर है ।। १८५ ।। तीस ही अहोरात्र का वह भास्कर मास होता है । इकसठ अहोरात्र

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक दनु विभावित होता है ।। १८६ ।। दिनों के तिरासी और सौ अधिक होते हैं । वह चित्रभानु भुवन का मान समझना चाहिए ।। १८७ ।।

सौरसौम्यं तु विज्ञेयं नक्षत्रं सावनं तथा ।
नामान्येतानि चत्वारि यैः पुराणं विभाव्यते ।।१८८
खे तस्योत्तारतश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्वतः ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ।।१८९
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सर्वतश्चैव विश्रुतः ।
एकमार्गश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्तितः ।।१९०
तस्य वै सर्वतः शृङ्गं मध्यमन्तद्धिरण्मयम् ।
दक्षिणं राजतश्चैव शृङ्गं तु स्फटिकप्रभम् ।।१९१
सर्वरत्नमयं चैकं शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् ।
एवं कूटैस्त्रिभिः शैलैः शृङ्गवानिति विश्रुतः ।।१९२
यत्ताद्विषुवतं शृङ्गन्तदर्कः प्रतिपद्यते ।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमां गतिमास्थितः ।
अहस्तुल्यामथो रात्रिं करोति तिमिरापहः ।।१९३
हरिताश्च हया दिव्यास्ते नियुक्ता महारथे ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्तैर्गभस्तिभिः ।।१९४
मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयतः स्मृताः ।
मुहूर्त्ता दश पञ्चैव अहोरात्रिश्च तावती ।।१९५

सौर, सौम्य, नक्षत्र और सावन इन्हें समझ लेना चाहिए । ये चार नाम हैं जिनसे पुराण विभावित होता है ।। १८८ ।। आकाश में उसके उत्तर में शृङ्गवान् नाम का एक पर्वत है उसके तीन शिखर हैं जो कि इतने ऊँचे हैं कि मानों वे आकाश तल का स्पर्श करते हैं ।। १८९ ।। उन्हीं से शृङ्गवान् यह नाम सब ओर विश्रुत होता है । एक मार्ग और विस्तार और विष्कम्भ भी कहा गया है ।। १९० ।। उसके शिखर सब ओर है उनमें जो मध्यम शृङ्ग है वह हिरण्मय होता है । दक्षिण शिखर राजत (चांदी का) है जो कि स्फटिक की प्रभा वाला है ।। १९१ ।। उत्तर की ओर जो शिखर है वह समस्त रत्नों से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिपूर्ण एक उत्तम शिखर है। इस प्रकार से तीन कूटों के शैलों से यह शृङ्गवान् इस नाम से प्रख्यात है ॥ १९२ ॥ जो विषुवत शृङ्ग है उसको अर्क प्रतिपन्न होता है। शरत् और बसन्त के मध्य में मध्यम गति में आस्थित होता है। तिमिर अर्थात् अन्धकार अपहरण करने वाला सूर्य दिन के तुल्य रात्रि को कर देता है ॥ १९३ ॥ दिव्य हरित अश्व महारथ में नियुक्त होते हैं। पद्म के समान रक्त किरणों से अनुलिप्त की भाँति शोभित होते हैं ॥ १९४ ॥ मेष के अन्त में और तुला के अन्त में भास्करोद्यत कहे गये हैं। पन्द्रह मुहूर्त्त की उतनी ही अहोरात्रि होती है ॥ १९५ ॥

कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमांशगतो भवेत्।
विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांश निशाकरः ॥१९६
विशाखायां यदा सूर्यश्चरतेंऽशं तृतीयकम्।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थिरम् ॥१९७
विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः।
सूर्येण विषुव विद्यात् कालं सोमेन लक्षयेत् ॥१९८
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत्।
तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुख मेतत्तु दैवतम् ॥१९९
ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्त्तकाः।
पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥२००
तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात्।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः।
सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥२०१
संवत्सरास्ततो ज्ञेयाः पश्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः।
तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तरा स्मृताः ॥२०२

जिस प्रकार कृत्तिकाओं का सूर्य प्रथमांशगत होता है तब विशाखाओं के चतुर्थांश में निशाकर होता है ॥ १९६ ॥ विशाखा में जब सूर्य तृतीय अंश में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चरण किया करता है तब चन्द्रमा को कृत्तिका के शिर में स्थित जानना चाहिए ।। १६७ ।। उस समय देव को विषुवान् समझना चाहिए ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। सूर्य को विषुव समझे और काल को सोम के साथ लक्षित करे ।। १६८ ।। जब रात्रि और दिन समान होवें और जब विषुवद् होवे तब विषुवान् में भी पितरों को दान देने चाहिये और विशेष करके ब्राह्मणों को देवे क्योंकि ये देवताओं का मुख हुआ करता है ।। १६९ ।। ऊन रात्र और अधिमास, कला, काष्ठा और मुहूर्त्त-पौर्णमासी तथा अमावस्या जाननी चाहिए। सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति जाननी चाहिये ।। २०० ।। तप और तपस्या, मधु और माधव, शुक्र और शुचि उत्तर अयन होता है। नभ और नभस्य इषु-सहोर्ज और सह तथा सहस्य दक्षिण अयन जाने लेवे ।। २०१ ।। इसके पश्चात् सम्वत्सर जाने जो कि पञ्च अब्द ब्रह्मा के सुत हैं। उससे ऋतु जाने, जो अन्तर होते है वे ऋतु कहे गये हैं ।। २०२ ।।

तस्मादनुमुखा ज्ञेया अमावास्यास्य पर्वणः ।
तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदैवहितं सदा ।।२०३
एवं ज्ञात्वा न मुह्येत दैवे पित्र्ये च मानवः ।
तस्मात् स्मृतं प्रजानां वै विषुवत्सर्वगं सदा ।।२०४
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ।
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ।।२०५

चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
सुधामा चैव वैराजः कर्द्दमः शङ्कपस्तथा ।
हिरण्यलोमा पर्जन्यः केतुमान् जातनिश्चयः ।।२०६
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्त्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ।।२०७

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ।।२०८
तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिणः ।
लोकस्य सन्तानकराः पितृयाणे पथिस्थिताः ।।२०९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इससे इस पर्व की अमावस्या को अनुमुखा जाननी चाहिए। उससे पितर और देवों के हित वाला विषुव सदा जान लेना चाहिए ॥ २०३ ॥ मान का इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके फिर दैव तथा पितर सम्बन्धी कार्य में मोह नहीं करना चाहिये। इससे समस्त में गमन करने वाला सदा प्रजाओं का विषुवत् कहा गया है ॥ २०४ ॥ आलोकान्त लोक कहा गया है और लोकान्त लोक कहा जाता है वहाँ पर लोकालोक के मध्य में लोकपाल स्थित होते हैं ॥ २०५ ॥ वहाँ चार महान् आत्मा वाले भूतसंप्लव पर्यन्त रहा करते हैं। सुधामा, वैराज, कर्द्दम, शङ्खप, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान, जातनिश्चय, निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निस्तन्त्र, निष्परिग्रह—ये लोकालोक में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थित हैं ॥ २०६—२०७ ॥ अगस्त्य के उत्तर में और अजवीथी के दक्षिण में वैश्वानर पथ से बाहिर वह पितृगण पन्था होता है ॥ २०८ ॥ वहाँ पर अग्निहोत्र करने वाले प्रजावान् मुनिगण लोक के सन्तान कहने वाले पितृयाण के मार्ग में स्थित होते हैं ॥ २०९ ॥

भूतारम्भ कृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ।।२१०
चलितन्ते पुनर्द्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।।२११
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमाधां गृहेषु च ।
पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ।
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ।।२१२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् ।
सवितुर्द्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ।
क्रियावतां प्रसङ्ख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ।।२१३
लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषप्रकृत्या च मैथुनोपगमेन च ।।२१४
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ।
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।।२१५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ॥२१६

भूतारम्भ कृत कर्म आशीष से ऋत्विग कहा जाता है। लोक की कामना वाले प्रारम्भ किया करते हैं उनका वह दक्षिण पन्था होता है ॥ २१० ॥ वे चलित हो जाने वाले धर्म को फिर युग-युग में स्थापित किया करते हैं और वह सन्तति से, तप से, मर्यादाओं से और श्रुत के द्वारा ही किया करते हैं ॥ २११ ॥ पश्चिमों के गृहों में पूर्व जायमान होते हैं, और पश्चिम पूर्वों के निधन होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं। इस प्रकार से आवर्त्तमान वे भूतसंप्लव तक ठहरा करते हैं ॥ २१२ ॥ अठ्ठासी सहस्र गृहमेधी मुनियों का सविता का दक्षिण मार्ग है जिसमें वे आश्रित रहते हैं और जब तक चन्द्रमा तथा तारागण स्थित हैं तब तक रहते हैं, और क्रिया वालों की प्रसंख्या करनी चाहिए जो कि श्मशानों के सेवन किया करते थे ॥ २१३ ॥ लोक के संव्यवहार से और भूतारम्भ कृत से, इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से, मैथुन के उपगम से तथा यहाँ पर कायकृत से और विषय के सेवन से इतने ये कारण हैं जिन से सिद्ध लोग श्मशानों के सेवन किया करते थे। वे मुनिगण प्रजाओं के इच्छा वाले यहाँ द्वापरों में उत्पन्न हुए ॥ २१४–२१५ ॥ नागवीथी के उत्तर में और जो सप्तर्षियों के दक्षिण में उत्तर सविता का पन्था है वह देवयान कहा गया हैं ॥ २१६ ॥

यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सततन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्ज्जितस्तु तैः ॥२१७
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्द्धरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात ॥२१८
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽस्मृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ॥२१९
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्द्धरेतसः ॥२२०
ऊर्द्धोत्तरमृषियभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ।
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥२२१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधकाः ॥२२२

यहाँ पर जो निवास करने वाले हैं वे विमल, सिद्ध और ब्रह्मचारी हैं। वे निरन्तर जुगुप्सा करते हैं इससे उन्होंने मृत्यु को जीत लिया है ॥ २२७ ॥ उन ऊद्ध्र्वरेताओं के अठ्ठासी सहस्त्र हैं जो अर्यमा के उदक् पन्था का आश्रय वाले हैं और भूतसंप्लव अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त वहाँ आश्रित रहते हैं ॥ २१८ ॥ इन सब कारणों से जो कि शुद्ध हैं वे अस्मृतत्व का सेवन करते थे। और भूतसंप्लव तक स्थित रहने वालों का अमृतत्व विभावित होता है ॥ २१६ ॥ अयममार्ग-गामिका यह त्रैलोक्य की स्थिति का काल है। ब्रह्म हत्या और अश्वमेधों से पुण्य, पाप कृत अपर है। भूतसंप्लव के अन्त में ऊद्ध्र्वरेता भी क्षीण हो जाते हैं। ऊद्ध्र्वोत्तर ऋषियों के लिये जहाँ ध्रुव है वह कहा गया है। यह व्योम में भास्वर तीसरा दिव्य विष्णु पद होता है जहाँ जाकर किसी प्रकार शोक नहीं करते हैं वही विष्णु का परम पद होता है। वहाँ धर्म ध्रुवादिक ठहरा करते हैं जहाँ वे लोक के साधक होते हैं ॥ २२२ ॥

॥ प्रकर्ण ३४—ज्योतिष प्रचार (२) ॥

स्वायम्भुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।
भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१
एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ॥२
भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम् ।
तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणि तथैवासङ्करेण च ।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ।
भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥४
भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तत् संमोहयते प्रजाः ॥५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६
स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥७

श्री सूत जी ने कहा—स्वायम्भुव निसर्ग में जो उत्तर थे उनकी व्याख्या कर दी गई है । भविष्य में जितने सब हैं उनका अनुक्रम बतलाया जायगा ॥१॥ यह सुनकर मुनिगण ने लोमहर्षण से पूछा कि सूर्य, चन्द्रमा का चार और सब ग्रहों का चार कैसा होता है ? ॥२॥ ऋषियों ने कहा—दिविमण्डल में ये ज्योतियाँ किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं । ये सब तिर्यग् व्यूह से तथा असङ्कार से भ्रमण किया करते हैं ? और उनको कौन भ्रमण कराया करता है अथवा वे स्वयं ही भ्रमण किया करते हैं ? ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! हम सभी लोग इस बात को जानना चाहते हैं सो आप कृपा करके हमको सब बतलाइये । इस भूत सम्मोहन के सुनने की इच्छा हमें होती है । ४ ॥ श्री सूत जी ने कहा—अब मैं इस भूत सम्मोहन को ही बतलाता हूँ सो आप सब जान लेवें । जो यह प्रत्यक्ष में देखने के योग्य है वही प्रजा का सम्मोहन किया करता है ॥ ५ ॥ जो यह चारों दिशाओं में शिशुमार पुच्छ में व्यवस्थित है वह राजा उत्तानपाद का मेढीभूत पुत्र दिन में ध्रुव है ॥ ६ ॥ वह ही स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्र और आदित्य दोनों को भ्रमण कराया करता है और उस भ्रमण करते हुए के पीछे नक्षत्र अनुगमन चक्र की भाँति किया करते हैं ॥ ७ ॥

ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते भगणः स्वयम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥८
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ।
तेषां योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च ॥९

अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ।
विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥१०
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभं प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्त्तते ॥११

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति ।
तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः ॥१२
परिवर्त्त क्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिशः ।
सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः ।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः ॥१३
आदित्यपीत सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम् ।
नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्त्तते ॥१४

ध्रुव के मन से यह भगण स्वयं भ्रमण किया करता है और सूर्य- चन्द्र और तारागण नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ सर्पण किया करते हैं ॥ ८ ॥ वे सब वातानीकपूर्ण बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए हैं। उनका योग भेद और कालचार होता है ॥ ९ ॥ अस्त, उदय तथा दक्षिणोत्तर अयन में अन्य उत्पात एवं विषुवद् ग्रह वर्ण यह सभी ध्रुव से ही प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १० ॥ वर्षा, घाम, हिम, रात्रि, सन्ध्या तथा दिन और प्रजाओं का शुभ एवं अशुभ यह सभी कुछ ध्रुव से ही प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ ध्रुव के द्वारा अधिकृत जो हैं उनको अपावृत करके सूर्य स्थित है इसी से यह दीप्त किरणों वाला—कालाग्नि और दिवाकर होता है ॥ १२ ॥ हे विप्रो ! हे द्विज सत्तमो ! सूर्य परिवृत्त क्रम से प्रभाओं से दिशाओं में आलोक करता हुआ जो कि सब ओर वायु से युक्त किरणों के जाल के द्वारा आलोक दिया करता है समस्त जगत् के जल का ग्रहण कर लेता है ॥ १३ ॥ सूर्याग्नि के आदित्य पीत जल को सोम संक्रामित किया करता है। वायुयुक्त नाड़ियों से लोकाधान प्रवृत्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

यत्सोमात् स्रवते सूर्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते ।
मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलम्भुवि ॥१५
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम् ।
नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्त्तते ॥१६
सन्धारणार्थं भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता ।
अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१७
विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः ।
धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः ॥१८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सर्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमान्नभसः स्रुतम् ।
सोमाधारं जगत्सर्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्तितम ॥१९

सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्त्तते ।
शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ॥२०

सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ।
सोमपुत्रपुरोगाश्च महानद्यो द्विजोत्तमाः ॥२१

सोम से जो स्रवित होता है उसके आगे में सूर्य अवस्थित रहता है। मेघ वायु के निघात प्राप्त कर उससे ही भूमि पर जल का त्याग किया करते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार से यह जल उत्क्षिप्त होता है और फिर गिरा करता है। वही जल अनेक प्रकार का परिवर्त्तित हुआ करता है ॥१६॥ प्राणियों को सन्धारण करने के लिये यह विश्वनिर्मिता माया है और इस माया से यह सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ इस समस्त विश्व का स्वामी, लोकों की रचना को करने वाला, देव, सहस्र किरणों वाला, प्रजापति, समस्त लोक का धाता, प्रभु और विष्णु दिवाकर है ॥ १८ ॥ समस्त लौकिक जल सोम से आकाश से स्रुत होता है। यह समस्त जगती तल ही सोम के आधार वाला है। यह बिल्कुल तथ्य ही कहा गया है ॥ १९ ॥ सूर्य से उष्णता का निस्रवण हुआ करता है। सोम से शीत की प्रवृत्ति होती है। ये दोनों शीतोष्ण वीर्य वाले हैं और दोनों ही युक्त होते हुये इस जगत को धारण किया करते हैं ॥२०॥ गङ्गा परम पवित्र नदी और विमल जल वाली सोम धारा है। हे द्विजोत्तमा ! ये समस्त महानदियाँ सोम पुत्र के आगे जाने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च याः ।
तेष सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥२२

तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसां स्मृतम् ।
आर्कन्तेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥२३
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो गभस्तयः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्तो दिवाकरः ।
यच्छत्यपो हि मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लगभस्तिभि ॥२४
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ।
सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः ॥२५
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायव्य स्तनितश्चैव वैद्युतञ्चाग्निसंभवम् ॥२६
मेहनाच्च मिहेर्द्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्र कवयो विदुः ॥२७
मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते ।
आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च पृथग्विधाः ।
त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि सम्भवम् ॥२८

समस्त प्राणियों के शरीरों में जो जल अनुगत होता है उनके जल जाने पर जंगम और स्थावरों में सर्वत्र ही उस जल का दग्धीभाव हुआ करता है फिर वही जल धूमभूत होकर सब ओर निकलता है ॥ २२ । उससे फिर बादलों की रचना होती है ये जल का स्थान ही कहा गया है । सूर्य का तेज ही किरणों के द्वारा भूतों से जल का आदान किया करता है ॥ २३ ॥ समुद्र से वायु के संयोग से किरणें जल का वहन किया करती हैं । क्योंकि फिर ऋतु के वश से काल में दिवाकर परिवर्त्ती हो जाता है । शुक्ल किरणों के द्वारा मेघों से शुक्ल जल को देता है ॥ २४ ॥ अभ्रों में रहने वाले जल वायु से समुदीरित होते हुये नीचे गिरा करते हैं ये जल समस्त प्राणियों के हित के लिये ही वायु के द्वारा भूमि पर प्रपतित हुआ करते है ॥ २५ ॥ फिर समस्त प्राणियो के हित सम्पादन करने के लिये छः मास तक यह जल भूमि पर वर्षता रहता है । और यह वायव्य, स्तनित, वैद्युत तथा अग्नि सम्भव होता है ॥ २६ ॥ मेहन करने के कारण से यह मिहि धातु से मेघत्व को प्रकट किया करता है । यह जलों को भ्रंशित नहीं किया करता है इसलिये कवि लोग इसे अभ्र कहा करते हैं ॥२७॥ पुनः मेघों की उत्पत्ति का स्थान तीन प्रकार का बताया गया है । आग्नेय,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मज और पक्षज, ये पृथक् प्रकार वाले होते है। घन तीन प्रकार वाले कहे गये हैं अब उनका सम्भव बतलाया जाता है ।। २८ ।।

आग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्तास्तेषां तस्मात् प्रवर्त्तनम् ।
शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ।।२६
महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः ।
भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरन्ति रमन्ति च ।।३०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवाः ।
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिनः ।।३१
मूका घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगाः ।
क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ।।३२
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ।
बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः ।।३३
ब्रह्मजानाम ते मेघा ब्रह्मनिःश्वाससम्भवाः ।
ते हि विद्युद्गुणोपेताः स्तनयन्ति स्वनप्रियाः ।।३४
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्गरुहोद्गमा ।
राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते ।
तेष्वियं प्रीतिमासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ।।३५

जो आग्नेय मेघ होते हैं वे अवर्णज होते हैं और उनका उससे प्रवर्त्तन होता है। शीत, दुर्दिन, वात जो ये उसमें अपने गुण हैं वे व्यवस्थित होते हैं ।। २६ ।। महिष, वराह और मत्त मातङ्गगामी होकर धरणी में आकर विचरण किया करते हैं तथा रमण किया करते हैं।। ३० ।। जीमूत नाम वाले वे मेघ इनसे ही जीव सम्भूत होते हैं। ये विद्युद्गण से रहित और जल धारा के विलम्बी होते हैं ।। ३१ ।। मूक अर्थात् गर्जन न करने वाले, घन अर्थात् अत्यधिक गहरे, महान काया अर्थात् आकार वाले और प्रवाह के वश में अनुगमन करने वाले ये एक कोश मात्र से अथवा आधे कोश से भी वर्षा किया करते हैं ।। ३२ ।। ये मेघ पर्वताग्र निबन्धों में वर्षते हैं और रमण किया करते हैं। बलाकाओं के गर्भ के प्रदान करने वाले और बलाकाओं के गर्भधारी हुआ करते

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं ।। ३३ ।। जो ब्रह्मज मेघ होते हैं वे ब्रह्म के निश्वास से उत्पत्ति वाले हुआ करते हैं। वे विद्युद्‌गण से युक्त तथा स्वन (शब्द) प्रिय होते हैं और गर्जना किया करते हैं ।। ३४ ।। उनके शब्द प्रमाण से ही भूमि अपने अङ्कुरुहों के उद्‌गम वाली हो जाती है। राजा के द्वारा अभिषिक्त की हुई रानी के समान ही फिर यौवन की प्राप्ति कर लेती है। उनमें यह भूमि प्रीति को प्राप्त हुई अत्यन्त आसक्त होकर प्राणियों के जीवन को उत्पन्न करने वाली हो जाती है ।। ३५ ।।

जीमूता नाम ते मेघास्तेभ्यो जीवस्य सम्भवः ।
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ।।३६
एते योजनमात्राच्च सार्द्धार्द्धान्निष्कृतादपि ।
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासाराः प्रकीर्त्तिताः ।
पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ।।३७
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वतानां महौजसाम् ।
कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छता ।।३८
पुष्करा नाम ते मेघाः बृहन्तस्तोय मत्सराः ।
पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ।।३९
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्त्ताग्नेर्नियामकाः ।।४०
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिताः ।
अनेकरूपसस्थानाः पूरयन्तो महीतलम् ।
वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ।।४१
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राक्तनस्याभवंस्तदा ।
तस्माद्‌ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयम्भुवः ।
तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघाः प्रकीर्त्तिताः ।।४२

जीमूत नाम वाले वे मेघ होते हैं जिनसे जीवों का जन्म हुआ करता है। वे मेघ द्वितीय प्रवह वायु के समाश्रित हुआ करते हैं। ये सार्द्धार्द्ध निष्कृत योजन मात्र से भी उस प्रकार का उनका वृष्टि सर्ग होता है कि उसे धारासार कहा गया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। पुष्कर और आवर्त्त नाम वाले पक्षसम्भव मेघ होते हैं ॥ ३७ ॥ स्वेच्छा से गमन करने की इच्छा वाले, प्रवृद्ध प्राणियों की हितेच्छा से इन्द्र ने महान् ओज से युक्त पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ॥ ३८ ॥ पुष्कर नाम वाले जो मेघ हैं वे बहुत बड़े और जल की मत्सरता रखने वाले होते हैं। इसी कारण से वे पुष्करावर्त्तक इस नाम से शाब्दिक हुए हैं ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोरतर तथा कल्पान्त वृष्टि के करने वाले एवं संवर्त्ताग्नि के नियामक होते हैं ॥ ४० ॥ ये युग के अन्त में वर्षा क्रिया करते हैं और वे तृतीय कहे गये हैं। अनेक रूप और संस्थान वाले तथा इस महीतल को पूर देने वाले हैं और पर वायु का वहन करते हुए कल्प के साधक उसी पर आश्रित रहा करते हैं ॥ ४१ ॥ जो इस प्राकृत अण्ड के कपाल से उस समय में हुए थे जब चारों मुखों वाला स्वयम्भुव ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। वे ही अण्ड कपाल के सब मेघ प्रकीर्त्तित हुए हैं ॥ ४२ ॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः।
तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥४३
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥४४
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः।
तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये ॥४५
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः।
योऽसौ धर्त्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्।
दिव्यामतिजलां पुण्यां दिव्यां स्वर्गपथ स्थिताम् ॥४६
तस्या विष्पन्दजन्तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः।
शा सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥४७
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः।
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥४८
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततस्त दावहो वायुर्हिमशैलात् समुद्वहन् ।
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥४९

उस सब का भी अयन अविशेष रूप से ध्रुव ही होता है। उनमें परम श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चारों दिग्गज होते हैं ॥ ४३ ॥ गजों का, मेघों का और पर्वतों का भोगियों के साथ पृथक् भूत एक ही कुल होता है और इनकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थल एक जल ही कहा गया है ॥ ४४ ॥ पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत से जन्म ग्रहण करने वाले हैं। ये सब प्रकार के सस्यों की वृद्धि के लिये तुषार वृष्टि किया करते हैं ॥ ४५ ॥ परिवह नाम वाला श्रेष्ठ होता है जिसका अपाश्रय वायु होता है। जो यह भगवान् आकाश में दिखाई देने वाली, दिव्य, अत्यधिक जल से युक्त, पुण्या, विद्या और स्वर्ग के मार्ग में स्थिति करने वाली गङ्गाधारण करते हैं ॥ ४६ ॥ उसके जल को विष्यन्दित करते हुए दिग्गज अपने पृथुकरों के द्वारा सीकर का मुंचन करते हैं वह नीहार कहा जाता है ॥ ४७ ॥ दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट कहा जाता है। हिमाचल के पहाड़ के उत्तर और दक्षिण में पुण्ड्र नाम का नगर कहा गया है। वह नगर बहुत ही प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ उसमें पड़ी हुई जो वर्षा है वह तुषार से समुद्भूत है। उससे उसका वहन करने वाला वायु हिमशैल से समुद्वहन करता हुआ आत्मयोग से महतगिरि को सिञ्चन करता हुआ लाता है ॥ ४९ ॥

हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ।
इहाभ्येति ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥५०
मेघाप्यायतश्चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥५१
ध्रुवेणा वेष्टितः सूर्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्त्तते ।
ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ॥५२
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
वारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥५३
अतः सूर्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत ।
संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥५४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हिरण्मयेन भगवान् पर्वणा तु महौजसा ।
नष्टवर्त्मान्धकारेण षट् प्रकारैकनेमिना ।
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।५५
दश योजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृतः ।
द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः ।।५६

हिमवान पर्वत का अतिक्रमण करके उससे आगे वृष्टि का शेष भाग यहाँ आता है। इसके पश्चात् अपरान्त की वृद्धि के लिए वह वर्षा हुआ करती है ॥ ५० ॥ मेघ और आप्यायत यह सब कह दिया गया है। वृष्टियों के सृजन करने वाला सूर्य ही उपदिष्ट किया जाता है ॥ ५१ ॥ ध्रुव के द्वारा आवेष्टित सूर्य होता है, उन दोनों से वृष्टि प्रवृत्त हुआ करती है। ध्रुव के द्वारा वायु फिर वृष्टि का संहार किया करता है ॥ ५२ ॥ सूर्य ग्रह से निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में वार के अन्त में ध्रुव के द्वारा परिवेष्टित सूर्य में प्रवेश किया करता है ॥ ५३ ॥ इससे आगे उसके पश्चात् सूर्य के रथ का सन्निवेश को समझ लो। एक चक्र से संस्थित होने वाले, पाँच आर से, त्रिनाभिसे युक्त तथा महान् ओज वाले हिरण्मय पर्व से अन्वित एवं मार्ग के अन्धकार को दूर करने वाले तथा छै प्रकार की एक नेमि वाले भासमान चक्र वाले रथ से भगवान प्रसर्पण किया करते हैं ॥ ५४–५५ ॥ दश हजार योजन वाला विस्तार तथा आयाम कहा गया है जो ईषा दण्ड प्रमाण से इसके रथोपस्थ से दुगुना होता है ॥ ५६ ॥

स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः परमगैर्हयैः ।।५७
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतः शुक्रस्ततः स्थितः ।
वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणैः सदृशस्तु सः ।
तेनाऽसौ सर्पतिव्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः ।।५८
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथा क्रमम् ।।५९
अहस्तु नाभिः सूर्यस्य एकचक्रः स वै स्मृताः ।
आराः पञ्चर्तवस्तस्त नेमि. षड्ऋतवः स्मृताः ।।६०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रथनीडः स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूवरावुभौ ।
मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कलाः स्मृताः ॥६१
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा ईषादण्डः क्षणांस्तु वै ।
निमेषाश्चानुकर्षोऽस्यईषा चास्य लवाः स्मृताः ॥६२
रात्रिर्वरूथो घर्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्ध समुच्छ्रितः ।
युगाक्षकोटी ते यस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ॥६३

उनका वह रथ अर्थ के वश में रहने वाले ब्रह्मा के द्वारा निर्मित किया गया है जोकि सङ्ग रहित, दिव्य और सुवर्ण का है और पर-गमन करने वाले अश्वों से युक्त भी होता है ॥५७॥ अश्व स्वरूप छन्दों के द्वारा जहाँ शुक्र है वहाँ पर ही स्थित होता है । यहाँ यह वरुण के रथ के लक्षणों के सदृश ही होता है । भास्वत उसके साथ यह व्योम में दिवाकर गमन किया करता है ॥५८॥ इसके उपरान्त सूर्य के रथ के इन प्रत्यङ्गों को सम्वत्सर के अवयवों के द्वारा यथाक्रम कल्पित किया गया है ॥५९॥ अह अर्थात् दिन सूर्य की नाभि है और वह एक चक्र बाला कहा गया है। पाँच ऋतुऐं ही उसके पाँच आर होते हैं और छः ऋतुएें उसकी नेमि बताई गई हैं ॥६०॥ अब्द रथ का नीड़ कहा गया है और दो अयन ही उसके दो कूवर हैं । मुहूर्त उसके बन्धुर है और कला उसकी शम्या है । ऐसा ही बताया गया है ॥६१। काष्ठा उसकी घोणा कही गई है और क्षण ईषादण्ड कहा गया है निमेष इसके अनुकर्ष हैं और लव इसका ईषा बताया गया है ॥६२॥ रात्रि इस रथ का रूप है । धर्म इसका ऊपर को समुच्छ्रित ध्वज है । अर्थ और काम ये दोनों उसके युगाक्ष कोटी कहे गये हैं ॥६३॥

सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुराम् ।
गायत्री चैव त्रिष्टुप्चअनुष्टुव् जगती तथा ॥६४
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक् चैव तु सप्तमम् ।
अक्षे चक्रं निबद्धन्तु ध्रुवे त्वक्षः समर्पितः ॥६५
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः ।
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ॥६६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवमर्थ वशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ।
तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथः ॥६७
तेनाऽसौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पते दिवि ।
युगाक्षकोटिसम्बद्धौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ॥६८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी विचक्रयुगयोस्तु वै ।
भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ॥६९
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
ध्रुवेण संगृहीते वै द्विचक्रश्वेतरज्जुवत् । ७०

सात अश्वों के रूप में रहने वाले छन्द हैं जो वामभाग से धुरा को वहन करते हैं। वे सात छन्द गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति, बृहती और सातवाँ उष्णिक् है। अक्ष में चक्र निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित होता है ॥६४॥६५॥ चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के साथ में ध्रुव घूमता है। चक्र के साथ ही ध्रुव से प्रेरित होता हुआ यह अक्ष भ्रमण किया करता है ॥६६॥ इस प्रकार से अर्थ के वश से उसके रथ का यह सन्निवेश किया गया है और उस प्रकार से संयोग के भाव से सम्यक्तया सिद्ध उसका भास्वर रथ होता है ॥६७॥ उस रथ के द्वारा ही यह सूर्यदेव दिव में वेग के साथ सर्पण किया करते हैं। उसके रथ के युगाक्ष कोटी से सम्बद्ध दो रश्मियाँ होती हैं ॥६८॥ विचक्र युगों की दोनों रश्मियाँ ध्रुव के द्वारा भ्रमण किया करती हैं। भ्रमण करने वाले आकाशगामी रथ के मण्डल होते हैं ॥६९॥ उस स्यन्दन के दक्षिण युगाक्ष कोटी ध्रुव के द्वारा द्विचक्रेश्वर रज्जु की भाँति संग्रहीत होती हैं ॥७०॥

भ्रमन्तमनुगच्छेतां ध्रुवं रश्मी तु तावुभौ ।
युगाक्ष कोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ॥७१
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतो दिशम् ।
ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेषूत्तरायणे ॥७२
वर्द्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ।
ध्रुवेण संगृहीतो तु रश्मी वै नयतो रविम् ॥७३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।।७४
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ।।७५
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ।।७६

भ्रमण करने वाले ध्रुव के पीछे वे दोनों रश्मियाँ अनुगमन किया करती हैं। उस स्यन्दन (रथ) की युगाक्ष कोटी वे वातोर्मी होती हैं ।।७१।। जिस प्रकार से कील में आसक्त रज्जु सब दिशाओं में भ्रमण किया करती है रास को प्राप्त होने वाली उसकी वे दोनों रश्मियाँ उत्तरायण के मण्डलों में रहती है ।।७२।। दक्षिण में मण्डलों का भ्रमण करने वाले उसकी ध्रुव के द्वारा संग्रहीत वे रश्मियाँ रवि को ले जाती हैं ।।७३।। जिस समय में ध्रुव के द्वारा समधिष्ठित वे दोनों आकृष्यमाण होती हैं उस समय में सूर्य मण्डलों के अन्दर भ्रमण किया करते हैं। वह वेग के साथ उद्वेष्टित करते हुए मण्डलों को चले जाते हैं ।।७६।।

।। प्रकर्ण ३५—ध्रुवचर्या

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ।।१
एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ, द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ।।२
उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ।
तम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ।।३
क्रतुस्थलयप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ।
ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोर्यश्चैव तावुभौ ।।४
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ।।५
वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥६
मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहा हुहः ।
रथःस्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावुभौ ॥७
पौरुषेयो धवश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ।
एतेवसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ॥८

श्रीसूतजी ने कहा—वह सूर्य का रथ देव आदित्य और ऋषियों के द्वारा अधिष्ठित होता है। इसी प्रकार से गन्धर्व, अप्सराएँ, ग्रामणी, सर्प और राक्षसों के द्वारा भी अधिष्ठित रहा करता है ॥१॥ ये सब सूर्य में दो, दो, मासतक निवास किया करते हैं और क्रम से इनका वहाँ वास होता। भास्कर में जिसका निवास है उनका परिगणन किया जाना है, धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, प्रजापति, उरग वासुकि और सङ्कीर्णार वे दोनों गायन करने वाले श्रेष्ठ तुम्बरु और नारद गन्धर्व, क्रतुस्थली अप्सरा, पुञ्जिक स्थली, ग्रामणी, रथकृच्छ्र और तपोर्य वे दोनों रक्ष, हेति, प्रहेति दो यातुधान और मधु माधव के मासों में यह गण भास्कर में वास करते हैं ॥२॥३॥४॥५॥ वासन्त और ग्रैष्मिक दो-दो, मास हैं उनमें मित्र, वरुण, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक, रम्भ-मेनका, और सहाजन्या तथा हहा, हुहु दो गन्धर्व, रथस्वन, , ग्रामण्य, और रथचित्र वे दोनों, पौरुषेय और धव दो यातुधान ये शुचि शुक्रमासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥६॥७॥८॥

ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवताः ।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥६
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च ताबुभो ।
विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातःश्चैवारुणश्च ह ॥१०
प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभो ।
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥११
शरद्दतौ पुनः शुभ्रा वसन्ति मुनि देवताः ।
पर्ज्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाजः सगौतम. ॥१२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विश्वावसुश्च गन्धर्वास्तथ व सुरिभिश्च यः ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥१३
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ।
सेनाजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१४
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्येते तु वै सूर्ये भासयोश्च इषोर्जयोः ॥१५

इसके अनन्तर फिर यहाँ सूर्य में अन्य देवता निवास करते हैं जिनमें इन्द्र, विवस्वान्, अङ्गिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प और शङ्खपाल वे दोनों, विश्वा-वसु-उग्र-सेन, प्रातः अरुण-विख्यात प्रम्लोचा और निम्लोचा वे दोनों, यातुधान तथा सर्प, व्याघ्र और श्वेत वे दोनों, यह गण नभ कौर नभस्य इन दो मासों में भास्कर में वास करते हैं ॥९॥१०॥११॥ शरद ऋतु में फिर शुभ्र मुनि और देवता वास किया करते हैं। पर्जन्य और पूषा, गौतम के साथ भरद्वाज, विश्वावसु, गन्धर्व और इसी भाँति सुरभि, विश्वाची और घृताची ये दोनों शुभ लक्षणों से से युक्त, नाग और ऐरावत, विश्रुत और धनञ्जय-सेनजित और सुषेण-सेनानी और ग्रामणी वे दोनों- जल और वात वे दोनों यातुधान कहे गये हैं ये सब निश्चय ही इष और ऊर्ज मासों में सूर्य में निवास करते हैं ॥१२॥१२॥ ॥१४॥१५॥

हैमन्तिकको तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुश्च ह ॥१६
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥१७
उर्वशी विप्रचित्तिश्चा तथैवाप्सरसौ शुभे ।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥१८
विद्युत्स्फूर्ज्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥१९
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥२०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वरावुभौ ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्च्चास्तथैव च ॥२१
तिलोत्तमाप्सराच्चैव देवी रम्भा मनोरमा ।
ऋतुजित्सजिश्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥२२
ब्रह्मोपेतस्यथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः ।
एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥२३

हैमन्तिक अर्थात् हेमन्त ऋतु के दो मासों में तो निम्न लोग अर्थात् अधोगणित लोग सूर्य में वास करते हैं—अंश और भग ये दोनों-कश्यय और ऋतु-भुजङ्ग-महापद्म सर्प-तथा कर्कोटक गन्धर्व और ऊर्णायि वे दोनों, उर्वशी और विप्रचिति ये दोनों शुभ अप्सराएँ-तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि दो सेनानी और ग्रामणी- विद्युत और स्फूर्ज वे दोनों उग्र यातुधान कहे गये हैं । सह और सहस्य मास में ये सब दिवाकर में बसते हैं ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इसी प्रकार से शिशिर ऋतु के दो मासों में त्वष्टा-विष्णु-जमदग्नि-विश्वामित्र-कम्बल और अश्वतर ये दोनों काद्रवेय नाग- गन्धर्व- धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा-अप्सरा तिलोत्तमा—देवी रम्भा मनोरमा-ऋतचित् लोक में प्रसिद्ध ग्रामणी-ब्रह्मोपेत तथादक्ष और जो यज्ञोपेत कहा गया है । इतने ये देवगण दो मास तक सूर्य क्रम से निवास किया करते है ॥२०॥२१॥२२॥२३॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वाद्वश सप्तकाः ।
सूर्यमाप्यायययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥२४
प्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥२५
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसंग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति सूर्यश्च यातुधानानुयान्ति च ।
वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिचार्योदयाद्रविम् ॥२६
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्यं यथाधर्मं यथाबलम् ॥२७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा ।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२८
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिशः ॥२९
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ॥३०

ये सब द्वादश और सात गण स्थान के अभिमानी होते हैं । ये सूर्य को भी तेज से उत्तम तेज द्वारा आप्यायित किया करते हैं । २४ ॥ वे मुनिगण प्रथित वचनों के द्वारा रवि का स्तवन किया करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सरायें गीतों एवं नृत्यों के द्वारा सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥ २५ ॥ ग्रामणी और यक्ष, भूत भीम संग्रह किया करते हैं । सर्प सूर्य का वहन करते हैं और यातुधान अनुयान किया करते हैं । वालाखिल्यादि उदय से परिचर्या करके उस रवि को अस्ताचल में ले जाया करते हैं ॥ २६ ॥ इन देवों के यथा वीर्य, यथातप, यथायोग तथा सत्य के अनुसार धर्म और बल के अनुसार जैसे यह सूर्य तपता है उनके नेत्र से सिद्ध होता है । इतने ये सब दो-दो मास पर्यन्त दिवाकर में यहाँ निवास किया करते हैं ॥ २७-२८ ॥ ऋषि लोग, गन्धर्व देव, पन्नग और अप्सराओं के गण, ग्रामणी लोग तथा यक्ष, यातुधान बहुत सारे । ये तपते हैं, वर्षते हैं, दीप्त होते हैं, तान करते हैं और सृजन करते हैं एवं प्राणियों के जो यहाँ पर अशुभ कर्म होते हैं उनका व्यपोह किया करते हैं इस प्रकार के कहे गये हैं । २९-३० ॥

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ।
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥३१
विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः ।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥३२
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपायन्ति तु भूतानि सर्वानीहामनुक्षयात् ॥३३
स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अतीतानागतानां वै वर्त्तन्ते साम्प्रतन्तु ये ॥३४
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्द्दिशम् ।
चतुर्द्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥३५
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्मं हिमञ्च वर्षञ्च दिनं निशाञ्च ।
कालेन गच्छत्यृतुवशात् परिवृत्तरश्मिर्देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च तर्पयन् वै।३६
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमं सुषुम्नेन विवर्द्धयित्वा ।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण तां कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ॥३७

ये मानवों के शुभ कर्मों का तथा पापात्माओं के अच्छे कर्मों का हरण किया करते हैं। कहीं-कहीं पर प्रचारों के दुरित का व्यपोह किया करते हैं ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान में अवस्थित काम के अनुसार गमन करने वाले वात रंहस ये सूर्य के साथ ही दिन में अनुगमन करने वाले होते हुए भ्रमण किया करते हैं ॥ ३२ ॥ वर्षण करते हुए, तपते हुए और प्रजा को आह्लादित करते हुए यहाँ पर अनुक्षय से समस्त प्राणियों की रक्षा किया करते हैं ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानियों के मन्वन्तरों में यह स्थान है अतीत और अनागतों तथा जो साम्प्रत हैं वर्त्तित होते हैं। ३४ ॥ इस प्रकार से वे सप्तक चारों दिशाओं में सूर्य में वास किया करते हैं जो चौदह सर्गों में और मन्वन्तरों में गण बसते हैं ॥ ३५ ॥ ग्रीष्म काल में, हिम में और वर्षाओं में घाम, हिम तथा वर्षा का मुञ्चन करते हुए एवं दिन और रात्रि को बनाते हुए समय से ऋतु के कारण परिवृत्त रश्मियों वाला देव पितर और मनुष्यों को तृप्त करते हुए जाते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य देवताओं को अमृत के द्वारा प्रसन्न करता है और चन्द्रमा को सुषुम्ना के द्वारा विशेष रूप से वर्धन करके प्रसन्न किया करता है। शुक्लपक्ष में तो पूर्ण और दिनों के क्रम से कृष्णपक्ष में उसको देवता लोग पान करते हैं ॥ ३७ ॥

पीतन्तु सोमं द्विकालावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिस्तां क्षरन्तम् ।
सुधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ॥३८
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धृताभिः ।
वृष्ट्यातिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्याः क्षुधन्त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥३९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्धमासं सुराणां मासार्द्धतृप्तिः स्वधया पितॄणाम् ।
अन्नेन शश्वत्तु दधाति मर्त्यान् सूर्यः स्वयं तच्च बिभर्ति गोभिः ॥४०
अयं हरिस्तैर्हरिभिस्तुरङ्गमैरयन् हि चापो हरतीति रश्मिभिः ।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ॥४१
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्चत्यपि तास्त्वसौ हरिः स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ॥४२
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु ।
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥४३
अहोरात्राद्रथेनासौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ॥४४

द्विकाला वशिष्ठ पीत सोम को कृष्णपक्षय में रश्मियों के द्वारा क्षरण करते हुए उस सुधामृत को पितर पान किया करते हैं । देव और सौम्य उसी प्रकार से कव्य का पान किया करते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्य की किरणों से जो कि समुद्भूत हैं और फिर समुद्धृत जलों से, वृष्टि से अत्यन्त बढ़ी हुई ओषधियों मे मनुष्य क्षुधा को अन्न पानों से जीता करते हैं ॥ ३९ ॥ अमृत से देवों की तृप्ति आधे मास तक होती है और सुधा से पितरों की मासार्द्ध तृप्ति हुआ करती है । मनुष्यों को अन्न से सर्वदा तृप्ति होती है अतः सूर्य स्वयं किरणों द्वारा उसका भरण किया करता है ॥ ४० ॥ यह हरि है जो उन हरि तुरङ्गमों के द्वारा जाता हुआ रश्मियों से जलों का हरण किया करता है और जब उनके त्याग का समय आता है तो पुनः उनका विसर्जन करता हुआ सविता निरन्तर चराचर का भरण किया करता है ॥ ४१ ॥ हरि हरित् तुरङ्गमों से ह्रियमाण होते हैं और सहस्रों प्रकार से हरियों के द्वारा जल का पान किया करते हैं । फिर इसके अनन्तर उनको यह हरि त्यागते हैं वह हरि हरि तुरङ्गमों से मुह्यमान होते हैं ॥ ४२ ॥ इस तरह से सूर्य एक चक्र (पहिया) वाले रथ के द्वारा उन भद्र अक्षत अश्वों से दिव में क्षय में सर्पण किया करता है अर्थात् दौड़ लगाता रहता है ॥ ४३ ॥ यह इस रथ से जो कि एक ही चक्र वाला है एक अहोरात्र में सात-सात अश्वों से सात द्वीप वाले समुद्रों के अन्त तक भ्रमण करता है ॥ ४४ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रन्ततः स्थितैः ।
कामरूपैः सकृद्युक्तैरमितैस्तैर्मनोजवैः ।।४५
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अशीति मण्डलशत भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ।।४६
बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ।
कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ।
आवृता वालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते राज्यहानि तु ।।४७
प्रथितैर्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
पतङ्गः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ।।४८
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ।
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्यवत् स्मृते ।।४९
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः ।
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः ।
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ।।५०
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसंगैस्तैर्मनोजवैः ।
सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ।।५१

उन छन्द रूप अश्वों से जहाँ चक्र है वहाँ ही स्थित और काम रूप वाले, एकबार युक्त किये हुए, अमित मनोवेगों से युक्त, हरित, अव्यय, पिङ्ग, ब्रह्मवादी ईश्वर के अश्व हैं जो अब्द में अस्सी मण्डलों का भ्रमण किया करते हैं ।। ४५-४६ ।। दिनों के क्रम से बाह्य और अभ्यन्तर मण्डल को कल्प के आदि में सम्प्रतयुक्त वे भूत संप्लव तक वहन किया करते हैं । वालखिल्यों से आवृत हुए वे रात्रि और दिन वहन किया करते हैं ।। ४७ ।। परम प्रथित एवं उत्तम वचनों से महर्षियों के द्वारा स्तूयमान तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा गीत एवं नृत्यों से सेव्यमान होते हैं । दिवस्पति पतङ्ग पतग अश्वों के द्वारा भ्रममाण होते हुए रहते हैं ।। ४८ ।। तथा चन्द्रमा वीथी के आश्रय स्वरूप नक्षत्रों का चरण किया करता है । सूर्य की भाँति इसकी किरणों का ह्रास

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और वृद्धि उसी प्रकार से कही गई है ।। ४९ ।। तीन चक्र वाला उभय पार्श्वों में स्थित चन्द्रमा का रथ समझना चाहिए जो जल के गर्भ से अश्वों तथा सारथि के सहित उत्पन्न हुआ है । एक सौ अर वाला, तीन चक्रों से युक्त और शुक्ल अश्वों के सहित होता है ।। ५० ।। सङ्ग से रहित, कृश, दिव्य और मन के तुल्य वेग वाले दश अश्वों से एकबार उस रथ में युक्त करके युग के क्षय पर्यन्त उसका वहन होता है ।। ५१ ।।

संगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै ।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शंखवर्च्चसम् ।।५२
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हयः ।
अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ।।५३
इत्येते नामभिः सर्वे दश चन्द्रमसो हयाः ।
एते चन्द्रमसं देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ।।५४
देवैः परिवृतः सौम्यः पितृभिश्चैव गच्छति ।
सोमस्य शुक्ल पक्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते ।
आपूर्यते पुरस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ।।५५
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ।
पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेन भास्करः ।।५६
आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात् ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ला वर्द्धन्ति वै कलाः ।।५७
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ल आप्याययन्ति च ।
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।।५८

उस संग्रहीत रथ में श्वेत चक्षुश्रवा एक वर्ण वाले अश्व उस शङ्ख वर्चस रथ का वहन किया करते हैं ।। ५२ ।। उनके नामों का यहाँ परिगणन किया जाता है । ययु, त्रिमना, वृष, राजीवल, हय, अश्व वाम, तुरण्य, हस, व्योमी, मृग ये दश इन नामों वाले चन्द्रमा के अश्व हैं । ये चन्द्र देव दिवस के क्षय से वहन किया करते हैं ।। ५३ ।। देवों तथा पितरों के द्वारा परिवृत एवं सौम्य चन्द्र गमन करते हैं । शुक्लपक्ष के आदि में भास्कर के आगे स्थित होने पर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चन्द्रमा के पुर का अन्तर्भाग दिवस के क्रम से सतत आपूरित होता है ॥ ५५ ॥ क्षय में देवों के द्वारा पीत सोम को नित्य ही आप्यायित करता है। पन्द्रह दिन तक वह पीत होता है और भास्कर अपनी एक ही रश्मि से अहः क्रम के अनुसार भाग-भाग को आपूरित सुषुम्ना से करते हुए रहते हैं और सुषुम्ना से आप्यायमान चन्द्र की शुक्ल कलाऐं बढ़ा करती हैं ॥ ५६-५७ ॥ उससे कृष्ण-पक्ष में ह्रसित होती हैं और शुक्ल में आप्यायित हुआ करती है। इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्रमा का शरीर आप्यायित हुआ करता है ॥ ५८ ॥

पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षे दिनक्रमात् ॥५९
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी।
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च।
पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं सुधामयम् ॥६०
सम्भृतश्चार्द्धमासेन अमृतं सूर्यतेजसा।
भक्षार्थममृतं सौम्यं पौर्णमास्यामुपासते ॥६१
एकरात्रं सुरैः सर्वैः पितृभिश्च महर्षिभिः।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥६२
प्रक्षीयते पुरस्यान्तः पीयमानाः कलाः क्रमात्।
क्षीयन्ते तस्मात् कृष्णे याः शुक्ले ह्याप्याययन्तिताः ॥६३
एवं दिनक्रमातीते विबुधास्तु निशाकरम्।
पीत्वाऽर्द्धमासङ्गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ॥६४
ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके।
अपराह्णे पितृगणैर्जघन्यः पर्युपास्यते ॥६५

पौर्णमासी तिथि में सम्पूर्ण मण्डल शुक्ल दिखलाई देता है। इस प्रकार से सोम (चन्द्र) शुक्लपक्ष में दिनों के क्रम से आप्यायित हुआ करता है ॥ ५९ ॥ फिर इसके उपरान्त में द्वितीया तिथि से चतुर्दशी तक जलों के सार-पूर्ण इन्दु का जो कि रस मात्रात्मक ही होता है, उसके अम्बुमय मधु सौम्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और अमृतमय को देवता लोग पान किया करते हैं ।। ६० ।। सूर्य के तेज से अर्ध मास में वह अमृत पुनः सम्भृत हो जाता है। सौम्य जो अमृत है उसका भक्षण करने के लिये पूर्णमासी तिथि में उपासना की जाती है ।। ६१ ।। भास्कर के अभिमुख में स्थित चन्द्रमा की कृष्णपक्ष के आदि में एक रात्रि में देवता, समस्त पिता और महर्षियों के द्वारा पीई गयीं कलाऐं क्रम से पुर के अन्दर क्षीण हो जाया करती हैं। जो शुक्लपक्ष में आप्याथित होती हैं वे सब कृष्णपक्ष में क्षीण हो जाया करती हैं ।। ६२ ।। इस प्रकार से दिनों के क्रम के अतीत होने पर विबुध लोग निशाकर का पान करके अमावस्या तिथि में सुरोत्तम अर्द्ध का आसङ्ग मन किया करते हैं। अमावस्या में पितृगण निशा करके उपस्थान को करते हैं ।। ६३-६४ ।। इसके अनन्तर कलात्मक पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रहने पर अपराह्ल में जघन्य वह पितृगणों के द्वारा पर्युपासित किया जाता है ।। ६५ ।।

पिबन्ति द्विकलाकालं शिष्टा तस्य तु या कला ।
नि सृत तदमावास्याङ्गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ।
तां स्वधां मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ।।६६
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च ।
कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सव एव ते ।।६७
संवत्सरास्तु वै कव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः स्मृताः ।
अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ।।६८
पितृभिः पीयमानस्य पंचदश्यां कला तु वै ।
यावन्न क्षीयते तस्य भागः पंचदशस्तु सः ।।६९
अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्यते परम् ।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ ।।७०
एवं सूर्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धिर्निशाकरे ।
ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ।।७१
तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः ॥७२

उसकी जो कला शिष्ट होती है उसे दो कला के काल तक पान किया करते हैं । अमावस्या में किरणों के द्वारा जो स्वधामृत निःसृत होता है उस स्वधामृत को वे एक मास की तृप्ति के लिये पान कर जाते हैं ॥ ६६ ॥ सौम्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्त और कव्य जो ये कहे गये हैं वे सभी पितर होते हैं ॥६७॥ सम्वत्सर कव्य होते हैं जो द्विजों ने पाँच अब्द बतलाये हैं । सौम्य ऋतुऐं जाननी चाहिए और मास बर्हिषद कहे गये हैं । अग्निष्वात्त आर्तव होते हैं । हे द्विजो ! ये सब पितृगण का सर्ग होता है ॥ ६८ ॥ पितृगणों के द्वारा पीयमान चन्द्र की पचदशी (अमावस्या) में जब तक पंचदश भाग क्षीण नहीं होता है तब तक अमावस्या में उसके अन्दर पर आपूरित हो जाता है । शशि के षोडशी में पक्ष के आदि में वृद्धि और क्षय कहे गये हैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार से निशाकर में जो भी क्षय एवं वृद्धि होती है सूर्य के निमित्त वाली ही हुआ करती है । ताराग्रहों को और स्वर्भानु के रथ को फिर बतलाया जायगा ॥ ७१ ॥ सोम पुत्र का रथ तोय (जल) और तेज से परिपूर्ण होता है और शुभ्र वर्ण वाला होता है । और वह रथ आठ वायु के तुल्य वेग वाले एवं पिशङ्ग अश्वों से युक्त होता है ॥ ७२ ॥

सवरूथः सानुकर्षः सूतो दिव्यो रथे महान् ।
सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभः ॥७३
भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसन्निभः ।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥७४
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः ।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च ।
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ॥७५
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् सोमस्यापि रथोऽभवत् ।
असङ्गैर्लोहितैरश्वैः सर्वगैरग्निसम्भवैः ।
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुचक्रग ॥७६
ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शोणैरश्वैः कांचनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ।।७७
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसम्मितैः ।
नक्षत्रेऽब्दन्निवसति सवेगस्तेन गच्छति ।।७८
ततः शनैश्चरोप्यश्वैः शवलैर्व्योमसम्भवैः ।
कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं याति वै शनैः ।।७९

उस रथ में वरुथ के सहित, अनुकर्ष से युक्त महान्, दिव्य सूत होता है। और वह उपासङ्ग एवं पताका से अन्वित एव ध्वजा के सहित मेघ के तुल्य होता है ।। ७३ ।। भार्गव का रथ तेज से सूर्य के सदृश होता है। वह पृथ्वी में जन्म लेने वाले नाना प्रकार के वर्ण वाले उत्तम अश्वों से युक्त होता है ।। ७४ ।। अब उन अश्वों के नामों की यहाँ परिगणना की जाती है। श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित पृशत और पृष्णि ये दश अकृश वायु के वेग वाले महाभाग अश्वों से युक्त रथ होता है ।। ७५ ।। आठ अश्वों वाला सुवर्ण का बना हुआ शोभा से युक्त सोम का रथ था। सर्वत्र जाने वाले, सङ्ग से रहित, अग्नि से समुत्पन्न लोहित अश्वों के द्वारा ऋजु और वक्र चक्र का अनुग यह कुमार सर्पण किया करता है ।। ७६ ।। इसके आगे आङ्गिरस, देवों के आचार्य परम विद्वान बृहस्पति शोण अश्वों से युक्त सुवर्णमय रथ से प्रसर्पण करते हैं ।। ७७ ।। दिव्य और वायु के सदृश आठ अश्वों से युक्त होता हुआ नक्षत्र पर एक अब्द तक निवास किया करता है फिर वेग के साथ उससे हट जाता है ।।७८।। फिर इसके अनन्तर शनैश्चर व्योम से समुत्पन्न शवल अर्थात् रङ्ग-बिरंगे अश्वों से युक्त काले लौह से निर्मित रथ में चढ़कर धीरे से जाया करता है ।। ७९ ।।

स्वर्भानोस्तु तथवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः ।
रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ।।८०
आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ।।८१
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः ।
पलालधूमसङ्काशाः शबला रासभारुणाः ।।८२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह ।
सर्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥८३

एते वै भ्राम्यमाणास्तु यथा योगं भ्रमन्ति वै ।
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥८४
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवन्ते ज्योतिषां गणाः ॥८५

यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ।
तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभिः ।
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६

स्वर्भानु के अश्व भी उसी प्रकार के होते हैं। वे काले और आठ होते हैं जिनका मन के तुल्य वेग होता है। उसके अन्धकारमय रथ में एक बार युक्त होते हुए उसका वहन किया करते हैं ॥ ८० ॥ आदित्य से निकला हुआ राहु पर्वों में चन्द्रमा को चला जाता है। पुनः सौर पर्वों में सोम से निकलकर आदित्य में जाया करता है ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर केतु के रथ के भी आठ अश्व होते हैं जिनका वेग वायु के तुल्य हुआ करता है। इनका रंग पलाल के धूँआँ के समान होता है, शवल और रासभारुण होता है ॥ ८२ ॥ ये ग्रहों के वाहन मैंने रथों के सहित बतला दिए हैं। ये सब ध्रुव से निबद्ध और बात रश्मियों से प्रबद्ध होते हैं ॥ ८३ ॥ ये भ्राम्यामाण होते हुए योग के अनुसार ही भ्रमण किया करते हैं। अदृश्य वायव्याओं से वातरश्मियों प्रबद्ध हैं ॥ ८४ ॥ उससे बद्ध चन्द्र, सूर्य और ग्रह दिव में परिभ्रमण किया करते हैं। भ्रमण करते हुए ध्रुव के पीछे ज्योतियों के गण अनुगमन किया करते हैं ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार से नदी के जल में नौका सलिल के साथ ही उह्यमान होती है उसी प्रकार से ये देवालय भी वातरश्मियों से उह्यमान हुआ करते हैं। इसी से वे देवगण आकाश में सबके द्वारा दिखलाई दिया करते हैं ॥ ८६ ॥

यावन्त्यश्चैव तारास्तु तावन्तो वातरश्मयः ।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम् ॥८७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ॥८८
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥८९
एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः ।
सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ।
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ॥९०
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ॥९१
शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः ।
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ॥९२
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणः साध्यः अश्विनौ पूर्वपादयोः ॥९३

आकाश मण्डल में जितने तारागण हैं उतनी ही बात रश्मियाँ भी हैं। ये सभी ध्रुव के द्वारा निबद्ध होती हुईं स्वयं भ्रमण किया करती हैं और उसको भ्रमण कराया भी करती हैं ॥ ८७ ॥ तैल पीड़ाकर चक्र (पहिया) जिस तरह भ्रमता हुआ भ्रमण कराया करता है उसी प्रकार सब ओर से बातबद्ध होकर ज्योतियाँ भी भ्रमण करती हैं ॥ ८८ ॥ बात चक्र मे ईरित होकर अलात के चक्र की भाँति ये जाया करते हैं। इसमे वह ज्योतियों को प्रवहन करता हुआ स्वयं बहता है, ऐसा कहा गया है ॥ ८९ ॥ इस प्रकार से ध्रुव के द्वारा निबद्ध होता हुआ ज्योतियों का गण सर्पण किया करता है। वह यह दिव में तारामय शिशुमार ध्रुव जानना चाहिए। जो कि दिन में पाप किया करता हैं और उसको रात में देखकर उस पाप से छुटकारा पा जाता है ॥ ९० ॥ जितने ही वे तारा दिवि में शिशुमार के आश्रित होते हैं उतने ही अधिक वर्ष जीवित रहा करते हैं ॥ ९१ ॥ प्रविभाग से इस शिशुमार को शाश्वत जानना चाहिए। वह उत्तान पाद का उत्तर हनु हो ॥ ९२ ॥ यज्ञ को अधर और धम को मूर्द्धा का आश्रय लेने वाला जानना चाहिए। हृदय में भगवान् नारायण को साध्य करना चाहिए, अश्विनीकुमारों का पूर्वपादों में साधन करना चाहिए ॥ ९३ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ।
शिश्नः सवत्सरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रितः ।।६४
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः ।
तारकाः शिशुमारश्च नास्तमेत चतुष्टयम् ।।६५
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।
उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ।।६६
ध्रुवेणाधिष्ठिता सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ।
प्रत्यान्तीह वरं श्रेष्ठमेधीभूतं ध्रुवन्दिवि ।।६७
ध्रुवाग्निकश्यपानान्तु वरश्चासौ ध्रुवः स्मृतः ।
एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ।।६८
ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुखः ।
मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ।।६६

उसके पश्चिम सक्थि में वरुण तथा अर्यमा का साधन करना चाहिए । उसका शिश्न समर है । मित्र अपान में समाश्रित रहता है ।। ६४ ।। पुच्छ में अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप और ध्रुव-तारक और शिशुमार पद चतुष्टय अस्त नहीं होने हैं ।। ६५ ।। नक्षत्र, चन्द्र सूर्य, ग्रह, तारागणों के साथ उन्मुख तथा अभिमुख सब दिवि में चक्रीभूत होकर स्थित रहते हैं ।। ६६ ।। ये सब ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित हैं और ध्रुव ही प्रदक्षिण है । यहाँ वर-श्रेष्ठ और एकीभूत ध्रुव को दिवि में प्रमाण किया करते हैं ।। ६७ ।। ध्रुव, अग्नि और कश्यप इन तीनों में ध्रुव ही श्रेष्ठ कहा गया है । यह एक ही मेरु पर्वत के मूर्द्धा में भ्रमण किया करता है । यह ज्योतियों का चक्र अवाङ्मुख होता हुआ सदा कर्षण किया करता है । यह मेरु को देखता है और यहाँ प्रदक्षिण को जाता है ।। ६८-६६ ।।

।। प्रकर्ण ३५—ज्योतिमण्डल का विस्तार ।।

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः ।
पप्रच्छुरुत्तारं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ।।१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यदेतद्बुक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ।
कथं देवगृहाणिस्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ॥२
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषाञ्चैव निश्चयम् ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः ॥३
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः ।
तद्वोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम् ।
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥४
अतः परं त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्नेः पार्थिवस्य च ॥५
व्युष्टायान्तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ॥६
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते ।
यश्चादौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः ॥७

श्री शांशपायन ने कहा—मुनिगण ने यह सुनकर पुनः संशय से युक्त होकर अपने प्रश्न का लोमहर्षण से उत्तर पूछा ॥१॥ ऋषियों ने कहा—आपने जो यह कहा कि ये विश्रुत ग्रह हैं तो देवग्रह किस प्रकार से हैं और ज्योतियाँ किस तरह से हैं ? कृपा कर यह वर्णन करिये ॥ २ ॥ यह सब ज्योतियों का निश्चय बताइये । यह उनका वचन सुनकर उस समय सूत जी समाहित हुए और उन्होंने ऋषियों से कहा—॥ ३ ॥ महान् पण्डित तथा ज्ञान और बुद्धि वाले आप ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह अब मैं आपसे सूर्य, चन्द्र का जन्म कहता हूँ । यहाँ पर जिस प्रकार से देवगृह सूर्य, चन्द्र के ग्रह हैं ॥ ४ ॥ इसके आगे मैं तीन प्रकार की अग्नि का समुद्भव भी कहूँगा । दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि—इन तीनों प्रकार की अग्नियों की उत्पत्ति भलीभाँति बतलाई जाती है ॥ ५ ॥ व्युष्ट रात्रि में अव्यक्त से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्मा को यह निशा के अन्धकार से आवृत अव्याकृत था ॥ ६ ॥ चार भूतों से अवशिष्ट इसमें वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है । जो आदि में सूर्य में ताप देता है वह शुचि अग्नि कहा गया है ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैद्युताख्यस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम् ।
वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यपाङ्गर्भास्त्रयोऽग्नयः ।
तस्मादपः पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ॥८
वैद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्भिः प्रशाम्यति ।
मानवानांच कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः ॥९
अर्चिष्मान् परमः सोऽग्निः प्रभवो जाठरः स्मृतः ।
यश्चायं मण्डली शुक्लो निरूष्मा संप्रकाशते ॥१०
प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्तं याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥११
उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत् ।
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ॥१२
प्रकाशश्च तथौष्ण्यं च सौराग्नेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥१३
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिंश्च दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः ।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥१४

जो अग्नि वैद्युत—इस नाम वाला होता है उसका लक्षण बताया जायगा। तीन प्रकार की अग्नि होती हैं। एक वैद्युत, दूसरा जाठर और तीसरा अपाङ्गर्भ होता है। इससे जलों का पान करता हुआ सूर्य आकाश में किरणों से दीप्त हुआ करता है ॥ ८ ॥ वैद्युत से समाविष्ट अग्नि जलों से कभी शान्त नहीं करता है। जो मानवों की कुक्षि में स्थित रहने वाला जाठर अग्नि होता है वह भी जल से शमन को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥ ९ ॥ वह अग्नि परम अर्चियों वाला होता है जिसका प्रभव जाठर कहा गया है। जो यह मण्डली, शुक्ल और बिना ऊष्मा वाला संप्रकाशित होता है ॥ १० ॥ सौरी प्रभा पाद से दिवा करके अस्ताचलगामी हो जाने पर अग्नि में आविष्ट हो जाती है। रात्रि में वह दूर से प्रकाश देती है ॥ ११ ॥ वह आग्नेय उष्णता उगते हुए सूर्य में पुनः आविष्ट हो जाया करती है। पाद से पार्थिव अग्नि में है अतएव यह अग्नि ताप दिया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करती है ।। १२ ।। प्रकाश और उष्णता सौर तथा आग्नेय तेज रात-दिन परस्पर में अनुप्रवेश पाकर आप्यायित हुआ करते हैं ।। १३ ।। उत्तर के भूमि के अर्ध भाग में और उससे इस दक्षिण में पुनः सूर्य के उत्थित होने पर रात्रि अप में अर्थात् जल में प्रवेश करती है । इसी से जल ताम्र वर्ण वाले हो जाते हैं क्योंकि दिन और रात्रि में उनका प्रवेशन होता है ।। १४ ।।

अस्तं याति पुनः सूर्ये अहर्वै प्रविशत्यपः ।
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो विश्यन्ति भास्करे ।।१५
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ।
उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यपः ।।१६
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ।।१७
सहस्रपादः सोऽग्निस्तु वृत्तः कुम्भनिभः शुचिः ।
आदत्तो तत्तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः ।।१८
नादेयीश्चैव सामुद्रीः कौप्याश्चैव सधान्वनीः ।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्व सूर्यो हिरण्मयः ।
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनिःस्रवम् ।।१९
तासांचतुःशता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्त्तयः ।
वन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ।।२०
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ।।२१
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभास्तु गभस्तयः ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ।।२२

पुनः सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर दिन जल में प्रवेश किया करता है । इसी से रात्रि में शुक्ल जल भास्कर में आविष्ट होते हैं ।। १५ ।। इस क्रम के योग से दक्षिणोत्तर भूमि के अर्द्ध में उदयास्तमय में नित्य ही दिन-रात जल में प्रवेश किया करते हैं ।। १६ ।। जो यह सूर्य जलों का अपनी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किरणों के द्वारा पान करता हुआ तपता है यह निश्चय ही पार्थिव और विमिश्र दिव्य शुचि है—ऐसा कहा गया है ॥ १७ ॥ सहस्र चरणों वाला वह अग्नि कुम्भ के सदृश शुचि हो गया है जो कि सहस्र रश्मियों से सब ओर से उसे ग्रहण किया करता है ॥ १८ ॥ वे जल नादेयी, सामुद्री, कौप्य, सधान्वनी, स्थावर और जङ्गम होते हैं और जो सूर्य है वह हिरण्मय होता है। उसकी सहस्र रश्मियाँ, वर्षा, शीत और उष्णता का निःस्रव करने वाली होती हैं ॥ १९ ॥ उनकी चित्रमूर्त्ति वाली चार सौ नाड़ी वर्षती हैं। वन्दना, बन्ध्या, ऋतना, नूतना, अमृता इन नामों वाली होती हैं। ये सब रश्मियाँ वृष्टि के सर्जन करने वाली हैं ॥ २० ॥ उनसे भी अन्य तीन सौ हिमवाहा रश्मियाँ होती हैं। ये दृश्या, मेघ्या, वाह्या, ह्लादिनी, हिमसर्जना और चन्द्रा नामों वाली हैं। ये सब पीत आभा वाली गभस्तियाँ (किरणें) होती हैं। शुक्ला, ककुभ, गावः, विश्वभृत होती हैं ॥ २२ ॥

शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशता घर्मसर्जनाः ।
समं विभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥२३

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि ।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥२४

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स तैः सुतपते त्रिभिः ।
वर्षास्वथो शरदि चतुर्भिः सम्प्रकर्षति ॥२५

हेमन्ते शिशिरे चैव हिमं स सृजते त्रिभिः ।
ओषधीषु बलन्धत्ते स्वधया च पितॄनपि ।
सूर्योऽमरत्वममृतत्रयन्त्रिषु नियच्छति ॥२६

एवं रश्मिसहस्रन्तत् सौरं लोकार्थ साधकम् ।
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम् ॥२७

इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं सूर्यसंज्ञितम् ।
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ॥२८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः ।
शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामरूपिणः ॥२६

जो नाम से शुक्ल है वे सब तीन सौ हैं और धर्म का सर्जन करने वाली हैं। उनसे समान रूप से मनुष्य, पितर और देवों का भरण किया जाता है ॥२३॥ यहाँ मनुष्यों को औषध से, स्वधा से पितरों और अमृत से देवों को इन सब तीनों को यह तीनों से तृप्त किया करता है ॥२४॥ वसन्त और ग्रीष्म में वह तीनों से भली प्रकार तपा करता है। बर्षा और शरद में चारों से अच्छी प्रकार से प्रकर्षण किया करता है ॥२५॥ हेमन्त और शिशिर में वह तीनों से हिम का सृजन किया करता है। औषधियों में बल धारण करता है, स्वधासे पितरों को भी सूर्य तीनों में अमृतत्रय अमरत्व को दिया करता है ॥२६॥ इस प्रकार से सूर्य सम्बन्धी सहस्र रश्मियाँ लोक के अर्थ की साधक होती हैं। ऋतु को प्राप्तकर जल, शीत और उष्णता के स्रवण का भेदन करती हैं ॥२७॥ इतना यह मण्डल शुक्ल एवं भास्वर सूर्य की संज्ञा वाला है और नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र की प्रतिष्ठा का जन्म स्थान ही है। ऋक्ष-चन्द्रमा और ग्रह ये सब सूर्य से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ॥२८॥ नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा है और ग्रहों का राजा सूर्य होता है। शेष पाँच ग्रह कामरूपी ईश्वर जानने चाहिए ॥२९॥

पठ्यते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमाः स्मृतः ।
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ॥३०
सुरसेनापति स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ।
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः ॥३१
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्धर्मो प्रभुः स्वयम् ।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ॥३२
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ।
प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ।
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥३३
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ।।३४
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।
द्युतिद्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ।।३५
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् ।
ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ।।३६

आदित्य अग्नि पढा जाता है और चन्द्रमा औदक कहा गया है । शेषों की प्रकृति को जोकि भली भाँति वर्णन की जाने वाली है समझलो ।।३०।। देवताओं की सेना का स्वामी स्कन्द है और अङ्गारक ग्रह पढा जाता है । बुध को नारायण कहते हैं और देव को ज्ञान के वेत्ता जानते हैं ।।३१।। रुद्र वैवस्वत है जो लोक में साक्षात् धर्म एवं स्वयं प्रभु हैं । द्विजों में श्रेष्ठ मन्दगमन करने वाला महाग्रह शनैश्चर है ।।३२।। देवासुरगुरु (अर्थात् बृहस्पति और शुक्र) ये दोनों भानुमान् महाग्रह होते हैं । ये दोनों प्रजापति के पुत्र शुक्र और बृहस्पति नाम वाले हैं । दैत्य और महेन्द्र इन दोनों के आधिपत्य में विनिर्मित हुए हैं ।।३३।। यह समस्त त्रैलोक्य आदित्य के मूल वाला है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । सम्पूर्ण जगत् देव, असुर और मानवों के सहित इसका होता है ।।३४।। हे विप्रेन्द्र वृन्द । रुद्र इन्द्र उपेन्द्र चन्द्र देवों की जोकि द्युतिमान् है, समस्त द्युति और सार्वलौकिकतेज है उस सब की आत्मा समस्त लोकों के ईश मूल परम दैवत है अर्थात् सूर्य ही मूल और सबसे बड़ा देवता है । उससे ही सब उत्पन्न होता है सब कुछ उसी में प्रलीन हुआ करता है ।।३५।।३६।।

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुग्रहो रविः ।।३७
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ।
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः ।
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतदोऽब्दयुगानि च ।।३८
तदादित्यादृते तेषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न निगमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ।।३९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋतुनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः ।
कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ।।४०
अभावो व्यहाराणां देवानां दिवि चेह च ।
जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ।।४१
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः ।
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४२

समस्त लोकों के भाव और अभाव पहिले आदित्य से निकले थे । हे विप्रो ! यह जगत् ग्रह समझना चाहिए और दीप्तिमान रवि को सुग्रह जानना चाहिए ।।३७।। जहाँ पर क्षण, मुहूर्त-दिवसनिशा, पूर्णतया पक्ष, मास, सम्वसर, ऋतु, अयन और युग निधन को प्राप्त होते हैं अर्थात् समाप्त होते हैं और बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं ।।३८।। उस समय आदित्य के बिना उनकी काल संख्या नहीं होती है । काल के बिना निगम नहीं होता है, न दीक्षा होती है और न कोई आह्निक क्रम ही होता है ।।३९।। जब ऋतुओं का कोई विभाग ही नहीं है तो फिर पुष्प-मूल और फल कहाँ से कैसे हो सकते हैं ? सस्य की अभिनिव्यक्ति, गुण और ओषधिगणआदि भी कैसे हो सकेंगे ? ।।४०।। दिव और देवों का और यहाँ पर भी सभी व्यवहारों का अभाव हो जायगा । वारि के तस्कर अर्थात् अपहरण करने वाले भास्कर के बिना जगत का प्रतापन हो जायगा ।।४१।। हे द्विजश्रेष्ठो ! वह ही काल और अग्नि प्रजापति द्वादश स्वरूप वाला है । यह त्रैलोक्य में समस्त चराचर को तपता है ।।४२।।

स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः ।
उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत् ।
पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ।।४३
रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम् ।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ।।४४
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः सम्पद्वसुरतः परम् ।
अर्वावसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तितः ।।४५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयत् ।
तिर्यगूर्द्ध्वप्रभावोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्त्यते ॥४६
हरिकेशः पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्द्धयते बुधम् ॥४७
विश्वश्रवास्तु यः पश्चात् शुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः ।
सम्पद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य च ॥४८
षष्ठस्त्वर्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः ।
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट् ॥४९

वह यह ही समस्त एवं सार्वलौकिक तेजों की राशि है । वायु के उत्तम मार्ग में आस्थित होकर अपनी प्रभाओं से इस जगत् को पार्श्व में-ऊपर को और अधोभाग में सब ओर से यह ताप देता है ॥४३॥ सूर्य की सहस्र रश्मियाँ जो प्राङ्मय समुदाहृत हुई हैं उनमें भी फिर श्रेष्ठ ग्रहों की जन्मभूमि सात रश्मियाँ होती हैं ॥४४॥ अत्र यहाँ कुछ रश्मियों के नाम और उनके काम बतलाये जाते हैं । सुषुम्ना,हरिकेश- विश्वकर्मा-विश्वश्रवा-फिर अन्य परम सम्पद्वसु रतः, अर्वावसु-ये रश्मियाँ प्रकीर्तित की गई हैं ॥४५॥ सुषुम्ना नाम वाली जो सूर्य की रश्मि है वह क्षीण शशि की वृद्धि करती है । इसका प्रभाव तिर्यक् और ऊर्द्ध्व को हुआ करता है इसी लिये यह सुषुम्ना कही जाती है ॥४६॥ हरिकेश नामक रश्मि आद्यारश्मि है और यह नक्षत्रों का जन्म स्थान कही जाती है । विश्वकर्मा नाम वाली जो रश्मि है वह दक्षिणमें बुध का वर्धन किया करती है ॥४७॥ विश्वश्रवा नामक रश्मि जो है वह बुध के द्वारा पश्चात् शुक्र की योनि कही गई है । सम्पद्वसु जो रश्मि है वह लोहित की योनि होती है ॥४८॥ षष्ठ रश्मि अर्वावसु होती है वह बृहस्पति का जन्म स्थान होती है । और स्वराट् रश्मि फिर शनैश्चर को आप्यायित किया करती है ॥४९॥

एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारताः ।
वर्द्धन्ते विदिताः सर्वा विश्वञ्चेदं पुनर्जगत् ।
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥५०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्ति गभस्तिभिः ।
तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रताङ्गतः ॥५१
तीर्णानि सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ।
ताराणां तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥५२
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ॥५३
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते ।
सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनासौ सविता मतः ॥५४
बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥५५
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥५६

इस प्रकार से सूर्य के प्रभाव से सब ग्रह-नक्षत्र और तारागण बढते हैं। यह सर्व विदित है। यह विश्व और यह जगत् भी सूर्य के प्रभाव से ही वर्द्धित होता है। फिर वे क्षीण नहीं होते हैं इसी से नक्षत्रता कही गई है ॥५०॥ पहिले ये क्षेत्र गभस्तियों से आपतित होते हैं। उनके क्षेत्रों को सूर्य नक्षत्रता को प्राप्त हुआ ले लेता है ॥५१॥ इस संसार में सुकृत से तीर्ण और सुकृत के अन्त में ग्रहों के आश्रय से ताराओं में ये तारक हैं और शुक्ल होने से ही तारक होते हैं ॥५२॥ दिव्य-पार्थिव और नैश अर्थात् रात्रि में होने वाले अन्धकारों को तेजों के आदान करने से ही यह महान् अदित्य हुआ है अर्थात् आदान से आदित्य नाम पड़ा है ॥५६॥ स्पन्दन अर्थ में सुवति यह धातु विभावित होती है। तेजों के और जलों के सवन करने से यह सविता इस नाम वाला कहा गया है ॥५४॥ चन्द्र, यह बहुत अर्थ वाला है। ह्लादन में धातु होता है शुक्लत्व-अमृतत्व और शीतत्व में वह विभावित होता है ॥५५॥ सूर्य और चन्द्रमा के दिव्य आकाश व गमन करने वाले भास्वर मण्डल हैं, ये ज्वलन्त, तेजोमय, शुक्ल शुभ ओर वृत्त कुम्भ के तुल्य होते हैं ॥५६॥

घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मतम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ॥५७॥
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थाना न्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥५८
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्यो विशस्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥५९
शौक्रं शुक्रो विशस्थानं षोडशर्च्चिः प्रतापवान् ।
बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लौहितः ।
शानैश्वरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ॥६०
आदित्यरश्मिसंयोगात् संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ।
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥६१
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलञ्च प्रमाणतः ।
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ॥६२
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात् प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पार्थिवच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ॥६३

वहाँ घन तोयात्मक शशि का मण्डल कहा गया है और भास्कर का मण्डल घन तेजोमय शुक्ल कहा गया है ॥५७॥ समस्त देवता लोग सब ओर से इन स्थानों में प्रवेश किया करते हैं । समस्त मन्वन्तरों में नक्षत्र-सूर्य और ग्रहों के आश्रय होते हैं ॥५८॥ वे देवों के ग्रह ही हैं और उस आख्या अर्थात् नाम से वे होते हैं । सूर्य सौर-विशस्थान है और सोम सौम्य-विशस्थान होता है ॥५९॥ सोलह अर्चि वाला प्रताप से युक्त शुक्र शौक्र का प्रवेश स्थान है । बृहद् (बड़ा) बृहस्पति और लौहित ही लोहित तथा देव शनैश्चर शानैश्चर विशस्थान होता है ॥६०॥ ये सब आदित्य के रश्मियों के संयोग से सम्प्रकाशात्मिक कहे गये हैं । सविता का विष्कम्भ नौ सहस्र योजन वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥६१॥ उसका विस्तार तिगुना और प्रमाण से मण्डल होता है । सूर्य के विस्तार से दुगना शशि का विस्तार कहा गया है ॥६६॥ उन दोनों के तुल्य स्वर्भानु हो कर अधोभाग से प्रसर्पण किया करता है । पार्थिव अर्थात् पृथ्वी की छाया का उद्धरण करके यह मण्डल की आकृति वाला निर्मित हुआ करता है ॥६३॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानन्निर्मितं यत्तमोयम् ।
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ।।६४
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमञ्च पर्वसु ।
स्वर्भासा नुदते यस्मात्ततः स्वर्भानुरुच्यते ।।६५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवश्च विधीयते ।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात् प्रमाणतः ।।६६
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ।।६७
तारानक्षत्ररूपाणि स्वपुष्मन्तीह यानि वै ।
बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ ।।६८
प्रायशश्चन्द्रयोगानि विद्यादृक्षाणि तत्ववित् ।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ।।६९
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ।
पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ।।७०

स्वर्भानु का बृहत् स्थान जोकि तमोमय निर्मित हुआ है वह आदित्य से निकल कर पर्वों में चला जाया करता है ।।६४।। सोम से आदित्य में आता है और फिर पर्वों में सोम को जाया करता है । अपनी दीप्ति से नुदन किया करता है इसी कारण से यह स्वर्भानु- ऐसा कहा जाया करता है ।।६५।। चन्द्रमा का सोलहवां भाग भृगुका होता है जोकि विषकम्भ-मण्डल और योजनाग्र के प्रमाण से होता है ।।६६।। भार्गव से एक पाद हीन बृहस्पति को जानना चाहिए और बृहस्पति से एक पाद कम वाले कुज और सौर दोनों कहे गये हैं । विस्तार और मण्डल से उन दोनों से एक पाद हीन बुध को कहा गया है ।।६७।। यहाँ जो अपने वपु वाले तारा नक्षत्र रूप से युक्त है वे सब विस्तार तथा मण्डल से बुध के समान ही होते हैं ।।६८।। तत्ववेत्ता को चाहिए कि प्रायः इन्हें चन्द्र के योग वाले जानें । तारा नक्षत्र रूप वाले परस्पर में हीन हैं ।।६९।। सौ पाँच-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चार-तीन और दो योजन तारकमण्डल पूर्वापर में निकृष्ट होते हैं। उनमें आधे योजन से छोटा कोई भी नहीं होता है ॥७०॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः।
सौरोऽङ्गिराश्चवक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ॥७१
तेभ्योधऽस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥७२
यावन्त्यस्तारकाः कोटयस्तावदृक्षाणि सर्वशः।
वीथीनां नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थितः ॥७३
गतिस्तास्त्वेव सूर्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात्।
उत्तरायण मार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः।
बौधं बौधोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानो स्थानमास्थितः ॥७४
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥७५
कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥७६
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै ।
अभिमानिनोऽत्रतिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥७७

उनमें ऊपर से तीन ग्रह दूर सर्पी अर्थात् दूरतक सर्पण करने वाले होते हैं। और अङ्गिरा तथा वक्र ये मन्दचारी जानने के योग्य होते हैं ॥७१॥ उनके नीचे फिर चार अन्य महाग्रह होते हैं जो शीघ्र गमन करने वाले हैं ये सूर्य-सोम-बुध और भार्गव होते हैं ॥७२॥ जितने करोड तारका हैं उतने ही सब ओर नक्षत्र होते हैं। वीथियों के नियम से ही नक्षत्रों का मार्ग व्यवस्थित होता है ॥७३॥ सूर्य की वह गति नीच, उच्च अयन के क्रम से ही होती है। जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग में स्थित पर्वों में होता है तब बौध-बौध का और स्वर्भानु स्वर्भानु के स्थान में आस्थित होता है ॥७४॥ समस्त नक्षत्र,नक्षत्रों में प्रवेश किया करते हैं। ये सब ज्योतियाँ सुकृतात्माओं के गृह होते हैं ॥७५॥ कल्प के आदि में सम्प्रवृत्त स्वयम्भू के द्वारा निर्मित ये स्थान हैं और भूत संप्लव पर्यन्त रहते

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं ॥७६॥ समस्त मन्वन्तरों में देवताओं के आयत अभिमान वाले जब तक भूत संप्लव होता है अवस्थित हुआ करते हैं ॥७७॥

अतीतैस्तु सहातीता भाव्याभाव्यैः सुरासुरैः ।
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च स्थानानि स्वैः सुरैः सह ॥७८
अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः ।
विवस्वानदितेः पुत्रः सुर्यो वैवस्वतेऽन्तरे ॥७९
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरराजकः ॥८०
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरः सुतः ।
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥८१
अग्निर्विकल्पात् संजज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिपः ।
नक्षत्रर्क्षगामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ॥८२
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ।
सोमर्क्षग्रहसूर्ये तु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ॥८३
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ।
शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥८४
सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च ।
अथ श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम् ॥८५
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं सद्म षोडशरश्मिवत् ।
नवरश्मेस्तु यूनो हि लोहितस्थानमम्मयम् ॥८६
हरिश्चाप्यं बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः ।
अष्टरस्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं बुद्धस्य अम्मयम् ॥८७

अतीतों के साथ अतीत और भाव्यों के साथ भाव्य ये सुरासुर वर्त्तमानों के साथ अपने सुरों के साथ वर्त्तमान स्थान होते हैं ॥७८॥ इस मन्वन्तर में ग्रह वैमानिक कहे गये हैं। वैवस्वत अन्तर में सूर्य अदिति का पुत्र कहा गया है ॥७९॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र और सोमदेव वसु कहा गया है शुक्रदेव असुरराज भार्गव जानना चाहिए ॥८०॥ अङ्गिरा के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुत्र बृहत् तेज वाला देव बृहस्पति देवाचार्य कहा गया है। मनोहर बुध त्विषि पुत्र कहा गया है ॥८१॥ अग्नि विकल्प से उत्पन्न हुआ जोकि लोहिताधिप है। नक्षत्र ऋक्ष में गमन करने वाली वे दाक्षायणी कही गई हैं ॥८२॥ स्वर्भानु सिंहिका का पुत्र है जोकि प्राणियों को सन्ताप देने वाला असुर होता है। सोम ऋक्ष ग्रह सूर्य तो अभिमानी कीर्त्तित किये गये हैं ॥८३॥ ये सब स्थान जैसे बताये गये हैं और स्थानीय देवता जो बताये गये हैं उनमें विवस्वान् सूर्य का स्थान शुक्ल एवं अग्निमय स्थान होता है ॥८४॥ त्विषि सहस्रांश का स्थान जलमय और शुक्ल होता है। इसके अनन्तर पञ्चरश्मि मनोज्ञ का श्याम गृह कहा गया है ॥८५॥ शुक्र का भी स्थान जलमय तथा षोड़श रश्मि के तुल्य सद्म होता है। नवरश्मि युनकका अपमय लोहित स्थान होता है ॥८६ द्वादशांश बृहस्पति का हरि-आप्य और बृहत् स्थान होता है। अष्टरश्मि बुध का गृह कृष्ण और अपमय कहा गया है ॥८७॥

स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसन्तापनालयम् ।
विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्मयः ॥८८

आश्रयाः पुण्यकीर्त्तिनां सुशुक्लाश्चैव वर्णतः ।
घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादौ वेदनिर्मिताः ॥८९

उच्चात्वाद्दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभस्तिभिः ।
तथा दक्षिणमार्गस्थो नीविवीथोसमाश्रितः ॥९०
भूमिलेखावृतः सूर्यः पूर्णामावास्ययोस्तथा ।
न दृश्यते यथाकालं शीघ्रतोऽस्तमुपैति च ॥९१
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः ।
दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥९२

ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥९३

उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयौ ।
पूर्णमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्त्तिनौ ॥९४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वर्भानु का स्थान तामस होता है जोकि भूतों के सन्ताप देने वाला घर होता है। समस्त तारका जो हैं वे एक रश्मि वाले और अपमय जानने के योग्य होते हैं ॥८८॥ जो पुण्य कीर्त्ति होते हैं उनके आश्रय अच्छे वर्ण से शुक्ल हुआ करते हैं और वे धन-तोयात्मक होते हैं और उन्हें कल्प के आदि में ही वेद निर्मित जानना चाहिए ॥८९॥ उच्च होने से गभस्तियों के द्वारा अभिव्यक्ति होने के कारण शीघ्र दिखलाई दिया करते हैं तथा दक्षिण मार्ग में स्थित नीचि वीथी में समाश्रित होता है ॥९०॥ पूर्णिमा और अमावस्या में सूर्य भूमि लेखा से आवृत होता है। वह यथाकाल दिखलाई नहीं देता है और शीघ्र ही अस्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥९१॥ इससे उत्तर मार्ग में स्थित अमावस्या में निशाकर दक्षिण मार्ग में दिखाई देता है और नियम से दिखलाई नहीं दिया करता है ॥९२॥ ज्योतियों के ग्रह योग से सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों समान काल में अस्तमय तथा विषुवत् में समान काल में उदय वाले होते हैं ॥९३॥ उत्तरा वीथियों में अन्तर अस्त और उदय वाले होते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या में इन्हें ज्योतिश्चक्र के अनुवर्त्ती जानना चाहिए ॥९४॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान् ।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥९५
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्धञ्चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सीमादूर्द्धं प्रसर्पतिः ॥९६
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्धं बुधादूर्द्धं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्द्धं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋषीणाश्चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्द्धं व्यवस्थितः ॥९७
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥९८
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥९९
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृद्वस्थिताः ।
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥१००

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परस्परस्थिताः ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् ।
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः ॥१०१

जिस समय रश्मिमान् दक्षिणायन मार्ग में स्थित होता है उस समय वह सूर्य समस्त ग्रहों के अधोभाग में प्रसर्पण किया करता है ॥९५॥ मण्डल को विस्तीर्ण करके उसके ऊर्द्ध भाग में चन्द्रमा सञ्चारण किया करता है। समस्त नक्षत्र मण्डल चन्द्र से ऊपर प्रसर्पण किया करता है ॥९६॥ नक्षत्रों से ऊपर बुध और बुध से भी ऊर्ध्वभाग में बृहस्पति चरण किया करता है। उससे ऊपर शनैश्चर और उससे ऊर्ध्वभाग में सप्तर्षियों का मण्डल चरण करता है। सातों ऋषियों के ऊपर ध्रुव व्यवस्थित है ॥९७॥ दो सौ सहस्र योजनों के ऊपर यथा-क्रम तारागृहों के अन्तर हैं ॥९८॥ समस्त ग्रह, चन्द्र और सूर्य दिव में दिव्य तेज से नित्य ही ऋक्षों में युक्त होते हैं और नियम के क्रम से जाते हैं ॥९९॥ ग्रह, नक्षत्र और सूर्य नीच-उच्च और मृदु अवस्थित होते हैं। ये समागम में और भेद में एकसाथ प्रजा को देखते हैं ॥१००॥ परस्पर स्थित ये परस्पर में युज्यमान होते हैं। विद्वान पुरुषों के द्वारा उन का योग असङ्कर रूप से जानना चाहिए ॥१०१॥

इत्येष सन्निवेशो वः पृथिव्यां ज्योतिषस्य च ।
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च ॥१०२
वर्षाणां च नदीनाञ्च येषु तेषु वसन्ति वै ।
एते चैव ग्रहाः पूर्वं नक्षत्रेषु समुत्थिताः ॥१०३
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे ।
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः ॥१०४
त्विषिमान् धर्म्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ॥१०५
षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादन्तरम् ।
ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्यक्षेत्रे समुत्थितः ॥१०६
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः ।
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः सर्वासु च जगद्गुरुः ॥१०७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः ।
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः ॥१०८

इतना यह आपका पृथिवी में सन्निवेश और ज्योतिष का सन्निवेश है । इसी प्रकार से द्वीपों का, समुद्रों का, पर्वतों का तथा वर्षों का और नदियों का है जिनमें वास किया करते हैं। ये सब ग्रह पहिले नक्षत्रों में समुत्थित होते हैं । ॥१०२॥१०३॥ चाक्षुष अन्तर में विवस्वान् सूर्य अदिति का पुत्र है और यह विशाखाओं में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त ग्रहों में प्रथम ग्रह कहा जाता है ॥१०४॥ त्विषिमान् धर्म का पुत्र है और सोम विश्वावसु उसी प्रकार से है । यह शीतरश्मि निशाकर कृत्तिकाओं में समुत्पन्न हुआ है ॥१०५॥ षोड़शार्चि भृगुका पुत्र है अनन्तर में सूर्य से शुक्र है जो ताराग्रहों में प्रकट है और तिष्य में समुत्थित हुआ है ॥१०६॥ द्वादशार्चि वृहस्पति अङ्गिरा का पुत्र है और फाल्गुनी में उत्पन्न हुआ है तथा समस्त देवों में यह जगद्गुरु हैं ॥१०७॥ नवार्चि लोहिताङ्ग ग्रह प्रजापति का पुत्र है और यह पूर्वाषाढ में समुत्पन्न हुआ है ऐसा श्रुति है ॥१०८॥

रेवतीष्वेव सप्तार्चि स्तथा सौरशनैश्चरः ।
रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चन्द्रार्कमर्द्दनौ ॥१०९
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादय ।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतांयतः ।
स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥११०
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ।
ताराग्रहाणां शक्रस्तु केतुनाञ्चैव धूमवान् ॥१११
ध्रुवः कालो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥११२
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः ।
ऋतूनां शिशिरञ्चापि मासानां माघ एव च ॥११३
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ।
अहोरात्रिविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम् ॥११४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुहूर्त्तानां तथैवादिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवतः ।
अक्ष्णोश्चापि निमेषादिः कालः कालविदो मतः ॥११५

सप्तार्चि शनैश्चर सौर है और रेवती में ही समुत्पन्न हुआ है तथा चन्द्रार्क मर्दन ये दो ग्रह रोहिणी में समुत्पन्न हुए है ॥१०९॥ ये भार्गवादि सब ताराग्रह जानने के योग्य हैं क्योंकि ये जन्म नक्षत्र पीड़ाओं में विगुणता को प्राप्त किया करते हैं। इसके पश्चात् ग्रहभक्ति में वे उस दोष से स्पर्श करते हैं ॥११०॥ इन समस्त ग्रहों में आदित्य आदि कहा जाता है। ताराग्रहों में शुक्र और केतुओं में धूमवान् है ॥१११॥ चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों का ध्रुव काल होता है, नक्षत्रों का श्रविष्ठा और अयनों का उत्तर होता है ॥११२॥ पाँचों वर्षों में आद्य सम्वत्सर कहा गया है। समस्त ऋतुओं में शिशिर और सम्पूर्ण मासों में माघमास आद्य होता है ॥११३॥ पक्षों में शुक्ल पक्ष, तिथियों में प्रतिपत् और अहोरात्र के विभागों में अह आदि कहा गया है ॥११४॥मुहूर्त्तों में आदि मुहूर्त्त रुद्र दैवत होता है तथा अक्षियों में निमेष और कालविदों में काल माना गया है ॥११५॥

श्रवणान्तं श्रविष्ठादियुगं स्यात् पञ्चवार्षिकम् ।
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्त्तते ॥११६
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तं विद्धि चेश्वरम् ।
चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ॥११७
इत्येष ज्योतिषामेव सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ।
लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः ॥११८
उत्पन्नः श्रवणेनासौ संक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा ।
सर्वतोऽन्तेषु विस्तीर्णो वृक्षाकार इति स्थितिः ॥११९
बुद्धिपूर्वम्भगवता कल्पादौ संप्रकीर्तितः ।
साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ।
विश्वरूपः प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ॥१२०
नैव शक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् ।
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा ॥१२१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ।
परीक्ष्य निपुणं भक्तया श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥१२२
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः ।
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्यतिर्गणविचिन्तने ॥१२३

श्रविष्ठा के आदि से लेकर श्रवण के अन्त तक पाँच वर्ष का युग होता है । भानु की गति की विशेषता से चक्र की भाँति परिवर्त्तित होता है ॥११६॥ दिवाकर को काल कहा गया है और उस को ईश्वर जानो । चार प्रकार के प्राणियों का यह प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक होता है ।।११७॥ यह इतना अर्थ के निश्चय से ज्योतियों का ही सन्निवेश है और इसे लोक के सम्यक् प्रकार से व्यवहार के लिये ईश्वर ने निर्मित किया है ॥११८॥ यह श्रवण से उत्पन्न तथा ध्रुव में संक्षित सब ओर से अन्तों में विस्तीर्ण वृक्ष के आकार जैसी इसकी स्थिति होती है ॥११६॥ भगवान् ने कल्प के आदि में बुद्धि के साथ इसे सम्प्र-कीर्त्तित किया है । यह आश्रय के सहित–अभिमानी और सब का ज्योतिरात्मक है । विश्वरूप वाला यह प्रधान का एक अद्भुत परिणाम है ॥१२०॥ यह किसी के भी द्वारा यथार्थ रूप से प्रसंख्यात नहीं किया जा सकता है । मनुष्यों में ज्योतियों के गतागत को मांस–चक्षु से देखा भी नहीं जा सकता है ॥१११॥ आगम से–प्रत्यक्षमान से और उपपत्ति से विद्वान पुरुष को भलीभाँति परीक्षण करके भक्ति से श्रद्धा करनी चाहिए ।।१२२।। चक्षु–शास्त्र–जल--लेख्य और गणित-बुद्धिसत्तमो ! ये पाँच हेतु ज्योतियों के गण के विचिन्तन में जानने के योग्य हैं ॥१२३॥

॥ प्रकर्ण ३२—नीलण्ठकस्तुति ॥

कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ।
वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महाद्युते ।
एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधनः ॥१
यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना ।
कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठः सत्रे वर्षसहस्रके ॥२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः ॥३
उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितोह्रदाः ।
पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ।
गिरिश्रृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥४
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि ॥५
ऋग्यजुः सामवेदैश्च नृत्यगीतार्च्चनादिभिः ।
ओङ्कारेण नमस्कारैरर्च्चयन्ति सदा शिवम् ॥६
प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे मध्यव्याप्ते दिवाकरे ।
देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति तां कथाम् ।
अथ नियमप्रवृताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ॥७

ऋषि लोग बोले किस देश में महान् पुण्य वाला यह उत्तम आख्यान हुआ ? हे महान् द्युतिवाले ! ब्रह्म-पुरोगों का यह आख्यान किस काल में हुआ है ? तपोधन ! यह सब हमसे भलीभाँति कहिए जैसे भी हुआ हो ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! एक सहस्र वर्ष वाले सत्र में इस जगत् की आयु वायु के द्वारा कथ्यमान पहले जैसा भी मैंने सुना है ॥२॥ जिसके द्वारा देवों के भी देव भगवान् शूली के कण्ठ की नीलता हुई उसे मैं अब कहता हूँ आप शंसित व्रत वाले उसे श्रवण करो ॥३॥ शैलराज के उत्तर में सरित्-सर और ह्रद हैं। पुण्योद्यानों में—तीर्थों में--देवताओं के आयतनों में पर्वतों के शिखरों में जो कि बहुत ऊँचे हैं और गह्वरउपवनों में देव के भक्त शंसित व्रत वाले महान् आत्मा वाले मुनि लोग जहाँ-जहाँ यथाविधि महादेव की स्तुति किया करते हैं ॥४॥५॥ ऋक्-यजु और साम वेदों के द्वारा, नृत्य, गीत और अर्चन आदि से ओङ्कार से और नमस्कार से सदाशिव की अर्चा किया करते हैं ॥६॥ ज्योतियों के चक्र के प्रवृत्त होने पर दिवाकर के मध्य में व्याप्त हो जाने पर नियत आत्मा वाले देवगण सब सस कथा को कहते हैं। इसके अनन्तर नियमों में वे प्रवृत्त होते हैं कि उनके केवल प्राण ही शेष व्यवस्थित होते हैं ॥७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागतिः ।
तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ।
वालखिल्येति विख्याताः पतङ्गसहचारिणः ॥८
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीना मूर्द्धरेतसाम् ।
तस्मात् पृच्छन्ति वै वायुं वायुपर्णाम्बुभोजनाः ॥९
नीलकण्ठेति यत् प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम ।
एतद्गुह्यं पवित्राणां पुण्यं पुण्यकृतां वराः ॥१०
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ।
नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापतेः ॥११
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्त्राद्विशेषतः ।
यावद्वाचः प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिताः ॥१२
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः संप्रवर्तते ।
ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते ॥१३
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः ।
यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभाः ॥१४

सदागति अर्थात् वायु ने 'नीले कण्ठ वाले आपके लिये नमस्कार है'—यह कहा । यह सुनकर शंसित व्रत वाले भावितात्मा मुनिगण जो कि वालखिल्य इस नाम से विख्यात हैं और पतङ्ग (सूर्य) के सहचारी हैं और ऊर्द्धरेता मुनियों में अट्ठासी सहस्र हैं तथा केवल वायु, पत्ते और जल के भोजन करने वाले थे वे सब वायु से पूछते हैं ॥ ८-९ ॥ ऋषियों ने कहा—हे पवन सत्तम ! आपने अभी 'नीलकण्ठ'—यह जो कहा है—यह गुह्य विषय है जो पवित्रों का, पुण्यकृतों का पुण्य एवं श्रेष्ठ है । हे प्रभञ्जन ! इसे हम आपकी कृपा से सुनने की इच्छा करते हैं जिस कारण से अम्बिका के पति के कण्ठ की नीलता हुई थी, आपके मुख से विशेष रूप से उसे भली-भाँति श्रवण करने की इच्छा रखते हैं । जितनी भी वाणी प्रवृत्त होती है वह आपके द्वारा ईरित होती हुई सार्थ हुआ करती है ॥ १०-११-१२ ॥ वायु के वर्ण और स्थान पर जाने पर वाग् की विधि संप्रवृत्त होती है । हे वायो ! पहिले ज्ञान और इसके उपरान्त उत्साह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आपसे प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ आपके निष्पन्दमान होने पर ही शेष वर्णों की प्रवृत्ति हुआ करती है । जहाँ वाणी निवृत्त हो जाती है वहाँ देहबन्ध दुर्लभ होता है ॥ १४ ॥

तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः सर्वगस्त्वं सदानिल ।
नान्यः सर्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण ॥१५
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल ।
वेत्थ वाचस्पतिं देवं मनोनायकमीश्वरम् ॥१६
ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ।
श्रुत्वा वाक्यन्ततस्तेषामृषीणां भावितात्मानाम् ।
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोक नमस्कृतः ॥१७
पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः ।
वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापतेः ॥१८
प्रपच्छ कार्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम् ।
महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥१९
महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
उमामनःप्रहर्षेण बालकं छद्मरूपिणम् ॥२०
क्रौञ्चजीवितहर्त्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम् ,
वसिष्ठः पृच्छते भक्त्या कार्तिकेयं महाबलम् ॥२१

वहाँ पर भी आपका सद्भाव रहता है हे अनिल ! आप सदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हे समीरण ! आपके बिना अन्य कोई भी देव सर्वगत नहीं है ॥ १५ ॥ हे अनिल ! यह जीवों का लोक सब ओर से आपके लिये प्रत्यक्ष ही है । आप वाणी के पति और मन के नायक देव ईश्वर को जानते हैं ॥ १६ ॥ आप बतलाइये उनके कण्ठ देश के रूप की विक्रिया किस कारण से हुई है । इसके अनन्तर भावित आत्मा वाले उन ऋषियों के इस वचन को सुनकर लोकों के द्वारा नमस्कृत महान् तेज से युक्त वायुदेव कहने लगे ॥ १७ ॥ श्री वायुदेव ने कहा—पहिले समय में कृतयुग में वेद के निर्णय करने में परायण वसिष्ठ नाम वाले ब्राह्मण बहुत ही धर्मात्मा तथा प्रजापति के मानस पुत्र थे

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ १८ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन वाले कार्त्तिकेय से वसिष्ठ ने पूछा था जो कि महिषासुर की स्त्रियों के नयनों के अञ्जन के चुराने वाले तस्कर थे। जो महासेन—महात्मा और मेघ के गर्जित के समान ध्वनि वाले थे। उमा के मन के प्रहर्ष से बालक रूप वाले एवं छद्म रूपी थे तथा क्रौञ्च के जीवन का हरण करने वाले और पार्वती के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। ऐसे महान् बल वाले स्वामी कार्त्तिकेय से वसिष्ठ मुनि पूछते हैं और भक्ति के भाव के साथ पूछते हैं ॥ १९-२०-२१ ॥

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥२२
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत ।
नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ।
एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥२४
यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभ्रं शुभ्राञ्जनप्रभम् ।
तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसंप्रभे ॥२५
एतदाम्नाय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम् ।
मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥२६
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ॥२७
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ।
उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथाश्रुतम् ॥२८

वसिष्ठ जी ने कहा—महादेव को आनन्द प्रदान करने वाले हे उमागर्भ ! आपको हमारा नमस्कार है। अग्निगर्भ आपके लिये हे गङ्गागर्भ ! हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे कृत्तिका सुत ! शरगर्भ ! आपके लिये नमस्कार है। द्वादश नेत्रों वाले तथा षट् मुखों वाले आपके लिये नमस्कार है। शक्ति को हाथ में रखने वाले तथा दिव्य घण्टा और पताका वाले आपके लिये नमस्कार

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है । इस प्रकार से स्तवन करके शिखी के वाहन वाले महासेन से पूछा ॥ २३-२४ ॥ जो यह शुभ्र अञ्जन की प्रभा के समान शुभ वर्ण है वह कुन्द एवं इन्दु के सदृश प्रभा वाले कण्ठ में नीलता कैसे उत्पन्न हुई है ॥२५॥ यह आप्त-भक्त-दान्त तथा मङ्गल से संयुक्त-पवित्र और पापों के नाश करने वाली कथा के पूछने वाले मुझे बतलाइये । हे महाभाग । मेरे प्रिय के लिये आप सम्पूर्ण रूप से कहने के योग्य होते हैं ॥२६॥ इसके अनन्तर महात्मा उस वशिष्ठ के वचन को सुनकर सुरों के शत्रुओं के बल के नाशक महान् तेज से युक्त वायु ने कहा है ॥२७॥ हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! कहे जाने वाले मेरे वचन का श्रवण करो जोकि उमा के गोद में बैठे हुए मैंने पहिले जैसा भी कुछ सुना है ॥२८॥

पार्वत्या सह संवादः शर्वस्य च महात्मनः ।
तदहङ्कीर्त्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ॥२९
विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे ।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ॥३०
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन ।
तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥३१
नात्युल्बणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
किमिदं दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्ग नाशन ॥३२
को हेतुः कारणं किञ्च कण्ठे नीलत्वमीश्वर ।
एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ॥३३
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः पार्वतीप्रियः ।
कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शङ्करः ॥३४
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषं कालानलप्रभम् ॥३५
तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्चैव वरानने ।
विषण्णवदनाः सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥३६

विशुद्ध मुक्ता और मणियों तथा रत्नों से भूषित-हेममय एवं परम सुन्दर शिलातल पर सुखपूर्वक विराजमान मदन के अंग को दग्ध करने वाले

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शम्भु से गिरिराज पुत्री बोली ।।२९।। देवी ने कहा—हे भगवान् ! हे भूत भव्येश ! हे गो वृषाङ्कित शासन ! हे महादेव । आपके कण्ठ में अम्बुद के तुल्य भ्राजमान होता है । हे काम के अङ्ग के नाशन । यह न तो अत्यन्त उल्वण ही है और न शुभ्र ही है—यह नीले अञ्जन के ढेर के समान हे देव ! क्या कण्ठ दीप्यमान हो रहा है ।।३०-३१।। हे ईश्वर ! में नीलत्व होने का क्या हेतु है और क्या कारण है ? यह सभी यथान्याय बतलाइये, मुझे इस बात के सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ।।३२।। इसके उपरान्त पार्वती के प्रिय ने उस अपनी प्रिया पार्वती का यह वचन सुनकर शङ्कर भगवान् ने मङ्गल से संयुक्त कथा को कहना आरम्भ किया था ।।३३।। पहिले समय में देव और दानवों के द्वारा क्षीर समुद्र के मथ्यमान होने पर अर्थात् अमृत के लिये उसका मन्थन किये जाने पर प्रथम उसमें काले अनल के प्रभा के समान विष उत्पन्न हुआ था ।।३४।. हे वर आनन वाली। उसको देख कर देवों के समुदाय और दैत्यों के समूह भी सभी बहुत ही विषाद से युक्त मुख वाले हो कर ब्रह्मा जी के समीप में गये ।।३५।।३६।।

दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच महाद्युतिः ।
किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ।।३७

मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवतां सम्प्रकल्पितम् ।
केन व्यावर्त्तितैश्वर्या गूयं वै सुरसत्तमाः ।।३८

त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः ।
प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञां यो मे निवर्त्तयेत् ।।३९

विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।
अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ।
प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्त्तितुम् ।।४०

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता इव ।
किं दुःखं केन सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ।
एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ।।४१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उस समय में समस्त देवों के गणों को बहुत ही भीत देख कर श्रीब्रह्मा-जी जो कि महान् द्युति वाले थे बोले—हे महान् भाग वालों। आप लोग किस लिये इतने भयभीत (डरे हुए) और उद्विग्न चित्त वाले हो रहे हैं ।।२७।। मैंने आप लोगों को आठ गुण वाला ऐश्वर्य सम्प्रकल्पित किया है। अब किसके द्वारा वह ऐश्वर्य व्यावर्तित कर दिया गया है जो आप उससे रहित से हे सुरश्रेष्ठो ! इस समय हो रहे हैं ! ।।२७।। आप सब तीनों लोकों के ईश्वर हैं और आप सब समस्त प्रकार के दुःख से रहित हैं। इस प्रजा की सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं है जो कि मेरी आज्ञा को निवर्त्तन कर देवे ।।२८।। आप सब तो वायु में उड़ कर जाने वाले विमानों से गमन करने वाले हैं और अत्यन्त स्वच्छन्द रूप से गमन करने वाले हैं । आप समस्त प्रजा को आध्यात्मिक-आधिभौतिक और आधि दैविक में नित्य ही कर्मों के विपाक से प्रवृत्त करने के लिये समर्थ हैं। ।।३९।। फिर आप किस कारण से सिंह के द्वारा सताये गये मृगों के समान ऐसे भय से उद्विग्न हो रहे हैं ? क्या दुःख है ? किसके द्वारा सन्ताप प्राप्त हो रहा है ? भय कहाँ से प्राप्त हो रहा है ? यह सभी बात न्यायानुसार शीघ्र आप लोग बताने को योग्य होते हैं ।।४०।।४१।।

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्मनः ।
ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्द्धं सुरदैत्येन्द्रदानवाः ।।४२
सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः ।
भुजङ्गभृङ्गसङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ।
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ।।४३
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ।
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं प्रस्फुरन्तं समन्ततः ।।४४
विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा ।
निर्दग्धो रक्तगौराङ्गः कृतकृष्णो जनार्दनः ।।४५
दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतकृष्णं जनार्दनम् ।
भीताः सर्वे वयं देवास्त्वामेव शरणं गताः ।।४६
सुराणामसुराणाञ्च श्रुत्वा वाक्यं पितामहः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया ॥४७
शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।
यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ ॥४८
विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम् ।
येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतकृष्णो जनार्दनः ॥४९

इस प्रकार से महान् आत्मा वाले ब्रह्मा जी के इस वाक्य को सुनकर उस समय ऋषियों के साथ में रहने वाले देव-असुर और दानव सभी ने कहा ॥४२॥ महात्मा देव और असुरों के द्वारा पाथोधि के मन्थन किये जाने पर कृष्णसर्प तथा भौंरा के समान एवं नील वर्ण वाले मेघ के तुल्य सम्वर्ताग्नि की प्रभा वाला घोर विष उसमें से प्रादुर्भूत हुआ है ॥४३॥ काल मृत्यु की भाँति उद्भूत वह है जोकि युग के अन्त समय में आदित्य के वर्चस के समान वर्चसवाला, त्रैलोक्य को उत्सादित करने वाले चारों ओर से प्रस्फुरित सूर्य की आभा वाला, है ॥४४॥ उस कालानल के समान कान्ति वाले उत्तिष्ठमान विष से निर्दग्ध रक्त और अङ्ग वाले जनार्दन कृतकृष्ण हो गये हैं ॥४५॥ उन रक्त और अङ्ग से युक्त जनार्दन को कृष्णीभूत देखकर हम सभी भीत होते हुए देवगण इस समय आपकी शरण में आये हुए हैं ॥४६॥ तब तो पितामह श्रीब्रह्माजी ने सुर तथा असुरों के इस बचन को सुनकर महान् तेज से युक्त लोकों के हित की कामना से कहा—॥ ४७ ॥ हे समस्त देवताओं और हे तप के हो धन वाले समस्त ऋषिगणों ! सुनिये, जो सबसे पहिले समुद्र मन्थन करने पर उत्पन्न हुआ करता है वह काले अनल के समान विष कालकूट विश्रुत है जिसके उत्पन्न होने मात्र से ही जनार्दन कृत कृष्ण हो गये हैं ॥४८॥४९॥

तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः ।
न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शङ्करात् ॥५०
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः ।
ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥५१
ततः प्रीतो ह्यहं तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने ।
ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ॥५२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
किं कार्यं ते मया ब्रह्मन् कर्त्तव्यं वद सुव्रत ॥५३
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणः ।
भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां कारणेश्वर ॥५४
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ।
भगवन्मेघ सङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ॥५५
प्रादुर्भूतं विषङ्घोरं संवर्त्ताग्निसमप्रभम् ।
कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्च्चसम् ॥५६
त्रैलोक्योत्सादि सूर्याभं विस्फुरन्तं समन्ततः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषङ्कालानलप्रभम् ॥५७

उसके इस महान् वेग को भगवान् विष्णु—मैं और सभी सुरों में श्रेष्ठ आप लोग कोई सहन करने में समर्थ नहीं है केवल शङ्कर ही उसे सहन कर सकते हैं ॥५०॥ यह कह कर पद्मगर्भ की आभा वाले-अयोनिज और पद्मयोनि लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने स्तुति करने का आरम्भ कर दिया ॥५१॥ इसके अनन्तर उन सुमहात्मा ब्रह्मा पर मैं परम प्रसन्न हो गया और सूक्ष्म वाणी से मैंने पितामह से कहा ॥५२॥ हे भगवन् ! हे भूत और भव्य के स्वामिन् ! हे लोकों के नाथ ! हे जगत् के पति ! हे ब्रह्मन् ! आपको मुझसे क्या कराना है वह सुव्रत ! अब आप मुझे बतादेवें ॥५३॥ कमल के समान नेत्रों वाले ब्रह्मा जी ने मेरे इस वाक्य को सुन कर फिर कहा—॥५४॥ संवर्त्ताग्नि के समान प्रभा वाला महाघोर विष प्रादुर्भूत हो गया है । वह विष कालमृत्यु की भाँति उद्भूत हुआ है जो युग के अन्त में हो जाने वाले आदित्य के तुल्य वर्चस वाला और त्रौलोक्य के उत्सादन करने वाले सूर्य की अभावाला है, जोकि सभी ओर विशेष रूप से स्फुरित है । वह कालानल के समान प्रभा वाला सबसे आगे समुत्थित है ॥५५॥५६॥५७॥

तं दृष्ट्वा तु वयं सर्वे भीताः सम्भ्रान्तचेतसः ।
तत् पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ।
भवानग्र्यस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वरः प्रभुः ॥५८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्वामृतेऽन्यो महादेव विषं सोढुं न विद्यते ।
नास्तिकश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ।।५६
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ।।६०
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ।
पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयंकरम् ।
कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ।।६१
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् ।
तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ।।६२
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ।।६३
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ।
पश्यतां देवसङ्घानां दैत्यानाञ्च वरानने ।।६४
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ।।६५

उसे देख कर हम सब सम्भ्रान्त चित्त वाले डरे हुए हैं सो उसे हे महादेव ! आप लोकों की हितकामना से पान कर जाइये । आप सबसे पूर्व में निकलने वाले का भोग करने वाले हैं और आप ही प्रभु वरदान हैं ।।५८।। हे महादेव । आपको छोड़कर अन्य किसी की भी सामर्थ्य नहीं है जो उस विषको सहन कर सके । इस त्रैलोकी में ऐसा शक्तिशाली कोई पुरुष नहीं बताया जाता है ।।५६।। हे वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन को सुनकर 'बहुत अच्छा'—यही वचन कह कर मैंने स्वीकार कर लिया था ।।६०।। उस अन्तिक-सन्निभ विष को पीना आरम्भ कर दिया था । उस महान् घोर सुरों को भी भय देने वाले विष को पान करते हुए मेरा कण्ठ हे वर वर्णिनी ! तुरन्त ही कृष्ण हो गया था ।।६१।। उत्पल की आभा वाले-कण्ठ में संसक्त उरग की भाँति-चाटते हुए नागराज तक्षक के समान स्थित उस को देख कर पितामह बोले।।६२।। इसके उपरान्त महान् तेज से युक्त लोक पितामह ब्रह्माजी ने कहा— हे सुव्रत !

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महादेव ! आप इस नील वर्ण वाले कण्ठ से परम शोभा को प्राप्त होते हैं ।।६३।। हे गिरिवर की आत्मजे । इसके पश्चात् मैंने उनके इस वचन को सुन कर देवों के समूह—दैत्य—यक्ष–गन्धर्व भूत—पिशाच–उरग और राक्षस आदि सब के देखते हुए फिर उस महाविष को कण्ठ में ही धारण कर लिया था । तब से ही मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ ।।६५।।

।। प्रकर्ण ३७ - लिङ्गोद्भव स्तुति ।।

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वरः ।
श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाश्चर्यं गुणविस्तरम् ।।१
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
महादेवस्य माहात्म्यं विभुत्वञ्च महात्मनः ।।२
पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ।
बलिं बद्धा महौजास्तु त्रैलोक्याधि पतिः पुराः ।।३
प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ।
अथाजग्मुः प्रभुं द्रष्टुं देवाः सवासवाः ।।४
यत्रास्ते विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः ।
सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ।।५
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।
अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ।।६
त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ताऽस्य त्वं लोकान् सृजसि प्रभो ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याण प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ।
असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ।।७

ऋषियों ने कहा—बोलने वालों में श्रेष्ठ गुण-कर्म और प्रभाव से कौन अधिक है । इस गुणों के विस्तार वाले आश्चर्य को हम सुनना चाहते हैं ।।१।। श्रीसूतजी ने कहा—यहाँ पर इस पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं जिसमें महादेव का माहात्म्य और उन महान आत्मा वाले का विभुत्व वर्णित होता है ।।२।। पहिले त्रैलोक्य के विजय में भगवान विष्णु ने समुदाहृत किया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है । ओज से युक्त त्रैलोक्य के अधिपति ने पहले समय में बलिराजा को बाँधकर ही यह उदाहृत किया था ।३। समस्त दैत्यों के नष्ट हो जाने पर शची के पति इन्द्रदेव के परम प्रसन्न होने पर इसके उपरान्त इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्रभु के दर्शन करने के लिये आये थे ।।४।। वह विश्वरूपात्मा क्षीरसागर के समीप में जहाँ पर थे वहाँ सिद्ध—ब्रह्मर्षि—यक्ष—गन्धर्व—अप्सराओं के समूह-नाग-देवर्षि नदी-समस्त पर्वत आकर महान् आत्मा वाले पुरुष हरि का स्तवन करते हैं ।।५।। ।।६।। हे प्रभो ! इस समस्त विश्व के आप ही धाता है-आप ही कर्त्ता हैं और आप ही इन लोकों का सृजन किया करते हैं । आपके प्रसाद से ही यह अव्यय त्रैलोक्य कल्याण को प्राप्त होता है । आपने समस्त असुरों को जीत लिया है है और असुरों के राजा बलि को भी बद्ध कर लिया है ।।७।।

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ।
प्रत्युवाच ततो देवान् सर्वांस्तान् पुरुषोत्तमः ।।८
श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः ।
यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः ।।९
येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतम् ।।१०
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ।
उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा ।।११
सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
शङ्खचक्रगदा पाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ।।१२
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ।।१३
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ।।१४

इस प्रकार से कहे हुए सुर-सिद्ध और वह महर्षियों के द्वारा स्तुत भगवान् विष्णु पुरुषोत्तम समस्त देवों से कहने लगे ।।८।। हे सुरसत्तमो ! इसका कारण मैं बताऊँगा आप सब सुनिये । जो समस्त प्राणियों का सृजन करने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाला है वह काल को भी करने वाला प्रभु काल है ॥९॥ जिस ब्रह्मा के साथ माया से लोकों का सृजन किया गया है उसी के प्रसाद से आदि में सिद्धत्व को आया ॥१०॥ पहिले अव्यक्त तममे मेरे द्वारा त्रैलोक्य के ग्रासित होने पर उस समय समस्त प्राणियों के उदरस्थ होने पर मैं लोक में शयन करने वाला था ॥११॥ मैं उस समय सहस्र शीर्षों वाला-सहस्र नेत्रों से युक्त तथा सहस्र चरणों वाला शंख-चक्र-गदा हाथों में लिये हुए विमल जल में शयन करता था। ॥१२॥ इसी बीच में दूर से अमित प्रभा वाले तथा एक शत सूर्यों के प्रतीकाश अपने ही तेज से ज्वलन्त होते हुए चारमुखों वाले-महान् योग से युक्त सुवर्ण के जैसी प्रभा से परिपूर्ण-कृष्ण मृग चर्मधारी-कमण्डलु से भूषित देव पुरुष को देखता हूं जोकि एक निमिष में ही यह पुरुषोत्तम प्राप्त हो गया ॥१४॥

ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोके नमस्कृतः।
कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५
अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः।
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाचतम् ॥१६
अहं कर्त्ता च लोकानां संहर्त्ता च पुनः पुनः।
एवं सम्भाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम्।
उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाप्यधिष्ठिता ॥१७
ज्वालान्ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानयोः।
तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिःकृतं जलम् ॥१८
वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते।
अतिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहञ्च सत्वरः ॥१९
दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम्।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥२०
प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपिम्।
न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ॥२१

इसके अनन्तर समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्दित ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा—हे विभो ! आप कौन हैं-कहाँ से और क्यों यहाँ स्थित हैं मुझे

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बतलाइये ॥१५॥ मैं तो समस्त लोकों का कर्त्ता हूँ और विश्वतोमुख स्वयम्भू हूँ। इस प्रकार से उस ब्रह्मा के द्वारा कहे गये मैंने उनसे कहा—॥१६॥ इन समस्त लोकों का सृजन करने वाला तथा संहार करने वाला और बार-बार ऐसा ही करते रहने वाला मैं हूँ। इस तरह से आपस में सम्भाषण करने वाले दोनों के, जोकि परस्पर में जय प्राप्त करने की इच्छा वाले थे उत्तर दिशा में आस्थित होकर अविष्ठित ज्वाला देखी गई ॥१७॥ ज्वाला के मध्य से उसको देखकर विस्मित हुए। तव इनके तेज से सब जल ज्योतिकृत होगया ॥१८॥ उस समय अत्यन्त एवं परम अद्भुत वह्नि के बढ़जाने पर ब्रह्मा और मैंने शीघ्रता से उस ज्वाला का अति द्रवण किया ॥१९॥ दिव और भूमि को विष्टवन करके स्थित रहने वाले उस ज्वालाओं के मण्डल के मध्य में एक विपुल प्रभा वाले पुरुष को हम दोनों देखते हैं ॥२०॥ वह प्रादेश मात्र अत्यन्त दीपित अव्यक्त लिङ्ग था। न तो कंचन था, मध्य में न राजत (चाँदी का) शैल ही था ॥२१॥

अनिर्द्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः।
महौजसं महाघोरं वर्द्धमानं भृशं तदा।
ज्वालामालायतं न्यस्तं सर्वभूतभयङ्करम् ॥२२
अस्य लिङ्गस्य योऽन्तं च गच्छते मन्त्रकारणम्।
घोर रूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ॥२३
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छ त्वतन्द्रितः।
अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ॥२४
अह मूद्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते।
तदा तौ समयं कृत्वा गतावूद्ध्र्वमधश्च ह ॥२५
ततो वर्षसहस्रन्तु अहं पुनरधो गतः।
न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ॥२६
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तन्तस्य पश्यति।
समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महाम्भसि ॥२७
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः।
मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ॥२८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह अनिर्देश्य और न चिन्तन करने के योग्य तथा बार-बार लक्ष्य-लक्ष्य था। महान् ओज से युक्त- महाघोर और उस समय बहुत ही अधिक बढने वाला था। ज्वालामाला जैसा आयत एवं न्यस्त तथा समस्त प्राणियों को महा भयङ्कर था ॥२२ इस लिङ्ग के जो अन्त तक जाता है उसका कारण मंत्र ही है। वह अत्यन्त घोर रूप धारी ऐसा था मानों रोदसी का भेदन करता हुआ हो ॥२३॥ इस के अनन्तर ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि आप अतन्द्रित होते हुए नीचे की ओर जावें। इस महात्मा लिङ्ग का अन्त हम जान लेवें ॥२४॥ मैं ऊपर के भाग में जाता हूँ जब तक कि इसका अन्त दिखाई देता है। तब उस समय बस प्रकार से वायदा करके ऊद्ध्र्वभाग में तथा अधोभाग में गये ॥२५॥ इसके पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक मैं वहाँ नीचे के भाग में गया था। वहाँ मैंने उसक कहीं अन्त नहीं देखा और मैं भीत हो गया—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२६॥ उसी प्रकार से ब्रह्मा भी श्रान्त हो गये और वह भी उसका अन्त नहीं देखते हैं और मेरे साथ उसी महाजल में बापिस आगये थे ॥२७॥ तब हम दोनों उस महात्मा के विषय में परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और उसके द्वारा माया से मोहित हो गये एवं नष्ट संज्ञा वाले होकर व्यवस्थित हो गये थे ॥२८॥

ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् ।
प्रभवं निधनञ्चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥२९
ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ।
महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ।
अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥३०
नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महांश्च ।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ॥३१
परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् :
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः ॥३२
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम् ।
स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्वकर्मणाम् ॥३३
स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वेदा लोकाश्चा देवाश्चभगवानेव सर्वशः ॥३४
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् ।
भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ॥३५

इसके अनन्तर वहाँ पर सर्वतोमुख ईश्वर के ध्यानगत हुए जो लोकों के प्रभव तथा निधन एवं अव्यष्ट प्रभु थे ॥२९॥ तब ब्रह्माजी अञ्जलिपुट वाले होकर उन शर्व—शूलधारण करने वाले—महान् भैरवनाद वाले—भीम रूप धारी- दंष्ट्रा वाले-अव्यक्त और महान्त के लिये नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हे लोक सुरेश ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है । हे भूतों के पति । हे महान् । आपके लिये नमस्कार है । हे शाश्वत ! हे सिद्धयोनि ! आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥३१॥ आप परमेष्ठी-परब्रह्म-अक्षर और परम पद हैं । आप श्रेष्ठ है । वामदेव-रुद्र-स्कन्द-शिव और प्रभु हैं ॥३२॥ आप यज्ञ हैं-वषटकार हैं-ओङ्कार हैं और परम पद हैं । आप हो स्वाहाकार हैं । नमस्कार हैं । जाप्य हैं-आप ही व्रत हैं और नियम रूप हैं । वेद और लोक तथा देव और सब प्रकार से भगवान् ही आप हैं ॥३४॥ आप इस आकाश के शब्द हैं और आप प्राणियों के प्रभव तथा अव्यय हैं । भूमि के गन्ध,जलों के रस और तेज के रूप ! हे महेश्वर ! यह सब आप ही हैं ॥३५॥

वायोः स्पर्शश्च देवश्च वपुश्चन्द्रमस स्तथा ।
बुधो ज्ञानश्च देवेश प्रकृतौ बीजमेव च ॥३६
त्वं कर्ता सर्वभूतानां कालो मृत्युर्यमोऽन्तकः ।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७
पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वञ्च प्रकाशसे ।
दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान् संक्षीयसे प्रभो ॥३८
पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै ।
उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥३९
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः ।
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनीसुतौ ॥४०
साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वालखिल्या महात्मानस्तपः सिद्धाश्च सुव्रताः ।।४१
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः ।
उमा सीता सिनी वाली कुहूर्गायत्रिरेव च ।।४२
लक्ष्मीः कीर्त्तिर्धृतिर्मेधा लज्जा क्षान्तिर्वपुः स्वधा ।
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव वाचां देवी सरस्वती ।
त्वत्तः प्रसूता देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथैव च ।।४३

वायु का स्पर्श, देव तथा चन्द्रमा का वपु आप ही हैं। बुध-ज्ञान और प्रकृति में बीज भी हे देवेश। आप ही हैं। ।।३६।। आप समस्त प्राणियों के कर्त्ता काल-मृत्यु-यम और अन्तक आप ही हैं। आप इन तीनों लोकों को धारण किया करते हैं और हे प्रभो ! आप ही इनका सृजन भी किया करते हैं ।।३७।। आप पूर्व वदन से इन्द्रत्व का प्रकाश करते हैं, दक्षिण वक्त्र से हे प्रभो ! आप लोकों का संक्षय किया करते हैं तथा पश्चिम वक्त्र से वरुणत्व को करते हैं और आप अपने उत्तर वक्त्र से सौम्यत्व की व्यवस्था करते हैं ।।३८।।३९।। हे देव ! बहुधा लोकों का प्रभवाव्यय आदित्य-वसु-मरुत और अश्विनी सुत हैं ।।४०।। तथा साध्य-विद्याधर-नाग-चारण, तपोधन वालखिल्य-महात्मा-तप-सिद्ध और सुव्रत ये सब हे देवेश ! तथा अन्य नियम व्रत वाले आपसे ही प्रसूत हुए हैं। उमा-सीता सिनीवाली-कुहू-गायत्री-लक्ष्मी-कीर्ति-धृति मेधा-लज्जा-वपु-स्वधा-तुष्टि-पुष्टि-क्रिया और वाणियों की देवी सरस्वती-सन्ध्या तथा रात्रि ये सभी हे देवेश ! आप से हा प्रसूत हैं ।।४१।।४२।।४३।।

सूर्यायुतानामयुतप्रभा च नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणा कराय ।।४४
नमोऽस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सहायकचक्रधारिणे ।।४५
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ।।४६
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोस्तु ते देव हिरण्यनाभ ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतः ।।४७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ।।४८
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ।।४९
नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलकण्ठ ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ।।५०

हे चन्द्रसहस्र गोचर ! अयुत सूर्यो जैसी अयुत प्रभा है आपके लिये नमस्कार है। पर्वत के रूप को धारण करने वाले तथा समस्त के आकर आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ।।४४।। पट्टिश रूप के धारी तथा चर्म और विभूति के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है। रुद्र पिनाकपाणि के लिये नमस्कार है तथा सारे भस्म से विभूषित अङ्गों वाले हे देव ! हे हिरण्यनाभ ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे काम के शरीर को नाश करने वाले ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे देव ! हे नेत्र सहस्रचित्र ! हे हिरण्यरेतः ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है ।।४६।।४७।। हे हिरण्य-वर्ण ! हे हिरण्यगर्भ ! हे देव ! आपके लिये नमस्कार है। हे हिरण्य चीरदेव ! हिरण्य के देने वाले आपके लिये नमस्कार है ।।४८।। हिरण्य की माला वाले और हिरण्यवाही आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है। भैरवनाद के नादी तथा हिरण्यवर्मा आपके लिये हे देव ! हमारा नमस्कार है ।।४९।। हे भैरव वेग ! हे नीलकण्ठ ! आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है। हे दिव्य सहस्रबाहु वाले ! हे नृत्य और वादन पर प्यार करने वाले ! आप के लिये नमस्कार है ।।५०।।

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ।
भाँतिदेवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।।५१
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वरः ।
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवापरम् ।।५२
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः ।
नानाचित्रविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपनः ।।५३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पिनाकपाणिर्भगवान् वृषभासनशूलधृक् ।
दण्डकृष्णाजिनधरः कपालो घोररूपधृक् ॥५४
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्करः ।
दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ।
मुक्तो हासस्तदा तेन नभः सर्वमपूरयत् ॥५५
तेन शब्देन महता वयं भीता महात्मनः ।
तदोवाच महायोगो प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥५६
पश्येताञ्च महामायां भयं सर्वं प्रमुच्यताम् ।
युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वसनातनौ ॥५७

इस प्रकार भली भाँति स्तुति किये जाने वाले महाभति व्यक्त हो कर महायोगी और करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाले देव शोभा देते हैं ॥५१॥ उस समय में प्रसन्न महेश्वर महादेव अभिभाषण करने के योग्य थे। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सहस्रों करोड़ मुखों से अपर को ग्रसमान हो रहे हों ॥५२॥ एक ग्रीवा वाले-एक जटाधारी-अनेक भूषित-नाना चित्रों से विचित्र अङ्गों वाले और अनेक प्रकार की माल्य तथा अनुलेपन से युक्त -पिनाक को हाथ में लिये हुए- वृषभ के आसन पर शूल को धारण करने वाले तथा दण्ड और कृष्ण अजिन को धारण करने वाले, कपाली और घोर रूप को रखने वाले शिव हैं ॥५३॥५४॥ व्याल के यज्ञोपवीत को पहिने हुए और देवों को अभय का दान देने वाले तथा दुन्दुभि को ध्वनि के समान शब्द वाले एव मेघ की गर्जना के सदृश ध्वनि से युक्त उन शिवने उस समय हास छोड़ा था जिससे समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया था ॥५५॥ उस समय में उस हास के महान् शब्द से जोकि उन महात्मा ने किया था हम सब डर गये। तब महायोगी बोले- हे सुर सत्तमो ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ ॥५६॥ महामाया को देखो और समस्त भय का त्याग करदो। तुम दोनों सनातन मेरे गात्रों में प्रसूत हुए हो ।५९।

अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेषु तिष्ठति ।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम् ॥५८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः ।
ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदानघौ ॥५९
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥६०
एवमस्तु महाभागौ सृजतां विविधाः प्रजाः ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६१
एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः ।
तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥६२
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम् ।
अचिन्त्यं तदहश्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६३
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुङ्क्त ह ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥६४

यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरा दक्षिण बाहु है । विष्णु मेरा बाँया बाहु है जोकि नित्य ही युद्धों में वर्त्तमान रहा करते हैं । मैं आप दोनों से परम प्रसन्न हूँ और आपको यथोचित वरदान देता हूँ ॥५८॥ इसके अनन्तर दोनों ही प्रहृष्ट मन प्रणत हुए और फिर चरणों में गिरगये महान् आत्मा वाले और पाप रहित उन दोनों ने फिर कहा—॥५९॥ हे सुरेश्वर ! हे देव ! यदि आपके हृदय में हमारे प्रति प्रीति उत्पन्न हो गई है और हम दोनों को वरदान देना है तो हम यही चाहते हैं कि हम दोनों की आपके चरणों में नित्य भक्ति होवे ॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे महान् भाग वाले ! ऐसा ही होवे । अब आप दोनों अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन करो । ऐसा कह करके भगवान् वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥६१॥ इस प्रकार से मेरे द्वारा उन योगी का प्रभाव आपके सामने कहा गया है । उसने ही यह सब सृजन किया है, हम तो केवल हेतुमात्र ही हैं ॥६२॥ यह शिव इस संज्ञा वाला रूप अव्यक्त एवं अज्ञात होता है । वह रूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है और अदृश्य भी है । ज्ञान के चक्षुवाले ही उसे देखा करते हैं ॥६३॥ उस देवों के अधिपति के लिये नमस्कार का प्रयोग करते हैं जिससे ज्ञान की चक्षु वाले उस सूक्ष्म तया चिन्तन न करने के लिये योग्य को देखा करते हैं ॥६४॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहंस नमोऽस्तु ते ॥६५
एतच्छ्रुत्वा गताः सर्वे सुराः स्वं स्वं निवेशनम् ।
नमस्कारं प्रयुञ्जानाः शङ्कराय महात्मने ॥६६
इमं स्तवं पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मनः ।
कामांश्च लभते सर्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ॥६७
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
महादेवप्रसादेन उक्तं ब्रह्म सनातनम् ।
एतद्वः सर्वमाख्यातं मया माहेश्वरं बलम् ॥६८

हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सुरासुर वर ; हे श्रेष्ठ ! हे मनोहंस ! आपके लिये नमस्कार है ।।६५।। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके समस्त देवगण अपने-अपने निवास स्थान को चले गये और जाने के समय में सब महात्मा शङ्कर के लिये नमस्कार करते हुए गये थे ।।६६।। महान् आत्मा वाले ईश्वर के इस स्तव को जो कोई पढ़ता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है और सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है ।।६०।। उन सर्व सदा तत प्रभविष्णु ने महादेव के प्रसाद से सनातन ब्रह्म कहा है । यह सब माहेश्वर के बल से आपसे मैंने कह दिया है ।।६८।।

।। प्रकर्ण ३८—पितर–वर्णन ।।

अगात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृपः ।
ऐलः पुरूरवाः सूत कथं वाऽतर्पयत् पितॄन् ॥१
तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायन ।
ऐलस्यादित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः ॥२
अपांसारमयस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।
ह्रासवृद्धी पितृमतः पक्षस्य च विनिर्णयः ॥३
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितॄणां तर्पणं तथा ।
कव्याग्नेश्वात्तसोमानां पितृणाञ्चैव दर्शनम् ॥४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यथा पुरूरवाश्चैलस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि पर्वाणि च यथाक्रमम् ।।५
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ ।
अमावास्यान्निवसत एकरात्रं कमण्डले ।।६
सगच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावस्याममावास्यां मातामहपितामहौ ।
अभिवाद्य तदा तत्र कालपेक्षः प्रतीक्ष्यते ।।७

श्री शांशपायन ने कहा—हे सूतजी ! राजा ऐल पुरुरवा मास-मास में अमावस्या में दिव में कैसे गया और किस प्रकार से वहाँ पितरों को तृप्त किया था । सूतजी ने कहा—हे शांशपायन ! मैं उसके प्रभाव को बतलाऊँगा । ऐल का आदित्य के साथ तथा महात्मा चन्द्र के साथ जो संयोग हुआ वह भी बताया जायगा ।।२।। जलों का सारमय जो चन्द्रमा है उसका कृष्ण और शुक्ल पक्षों में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है । यह पक्ष का विशेष निर्णय पितृमत है ।।३।। सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितरों का दर्शन होता है ।।४।। इस प्रकार से पुरूरवा ऐल राजा पितरों की तृप्ति किया करता था । यह सब और क्रम के अनुसार पर्वों को मैं बतलाऊँगा ।।५।। जिस समय वे दोनों चन्द्र और सूर्य नक्षत्र से समागत होते हैं तो अमावस्या में एक रात्रि तक मण्डल में निवास किया करते हैं ।।६।। उस समय वह दिवाकर और निशा-कर का दर्शन प्राप्त करने के लिये जाता है । अमावस्या में माता-मह और पिता मह को अभिवादन करके उस समय वहाँ पर कालकी अपेक्षा वाला प्रतीक्षा किया जाया करता है ।।७।।

प्रसीदमानात् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ।
ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नतः ।
उपास्ते पितृमन्तं तं ससोमं स दिवास्थितः ।।८
द्विलवं कुहुमात्रं तु ते उभे तु विचार्य सः ।
सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः ।।९
कुहूमात्रां कलाश्चैव ज्ञात्वोपास्तो कुहुं पुनः ।
स तदा भानुमत्येक कालावेक्षी प्रपश्यति ।।१०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुधामृतं कुतः सोमात् प्रस्रवेन्मासतृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः ॥११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांशुभिः ।
सद्यः पक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ॥१२
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्रेण विधिना नृपः ।
सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१३
ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स नु संवत्सरो मतः ।
जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्मादृतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ॥१४

प्रसीदमान अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त हुए सोम से पितरों के लिये उसके परिस्रव से ऐल पुरूरवा विद्वान् मास-मास में प्रयत्न के साथ वह दिव में आ-विस्थत होता हुआ ससोम पितृमान् उस की उपासना करता है ॥८॥ दो लव कुहुमात्र वे दोनों विचार करके वह सिनीवाली प्रमाण से सिनावाली का उपासक होता है ॥६॥ कुहूमात्रा और कला को जानकर फिर कुहू की उपासना करता है। वह उस समय में भानुमान में एक काल की अपेक्षा करने वाला प्रकर्ष रूप से देखता है ॥१०॥ मास तृप्ति के लिये वहाँ सोम से सुधामृत का प्रस्रव होता है। दश और पाँच सुधामृत परिस्रवों से प्राप्त करता है ॥११॥ उस समय कृष्ण पक्ष में अंशुओं से दुह्यमान को पीकर सद्यः वह उस सौम्य मधु से पक्षरत होता है ॥१२॥ वह राजा पित्र दिये हुए से जोकि निर्वारण के लिये ही दिया गया है, विधिपूर्वक राजेन्द्र सुधामृत के द्वारा पितरों को तृप्त किया करता था। उसमें सौम्य-वर्हिषद-काव्य और अग्निष्वात्त ये सभी हैं ॥१३॥ ऋतु अग्नि जो कहा गया है, उससे ऋतुएं उत्पन्न हुईं और ऋतुओं से ये आर्त्तव उत्पन्न हुए हैं ॥१४॥

आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्याः पितरो ह्यब्दसूनवः ।
ऋतुः पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः ॥१५
प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवे सुताः ॥१६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding :IKS

उपहूताः स्मृताः देवाः सोमजाः सोमपास्तथा ।
आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः ॥१७
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ।
गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम् ॥१८
गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथार्त्तवाः ।
अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ॥१९
एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।
सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः ॥२०

जो आर्त्तव हैं वे अर्धमास नाम वाले हैं । पितर अब्द के पुत्र हैं । ऋतु के पितामह मास हैं और ऋतु अब्द सूनु हैं ॥१५॥ इनके प्रपितामह तो ब्रह्मा के पुत्र देव पञ्जा अब्द हैं । जो सौम्य हैं वे सौम्यज जानने चाहिए और जो काव्य हैं वे कवि के पुत्र समझने चाहिए ॥१६॥ उपहूत देव सोमज तथा सौमज कहे गये हैं । जो आज्य है वे काव्य कहे गये हैं । ये पितृ जातियाँ हैं जोकि तृप्त हुआ करती हैं ॥१७॥ वे काव्य बर्हिषद और अग्नि ष्वात्त तीन प्रकार के हुआ करते हैं । जो यज्वान गृहस्थ होते हैं उनका बर्हिषद ऋतु होता है । गृहस्थ यज्वान जो होते हैं अग्निष्वात्त उनके आर्त्तव होते हैं । अष्टका पति काव्य हैं । उनको पञ्चब्द जानना चाहिए ॥१८॥१९॥ इनका सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर होता है । सोम इद्वत्सर कहा गया है और वायु ही अनुवत्सर होता है ॥२०॥

रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः ।
लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ॥२१
एते पिबन्त्यमावास्यां मासि मासि सुधां दिवि ।
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः ॥२२
यस्मात् प्रस्रवतो सोमान्मासि मासि निबोधत ।
तस्मात् सुधामृतं तद्वै पितॄणां सोमापायिनाम् ॥२३॥
एवं तदमृतं सौम्यं सुधा च मधु चैव ह ।
कृष्णपक्षे यथा चेन्दोः कलाः पञ्चदश क्रमात् ॥२४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पिवन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिशत्तु छन्दजाः ।
पीत्वा च मासं गच्छन्ति चतुर्द्दश्यां सुधामृतम् ।।२५
इत्येवं पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकरः ।
समागच्छद्मावास्यां भागे पञ्चदशे स्थितः ।।२६
सुषुम्नाप्यायातिञ्चैव अमावास्यां यथाक्रमम् ।
पिबन्ति द्विकलं कालं पितरस्ते सुधामृतम् ।।२७
ततः पीतक्षये सोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्याययत्सुषुम्नेन पितृणां सोमपायिनाम् ।।२८

रुद्र उनका वत्सर होता है ये युगात्मक पञ्चाब्द होते हैं । वे लेखा-उष्मपा और दिव्याकीर्त्या कहे गये हैं ।।२१ । ये अमावस्या में मास-मास में दिवि में सुधा का पान किया करते हैं । उससे पुरूरवा जब तक है उनका तर्पण करता था ।।२२।।जिससे मास-मास में सोमों का प्रस्रवण करता है उसे जान लो । उससे सुधामृत सोमपायी पितरों का होता है ।।२३।। इस प्रकार से वह सौम्य अमृत-सुधा और मधु होता है । जिस प्रकार से कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की क्रम से पन्द्रह कलाएें होती हैं ।।२४।। देव अम्बुमयी का पान करते हैं और तेतीस छन्दत्र होते हैं और चतुर्दशी में मास तक सुधामृत को पीकर चले जाते हैं ।।२५।। इस प्रकार से देवों के द्वारा पीयमान निशाकर अमावस्या को पञ्चदश भाग में स्थित आ गया था ।।२६।। सुषुम्ना से आप्यायित अमावस्या को यथाक्रम द्विकल काल तक पितर सुधामृत का पान करते हैं ।।२७।। इसके अनन्तर पीत होने से क्षय वाले सोम के होने पर यह सूर्य एक रश्मि से सुषुम्ना के द्वारा सोमपायी पितरों को आप्यायित करता है ।।२८।।

निःशेषायां कलायान्तु सोममाप्याययत् पुनः ।
सुषुम्नाप्यायमानस्य भागं भाग महः क्रमात् ।
कलाः क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाप्याययन्ति च।। २९
एवं सूर्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ।
दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥३०
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ।
क्रान्तः पंचदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ॥३१
अतः पर्वाणि वक्ष्यामि पर्वणां सन्धयस्तथा ।
ग्रन्थिमन्ति यथा पर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ॥३२
तथार्द्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ।
पूर्णमावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थिर्या सन्धयश्च वै ।
अर्द्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ॥३३
अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्वसन्धिषु ।
सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ॥३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखोर्द्धन्तु युगान्तरे ।
युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्धं शशिनः क्रमात् ॥३५

कला के निःशेष होने पर भी फिर सोम को आप्यापित करता है । सुषुम्ना से आप्यायमान की भाग-भाग महा के क्रम से वे कृष्ण कलाक्षीण हो जाती हैं और शुक्ल को आप्यायित किया करती हैं ॥२९॥ इस प्रकार से सूर्य के वीर्य से चन्द्र का शरीर भी आप्यायित होता है । पौर्णमासी में शुक्ल सम्पूर्ण मण्डल दिखलाई दिया करता है इस प्रकार से शुक्ल कृष्ण पक्षों में सोम की संसिद्ध होती है ॥३०॥ यह पितृमान् सोम क्रम से इद्वत्सर कहा गया है । पन्द्रह सुधामृत परिस्रवों के साथ क्रान्त होता है ॥३१॥ इस के आगे अब मैं पर्वों को तथा पर्व सन्धियों को बताऊँगा । जिस प्रकार से इक्षु वेणुओं के पर्व ग्रन्थिमान् होते हैं ॥३२॥ उसी प्रकार से अर्धमास के पर्व शुक्ल कृष्ण जानने चाहिए । पूर्णिमा और अमावस्या के भेदों से जो ग्रन्थि और जो सन्धियाँ हैं । अर्धमास तृतीया प्रभृति हैं ॥३३॥ जिसमें पर्वोंपर अग्न्याधान की क्रिया की जाती है। सायाह्नमें प्रतिपद् ही वह पौर्णमासिक काल होता है ॥३४॥ सूर्य के व्यतीपात में स्थित होने पर युगान्तर में लोखोद्र्ध्व होता है और युगान्तर में उदित होने पर क्रम से लेखोद्र्ध्व शशि का होता है ॥३५॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ।
यस्मिन्काले स सीमान्ते स व्यतीपात एव तु ॥३६
कालं सूर्यस्य निर्द्देशं दृष्ट्वा सङ्ख्या तु सर्पति ।
स वै पथं क्रियाकालः कालात्सद्यो विधीयते ॥३७
पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥३८
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात् पौर्णमास्यान्निशाकरः ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥३९
अमा वसेतामृक्षे तु गदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एकां पञ्चदशीं रात्रिममावास्या ततः स्मृता ॥४०
ततोऽपरस्य तैर्व्यक्तः पौर्णमास्यां निशाकरः ।
यदीक्षते व्यतीपाते दिवा पूर्णं परस्परम् ।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥४१
विच्छिन्नांताममावास्यां पश्यतश्च समागतौ ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥४२

पौर्णमास व्यतीपात में जो परस्पर में देखते हैं जिसकाल में वह सीमान्त में है वह व्यतीपात नहीं है ।३६॥ सूर्य काल के निर्देश को देख कर संख्या सर्पण किया करती है वह ही निश्चय रूप से क्रिया का काल से तुरन्त ही पथ का विधान किया करता है ॥३७॥ पूर्ण चन्द्र के पूर्ण पक्ष में रात्रि की सन्धियों में पूर्णिमा है जिससे देवों के साथ पितर उसे देखते हैं। इससे अनुमति नाम वाली प्रथम पूर्णिमा कही गई ॥३८॥ जिससे पौर्णमासी में निशाकर अत्यधिक रूप से भ्राजमान होता है। चन्द्र के रञ्जन करने से पूर्णिमा की रात्रि का नाम राका—यह पड़ गया है जिसे कवि लोग जानते हैं ॥३९॥ अमा ऋक्ष में वास करती है जब कि चन्द्र और दिनकर दोनों एक पञ्चदशी की रात्रि को वास किया करते हैं। इसी से अमावस्या ही कही गई है ॥४०॥ फिर दूसरे का उनके द्वारा पौर्णमासी में निशाकर व्यतीपात में पूर्ण दिन में परस्पर में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दीखता है। अपराह्न में तो चन्द्र और सूर्य स्वरूप वाले होते हैं इसीलिये पूर्णिमा यह कही जाती है ॥४१॥ समागत वे दोनों उस अमावस्या को विच्छिन्न देखते हैं। वे दोनों चन्द्र और सूर्य अन्योन्य में जब देखते हैं तो वह दर्श ऐसा कहा जाता ॥४२॥

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्वसन्धिषु ।
द्वाक्षरं कुहुमात्रं तु एवं कालस्तु स स्मृतः ।
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण सङ्गता ।४३
दिवसार्द्धेन रात्र्यर्द्धं सूर्यं प्राप्त तु चन्द्रमाः ।
सूर्येण सहसा मुक्ति गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ।
द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ॥४४
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ।
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ॥४५
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ।
एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यास्य पर्वणः ॥४६
दिवा पर्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ।
तस्माद्दिवा ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ।
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ॥४७
कलानामपि वै तासां बहुमान्याजडात्मकैः ।
तिथीनां नाम धेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ॥४८
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ ।
निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ॥४९

अमावस्या में दो-दो लव पर्वसन्धियों में जो काल होता है वह द्वाक्षर कुहूमात्र इस प्रकार से काल कहा गया है। नष्ट चन्द्र वाली भी अमावस्या मध्य सूर्य के साथ सङ्गत होती है ॥४३॥ दिवसार्ध के साथ रात्रि के अर्ध को चन्द्रमा सूर्य को प्राप्त कर, सूर्य से सहसा छुटकारा पाकर प्रातः कालीन उत्सव वाले दो काल हैं और सङ्गम है। मध्याह्न में सूर्य का निष्पतन होता है ॥४४॥ शुक्ल पक्ष की प्रतिपद को चन्द्रमा सूर्य मण्डल से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन निर्मुच्यमान मण्डलों के मध्य में होता है ।।४५।। उस समय में वह आहूति का काल तथा दर्श की वषटक्रिया होती है । इस पर्व की अमावस्या यह ऋतु मुख जानना चाहिए ।।४६।। दिवा पर्व में अमावस्या को अधिक चन्द्र के क्षीण हो जाने पर इससे दिवा में अमावस्या को यह दिवाकर ग्रहण किया जाता है । दिवा ग्रहण किया जाता है इससे दिविक्षयों से अमावस्या होती है ।।४७।। उन कलाओं की भी जडात्माओं के द्वारा वाहुमान्या होती है । विद्वानों ने तिथियों के भी नामों की संज्ञा की है ।।४८।। सूर्य और चन्द्रमा दोनों अन्योन्य को देखते हैं और क्रम से उसी के साथ सूर्य मण्डल से निकलता ।।४९।।

द्विलवेन ह्यहो रात्रं भास्करं स्पृशते शशी ।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट् क्रिया ।।५०
कुहेति कोकिलेनोक्तो यः कालः परिचिह्नितः ।
तत्काल संज्ञिता यस्मादमावास्या कुहुः स्मृता ।।५१
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्यां विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ।।५२
पर्वणः पर्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट् क्रिया ।
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ।।५३
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालो द्विमात्रकः ।
कालः कुहुसिनीवाल्योःसमुद्रो द्विलवः स्मृतः ।।५४
अर्काग्निमण्डले सोमे पर्व कालः कलाश्रयः ।
एवं स शुक्लपक्षो वै रजन्याः पर्वसन्धिषु ।।५५
सम्पूर्णमण्डलः श्रीमांश्चन्द्रमा उपरज्यते ।
यस्मादाप्यायते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ।।५६

अहोरात्र में चन्द्रमा दो लव भास्कर का स्पर्श किया करता है । उस समय वह आहूति का तथा दर्श की वषट क्रिया काल होता है ।।५०।। कोकिल से उक्त जो काल कुहा ऐसा परिचिन्हत होता है उसकाल से संज्ञा वाली अमावस्या कुहू कही जाती है ।।५१।। सिनीवाली के प्रमाण से क्षीण शेष निशाकर अमावस्या के दिन सूर्य में प्रवेश किया करता है इसी से सिनीवाली कही गई है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥५२॥ पर्वका पर्व काल तो वषट क्रिया के तुल्य ही होता है। चन्द्र और सूर्य के व्यतीपात में वे दोनों पूर्णिमा कही गई हैं ॥५३॥ प्रतिपत् और पञ्चदशी का पर्वकाल द्विमात्रिक ही होता है। सिनीवाली और कुहू का समुद्र द्विलव कहा गया है ॥५४॥ सोम के अर्काग्नि मण्डल में पर्व का काल कला के आश्रय वाला होता है। इस प्रकार से पर्व की सन्धियों में रात में शुक्ल पक्ष होता है ॥५५। सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्र उपरञ्जित होता है जिस से पञ्चदशी में सोम आप्यायित होता है इससे पूर्णिमा होती है ॥५६॥

दशभिः पञ्चभिश्चैव: कलाभिर्दिवसक्रमात् ।
तस्मात् कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ।
तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षयः ॥५७
इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवाः भावयन्ति च ॥५८
अतः पितॄन् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्च सत्त्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि ॥५९
न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः ।
तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ॥६०
श्राद्धदेवान् पितॄनेतान् पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
देवाः सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ॥६१
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान् भावयन्त्युत ।
मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ॥६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृताः ॥६३

दश और पाँच कलाओं से दिवसों के क्रम से पन्द्रह कला सोम में होती हैं सोलहनीं नहीं होती है। इससे सोम का पञ्चदशी में महान् क्षय होता है। ॥५७॥ इतने ये पितर थेव सोमप और सोमवर्द्धन हैं। जिससे आर्त्तक और ऋतुएँ हैं, वे देव भावित किया करते हैं ॥५८॥ इसलिये पितृगण को बताऊँगा जोकि मास श्राद्ध के भोजी होते हैं। उनकी गति और सत्त्व तथा श्राद्धकी गति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को भी बताया जायगा ॥५६॥ त मृमनुष्यों की गति तथा पुनरागति बताई नहीं जा सकती है। यह प्रसिद्ध तप से भी नहीं बता सकते हैं इन माँस चक्षुओं की बात ही क्या है ।६०॥ श्राद्धदेध व इन पितरों को लौकिक पितर कहा गया है। देवसौम्य और यज्वान ये सब आयोनिज होते हैं ॥६१॥ वे सब देव पितर हैं और उनको देव ही भावित किया करते हैं। मनुष्य और पितर उनसे अन्य लौकिक कहे गये हैं ॥६२॥ पिता-पितामह और प्रपितामह जो सोम के द्वारा यज्वान होते हैं वे सोमवन्त कहे गये हैं ॥६३॥

ये यज्वानः स्मृतास्तेषां ते वै बर्हिषदः स्मृताः।
कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात् ॥६४
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिनः।
ये वाप्याश्रमधर्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः ॥६५
अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा।
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥६६
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा।
कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्या देहपातनात् ॥६७
देवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मकैः सौमपायकैः।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८
प्रजावतां प्रशंसैव स्मृता सिद्धा क्रियावताम्।
तेषां निवापदत्तान्नं तत्कुलीनैश्च बान्धवैः ॥६९
मासं श्राद्धभुजस्तृप्तिं लभन्ते सोमलौकिकाः।
एते मनुष्याः पितरो मासि श्राद्धभुजस्तु ते ॥७०

जो यज्वान कहे गये हैं उनके वे बर्हिषद कहे गये हैं। इन कर्मों में युक्त वे देह-सम्भव तक तृप्त होते हैं ॥६४॥ उनके याज्ययाजी होमी अग्निष्वात्त कहे गये हैं। अथवा जो भी आश्रम धर्म से प्रस्थानों में व्यवस्थित हैं। ॥६५॥ श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा अन्त समय में दुःखी नहीं होते हैं। इसी प्रकार जो ब्रह्मचर्य-तप-यज्ञ और प्रजा से युक्त होते हैं वे भी दुःखी नहीं होते

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं ॥६६॥ श्रद्धा से विद्या से और प्रदान से सात प्रकार से इन कर्मों में जो युक्त होते हैं और अपने देह के पातन तक इसी प्रकार से रहते हैं वे उन देवों के-पितरों के और सूक्ष्मक सोमपायकों के साथ स्वर्ग में गये हुए मोदयुक्त होते हैं तथा दिवि में पितृमान् की उपासना किया करते हैं ॥६८॥ प्रजा वालों की प्रशंसा ही कही गई है और क्रिया वालों की वह सिद्ध है। उनके निवाप दत्त अन्न को जो कि तत्कुलीनों के द्वारा एवं बान्धवों के द्वारा दिया गया है मास पर्यन्त श्राद्ध भोजी सोम लौकिक तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं। ये जोकि मास में श्राद्ध-भोजी होते हैं वे मनुष्य पितर हैं ॥७०॥

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥७१
भिन्नदेहा दुरात्मनः प्रेतभूता यमक्षये।
स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः ॥७२
दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः।
क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्ततः ॥७
सरित्सरस्तडागानि वापिश्चैव जलेप्सवः।
परान्नानि च लिप्सन्ते कम्पमानास्ततस्ततः ॥७४
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै।
शाल्मलौ वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ॥७५
करम्भवालुकायाश्च असिपत्रवने तथा।
शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः ॥७६
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत्।
लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ॥७७

उनसे ऊपर जो अन्य हैं वे कर्मयोनियाँ सङ्कीर्ण हैं और आश्रमों के धर्मों से भ्रष्ट हुए स्वाहा तथा स्वधा से विवर्जित होते हैं ॥७१॥ भिन्न देह वाले दुष्ट आत्मा से युक्त और यमक्षय में प्रेत भूत यातना के स्थानों में आये हुए अपने किये हुए कर्मों को ही शोचा करते हैं ॥७२॥ दीर्घ आयुवाले, अत्यन्त शुष्क, विवर्ण और बिना वस्त्र वाले भूख और प्यास से परीत हुए इधर-उधर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विद्रवण किया करते हैं ।।७३।। प्यास से व्याकुल जल प्राप्त करने की इच्छा वाले नदी सरोवर–तालाव और बावड़ी तथा पराये अन्न को इधर–उधर काँपते हुए चाहा करते हैं ।।७४।। उन यातायातों के स्थानों में पाच्यमान-शाल्मली में और वैतरणी में और उन कुम्भीपाकों में-करम्भ बालुका में-असिपत्र वन में और शिल सम्पेषण में अपने कर्मों के द्वारा गिराये हुए होते हैं ।।७५।।७६।। अनाक की भाँति वहाँ पर उन दुःखों के स्थान, अन्य लोकों में स्थित उनके विविध नाम और गोत्र से होते हैं ।।७७।।

भूम्यापसव्यदर्भेषु दत्त्वा पिण्डत्रयन्तु वै ।
पति तांस्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिताः ।।७८
अप्राप्ता यातनास्थानं सृष्टा ये भुव पंचधा ।
पश्वादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्मसु ।।७९
नानारूपासु जातीषु तिर्यग्योनिषु जातिषु ।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारं श्राद्धदत्तोपतिष्ठति ।।८०
काले न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नोत्यन्नं यथा दत्तं वन्धुर्यत्रावतिष्ठते ।।८१
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धे तदिष्टानां मन्त्रः प्रापयते पितॄन् ।।८२
एवं ह्यविकलं श्राद्धदत्तन्तु मन्त्रतः ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ।।८३
बह्वीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्चव ते स्मृताः ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।।८४

भूमि से अपसव्य दर्भों में तीन पिण्ड देकर प्रेत स्थानों में अधिष्ठित उन पतितों का तर्पण किया करते हैं ।।७८।। जो यातना के स्थान में अप्राप्त भूमि में सृष्ट है वे पाँच प्रकार के होते हैं । पशु आदि स्थावरान्तों में प्राणियों के उन-कर्मों में नाना प्रकार की जातियों में तिर्यग्योनियों में यताहार होते हैं । उस-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसमें उनका आहार श्राद्ध में दिया हुआ उपस्थित होता है ।।७६।। ।।८०।। काल में न्याय से आया हुआ पात्र विधि से प्रतिपादित तथा दत्त अन्त को प्राप्त किया करता है जहाँ कि बन्धु अवस्थित होता है ।।८१।। जिस तरह से गायों के प्रविष्ट होने पर वत्स माता का लाभ किया करता है उसी प्रकार से श्राद्ध में तदिष्टों का मन्त्र पितरों को प्राप्त करता है ।।८२।। मन्त्र से दिया हुआ श्राद्ध अविकल श्राद्ध होता है, इस बात को दिव्य चक्षु से देखते हुए सनत्कुमार ने कहा था जोकि गतागति के ज्ञान रखने वाले तथा प्रेतों के प्राप्त श्राद्ध के ज्ञाता थे ।।८३।। बह्लीक-उष्मया ओ दिवाकीर्त्य वे कहे गये हैं । उनका कृष्ण पक्ष दिन होता है और शुक्ल पक्ष तो स्वप्न के लिये शर्वरी (रात्रि) होती है ।।८४।।

इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।
ऋतार्त्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ।।८५
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ।
प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ।।८६
इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितृणां सोमपायिनाम् ।
एतत्-पितृमतत्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ।।८७
इत्यर्क पितृ सोमानामैलस्य च समागमः ।
सुधामृतस्य चावाप्तिः पितृणांचैव तर्पणम् ।।८८
पूर्णिमावास्ययोः कालः पितृणां स्थानमेव च ।
समासात्कीर्त्तित स्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ।।८९
वैश्वरूप्यन्तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम् ।
न शक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ।।९०
स्वायम्भुवस्य हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयात्र वै ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ।।९१

ये इतने पितर-देव और देव और पितर तथा ऋतार्तव ऐसे अनेक अन्योन्य पितर कहे गये हैं ।।८५।। ये पितर देव और ये मानुष पितर हैं । श्रद्धा से युक्त कर्म के द्वारा उनके प्रसन्न होने पर प्रसन्नतायुक्त होते हैं ।।८६।। इस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकार से पितर कहे गये हैं। सोमपायी पितरों का यह पितृमतत्व निश्चय रूप से पुराण में माना गया है ॥८७॥ यह अर्क पितृ सोमो का तथा ऐल का समागम और सुधामृत की अवाप्ति और पितरों का तर्पण पूर्णिमा और अमावस्या का काल और पितरों का स्थान ये सभी का संक्षेप से तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। यही सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाला सर्ग है ॥८८॥ ॥८९॥ सबका वैरूप्य और देशिक कह दिया है। यह परिसंख्या वाला नहीं हो सकता है। भूतिको चाहने वाले को श्रद्धा करने के योग्य होता है ॥९०॥ यह मैंने स्वायम्भुव का सर्ग कहा है फिर आगे विस्तार के तथा आनुपूर्वी के साथ मैं क्या वर्णन करूँ? ॥९१॥

॥ प्रकर्ण ३९—यज्ञप्रथा वर्णन ॥

चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्वं स्वायम्भुवेन्तरे।
तेषां निसर्गं तत्त्वंच श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१
पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम्।
तेषाश्चतुर्युगं ह्येतत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥२॥
सङ्ख्य्येह प्रसङ्ख्याय विस्ताराच्चैव सर्वशः।
युगंच युगभेदंच युगधर्मन्तिथैव च ॥३॥
युगसन्ध्यंशकंचैव युगसन्धानमेव च।
षट् प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ॥४
लौकिकेन प्रमाणेन विबुद्धोऽब्दस्तु मानुषः।
तेनाब्देन प्रसङ्ख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ॥५
निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्त्तकाः।
निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लध्वक्षरंचयत् ॥६
काष्ठा निमेषा दश पंच चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ताः
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तास्तत्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥७॥

ऋषियों ने कहा—स्वायम्भुव अन्तर में पहिले जो चार युग थे उनका निसर्ग और तत्व विस्तार पूर्वक हम श्रवण करना चाहते हैं ॥१॥ श्री सूतजी ने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहा—पृथिवी आदि के प्रसङ्ग से जो मैंने पहिले उदाहृत किया है उनका यह चतुर्युग अब बतलाऊँगा, उसे भली भाँति समझलो ॥२॥ यहाँ सख्या से प्रसंख्यान करके और सब प्रकार से एवं विस्तार से युगसन्ध्यंशक तथा युग सन्धान ऐसे इन छै प्रकार के युग नाम वालों को मैं तत्त्वपूर्वक अच्छी तरह बतलाऊँगा ॥३॥४॥ लौकिक प्रमाण से विबुद्ध अब्द तो मानुष होता है। उस अब्द से प्रसंख्या करके चतुर्युग को यहाँ बतलाया जायेगा ॥५॥ निमेष काल-काष्ठा-कला और मुहूर्त्तक होते हैं। निमेष काल के समान ही जो लघ्वक्षर होता है उसे जानना चाहिए ॥६॥ पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा है और तीस काष्ठा की एक कला गिननी चाहिए। तीस कला का मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त की रात्रि और दिन होते हैं ॥७॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्प्यते ॥८
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
कृष्ण पक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥९
त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥१०
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि सङ्ख्यातानीह तानि वै।
चत्वारश्चाधिका मासाः पित्रे चैवेह कीर्त्तिताः ॥११
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः।
एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो मतः ॥१२
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥१३
ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयोः पुनः।
त्रिंशद्यानि वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ॥१४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मानुष और दैविक अहोरात्र का सूर्य ही विभाग किया करता है। उस में दिन तो कर्मों की चेष्टा के लिये और रात्रि स्वप्न के लिये कल्पित की जाती है ।।८।। पित्र्य और रात्रि और दिन तथा मास उनका पुनः विभाग होता है। उनका दिन कृष्ण पक्ष होता है और मास का शुक्ल पक्ष रात्रि होती है जो शयन के लिये ही है ।।९।। मानुषका तीस मास और पित्र्य अर्थात् पितरों का वह एक मास कहा गया है। तीन सौ साठ मासों का पितरों का सम्वत्सर यह मानुष से विभावित किया जाता है ।।१०।। मानुष मान से ही वर्षों का जो एक सैकड़ा होता है वे पितरों के यहाँ पर तीन वर्ष संख्यात होते हैं। यहाँ पर चार अधिक मास पितृ के लिये ही कहे गये हैं ।।११।। लौकिक मान से ही जो मानुष अब्द कहा गया है यह दिव्य अहो रात्र होता है। यह इस शास्त्र में निश्चय माना गया है ।।१२।। दिव्य रात्रि और दिन और फिर उन दोनों का प्रविभाग कहते हैं। वहाँ उत्तरायण दिन होता है और दक्षिणायन रात्रि हुआ करती है ।।१३।। जो ये रात्रि और दिन दिव्य प्रसंख्यात किये गए हैं उन दोनों के फिर तीस वे वर्ष दिव्य मास कहा गये हैं ।।१४।।

मानुषं च शतं विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते ।
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।।१५
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च ।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ।।१६
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ।।१७
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
अन्यानि नवतिश्चैव क्रौञ्चः संवत्सरः स्मृतः ।।१८
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
वर्षाणान्तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ।।१९
त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणां मानुषाणि च ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि सङ्ख्यातानि तु सङ्ख्यया ।
दिव्यवर्षसहस्रन्तु प्राहुः सङ्ख्याविदो जनाः ।।२०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इत्येत्रमृषिभिर्गीतं दिव्या सङ्ख्ययान्वितम् ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम् ॥२१

मानुष वर्ष तो सौ होते हैं किन्तु वे सौ वर्ष तीन दिव्यमास हुआ करते हैं और दश दिन यह दिव्य विधि कही गई है ॥१५॥ तीन सौ साठ वर्ष जो होते हैं यह दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा कीर्तित किया गया है ॥१६॥ मानुष प्रमाण से तीन सहस्र वर्ष और तीस जो वर्ष होते हैं वह सप्तर्षियों का वत्सर माना गया है ॥१७॥ मानुष के नौ सहस्र जो वर्ष होते हैं और नब्बे होते है वह क्रौंच सम्वत्सर कहा गया है ॥१८॥ मानुष छत्तीस हजार वर्षों का दिव्य बर्षों का एक सैकड़ा होता है यह विधि कही गई है ॥१९॥ मानुष के तीन नियुत वर्ष तथा साठ हजार वर्ष जो संख्या के संख्यात होते हैं उनको संख्या के ज्ञाता लोग दिव्य सहस्र वर्ष कहते हैं ॥२०॥ इसी प्रकार से दिव्य संख्या से अन्वित ऋषियों के द्वारा भी गया गया है । दिव्य प्रमाण से ही युग संख्या का प्रकल्पन होता है ॥२१॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥२२
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तत्र तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२३
इत रासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२४
त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्यैव परिकीर्त्यते ।
तस्यास्तु त्रिशती सन्ध्यांशश्च तथाविधिः ॥२५
द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२६
कलिं वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥२७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्त्तिता ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ।।२८

भारतवर्ष में कविगण चार युग बतलाते हैं । पहिले कृतयुग अर्थात् सतयुग होता है इसके पश्चात् त्रेता का विधान किया जाता है । फिर द्वापर और कलियुग से युग कल्पित किये जाने चाहिए ।।२२।। चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है किन्तु यहाँ वर्ष दिव्य ही माने गये हैं । वहाँ पर उतनी ही शती सन्ध्या की होती है और सन्ध्यांश भी उसी प्रकार का हुआ करता है।।२३।। इतर सन्ध्याओं में तथा तीन सन्ध्याँशों में एकापाय से सहस्र और शत होते हैं । ।।२४।। त्रेता की संख्या तीन सहस्र संख्यात कर परिकीर्तित की जाती है । उसकी त्रिशती सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश भी हुआ करता है ।।२५।। मनीषी लोग द्वापर को दो सहस्र वर्षों का युग कहते हैं । उसकी द्विशती सन्ध्या तथा सन्ध्या के बराबर ही सन्ध्यांश होता है ।।२६।। कलियुग को एक सहस्र वाला मनीषी गण कहा करते हैं । उसकी भी सहस्र के हिसाब से एकशत वाली सन्ध्या होती है और सन्ध्या के तुल्य ही सन्ध्यांश होता है।।२७।। यह बारह सहस्र की युगाख्या कही गई है इसमें कृत-त्रेता-द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं ।।२८।।

अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।
कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणतः ।।२९
सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संखयया ।
चत्वारिंशत् सहस्राणि कालिकालयुगस्य तु ।।३०
एवं संखयातकालश्च कालेष्विह विशेषतः ।
एवं चतुर्युगः कालो विना सन्ध्यांशकैः स्मृतः ।।३१
चत्वारिंशत्त्रीणि चैव नियुतानि च संखयया ।
त्रिंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युगः ।।३२
एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ।।३३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मन्वन्तरस्य संख्यातुवर्षाग्रेण निवोधत ।
त्रिशत्कोटयस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्तिताः ॥३४
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥३५

यहाँ पर मानुप के द्वारा प्रमाण से संवत्सरों का सृजन किया गया है। तब तक कृत युग के वर्षों को उस प्रमाण से बतलाया जाता है ॥२९॥ सौ हजार चौदह संख्या से चालीस सहस्र कलि के युग का काल होता है ॥३०॥ यहाँ कालों में विशेष रूप से इस प्रकार का संख्यात काल है। इस तरह बिना सन्ध्यांश के चारों युगों का काल कहा गया है ॥३१॥ संख्या से तेतालीस नियुत बीस सहस्र चारों युगों का सन्ध्यांश होता है ॥३२॥ इस प्रकार से चारों युगों की नाम वाली इकहत्तर साधिका हैं। कृत और त्रेता आदि से युक्त वह मनु का अन्तर कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तर की संख्या वर्षाग्र से जाननी चाहिए। मानुष के द्वारा तीस करोड़ वर्ष कहे गये हैं ॥३४॥ सड़सठ नियुत अन्य अधिक और बीस सहस्र का यह काल साधिका के बिना होता है ॥३५॥

मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता ।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्तितः ॥३६
चतुः सहस्रयुक्तं वै प्रथमन्तत् कृतं युगम् ।
त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥३७
युगपत्समवेतार्थो द्विधा वक्तुं न शक्यते ।
क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥३८
तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते ।
श्रौतं स्मार्त्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥३९
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुः सामसंज्ञितम् ।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४०
परम्परागतं धर्मं स्मार्त्तञ्चाचारलक्षणम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्णाश्रमाचारयुत मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४१
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै।
तेषां सुतप्तपसामार्षेयेण क्रमेण तु ॥४२

संख्या के विद्वान् ब्राह्मणों ने मन्वन्तर की यह संख्या बतलाई है। मन्वन्तर का यह काल युगों के साथ प्रकीर्तित किया गया है ॥३६॥ चार सहस्र से युक्त प्रथम वह कृत युग है। त्रेता-द्वापर कलि जो अवशिष्ट हैं उन्हें बतलाया जायेगा ॥३७॥ एक साथ समवेत अर्थ दो प्रकार से कहा नहीं जा सकता है। क्रम से आया हुआ यह मैंने तुम से दो युग कह दिये हैं। ऋषियों के प्रसङ्ग से व्याकुल होने से उसी प्रकार से कहे हैं ॥३८॥ वहाँ पर त्रेता युग के आदि में मनु और वे सप्तर्षि थे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म था जो कि ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित किया गया था ॥३९॥ दाराग्निहोम संयोग-ऋग-यजु और साम संज्ञा से युक्त-इत्यादि लक्षण वाले श्रौत धर्म को सप्तर्षियों ने कहा था ॥ ४० ॥ परम्परा से आया हुआ आचार के लक्षण से युक्त तथा वर्णों और आश्रमों के आचार वाले स्मार्त धर्म को स्वायम्भुव मनु ने कहा था ॥४१॥ सत्य-ब्रह्मचर्य-श्रुति और तप से भलीभाँति तप करने वाले उनके आर्षेय क्रम से कहा गया है ॥४२॥

सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु।
अबुद्धिपूर्वकं तेषाम क्रियापूर्वमेव च ॥४३
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनै।
आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥४४
प्रणाशे त्वथ सिद्धिनामभ्यासाच्च प्रवर्तनम्।
आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ॥ ५४
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च।
सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्तं धर्मं मनुर्जगौ ॥४६
त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्मशेषतः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ॥४७
ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै ।
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ४८
सधर्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे ।
विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ॥ ४९
आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पतेः ।
परिचार यज्ञाशूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः ॥ ५०

त्रेता युग आद्य में सप्तर्षियों के और मनु के उनके अबुद्धि पूर्वक तथा अक्रिया पूर्वक ही कहा गया है ॥४३॥ तारकाद्य निदर्शनों से वे मन्त्र अभिव्यक्त हुए हैं. देवों के आदि कल्प मे तो वे स्वयं ही प्रादुर्भूत हुए थे ॥४४॥ इसके अनन्तर सिद्धियों के प्रणाश होने पर और इनका प्रवर्त्तन हुआ। व्यतीत कल्पों में जो सहस्रों मन्त्र थे वे मन्त्र पुनः उनके प्रतिभास से समुत्थित हुए हैं। ॥४५॥ ऋग्-यजु साम और अथर्व के मन्त्रों को सप्तर्षियों ने कहा था और स्मार्त धर्म को मनु ने कहा था ॥४६॥ त्रेता के आदि में केवल वेद संहिता थी धर्मशेष से ओर आयु के संरोध से वे द्वापर में व्यस्तमान होते हैं ॥४७॥ कलियुग में और द्वापर में तप से ऋषिगण देव अनादि निधन अर्थात् आदि और निधान (मृत्यु) न होने वाले एवं दिव्य पहिले स्वयम्भू ने सृष्ट किये थे ॥४८॥ धर्म के सहित प्रजा के सहित और सङ्गों के सहित युग युग में धर्म के अनुसार यथायुग वेद वाद समान अर्थ वाले विशेष क्रीड़ा क्रिया करते हैं ॥४९। आरम्भयज्ञ क्षत्रिय-हविर्यज्ञ वाले वैश्य–परिचार के यज्ञ वाले शूद्र और जप के ही यज्ञ वाले ब्राह्मण थे ॥५०॥

तथा प्रामुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ॥५१
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान् विशः ।
वैश्यानुवर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ॥५२
शुभाः प्रवृत्तायस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा ।
सङ्कल्पि तेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्मणा ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्रेतायुगे त्वविकलः कर्म्मारम्भः प्रसिद्धयति ।।५३
आयुर्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्मशीलता ।
सर्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवन्त्युत ।।५४
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान् धर्मान्न ह्यपालयन् ।।५५
परस्पर विरोधेन मनुन्ताः पुनरन्वयुः :
मनुः स्वायम्भुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः ।।५६
धाता तु शतरूपायाः पुमान् स उदपादयत् ।
प्रियव्रतोत्ता नपादौ प्रथमन्तौ महीपती ।।५७

त्रेता युग में सभी वर्ण बहुत ही इस तरह प्रमुदितथे और धर्म से पालित थे। सभी क्रिया वाले प्रजा से युक्त, समृद्ध और सुखी थे ।।५१।। क्षत्रिय लोग सर्वदा ब्राह्मणों का अनुवर्त्तन किया करते थे और वैश्य लोग सदा क्षत्रियों का अनुवर्त्तन करते थे तथा शूद्र परस्पर में एक दूसरे का अनुवर्त्तन करते थे ।।५२।। उनकी जितनी और जो भी प्रवृत्तियाँ थीं-उनके धर्म-वर्ण और आश्रम सभी शुभ थे और सङ्कल्पित मन से तथा वाचोक्त कर्म से त्रेतायुग में अविकल कर्मों का आरम्भ प्रसिद्ध होता है! ।।५३।। आयु-मेधा-बल-रूप-आरोग्य-धर्म शीलता ये गुण त्रेता में सर्व साधारण थे अर्थात् सामान्य रूप से ही सब में रहा करते थे ।।५४।। ब्रह्मा जी ने उनकी वर्ण और आश्रम की ऐसी व्यवस्था करदी थी तो भी फिर उस प्रजा ने उन धर्मों को मोह से पूर्ण तथा ।।५५।। परस्पर में विरोध से वे फिर मनु को अन्वित हुई। प्रजापति स्वायम्भुव मनु ने उनके याथातथ्य को देखा था ।।५६।। धाता ने शतरूपा से वह पुमान् उत्पन्न कराया था। प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो प्रथम महीपति थे ।।५७।।

ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दण्डधारिणः ।
प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः ।।५८
प्रच्छन्नपापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि ।
धर्मसंस्थापनार्थाय तेषां शास्त्रे तपो मया ।।५९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां संप्रकीर्तिताः ।
संहिताश्च ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्राह्मणैस्तु ते ॥६०
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येवन्तु दैवतैः ।
यामैः शुक्लैर्जपैश्चैव सर्वसम्भारसंवृतैः ॥६१
सार्द्धं विश्वभुजा चैव देवेन्द्रेण महौजसा ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैर्यज्ञास्ते प्राक् प्रवर्तिताः ॥६२
सत्यं जपस्तपो दानं त्रेतायां धर्म उच्यते ।
क्रियाधर्मश्च ह्रसते सत्यधर्मः प्रवर्त्तते ॥६३
प्रजायन्तो ततः शूराः आयुष्मन्यो महाबलाः ।
न्यस्तदण्डमहाभागा यज्वानो ब्रह्मवादिनः ॥६४
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहिताः ।
सिंहान्तका महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥६५
महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नान्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥६६

तब से लेकार दण्डधारी राजा लोग उत्पन्न हुए थे प्रजाओं के रञ्जन करने के कारण से ही नृप राजा हुए थे अर्थात् (राजा)-इस शब्द से नृपों को कहा जाने लगा था ॥५८॥ जो भूतमण्डल में प्रच्छन्न पाप वाले मनुष्य थे । उन के धर्म की संस्थापना करने के लिये शास्त्र में मैंने तप किया था ॥५९॥ त्रेता में वर्णों का प्रविभाग किया हुआ कीर्त्तित है । ऋषियों के तथा ब्राह्मणों के द्वारा वे संहिता और मन्त्र बतलाते हैं ॥६०॥ उस समय में यज्ञ इस प्रकार के सम्भार से संवृत याम शुक्ल और जपों के द्वारा तथा दैवतों से यज्ञ की प्रवर्त्तितता हुई ॥६१॥ विश्वभुज के और महान् ओज वाले देवेन्द्र के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवों ने वे यज्ञ पहिले प्रवर्तित किये थे ॥६२॥ त्रेता युग में सत्य-जप-तप-दान-धर्म कहा जाता था । क्रिया धर्म का ह्रास होता है और सत्य धर्म प्रवृत्त होता है । ६३॥ इसके अनन्तर आयुष्मान्-महाबल से युक्त शूर उत्पन्न होते हैं । न्यस्त दण्ड वाले महाभाग ब्रह्मवादी यज्वान-पद्मपत्र के समान नेत्रों वाले-पृथु वक्षः स्थल से युक्त-सुसंहित-सिंहान्तक महान् सत्व

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले-मत्त मातङ्ग पर चढ़कर गमन करने वाले-महान् धनुधारी ऐसे विशेष गुणों से भूषित समस्त शुभ एवं सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले त्रेता युग में चक्रवर्त्ती राजा थे ॥६४॥६५।६६॥

न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते।
व्यामेनैवोच्छ्रयाद्यस्य सम ऊर्द्ध्वन्तु देहिनः।
समुच्छ्रयः परीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः॥६७
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वा गजास्तथा।
सप्तातिशयरत्नानि सर्वेषाञ्चक्रवर्तिनाम्॥६८
चक्रं रथो मणिःखड्गं धनू रत्नश्च पञ्चमम्।
केतुर्निधिश्च सप्तैते प्राणहीनाः प्रकीर्त्तिताः॥६९
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः।
मन्त्र्यश्वः कलभ श्चैव प्राणिनः सम्प्रकीर्त्तिताः॥७०
रत्नान्येयानि दिव्यानि संसिद्धानि महात्मनाम्।
चतुर्दश विधेयानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम्॥७१
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै॥७२
भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च।
त्रेतायुगादिकेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्त्तिनः॥७३

वे दोनों न्यग्रोध बाहु कहे गये हैं और जो व्याम है वह न्यग्रोध कहा जाता है। जिस देहधारीका नाम से ही उच्छ्रय से ऊर्द्ध्व सम है। समुच्छ्रय परीणाह न्यग्रोध मण्डल जानने के योग्य होता है ॥६७। चक्र रथ-मणि खड्ग धनु यह पाँचवां रत्न था। केतु और निधिये सात रत्न प्राणों से हीन कहे गये हैं ॥६८॥६९॥ भार्या-पुरोहित-सेनानी और रथकृत्-मन्त्री-अश्व कलभ ये साथ प्राण वाले अर्थात् प्राणधारी रत्न कहे गये हैं जोकि सर्वातिशय रत्न चक्रवर्त्तियों के होते थे ॥७०॥ ये दिव्य रत्न महान् आत्मा वालों के संसिद्ध होते थे। और समस्त चक्रवर्त्तियों के ये चौदह वेधेय थे ॥७१॥ समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत हैं। तथा अनागत हैं पृथिवी में चक्रवर्त्ती विष्णु भगवान् के अंश से ही उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ करते हैं ॥ ७२ ॥ भूत-भव्य और जो वर्त्तमान हैं यहाँ त्रेता युगादि में चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं । ७३॥

भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम् ।
अद्‌भुतानि च चत्वारि बलं धर्मः सुखं धनम् ॥७४
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते वै नृपैः समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ।
अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ।
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६
लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ।
केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी ।
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठाः श्रीवत्साश्चोद्‌र्ध्वरोमशाः ॥७७
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः ।
न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धाः सुमेहनाः ।
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥७८
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयोः ।
पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपाः ॥७९
असङ्गा गतयस्तेषां च चतस्रश्चक्रवर्त्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥८०

यहाँ उन राजाओं के ये परम भद्र और अत्यन्त अद्‌भुत चार बल-धर्म-सुख और धन होते हैं ॥७४॥ नृपों के द्वारा अन्योन्य के अविरोध से समान रूप में प्राप्त किये जाते हैं वे अर्थ-धर्म-काम-यश और विजय हैं ॥७५॥ वे अणिमादि ऐश्वर्य से तथा प्रभुशक्ति से और अन्य तप से ऋषियों का भी अभिभव किया करते हैं। बल और तप से समस्त देव दानव और मानवों को अभिभूत किया करते हैं ॥७६॥ शरीर में रहने वाले जो लक्षण होते हैं, उनसे भी युक्त वे उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण भी ऐसे हैं जोकि अमानुषी हैं अर्थात् मनुष्यों में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नहीं होने वाले होते हैं। केशों पर स्थित ऊर्ण ललाट वाले और इसकी प्रमार्जन करने वाली जिह्वा थी। ताम्र के समान प्रभा वाले ओष्ठ एवं दन्तोष्ठ वाले श्रीवत्स तथा ऊर्द्ध्व रोमश थे ।।७७।। जानुपर्यन्त बाहुओं वाले जाल हस्त तथा वृषाङ्कित-न्यग्रोध के समान परिणाह से युक्त सिंह के सदृश स्कन्ध वाले और सुमेहन थे। गजेन्द्र के समान गति वाले तथा महान् हनु (टोड़ी) वाले थे ।।७८।। जिनके पैरों में चक्र एवं मत्स्य के चिन्ह थे तथा हाथों में शङ्ख और पद्म के चिन्ह थे ऐसे पिच्चासी सहस्र वे अजर अर्थात् वृद्धता से रहित नृप थे। ।।७९।। उन चक्रवर्त्तियों की चारों गतियाँ असङ्ग थीं ? अन्तरिक्ष में समुद्र में पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र उनकी गति थी ।।८०।।

इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते।
तदा प्रवर्त्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः। ८१
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते।
हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा ह्यरोगाः पूर्णमानसाः ।।८२
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ।।८३
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु।
एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासन्धौ निबोधत ।।८४
त्रेतायुग स्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्त्तते।
सन्ध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ।।८५
कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्।
पूर्वं स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे ।।८६
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै।
कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तश्च वै पुनः ।।८७

इज्या-दान-तप और सत्य ये चारों बातें त्रेता युग में धर्म कही जाती हैं। उस समय में वर्ण और आश्रमों के प्रविभाग से धर्म प्रवृत्त होता था ।।८१।। मर्यादा की स्थापना करने के लिये ही दण्डनीति की प्रवृत्ति होती है। समस्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रजाजन परम प्रसन्न एवं पुष्ट, रोगों से रहित और पूर्ण मानस वाले थे ॥८२॥ त्रेतायुग की विधि में चतुष्पाद एक वेद कहा गया है। उस समय में मानव तीन सहस्र वर्षों तक जीवित रहा करते हैं ॥८३॥ पुत्र और पौत्रों से पूर्ण तथा जब समाकीर्ण हो जाते थे तब क्रम से मृत्युगत हुआ करते थे। इस प्रकार से त्रेतायुग का यह धर्म है। अब त्रेता की सन्धि में जो धर्म था उसे जानलो। त्रेता युग का स्वभाव सन्ध्या पाद से होता है और सन्ध्या में स्वभाव युगपाद से रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ श्री शांशपायन ने कहा त्रेतायुग के मुख में यज्ञ का प्रवर्त्तन कैसे होता था? पहिले स्वायम्भुव सर्ग में जिस प्रकार से है वह मुझे बतलाइये ॥८६॥ कृत युग के साथ सन्ध्या के अन्तर्हित हो जाने पर उस समय में त्रेता युग के प्राप्त होने पर कलाख्या अर्थात् काल नाम वाली के प्रवृत्त होने पर फिर वर्णां और आश्रमों की व्यवस्था की थी। ८७॥

सम्भारांस्यांश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥८८
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्।
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥८९
वर्णाश्रम व्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम्।
मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्मसु ॥९०
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा।
दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥९१
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः।
यजन्ते पशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः ॥९२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सततो यज्ञकर्मणि।
सम्प्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥९३
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च।
आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै ॥९४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हविष्यग्नौ हूयमाने देवानां देवहोतृभिः ।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ।।६५
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्तथा तु ये ।
तान् यजन्ते तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये ।।६६

उन सम्भारों को संभृत करके यज्ञ किस प्रकार से प्रवृत्त हुआ था यह बतलाइये । यह सुनकर श्री सूतजी बोले हे शांशपायन ! अब तुम मुझ से श्रवण करो ।।८८।। जिस प्रकार से त्रेता युग के मुख में यज्ञ की प्रवृत्ति थी । वृष्टि के सर्जन होने से ओषधियों के उत्पन्न होने पर गृह और आश्रम तथा पुरों में वार्त्ता के प्रतिष्ठित होने पर वर्ण और आश्रमों की पूर्ण व्यवस्था करके तथा मन्त्रों और संहिता को व्यवस्थित बनाकर एवं यहाँ और परलोक के कर्मों में मन्त्रों का संयोजन करके तब विश्व का भोग करने वाले इन्द्र ने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था जोकि समस्त देवों के साथ समस्त सम्भारों से सम्भृत था ।।८९।।९०। ९१।। इसके अनन्तर अश्वमेध के वितत होने पर महर्षिगण समागत हुए थे । और सबने समागमन करके मेध्यजंगमों तत्वों के द्वारा यजन किया था ।।९२।। सतत होने वाले यज्ञों के कर्म-ऋत्विकों के कर्म करने में व्यस्त होने पर और सत्वर ही उन समस्त आगमों के सम्प्रगीत होने पर तथा लघु अध्वर्यु और वृषभों के परिक्रान्ति होने पर तथा मेध्यों के आलभन होजाने पर एवं अग्नि में हवियों के हूयमान हो जाने पर और देव होताओं के द्वारा देवों के आहूत किये जाने पर जोकि महान् आत्मा वाले देव यज्ञों के भाग को ग्रहण करने वाले थे, जो इन्द्रियात्मक देव यज्ञ के भाग लेने वाले थे उस समय जो कल्पादि में होते हैं उनका ही यजन किया करते हैं ।।९३।।९४।। ।।९६।।

अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षयः ।
महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थितान् ।
पप्रच्छुरिन्द्रं सम्भूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ।।९७
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ।
नेष्टाः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम ।।९८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥९९
आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ।
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मव्यहेतुना ।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ॥१००
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः ।
एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भु विहितः पुराः ॥१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ॥१०२
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः ।
सन्धाय वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ॥१०३
महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप :
उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः प्रभो ॥१०४

प्रैष्ट काल में जो महर्षि अध्ययु व्युत्थित हुए थे तो उस समय में उन दीन एवं स्थित पशुगणों को देख कर महर्षियों ने सम्भूत हो कर इन्द्र से पूछा था कि यह आपके यज्ञ की क्या विधि है ? ॥९७॥ आपकी हिंसा धर्म की इच्छा से यह बड़ा जबर्दस्त अधर्म किया जाता है ! हे सुरोत्तम ! आपके यज्ञ में यह पशुओं का वध तो इष्ट नहीं है ॥९८॥ आपने पशुओं के द्वारा धर्म का नाश करने के लिये यह अधर्म आरम्भ कर दिया है । यह तो धर्म नहीं हैं । यह तो अधर्म ही है । हिंसा कभी धर्म नहीं कहा जाया करता है आप यदि चाहते ही हैं तो आगम के द्वारा यज्ञ करियेगा । हे सुरश्रेष्ठ ! धर्मव्यय का हेतु विधिदृष्ट यज्ञसे तथा यज्ञ-बीजों के द्वारा यजन होना चाहिए जिसमें हिंसा न हो वे ॥१०० । हे इन्द्र ! तीन वर्ष तक परमकाल में अप्ररोहियों के द्वारा उषित रहते हुए यह धर्म महान् स्वयभू के द्वारा विहित है जोकि पहिले किया गया है ॥१०१॥ इस प्रकार से विश्वभुक इन्द्र देव तत्त्व के द्रष्टा महर्षियों के द्वारा कहा जाता है कि स्थावरों से ही हमको यजन करना चाहिए ॥१०२। वे तत्त्वों से युक्त महर्षिगण विवाद से बहुत ही खिन्न

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुए और इन्द्र के द्वारा वाक्य का सन्धान करके ईश्वर वसु से उन्होंने पूछा था ॥१०३॥ ऋषियों ने कहा—हे महा प्राज्ञ! हे नृप ! आपने यह कैसी और क्या यज्ञ की विधि देखी है ? उत्तान पाद के विषय में बताइये हे प्रभो ! हमारे इस संशय का छेदन करिये ॥१०४॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ।
यथोपदिष्टैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः ।।१०५
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैस्तथा ।
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ ।।१०६
यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ।
दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः ।
तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुमर्हथ ।।१०७
यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि वै द्विजाः ।
तदा प्रावर्त्ततां यज्ञो ह्यन्यथा नोऽनृतं वचः ।
एवं हृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः ।।१०८
अधश्च भवनं दृष्ट्वा तमर्थं वाग्यतो भव ।
मिथ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ।।१०९
इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्द्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ।।११०
वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधागतः ।।१११
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशयः ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मादूरमुपागतिः ।।११२
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित् ।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ।।११३
तस्मान्न हिंसाधर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः ।
ऋषिकोटिसहस्राणि कर्मभिः स्वैर्दिवं ययुः ।।११४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके अनन्तर उनके वाक्य को सुनकर और बलाबल का विचार न कर के तथा वेद शास्त्र का अनुसरण करके यज्ञ के तत्त्व को बतलाया था। पार्थिव ने कहा जैसा भी उपदिष्ट है उसी से यजन करना चाहिए ॥१०५॥ मेध्य पशुओं द्वारा, बीजों के द्वारा और फलों के द्वारा यजन करना चाहिए। मुझे यह दिखलाई देता है कि यज्ञ का हिंसा स्वभाव होता है ॥१०६॥ यहाँ पर जैसा संहिता के मन्त्र हैं जिनका कि लिङ्ग ही हिंसा है दीर्घ तप से युक्त महर्षियों ने और तारिकादि दर्शनों ने कहा है। उसी के प्रामाण्य से मैंने कहा है इसलिए इस विषय में मुझे मत मानो। अर्थात् मुझे ही मानने के योग्य नहीं होते हैं ॥१०७॥ हे द्विज गणो ! यदि वे ही मन्त्र वाक्य प्रमाण हैं तो यज्ञ को प्रवृत करो अन्यथा हमारा वचन असत्य है। इस प्रकार से युक्तात्मा वे तपो धन हृतोत्तर हो गये अर्थात् चुप हो गये थे ॥१०८॥ नीचे भवन को देखकर उसके लिये वग्यत अर्थात् मौन हो जाओ। जिससे मिथ्यावादी नृप ने रसातल में प्रवेश किया था ॥१०९॥ इतना केवल कहने पर राजा ने रसातल में प्रवेश किया था और ऊर्ध्वचारी वसु होकर रसातल में चरण करने वाला हो गया था ॥११०॥ उस वाक्य से वह वसुधा तल का वासी हो गया था। धर्मों के संशय का छेदन करने वाला राजा वसु इसके अनन्तर आगया ॥१११॥ इसलिये चाहें बहुत कुछ जानने वाला भी क्यों न हो कभी भी किसी एक को संशय का निराकरण नहीं बोलना चाहिए। बहुत उद्धार वाले धर्म की सूक्ष्मता से दूर उपागति होती है ॥११२॥ इस कारण से किसी के द्वारा निश्चय पूर्वक धर्म का विषय बोला नहीं जा सकता है। केवल देवों को और ऋषियों को लेकर स्वायम्भुव मनु ही हो धर्म को जानते हैं। इनको छोडकर अन्य कोई नहीं जान सकता है ॥११३॥ इसलिये महर्षियों ने हिंसा को धर्म का द्वार नही कहा है। सहस्रों करोड़ ऋषि अपने कर्म्मों से स्वर्ग को गये थे ॥११४॥

तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः।
तुच्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः।
एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥११५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः।
सनातनत्य धर्मस्य मूलनेतद्दुरासदम् ॥११६
धर्मसन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम्।
यज्ञेन देवानाप्नोति वैराग्यं तपसा पुनः ॥११७
ब्राह्मण्यं कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात् प्रेक्षते लयम्।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः ॥११८
एवं विवादः सुमहात यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने।
ऋषीणां देवतानाञ्च पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥११९
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वाद्भुतं वर्त्म बलेन तु।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागताः ॥१२०
गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः।
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपाः ॥१२१

इससे महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं किया करते हैं। तपोधन अर्थात् तपस्वी लोग तुच्छ मूल-फल-शाक और उदकका पात्र देकर इस प्रकार से विभव से स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हैं ॥११५॥ अद्रोह-लोभ न करना-दम-प्राणियों पर दया-तपस्या-ब्रह्मचर्य-सत्य अनुक्रोश-क्षमा-धृति यह सब सनातन धर्म को दुरासह (दुर्लभ) मूल होता है ॥११६॥ धर्म मन्त्रात्मक यज्ञ होता है। और अनशन स्वरूप वाला तप होता है। यज्ञ से देवों को प्राप्त किया करता है और फिर तप से वैराग्य का लाभ करता है ॥११७॥ कर्मों के संन्यास (त्याग) से ब्रह्मण्य को और वैराग्य से तप को प्रेक्षण किया करता है। ज्ञान से कैवल्य (अपवर्ग) को प्राप्त करता है ये पाँच ही गतियाँ कहीं गई है ॥११८॥ पहिले स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार से देवताओं का और ऋषियों का यज्ञ के प्रवर्त्तन में बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥११९॥ इसके अनन्तर ऋषिगण जल से अद्भुत मार्ग देख कर और वसु के वाक्य का अनादर करके जैसे आये थे वैसे ही वे चले गये थे ॥१२०॥ देवों के सङ्घ के चले जाने पर देवों ने यज्ञ की प्राप्ति की और तप से सिद्ध ब्रह्मक्षत्रमय नृप श्रूयमाण होते हैं ॥१२१॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ।
सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ।
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्द्धानादयो नृपाः ॥१२२
एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवं गता ।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः ।
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ॥१२४
तस्मान्नात्येति तद्यज्ञं तपोमूलमिदं स्मृतम् ।
यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ततःप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्त्तत ॥१२५

प्रियव्रय-उत्तान वाव-ध्रुव मेधातिथि-वक्ष-सुमेधा- विरजा-शंख वाव रज-प्रचीनबर्हि पर्जन्य और दविर्धानि आदि राज-ये नृप तथा अन्य बहुत से राजा सिद्ध थे और वे स्वर्ग को गये थे। ये राजर्षिगण महान् सत्व से युक्त थे जितनी कि कीर्त्ति प्रतिष्ठित है ॥१२३॥ इसलिये सबमें कारणों के द्वारा तप यज्ञ से विशिष्ट हुआ करता है। पहले श्री ब्रह्माजी ने तप से ही इस जगत् तथा विश्व को सृष्ट किया था ॥१२४॥ इसलिये वह यज्ञ अधिक नहीं होता है। यह तप के मूल वाला कहा गया है इस प्रकार से स्वयम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ का प्रवर्त्तन हुआ था। तब से लेकर यह यज्ञ युगों के साथ विशेष रूप से हुआ था ॥१२५॥

॥ प्रकर्ण ४० —चारों युगों का आख्यान ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा संप्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥३
सम्भेदश्चैव वर्णानां कार्याणाञ्चा विनिर्णयः ।
यज्ञौषधेः पशोर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम् ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एषां रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ।। ४ ।।
आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रपद्यते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ।। ५ ।।
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्त्यते तथाश्रमः ।
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ।। ६ ।।
द्वैधात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ।
अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं निगद्यते ।
धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ।। ७ ।।

श्री सूतजी ने कहा इसके आगे पुनः द्वापर की विधि को कहूँगा। वहाँ पर त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग प्रतिपन्न होता है ।। १ ।। प्रजा-जनों को त्रेतायुग में जो सिद्धि थी वह द्वापर के आदि में युग के परिवृत्त हो जाने पर उस द्वापर में वह फिर प्रनष्ट हो जाती है ।। २ ।। द्वापर में फिर उन प्रजाओं के लोभ, क्षधृति वणिग्युद्ध, तत्त्वों का अविनिश्चय, वर्णों का सम्भेद, कार्यों का अविनिर्णय, यज्ञोषधि पशु का दण्ड, मद, दम्भ, अक्षमा, बल से सब प्रवृत्त होते है और इनकी रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त द्वापर में प्रवृत्ति कही गई है ।। ४ ।। आद्य कृत युग में धर्म है त्रेता मे वह सम्प्रपन्न होता है और द्वापर में व्याकुली भूत होकर कलियुग में प्रनष्ट हो जाया करता है ।। ५ ।। वर्णों का विशेष रूप से परिध्वंस संकीर्त्तित किया जाता है। उस युग में श्रुति स्मृति में आश्रम भी इसी प्रकार से द्वैध भाव को प्राप्त हो जाता है ।। ६ ।। श्रुति के और स्मृति के द्वैध भाव से किसी भी निश्चय का अधिगम नहीं किया जाता है। अनिश्चय के अधिगमन से धर्म का तत्त्व कहा जाया करता है। धर्म के तत्त्व में भिन्न मनुष्यों का मतभेद हो जाता है ।। ७ ।।

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाभिगम्यते ।। ८ ।।
कारणानाञ्च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ।
मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ।। ९ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ।। १० ।।
संरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।। ११ ।।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ।। १२ ।।
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ।। १३ ।।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।। १४ ।।

परस्पर में विभिन्न उन मनुष्यों के द्वारा और दृष्टियों के विभ्रम के होने से—'यह धर्म है और यह धर्म नहीं है' यह निश्चय नहीं किया जाता है कि वस्तुतः धर्म क्या है ।। ८ ।। कारणों के वैकल्प होने से और कारण का भी निश्चय नहीं होने से और उन के मतिभेद होने से दृष्टियों का विभ्रम हो जाया करता है ।। ९ ।। इसके पश्चात् दृष्टि से विभिन्न उनके द्वारा यह शास्त्र कुल दिया गया है । इस त्रेता में यहाँ एक वेद चार पादों वाला विधान किया जाता है ।। १० ।। हृदयों में आपके संरोध से दिखलाई देता है । द्वापरादि में वेद व्यास के द्वारा चार प्रकार से व्यस्यमान किया जाता है ।। ११ ।। ऋषियों के पुत्रों के द्वारा दृष्टि के विभ्रमों से वेदों के पुनः भेद किये जाया करते हैं मन्त्र और ब्राह्मण भाग के विन्यासों के द्वारा तथा स्वर वर्ण के विपर्ययों के द्वारा भेद किये जाते हैं ।। १२ ।। ऋग्-यजु और साम वेदों की संहिता कहीं-कहीं पर दृष्टि से भिन्न श्रुतर्षियों के द्वारा सामान्य तथा वैकृत रूप से संहन्यमान होती हैं ।। १३ ।। ब्राह्मण, कल्पसूत्र और मन्त्र प्रवचन अन्य तीर्थों के द्वारा प्रहित हैं । कुछ लोग उनके प्रति अवस्थित हैं ।। १४ ।।

द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः ।
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ।। १५ ।।
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ।
आध्वर्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ।। १६ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चाप्यसंक्षयैः ।
व्याकुलं द्वापरे भिन्ने क्रियते भिन्नदर्शनैः ।। १७ ।।
तेषां भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसंक्षयाः ।
द्वापरे सम्प्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ ।। १८ ।।
तेषां विपर्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ।। १९ ।।
वाङ्मनः ; कर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्ष विचारणा ।। २० ।।
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणां दर्शनच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः ।। २१ ।।

द्वापर में भिन्न वृत्त और आश्रमों वाले द्विज प्रवर्तित होते हैं। एक पहिले आध्वर्यव था वह फिर द्वैध हो गया ।। १५ ।। सामान्य और विपरीत अर्थों से यह शास्त्र कुल किया गया है। आध्वर्यव के प्रस्तावों से बहुधा व्याकुल कर दिया है ।। १६ ।। उसी प्रकार से अथर्व-ऋक् और सामों के असंक्षय विकल्पों से भी भिन्न द्वापर में भिन्न दर्शनों से व्याकुल किया जाता है ।। १७ ।। उनके भेद और प्रभेद और विकल्पों से भी असंक्षय द्वापर में सम्प्रवृत्त होते हैं और फिर कलियुग में विनष्ट हो जाया करते हैं ।। १८ ।। द्वापर में फिर उन के विपर्यय भी होते हैं। अवृष्टि-मृत्यु और उसी प्रकार से व्याधियों के उपद्रव होते हैं ।। १९ ।। वाणी-मन और कर्म से उत्पन्न दुःखों से फिर निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है। निर्वेद हो जाने से उनको दुःख से छुटकारा पाने की विचारणा होती है ।। २० ।। विचारणा से वैराग्य होता है और वैराग्य से सांसारिक वस्तुओं में दोषों का दर्शन होने लगता है और दोषों के देखने से द्वापर में ज्ञान की उत्पत्ति होती है ।। २१ ।।

तेषाञ्च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ।। २२ ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ।
द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्रा द्वार्त्ता प्रसिद्ध्यति ।
द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्वानामविनिश्चयः ।
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा ॥ २६ ॥
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २७ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥ २८ ॥

पहले आद्य स्वायम्भुव मन्वन्तर में उन मानी शास्त्रों के द्वापर में परिपन्थी उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥ अङ्गों के और ज्योतिष के आयुर्वेद विकल्प हैं । अर्थशास्त्र विकल्प और हेतुशास्त्र विकल्प हैं ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्र के प्रभेद पृथक् पृथक् प्रस्थान हैं । द्वापर में उस प्रकार से मनुष्यों के मतिभेद अभिवर्तित होते हैं ॥ २४ ॥ मन से, वाणी से, कर्म से, कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है । द्वापर में समस्त प्राणियों की वार्ता कायक्लेश से पुरस्कृता होती है ॥ २५ ॥ लोभ, अधैर्य, वणिज्युद्ध, तत्त्वों का निश्चय न होना, वेद शास्त्रों का प्रणयन और धर्मों का सङ्कट, रोग, लोभ, वध, वर्णों और आश्रमों का परिध्वंस, काम और द्वेष ये सब द्वापर में प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ मनुष्यों की परमायु पूर्ण दो सहस्र वर्ष होती है । उस द्वापर के निःशेष होने पर उसकी सन्ध्या एक पाद से होती है ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्यापादेन अशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥
द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्य तु निबोधत ।
द्वापरस्यांशशेषेतु प्रतिप्रत्तिः कलेरतः ॥ ३० ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥
एष धर्मः कृतः कृत्स्नो धमश्च परिहीयते ।
मनसा कर्मणा स्तुत्या वार्त्ता सिद्धयति वा न वा ॥ ३२ ॥
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि वै ।
अनावृष्टिभयं घोरं दर्शनञ्च विपर्ययम् ॥ ६३ ॥
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्तथापरः ।
स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते वं कलौ प्रजा ॥ ३४ ॥
अधार्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्ण कोपाल्पतेजसः ।
अनृतव्रुवश्च सतत तिष्ये जायन्ति वै प्रजाः ॥ ३५ ॥

द्वापर का यह धर्म गुणों से हीन प्रतिष्ठित होता है । उसी प्रकार से सन्ध्यापाद से उसका अंश अवस्थित होता है ॥ २९ ॥ द्वापर के वर्ष में जो तिष्य की है उसे समझ लो । द्वापर के अंश शेष में इससे कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ ३० ॥ हिंसा, असूया, अनृत, माया और तपस्वियों का बध ये स्वभाव तिष्य के हुआ करते हैं । उस समय प्रजा इनका साधन किया करती है ॥ ३१ ॥ यह किया हुआ पूर्ण धर्म है और धर्म परिहीन हो जाता है । मन से, कर्म से और वाणी से (वाणी का ही पर्याय स्तुति है) वार्त्ता सिद्ध होती है और नहीं भी होती है ॥ ३२ ॥ कलियुग में जो रोग होता है वह प्रकर्ष रूप से मारक हुआ करता है और निरन्तर क्षुधा के शान्त करने का भय बना रहा करता है । वर्षा के बिल्कुल न होने का भय तथा घोर दर्शन एवं विपर्यय होता है ॥ ३३ ॥ तिष्य लोक में युग-युग में स्मृति का प्रमाण नहीं होता है । कोई गर्भ में स्थिति ही मर जाता है और दूसरा पूर्ण यौवनावस्था में स्थित ही मृत्युगत हो जाता है । कलियुग में स्थाविर में मध्य कौमार प्रजा मर जाया करती है ॥ ३४ ॥ तिष्य में प्रजा अधार्मिक, अनाचार से युक्त, तीक्ष्ण कोप वाली, अल्प तेज से युक्त और मिथ्या बोलने वाली निरन्तर उत्पन्न हुआ करती है ॥ ३५ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भवम् ॥ ३६ ॥
हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमानृतम् ।
तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ।
नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
क्षुद्राणमन्ययोनेस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ।
भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥
राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवर्तकाः ।
भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥
आयुर्मेधा बलं रूपं कुलञ्चैव प्रहीयते ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥
राजवृत्तो स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ।
भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ४२ ॥

बुरे इष्ट वाले, बुरा अध्ययन करने वाले, बुरे आचार वाले और बुरे आगम वाले ब्राह्मणों के इन कर्म दोषों से प्रजा जनों को भय उत्पन्न हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमा, अनृत, राग और लोभ तिष्य में सब ओर से जन्तुओं को हुआ करते हैं ॥ ३७ ॥ कलियुग प्राप्त करके जीवों को अत्यन्त संक्षोभ हुआ करता है। उस कलि के समय में द्विजाति वेदों को नहीं पढ़ा करते हैं और न वे भजन ही किया करते हैं। इससे मनुष्य और वैश्यों के सहित क्षत्रिय क्रम से उत्पीड़ित हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ क्षुद्रों का और अन्य योनि का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ इस कलियुग में शयन, आसन और भोजन के द्वारा हुआ करते हैं ॥ ३९ ॥ राजा लोग शूद्रों की अधिकता वाले प्रायः हुआ करता है और पाषण्डों के प्रवर्त्तक होते हैं। उनमें प्रजा ऐसी होती है जो भ्रूण हत्या वाली होती है ॥ ४० ॥ आयु, मेधा, बल, रूप और कुल परिहीन होता है। जो शूद्र होते हैं उनके तो ब्राह्मणों जैसे आचार होते हैं और जो ब्राह्मण होते हैं उनके शूद्रों के समान आचार हुआ करते हैं

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ ४१ ॥ राजा के वृत में चौर रहा करते हैं और चौर वृत्त वाले राजा लोग होते हैं। युगान्त के पर्युपस्थित होने पर जो भृत्य होते हैं वे सौहार्द को खोने वाले हुआ करते हैं ॥ ४२ ॥

अशीलिन्योऽव्रताश्चापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।
मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४३ ॥
श्वापदप्रबलत्वञ्च गवाञ्चैवाप्युपक्षयः ।
साधूनां विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन कलौ युगे ॥ ४४ ॥
तदा सूक्ष्मे महोदर्को दुर्लभो भोगिनां तथा ।
चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मः प्रविचलिष्यति ॥ ४५ ॥
तदा ह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी ।
शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४६ ॥
तदा ह्यैकाहिको धर्मो द्वापरे पक्ष मासिकः ।
त्रेतायां वत्सरस्थश्च एकाहादतिरिच्यते ॥ ४७ ॥
अरक्षितारो हतारो बलिभागस्य पार्थिवा ।
युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥ ४८ ॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विशः शूद्रोपजीविनः ।
शूद्राभिवादिनः सर्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ४९ ॥

कलियुग में युगान्त के प्रत्युपस्थित होने पर स्त्रियाँ शील से रहित, बिना व्रत वाली और मद्य तथा माँस से प्यार करने वाली, माया से परिपूर्ण हो जाँयगी ॥ ४३ ॥ श्वापदों की प्रबलता तथा गौओं का उपक्षय उस कलियुग में साधुओं की विनिवृत्ति हो जायगी ऐसा जान लेना चाहिए ॥ ४४ ॥ उस समय सूक्ष्म में भोगियों का महोदर्क दुर्लभ होगा। चारों आश्रमों की शिथिलता से धर्म प्रविचलित हो जायगा ॥ ४५ ॥ यह महीयसी देवी भूमि भी अल्प फल देने वाली होगी। युगान्त के उपस्थित होने पर जो शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति हैं वे तपस्या करेंगे ॥ ४६ ॥ जो धर्म द्वापर युग में मासिक था वह कलियुग के समय में एकाहिक अर्थात् एक दिन में पूर्ण होने वाला है, यही धर्म त्रेता में एक वर्ष में होने वाला होता था जो कि प्रमाद से अतिरिक्त हुआ करता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ ४७ ॥ युगान्तों में राजा लोग प्रजा की रक्षा न करने वाले और अपने ही संरक्षण में परायण रहने वाले केवल बलि भाग के हरण करने वाले होंगे ॥४८॥ राजा लोग अक्षत्रिय अर्थात् क्षत्रिय वर्ण के न रहने वाले तथा वैश्य शूद्रों से अपनी रोजी कमाने वाले होंगे तथा युगान्त में श्रेष्ठ द्विज भी शूद्रों को अभिवादन करने वाले होंगे ॥ ४९ ॥

पतयश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन् कलौ युगे।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा स्यात्तु युगक्षयः॥ ५० ॥
सर्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे।
भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यविक्रीततेजनैः॥ ५१ ॥
कुशीलचर्या पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृतम्।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते॥ ५२ ॥
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम्।
क्रव्यादनः क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः॥ ५३ ॥
न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणो लोको भविष्यति।
अशङ्का चैव पतिते तद्युगान्तस्य लक्षणम्॥ ५४ ॥
नरशून्या वसुमती शून्या चैव भविष्यति।
मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च॥ ५५ ॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्त्यशासनाः॥ ५६ ॥

इस कलियुग में बहुत-से पति होंगे। उस समय में देव भी चित्र-वर्षा वाला होगा, जबकि युगक्षय होगा ॥ ५० ॥ इस अधम युग में सभी वाणिजक अर्थात् वाणिज्य करने वाले होंगे जो कि अधिकता से कूट-मान और पण्य विक्रीत तेजनों से जीविकोपार्जन किया करेंगे ॥ ५१ ॥ कुशीलचर्या होगी और वृथा रूप पाषण्डों से समावृत थोड़े पुरुष तथा अधिक स्त्रियों से युक्त समाज युगान्त के पर्युपस्थित काल में हो जायगा ॥५२॥ लोक बहुत से याचकों से परिपूर्ण आपस में हो जायगा। मांसभोजी, क्रूर वचन बोलने वाले असरल और निन्दा करने वाले लोग होंगे ॥५३॥ किये हुए उपकार का प्रतिकर्त्ता न होकर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षीण-लोक हो जायगा। युगान्त का यह लक्षण है कि पतित में अशङ्का हुआ करती है ॥५४॥ वसुमती नरों से रहित एवं शून्य हो जायगी। देशों मे और नगरों में यहाँ मंडल होगे ॥५५॥ वसुन्धरा यह थोड़े जल वाली और थोड़ा ही फल देने वाली हो जायगी। जो रक्षा करने वाले हैं वे ही अरक्षक और शासन रहित होंगे ॥५६॥

हर्त्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्मात् साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥
अनष्टचेतनाः पुन्सो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मंश्चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५९ ॥
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः।
चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हन्तुर्हर्त्तार एव च ॥ ६० ॥
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियताङ्गते।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ ६१ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं भवेत्।
कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडितान् ॥ ६२ ॥
दुःखेनाभिप्लुतानाञ्च परमायुः शतं भवेत्।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ॥ ६३ ॥

दूसरों के रत्नों का हरण करने वाले और पराई स्त्री का प्रधर्षण करने वाले कामातमा और दुष्ट आतमा वाले और अधर्म के काम में साहस दिखाने वाले तथा चेतना नष्ट न होने वाले पुरुष के केश खुले हुए तथा चुटिया खुली रखने वाले और सोलह वर्ष से भी कम उम्र वाले युग के क्षय में उत्पन्न होते हैं ॥५७-॥५८॥ शुक्ल दन्त-जिताक्ष-मुण्ड और काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले शूद्र युगान्त के पर्युपस्थित होने पर धर्म का आचरण किया करेंगे ॥५९॥ सस्य के चुराने वाले तथा चैल (वस्त्र) के अभिमर्शन करने वाले, चोर के हरण करने वाले चोर तथा हनन करने वाले का हरण करने वाले लोग होंगे ॥६०॥ ज्ञान

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के कर्म में उपरत लोक में जबकि वह सर्वथा निष्क्रयता को प्राप्त हो जायगा, कीट, मूषक और सर्प मनुष्यों का घर्षण किया करेंगे ॥६१॥ सुभिक्ष-क्षेम और आरोग्य एवं सामर्थ्य यह सब दुर्लभ हो जायेंगे। भूख और प्यास के भय से पीड़ित देशों में कौए निवास किया करेंगे ॥६२॥ दुःख से अभिप्लुत लोगों की परमायु सौ वर्ष की हो जायगी। कलियुग में सम्पूर्ण वेद दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं ॥६३॥

उत्सीदन्ति तथा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः।
कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह॥ ६४॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः॥ ६५॥
उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे।
नाधीयन्ते तदा वेदाः शूद्रा धर्मार्थकोविदाः॥ ६६॥
यजन्ते नाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्।
उपहन्युस्तदान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः॥ ६७॥
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता।
मोहो ग्लानिस्तथासौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्॥ ६८॥
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्त्तते।
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते।
दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः नृणाम्॥ ६९॥
दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदाः कलियुऽखिलाः।
उत्सीतन्ते तदा यज्ञाः केवला धर्मपीडिताः॥ ७०॥

केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्सन्न होते हैं। कषाय वस्त्रधारी तथा निर्गन्थ कपाली, दूसरे वेदों के बेचने वाले तथा तीर्थों के विक्रय करने वाले और वर्णाश्रमों के पाषण्ड प्रकट करने वाले परिपन्थी लोग इस कलियुग के सम्प्राप्त होने पर उत्पन्न होंगे। उस समय कोई भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करेंगे केवल शूद्र ही धर्मार्थ के पण्डित होंगे ॥६४॥६५॥६६॥ शूद्र योनि राजा लोग अश्वमेध

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का यजन नहीं किया करते हैं तथा स्त्री का वध-गौ का वध करके और परस्पर में हनन करके तब एक दूसरे का उपहनन करेंगे और इस तरह से प्रजा का साधन किया करते हैं ॥६७॥ दुःखों के प्रचार से अल्प आयु-देशोत्साद-मोह-सरोगत ग्लानि तथा असौख्य इस तरह से कलियुग में तमोवृत्त कहा गया है ॥६८॥ प्रजा सब भ्रूण हत्या में सम्प्रवृत्त होती है, इसी से कलियुग को प्राप्त करके आयु बल और रूप सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं और सब ओर से दुःखों में डूबे हुए मनुष्यों की आयु सबमे अधिक सौ वर्ष की हो जाती है ।६९॥ समस्त वेद तो इस कलियुग में दिखलाई देते हैं और नहीं भी दिखलाई दिया करते हैं। उस समय केवल धर्म पीड़ित यज्ञ उत्पन्न हुआ करते हैं ॥७०॥

तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः ।
धन्या धर्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ७१ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः ।
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ।
यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥ ७२ ॥
एषा कलियुगेऽवस्था सन्ध्यांशन्तु निबोध मे ।
युगे-युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादांश्च सिद्धयः ॥ ७३ ॥
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादशः ।
सन्ध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः ॥ ७४ ॥
एवं सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थितः ॥ ७५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते ।
माधवस्य तु सोंशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ६ ॥
समाः स विंशतिं पूर्णाः पर्यटन् वै वसुन्धराम् ।
आचकर्ष स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ७७ ॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः ॥ ७८ ॥
स हत्वा सर्वगश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान् ।
पाषण्डान् स ततः सर्वान्निःशेषान् कृतवान् प्रभुः ॥ ७९ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वशः ।
वर्णव्यत्यासजातांश्च ये च तानुपजीविनः ॥ ८० ॥

उस युगान्त में जो श्रेष्ठ द्विज धर्म का आचरण किया करते हैं वे मानव अल्प काल में ही सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं । जो अनसूयक अर्थात् असूया न करने वाले लोग श्रुति स्मृति में कहे हुए धर्म का आचरण किया करते हैं । त्रेता में वार्षिक धर्म होता था—द्वापर में वह मासिक कहा गया है और कलियुग में प्राज्ञ तथा शक्ति करता हुआ एक दिन में प्राप्त कर लेता है ।७१॥७२॥ यह तो कलियुग की अवस्था है अब इसका सन्ध्यांश भी समझ लो । युग-युग में तीन-तीन पाद सिद्धियाँ हीन होती हैं ॥७३॥ युग के स्वभाव से ये सन्ध्या पाद से रहा करती हैं । सन्ध्या के स्वभाव से अंशों में पाद में प्रतिष्ठित होते हैं ॥७४॥ इस तरह से युगान्त में सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन असाधू भृगुओं का शास्ता निधन से उत्थित होता है ॥७५॥ गोत्र से चन्द्रमा के नाम से प्रमिति कही जाती है । स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहिले वह माधव के अंश से होती है ।७६। पूरे तीस वर्ष तक इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए उसने घोड़े हाथियों से युक्त सेना का आकर्षण किया ॥७७॥ आयुध ग्रहण करने वाले विप्रों के द्वारा जो संख्या में सैकड़ों और हजारों थे, उनसे परिवृत होकर हजारों ही म्लेच्छों का हनन करता है ॥७८॥ वह सर्वत्र जाने वाला उन शूद्र योनियों में समुत्पन्न राजाओं को तथा समस्त पाषण्डों को वह प्रभु निःशेष कर देते हैं ॥७९॥ जो अत्यर्थ धार्मिक नहीं है उन सबको सब ओर में मार देते हैं जो भी वर्ण के व्यत्या से उत्पन्न हुए हैं और अनुताप देने वाले हैं ॥८०॥

उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ।
प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ॥ ८१ ॥
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनांस्तथा ॥ ८२ ॥
तुषारान् बर्बराश्चीनान् शूलिकान् दर दान् खसान् ।
लम्पाकानथ केतांश्च किरातानाञ्च जातयः ॥ ८३ ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभुः ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम् ॥ ८४ ॥
माधवस्य तु सोंशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ।
पूर्वजन्मविधिज्ञैश्च प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥ ८५ ॥
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः ।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशतिं समाः ॥ ८६ ॥
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानवानि सहस्रशः ।
कृत्वा वीर्यविशेषान्तु पृथ्वीं रूढेन कर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेनतु ॥ ८७ ॥
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥ ८८ ॥

उत्तर में रहने वाले मध्य देश वाले पर्वतीय-प्राच्य तथा प्रतीच्य अर्थात् पश्चिम में रहने वाले एवं विन्ध्य पृष्ठ परान्तिक, दाक्षिणात्य और सिंहलों के साथ द्रविड़-गान्धार-पारद-पह्लव तथा यवन-तुषार-वर्वर चीन-शूलिक-दरद-खस-लम्पक-केत और किरात जाति वाले इन सबका म्लेच्छों का प्रवृत्त चक्र बलवान् विभु अन्त करने वाले थे जोकि समस्त प्राणियों के अधृष्य थे, उनने इस वसुन्धरा पर चरण किया था ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ उसने अपने को माधव देव के अंश से विज्ञप्त किया था। पूर्व जन्म की विधि को जानने वालों के द्वारा वीर्यवान् प्रमिति नाम कहा गया है। पूर्व कलियुग में चन्द्रमा के गोत्र से प्रभु ने बत्तीस वर्ष के अभ्युदित होने पर बीस वर्ष पर्यन्त समस्त प्राणी तथा सहस्रों मानवों का हनन करते हुए रूढ़ कर्म से पृथ्वी को वीर्यविशेष करके परस्पर निमित्त वाले आकस्मिक कोप से उसमें वृषलों की, जोकि प्रायः अधार्मिक थे साधना करके अपने अनुग के साथ गङ्गा यमुना के मध्य में निष्ठा प्राप्त का थी ॥८५॥ ॥८६॥८७॥८८॥ ।

ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसैनिके ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥ ८९ ॥
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्-क्वचित् ॥ ९० ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः ।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥ ९१ ॥
अराजके युगवशात् संशये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥ ९२ ॥
व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ।
स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निष्ठां प्राप्ताः सुदुःखिता ॥ ९३ ॥
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा ।
निर्मर्यादा निराक्रन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥ ९४ ॥
नष्टे वर्षे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ।
हित्वा दारांश्च विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ९५ ॥

इसके पश्चात् उस सत्य सैनिक अमात्य के व्यतीत हो जाने पर समस्त पार्थिवों का तथा सहस्रों म्लेच्छों का उत्सादन करके वहाँ सन्ध्यांश काल में युगान्त के सम्प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पर अत्यन्त अल्प प्रजाओं के अवशिष्ट रहजाने पर वे इसके अनन्तर प्रग्रह रहित और वृन्दों में लोक चेष्टा से युक्त होकर एक दूसरे को आपस में उपहिंसन करते हैं ॥८९॥९०॥९१॥ युग-वश से अराजकता के संशय के समुपस्थित हो जाने पर वह समस्त प्रजा आपस में भय से परम दुःखित थी ।९२।। अत्यन्त व्याकुल—परिश्रान्त होते हुए अपनी स्त्रियों को तथा घरों को छोड़कर अपने ही प्राणों को देखते हुए सुदुःखित होते हुए निष्ठा को प्राप्त हुए ॥९३॥ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर उस समय में परस्पर में हत होते हुए बिना मर्यादा वाले—निराक्रन्द—निःस्नेह और निरपत्रप होगये थे ॥९४॥ वर्ष के नष्ट होने पर प्रतिहत ह्रस्वके तथा पञ्च विंशक अपनी स्त्रियों एवं पुत्रों का त्याग करके विषाद से व्याकुलित इन्द्रियों वाले थे ॥९५॥

अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ९६ ॥
सरितः सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्वतांस्तदा ।
मधुमांसैमूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदुःखिताः ॥ ९७ ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चीरवस्त्राजिनधरा निष्पत्रा निष्परिग्रहाः ।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः ॥ ९८ ॥

एताः काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तथा प्रजाः ।
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखन्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥

विचारणन्तु निर्वेदात् साम्यावस्था विचारणात् ।
साम्या वस्थासु सम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥ १०० ॥

तासूपगमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ।
अहोरात्रं तदा तासां युगन्तु परिवर्त्तते ॥ १०१ ॥

चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासान्तैः सप्तमन्तु तत् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ॥ १०२ ॥

प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिंस्ततः कृतयुगे तु वै ।
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुग्यः प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥

वे सब उस समय में अनावृष्टि से आहत थे और वार्ता का त्याग कर बहुत ही दुःखित होरहे थे। अपने-अपने जन पदों को त्याग कर प्रत्यन्तों का सेवन करते थे। नदियाँ—सागर कूप और पर्वतों का सेवन करते थे। अत्यन्त दुःखित होते हुए मधुमांस तथा मूल फलों से जीवित रहते थे ॥९६॥९७॥ चीर वस्त्र तथा अजिन के धारण करने वाले--निष्पत्र एवं निष्परिग्रह वर्णाश्रम से परिभ्रष्ट घोर संकर में आस्थित थे ॥९८॥ ऐसी काष्ठा को प्राप्त होने वाले वह थोड़ी सी बची हुई प्रजा जरा-व्याधि और क्षुधा से आविष्ट होती हुई दुःख से निर्वेद को प्राप्त हुई थी ॥९९॥ निर्वेद से विचारणा हुई और विचारणा से साम्यावस्था हुई। साम्यावस्थाओं में कुछ सम्बोध हुआ और फिर सम्बोध से धर्मशीलता उत्पन्न हुई ॥१००॥ कलियुग में अव शिष्ट और उपगम से युक्त उन में स्वयं उस समय अहोरात्र उनके युग परिवर्त्तित होते हैं ॥१०१॥ उनके चित्त का सम्मोहन करके उनके द्वारा भावी अर्थ के बल से फिर सप्तम कृत हुआ था ॥१०२॥ फिर उसके पश्चात उस कृत युग के प्रवृत्त होने पर उस समय में कलिशिष्ट कार्तयुग्य प्रजा समुत्पन्न हुई थी ॥१०३॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः सुदृष्टा विचरन्ति च ।
सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ॥ १०४ ॥
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ।
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन् ॥ १०५ ॥
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च ।
वर्णा श्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ॥ १०६ ॥
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्त्तन्ते वै प्रजाः कृते ।
श्रौतः स्मार्त्तः कृतानान्तु धर्मः सप्तर्षिदर्शितः ॥ १०७ ॥
तासु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ।
मन्वतराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ ।
नवानां प्रथमं दृष्टस्तेषां मूले तु सम्भवः ॥ १०९ ॥
एवं युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ।
वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ११० ॥

यहां पर जो सिद्ध स्थित हैं वे सुदष्ट होते हुए विचरण करने हैं और सदा वे सप्तर्षि लोग भी व्यवस्थित होते हैं ॥१०४॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र जो यहाँ बीज के लिये कहे गये हैं वे सब कलि में समुत्पन्न होने वालों के साथ उस समय में निर्विशेष होगये थे ॥१०५॥ उनके धर्म को और इतरों में सप्तर्षि कहते हैं। वर्ण और आश्रम के आचार से युक्त वह धर्म दो प्रकार का था ॥१०६॥ इसके अनन्तर कृत में क्रियावान उनमें प्रजाकृती हैं और सप्तर्षियों के द्वारा दिखाया हुआ श्रौत्व तथा स्मार्त्त धर्म करने वाले हैं ॥१०७॥ यहाँ पर युग के क्षय से उनमें धर्म की व्यवस्था के लिये मन्वन्तराधिकारों में मुनिगण स्थित रहते हैं ॥१०८॥ जिस तरह से दावाग्नि से जले हुए तृणों पर तप ऋतु में उनके मूल में सम्भव नवीन तृणों का प्रथम दिखाई दिया हुआ होता है ॥१०९॥ इसी भाँति यहाँ युग का युग से परस्पर में सन्तान होता है। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है, तब तक वह अव्यवच्छेद से रहा करता है ॥११०॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ।। १११ ।।
ससन्ध्यंशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः ।
इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ।। ११२ ।।
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्त्तते ।। ११३ ।।
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता ।
अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात् ।। ११४

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ।
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्तति: ।
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ।।११५
चतुर्युगे तथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ।
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ।।११६

सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ।
पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ।।११७

सुख—आयु--बल--रूप- धर्म--अर्थ और काम ये सब तीन युगों में पाद क्रम से हीयमान होते हैं ।।१११।। ससन्ध्यांशों में युगों की धर्म सिद्धियाँ हीन होती हैं। हे द्विजो ! इस प्रकार से यह आपको प्रतिसन्धि मैंने कीर्त्तित कर दिया है ! चारों युगों का इससे ही प्रसाधन होता है। यह चतुर्युगों की आवृत्ति सहस्र पर्यन्त हुआ करती है ।।११३।।ब्रह्मा का वह दिन कहा गया है और उतनी रात्रि भी कही गई है। यहाँ पर प्राणियों का युग क्षय बक जड़ीभाव होता है ।।११४।।यह ही समस्त युगों का लक्षण कहा गया है। यह चारों युगों की गणना इकहत्तर होती है। क्रम से परिवृत्त वह होती हुई मनु का अन्तर कहा जाता है ।।११५।। यहाँ एक चतुर्युग में उस प्रकार से यथाश्रुत होती है। उसी प्रकार से अन्यों में भी वह फिर यथाक्रम हुआ करती है ।।११६।। सर्ग-सर्ग में जिस प्रकार से भेद उत्पन्न होते हैं उस प्रकार से वे पच्चीस की संख्या में परिमित होते है। न कम हैं और न अधिक ही होते हैं ।।११७।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा कल्पयुगैः सार्द्धं भवन्ति समलक्षणाः ।
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥११८
तथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥११९॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ॥१२०
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥१२१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ॥१२२
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।
देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ॥१२३

उस प्रकार से कल्प युगों के साथ समान लक्षण वाले होते हैं । समस्त मन्वन्तरों का यह ही लक्षण होता है ॥११८॥ उस प्रकार से युगों के परिवर्त्तन युगों के स्वभाव से चिर प्रवृत्त होते हैं । उस प्रकार से यह जीव लोक क्षय एवं उदय से परिवर्तमान होता हुआ नहीं संस्थित रहा करता है ॥११९॥ इतना यह युगों का संक्षेप से लक्षण मैंने कह दिया है जो कि अतीत हो गये हैं, अनागत हैं और यहाँ समस्त मन्वन्तरों में होते हैं ॥१२०॥ जो अनागत हैं और समस्त मन्वन्तरों में जो अतीत एवं अनागत हैं उनमें विज्ञ व्यक्ति को उसी भाँति से तर्क करना चाहिए ॥१२१॥ एक मन्वन्तर से समस्त मन्वन्तरों की व्याख्या करदी गई है । कल्प में कल्प से उसे जान लेना चाहिए ॥१२२॥ इसके अभिमानी सब नाम और रूपों से यहाँ मन्वन्तर में आठ प्रकार के मन्वन्तरेश्वर देव होते हैं ॥१२३॥

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः ।
एवं वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ॥१२४
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः ।
वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगानि युगसिद्धये ॥१२५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनुषंगः समाख्यातः सृष्टिसर्गन्निबोधत ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ।।१२६

ऋषिगण और मुनि वृन्द सब प्रयोजनों से तुल्य ही हुआ करते हैं । इसी प्रकार से युग-युग में वर्णों और आश्रमों का प्रविभाग हुआ करता है ।।१२४।। युग के स्वभाव से प्रभु उसी प्रकार का किया करते हैं । वर्णों और आश्रमों का विभाग तथा युग की सिद्धि के लिये युगों को करते हैं ।।१२५।। अनुषङ्ग की तो व्याख्या करदी गई है । अब सृष्टि के सर्ग को समझ लो । मैं विस्तार से तथा अनुपूर्वी से यहाँ पर युगों में जो स्थिति है उसको बतलाऊँगा ।।१२६।।

प्रकर्ण ४१— ऋषिलक्षण

युगेषु यास्तु जायन्ते प्रजास्ता वै निबोधत ।
आसुरी सर्पगोपक्षिपैशाची यक्षराक्षसी ।
यस्मिन् युगे च सम्भूतिस्तासां यावत्तु जीवितम् ।।१
पिशाचासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
युगमात्रन्तु जीवन्ति ऋते मृत्युवधेन ते ।।२
मानुषाणां पशूनाञ्च पक्षिणां स्थावरैः सह ।
तेषामायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः ।।३
अस्थितिस्तु कलौ दृष्टा भूतानामायुषस्तु वै ।
परमायुः शतन्त्वेतन्मनुष्याणां कलौ स्मृतम् ।।४
देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्तांगुलं ह्रसत् ।
अंगुलानां शतं पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ।।५
देवासुरप्रमाणन्तदुच्छ्रायं कलिजैः स्मृतम् ।
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कलिजैरंगुलैः स्मृतम् ।।६
स्वेनांगुलप्रमाणेन ऊर्ध्वमापादमस्तकम् ।
इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीह युगान्तिके ।।७

श्री सूत जी ने कहा—युगों में जो प्रजा उत्पन्न होती हैं उनको जानलो । वह प्रजा आसुरी--सर्प-गो-पक्षी-पैशाची और यक्ष राक्षसी हुआ करती है । जिस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युग में जिसकी सम्भूति होती है और उनका जितना भी जीवित काल होता है वह सब बतलाया जाता है ॥१॥ पिशाच-असुर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग ये सब युग मात्र जीवित रहा करते हैं। मृत्यु वध के बिना ही इनका उक्त जीवन होता है ॥२॥ मनुष्यों की पशुओं की और स्थावरों के साथ पक्षियों की इन सबकी आयु सब प्रकार से युग के धर्मों में परिक्रान्त हुआ करती है ॥३॥ कलियुग में प्राणियों की आयु की अस्थिति देखी गई है। कलियुग में मनुष्यों की परमायु सौ वर्ष की कही गई है ॥४॥ देव और असुरों के प्रमाण से सात-सात अंगुल कम होता हुआ है। एक सौ अट्ठावन पूर्ण प्रमाण होता है ॥५॥ देवासुरों का प्रमाण और उनका उच्छ्राय कलि में जन्म लेने वालों के द्वारा कहा गया है। ॥६॥ अपने अंगुल के प्रमाण से ऊपर पैरों से मस्तक तक यह मानुष उत्सध होता है किन्तु यहाँ युगान्तिक में यह ह्रासयुक्त होता है ॥७॥

सर्गेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह।
स्वेनांगुलप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः ॥८
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः।
संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ॥९
गवाश्वहस्तिनाञ्चैव महिष स्थावरात्मनाम्।
क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ॥१०
षट्सप्तत्यंगुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै।
अंगुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः ॥११
अंगुलानां सहस्रन्तु चत्वारिंशांगुलं विना।
पञ्चाशतं हयानाञ्च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः १२
मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः।
तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ॥ १३ ॥
बुद्ध्यातिशययुक्तञ्च देवानां कायमुच्यते।
देवानतिशयञ्चैव मानुषं कायमुच्यते ॥ १४ ॥

समस्त युगों के कालों में जो अतीत हैं तथा अनागत हैं अपने अँगुल के प्रमाण से मनुष्य अष्ट ताल कहा गया है ॥ ८ ॥ जो पैरों से लेकर मस्तक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर्यन्त नवताल होता है और जो आजानु बाहु वाला होता है वह सुरों के द्वारा भी पूजित हुआ करता है ॥ ९ ॥ गौ-अश्व-हस्ती-महिष और स्थावर स्वरूप वालों की क्रम से इस योग से युग-युग में ह्रास और वृद्धि हुआ करती है ॥१०॥ पशुओं की ऊँचाई सडसठ अँगुल और ककुद की होती है। हाथियों का उत्सेध हर एक सौ आठ अँगुल का पूर्ण कहा गया है ॥ ११ ॥ चत्वारिंशत् (चालीस) अँगुल के बिना एक सहस्र अँगुल और पश्चात् हयों (अश्वों) का शाखियों (वृक्षों) का उत्सेध कहा गया है ॥ १२ ॥ मनुष्य के शरीर का सन्निवेश जैसा है उसी लक्षण वाला तत्त्व दर्शन से देवों का दिखलाई देता है ॥१३॥ देवों का शरीर बुद्धि के अतिशय से युक्त हुआ करता है—ऐसा कहा जाता है। देवों के अनतिशय वाला मनुष्य-काय कहा जाता है ॥ १४ ॥

इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ।
पशूनां पक्षिणाञ्चैव स्थावराणां निबोधत ॥ १५ ॥
गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो नगाः ।
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥
देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः ।
यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्त्तयः ॥ १७ ॥
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थाणुजङ्गमैः ।
मनोज्ञैस्तत्त्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥
अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च ।
सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ।
सायुज्यं ब्रह्मणोऽत्यन्तं तेन सन्तः प्रचक्ष्यते ॥ १९ ॥
दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ॥ २० ॥
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च ।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातयः ॥ २१ ॥

ये इतने दिव्य मानुष भाव परिक्रांत किये हैं। अब पशुओं का—पक्षियों का और स्थावरों का भाव समझ लो ॥ १५ ॥ गौ-अजा (बकरी) महिषी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(भैंस) अश्व-हाथी-पक्षीगण और नग ये क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। यहां पर ये सब प्रकार से यज्ञीय कहे जाते हैं ॥ १६ ॥ देवस्थानों में जो उत्पन्न होते हैं वे फिर तद्रूप ही होते हैं। यथाशयोपभोग वाले देवों की ही शुभ मूर्तियाँ होती हैं ॥ १७ ॥ उसके रूप के अनुरूप स्थाणु जङ्गम उन प्रमाणों से जो कि मनोज्ञ और तत्त्वभाव के ज्ञाता हैं सुखी होते हैं ॥ १८ ॥ इससे आगे शिष्टों तथा सत् और साधुओं को बताऊँगा। सत्-पद-ब्रह्म का शब्द है उसके रखने वाले जो होते हैं ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य होता है इसी से वे (सन्त)—ऐसे कहे जाते हैं ॥ १९ ॥ जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षणों वाले कारण में न तो क्रोधित होते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं वे जितात्म कहे जाते हैं ॥२०॥ सामान्य धर्मों में तथा वैशेषिकों में क्योंकि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य युक्त होते हैं इसी लिए ये द्विजाति कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिणः !
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मः स उच्यते ॥ २२ ॥
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः।
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ॥ २३ ॥
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४ ॥
एवमाश्रमधर्माणां साधनात् साधवः स्मृताः।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥ २५ ॥
न च देवा न पितरो मुनयो न च मानवाः।
अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवन्तोऽभिन्नदर्शनाः ॥ २६ ॥
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ।
कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ ॥ २७ ॥
धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्त्तितः।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते ॥ २८ ॥

वर्णाश्रमों में युक्त तथा स्वर्ग गोमुख के चरण करने वाले श्रौतस्मार्त धर्म का ज्ञान होने से वह धर्म कहा जाता है ॥ २२ ॥ विद्या के साधन से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साधु—गुरु का हित ब्रह्मचारी ओर [illegible] के साधन से ही गृहस्थ साधु कहा जाता है ॥ २३ ॥ जङ्गल में तप के साधन से साधु वैखानस कहा गया है। जो यज्ञमान साधु यति योग के साधन से कहा गया है ॥२४॥ इस प्रकार से आश्रम के धर्मों के साधन से साधु कहे गये हैं। गृहस्थ-ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ और भिक्षुक ये चार आश्रम हैं ॥ २५ ॥ न देव-न पित र-न मुनिगण और न मानव यह धर्म है और यह नहीं है—यह बोलते हुए अभिन्न दर्शन होते हैं ॥ २६ ॥ यहाँ पर धर्म और अधर्म कहे गये हैं। ये दोनों ही शब्द क्रियात्मक होते हैं। कुशल कर्म धर्म है और अकुशल कर्म अधर्म है ऐसा कहा गया है ॥ २७ ॥ धातु का धृति यह अर्थ होने से धारण धर्म कहा गया है। अधारण और अमहत्त्व होने में यह अधर्म ऐसा कहा जाता है ॥ २८ ॥

अत्रेष्टप्रापका धर्मा आचार्यैरुपदिश्यते ।
वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भका: ।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैः सन्नियमैर्युतः ॥ ३० ॥
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि च श्रुतिः ॥ ३१ ॥
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचारं पुनर्जगौ ,
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागजः ॥ ३२ ॥
स एष द्विविधो धर्मः शिष्टाचार इहोच्यते ।
शेषशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचारः प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः ।
मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारणात् ।
धर्मार्थं ये च शिष्टा नै याथातथ्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः ।
तैः शिष्टैश्चरितो धर्मः सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥

यहाँ पर आचार्यों के द्वारा जो इष्ट के प्रापक है उन्हें धर्म उपदेश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया जाता है। वृद्ध, अलोलुप आत्मा वाले दम्भ से रहित, भली भाँति विनीत और जो सरल-सीधे होते हैं उनको आचार्य कहते हैं ॥२९॥ स्वयं भी आचरण करता है और आचार की स्थापना भी किया करता है। यज्ञ और अच्छे नियमों से युक्त होता हुआ शास्त्रों के अर्थों का चारों ओर से चयन किया करता है इसी कारण से आचार्य कहा जाता है ॥३०॥ पूर्व में होने वालों से जानकर यहाँ पर सप्तर्षियों ने श्रौत को बतलाया था। ऋग्–यजु–साम–ब्रह्म के अङ्गों को और श्रुति उन्होंने बतलाये थे ॥३१॥ जो मन्वन्तर व्यतीत हो गया उसका स्मरण करके आधार को फिर गाया था। इससे वर्ण और आश्रम के विभाग से जन्मने वाला स्मृत धर्म स्मार्त कहा गया है ॥३२॥ वह यह धर्म दो प्रकार का है। यहाँ पर शिष्टाचार कहा जाता है। शेष शव्द से शिष्ट यह होता है और इससे शिष्टाचार कहा जाता है ॥३३॥ मन्वन्तरों जो शिष्ट हैं यहाँ धार्मिक होते हैं जो कि मनु और सप्तर्षि लोक सन्तान के कारण से होते हैं। धर्म के लिए जो शिष्ट हैं उनका यथातथ्य कहा ॥३४॥ मन्वादि जो शिष्ट हैं और जो मैंने पहिले कहे हैं, उन शिष्टों के द्वारा चरित्र-धर्म युग-युग में अच्छा ही होता है ॥३५॥

त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ।
शिष्टैराचर्यते यस्मान्मनुना च पुनः पुनः ।
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः ॥३६॥
दानं सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनी दया ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥३७॥
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च वै ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः ॥३८॥
विज्ञेयः श्रवणात् श्रौतः स्मरणात् स्मार्त्त उच्यते ।
इज्या वेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ।
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥३९॥
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति ।
यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥४०॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारत्वमेव च ।
इत्येतत् तपसो मूलं सुघोरं तद्दुरासम् ॥४१॥
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा ।
ऋत्विजां दक्षिणानाञ्च संयोगो योग उच्यते ॥४२॥

त्रयी- वार्त्ता—दण्ड नीति—इज्या तथा वर्ण और आश्रम जिस कारण से शिष्टों के द्वारा बार-बार आचरित होते हैं, पूर्वगत होने से पूर्वों के द्वारा वह शाश्वत शिष्टाचार कहा गया है ॥३६॥ दान—सत्य—तप—अलोभ—विद्या,—इज्या–प्रजनी और दया—ये आठ वे चरित्र हैं जो कि शिष्टाचार का लक्षण होते हैं ॥३७॥ क्योंकि इसका शिष्ट चरण करते हैं, मनु और सप्तर्षि गण चरण किया करते हैं ऐसा सभी मन्वन्तरों में किया जाता है, इसलिये यह शिष्टाचार कहा गया है ॥३८॥ श्रवण करने से श्रौत जानना चाहिए और स्मरण से स्मार्त कहा जाता है। इज्या वेदात्मक होने से श्रौत है और वर्णाश्रमात्मक स्मार्त होता है। अब उस धर्म का लक्षण और यहाँ प्रत्यङ्गों को बताऊँगा ॥३९॥ बहुत-सा अर्थ देखकर जो पूछा गया है वह कुछ भी छिपाता नहीं है। जैसा भूत प्रवाह है यही सत्य का लक्षण होता है ॥४०॥ ब्रह्मचर्य–जप–मौन–निराहारत्व यह इतना तपका सुघोर और दुरासद मूल होता है ॥४१॥ पशुओं का, द्रव्य-हवियों का, ऋक्, साम और यजु का, ऋत्विजों का और दक्षिणाओं का जो संयोग होता है वही योग कहा जाता है ॥४२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च ।
समा प्रवर्त्तते दृष्टिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥४३॥
आक्रुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा ।
वाङ्मनःकर्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥४४॥
स्वामिनारक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च मृत्सु च ।
परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥४५॥
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् ।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥४६॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै ।
न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यै तत्तु लक्षणम् ॥३७॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ।
न क्रुध्येत्तु प्रतिहतः स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतश्च येत् ।
तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४९॥

जो हित और अहित के लिये समस्त प्राणियों में अपने ही समान दृष्टि को प्रवृत्त किया करता है वह पूर्ण दया कही गई है ॥४३॥ बुरा-भला कहा जाने वाला और अभिहत अर्थात् मारा-पीटा हुआ भी न तो बुरा-भला कह कर क्रोधित होता है और न मारता ही है, वाणी, मन और कर्म से जो क्षान्ति होती है वह तितिक्षा क्षमा कही गई है ॥४४॥ स्वामी के द्वारा अरक्षित और मिट्टी में यों ही उत्सृष्ट पराये धनों का न ग्रहण करना ही यहाँ पर अलोभ कहा जाता है ॥४५॥ मैथुन का असमाचार, अचिन्तन तथा अकल्पन, निवृत्ति, ब्रह्मचर्य जो होता है वह अछिद्र दम कहा जाता है ॥४६॥ अपने लिये या दूसरे के लिये यहाँ पर जिसकी इन्द्रियाँ प्रवृत्त नहीं होती हैं यही शम का अवसर होता है अर्थात् इसी को शम कहते हैं ।।४७॥ जो दशात्मक विषय में और आठ लक्षण वाले कारण में प्रतिहत होता भी क्रोध नहीं करता है, वह जितात्मा विभावित होता है ॥४८॥ जो-जो इष्टतम द्रव्य और जो न्याय से उपागत हैं वही वह गुणवान् को देना चाहिए यही दान का लक्षण होता है ॥४९॥

दानं त्रिविध मित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् !
तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये ।
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ॥५०॥
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ।
शिष्टाचाराविरुद्धश्च धर्मः सत्साधुसङ्गतः ॥५१॥
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् ।
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥५२॥
संन्यासः कर्मणो न्यासः कृतानामकृतैः सह ।
कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाणं त्याग उच्यते ॥५३॥
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकारोऽस्मिन्नचेतने ।
चेतनाचेतान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते ॥५४॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रत्यङ्गानां तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम् ।
ऋषिभिर्धर्मतत्वज्ञैः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५५॥
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य यः ।
इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि ।
प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥५६॥

दान भी तीन प्रकार का होता है—कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ—ये तीन दान के भेद हैं। उनमें जो दान निःश्रेय से सम्वन्धित है वही ज्येष्ठ दान होता है—जो अपने अर्थ की सिद्धि के लिये दिया जाता है वह कनिष्ठ दान होता है। जो करुणा से समस्त प्राणियों के लिये बन्धुओं में भली भाँति विभाग करना मध्यम दान होता है ॥५०॥ श्रुति और स्मृति के द्वारा विदित वर्णाश्रमात्मक धर्म है। शिष्टाचार से अविरुद्ध सत् एवं साधु पुरुषों के द्वारा सङ्गत धर्म है ॥५१॥ अभीष्ट वस्तुओं में प्रकृष्ट द्वेष का न होना तथा इष्ट वस्तु का विशेष अभिनन्दन न करना—प्रीति, ताप और विषादों से विशेष निवृत्ति विरक्तता होती है ॥५२॥ कर्म का भली भाँति न्यास ही संन्यास होता है। अकृतों के साथ कृतों का, कुशल और अकुशलों का जो प्रहाण होता है वही त्याग कहा जाता है ॥५३॥ जो अव्यय से और अविशेष से इस चेतन में विकार है तथा चेतना चेतनान्यत्व का विशेष ज्ञान है वही ज्ञान कहा जाता है ॥५४॥ धर्म के प्रत्यङ्गों का यह लक्षण कहा गया है जो कि धर्म तत्व के ज्ञाता पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में ऋषियों ने कहा है ॥५५॥ यहाँ मैं आपको मन्वन्तर की जो विधि है बताऊँगा। इतरेतर वर्ण का तथा चतुर्वर्ण का प्रति मन्वन्तर में अन्य श्रुति का विधान किया आता है ॥५६॥

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।
आभूत संप्लवस्यापि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम् ॥५७॥
विधिर्होत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत्सम्प्रवर्तते ।
द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ।
चतुर्थमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥५८॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ।
प्रवर्त्तयति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं चतुर्विधम् ।
एवं मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ॥५९॥
अथर्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
ऋषीणान्तप्यतामुग्रन्तपः परमदुश्चरम् ॥६०॥
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह ।
परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ॥६१॥
ऋषीणां तपःकात्स्न्र्येन दर्शनेन यदृच्छया ।
ऋषीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः ॥६२॥
अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते ।
अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ॥६३॥

ऋक्-यजु और साम प्रति दैवत यथावत हैं। आभूत संप्लव का भी एक शतरुद्रिय वर्ज्य होता है ॥५७॥ विधिहोत्र तथा स्तोत्र यह भी पूर्व की भाँति सम्प्रवृत्त होते हैं द्रव्य स्तोत्र–गुण स्त्रोत–कर्म स्त्रोत और चौथा आभिजानिक स्तोत्र इस तरह से यह स्तोत्र चार प्रकार का होता है ॥५८॥ समस्त मन्वन्तरों में जो देव जिस प्रकार से होते हैं उनका चारों प्रकार का ब्रह्म स्त्रोत प्रवृत्त होता है। इस प्रकार से अनन्त गुणों की चार प्रकार की समुत्पत्ति होती है ॥५९॥ अथर्व यजु और साम वेदों में यहाँ पृथक्-पृथक् होती है। तप करते हुए ऋषियों का उग्र तप परम दुश्चर हुआ करता है ॥६०॥ पूर्व मन्वन्तरों में यहाँ मन्त्र प्रादुर्भूत हुये थे। वे परितोष से—भय से—दुःख से—सुख से और शोक से पाँच प्रकार के हैं ॥६१॥ तप की कृत्स्नता से ऋषियों के यदृच्छा से दर्शन से ऋषियों का जो ऋषित्व होता है वह लक्षणों के द्वारा बतलाऊँगा ॥६२॥ अतीत और अनागतों में पाँच प्रकार के ऋषि कहे जाते हैं। इसलिए ऋषियों के आर्ष के समुद्भव को कहूँगा ॥६३॥

गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ।
अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्यथा ॥६४॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्त्तते ।
तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥६५॥
वर्त्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ।
चेतनाधिष्ठितं तत्त्वं प्रवर्त्तति गुणात्मना ॥६६॥
करणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते ।
विषये विषियात्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ॥६७॥
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मकाः ।
संसिध्यन्ति तदा व्यक्ताः क्रमेण महदादयः ॥६८॥
महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ।
भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ।
संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्त्तते ॥६९॥
यथोल्मुकस्त्रुटन्नूर्द्धमेककालं प्रवर्त्तते ।
तथा विवृत्तः क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्मणा ॥७०॥
यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदृश्यते ।
तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्वणः ॥७१॥

गुणों के साम्य के वर्त्तमान होने पर उस समय में सबका सम्प्रलय होने पर—देवों के अतिचार होने पर, उन दोनों के अतिदेश होने पर, अबुद्धिपूर्वक वह चेतना के लिए प्रवृत्त होता है। अबुद्धिपूर्वक उस चेतन से अधिष्ठित होता है ॥६५॥ जिस प्रकार से वे दोनों मत्स्य और उदकचेताधिष्ठित तत्व को गुणात्मा से प्रवृत्त होता है ॥६६॥ उस समय करण होने से कार्य प्रवर्त्तित होता है। विषय में विषयत्व होने से तथा अर्थ में अर्थित्व होने से प्रवर्त्तित होता है ॥६७॥ प्रायणीय काल से कारणात्मक भेद उस समय में महदादि व्यक्त होते हुए से सिद्ध होते हैं ॥६८॥ महत् से अहङ्कार और अहङ्कार से भूतेन्द्रियाँ होते हैं। भूतों के भेद तो भेदों से परस्पर में उत्पन्न होते हैं। संसिद्धि कारण कार्य तुरन्त ही विवर्त्तित हो जाता है ॥६९॥ जिस प्रकार से ऊपर में उल्मुक टूटता हुआ एक काल में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार से एक कालीन कर्म से

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षेत्रज्ञ विवृत्त होता है। जिस तरह खद्योत अन्धकार में सहसा दिखलाई दिया करता है उसी प्रकार से विवृत्त उल्वण खद्योत की भाँति ही होता है ॥७०-७१॥

स महान् स शरीरस्तु यत्रै वाग्रे व्यवस्थितः ।
तत्रै व सस्थितो विद्वान् द्वारशालामुखे स्थितः ॥७२॥
महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ।
तत्रै व संस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः ॥७३॥
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य प्रादुर्भू ता चतुर्विधा ।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥७४॥
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै ।
महतः सशरीरस्य वैवर्त्यात् सिद्धिरुच्यते ॥७५॥
अत्र शेते च यत्पुर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा ।
पुरीशयत्वात्पुरुषः क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥७६॥
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानात् भगवान् मतिरुच्यते ।
यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मकः स वै ।
संसिद्धये परिगत व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥७७॥

शरीर के सहित वह महान् जहाँ पर ही आगे व्यवस्थित होता है वहाँ पर ही द्वारशाला के मुख पर विद्वान संस्थित होता है ॥७२॥ महान् तो तम के पार में वैलक्षण्य होने के कारण से विभाजित होता है। वहाँ पर ही विद्वान तम के अन्दर संस्थित होता है—ऐसी श्रुति है ॥७३॥ विवर्त्तमान की बुद्धि चार प्रकार वाली प्रादुर्भूत हुई। ज्ञान–वैराग्य–ऐश्वर्य और धर्म ये उसके चार भेद होते हैं ॥७४॥ सशरीर उस महत् के ये सांसिद्धिक सुप्रतीक हैं। वैवर्त्य से सिद्धि कही जाती है ॥७५॥ यहाँ पर पुरी में जो क्षेत्र ज्ञान शयन करता है वह पुरी में शयन करने से पुरुष क्षेत्र ज्ञान से भली भाँति कहा जाता है ॥७६॥ क्षेत्र के विज्ञान के होने से क्षेत्रज्ञ–भगवान् और मति कहा जाता है। जिस कारण से बुद्धि से शयन करता है उससे वह बोधात्मक निश्चय रूप से होता है। संसिद्धि के लिए अचेतन व्यक्ताव्यक्त के परिगत होता है ॥७७॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं निवृत्तिः क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञेनाभिसंहिता।
क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातो भोग्योऽयं विषयस्त्विबति ।।७८।।
ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ।
एतत्सन्नियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ।।७९।।
निवृत्तिसमकालं तु बुद्ध्याव्यक्तमृषिः स्वयम् ।
परं हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः ।।८०।।
गत्यर्थादृषतेर्द्धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः ।
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्चात्मर्षिता स्मृता ।
ईश्वराः स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मणः सुताः ।।८१।।
यस्मान्न हन्यते मानैर्महान् परिगतः पुरः ।
य स्मादृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्वतो गुणैः ।
तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः ।।८२।।
ईश्वराणां शुभास्तेषां मानसान्तरसाश्च ते ।
अहङ्कारं तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋषिताङ्गताः ।।८३।।
तस्मात्तु ऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनाः ।
ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवाः ।।८४।।

इस प्रकार से क्षेत्रज्ञ से अभिसंहित क्षेत्रज्ञा निवृत्ति होती है। क्षेत्रज्ञ के द्वारा परिज्ञात भोगने योग्य जो है वह विषय होता है ।।७८।। ऋषि यह धातु-गति में–श्रुति में–सत्य में और तप में होती है। उसके इस सन्नियत होने पर ब्रह्मा के द्वारा ऋषि कहा गया है ।।७९।। निवृत्ति के समकाल में ऋषि स्वयं बुद्धि से अव्यक्त होता है। जिस कारण से पर को ऋष करता है इससे परमर्षि कहा जाता है ।।८०।। गत्यर्थक ऋष धातु से आदि नाम की निवृत्ति होती है। क्योंकि यह स्वयम्भूत है इसलिए आत्मर्षिता कही गई है। ईश्वर स्वयं उद्भूत हुए हैं और ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं ।।८१।। क्योंकि यह यानों से हन्यमान नहीं होता है, आगे महान् परिगत है। जिस कारण से ये धीर सब ओर से गुणों के द्वारा महान् को रिषते है इस कारण से बुद्धि परमदर्शी महर्षि कहे गए हैं ।।८२।। उन ईश्वरों के शुभ वे मानसान्त रस हैं और अहङ्कार तथा तम का

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्याग करके ऋषिता को प्राप्त हो गए हैं ॥८३॥ इससे वे ऋषिगण भूतादि में तत्त्व के देखने वाले हैं। ऋषियों के पुत्र ऋषीक तो मैथुन के धर्म द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥८४॥

तन्मात्राणि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजसः।
सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ॥८५॥
ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः।
ऋषन्ति वै श्रुतं यस्माद्विशेषांश्चैव तत्त्वतः।
तस्मात् श्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनाः ॥८६॥
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते।
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ॥८७॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥८८॥
प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः।
ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ॥८९॥
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा।
उतथ्यो वामदेवश्च अयोज्यश्चैशिजस्तथा ॥९०॥
कर्द्दमो विश्रवाः शक्तिर्वालखिल्यस्तथा धराः।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गताः ॥९१॥

वे महान् ओज वाले तन्मात्राओं को और सत्य ऋष करतें हैं इस कारण से परम सत्य के देखने वाले सत्यर्षि होते हैं ॥८५॥ ऋषियों के जो पुत्र हैं वे ऋषि-पुत्रक जानने के योग्य होते हैं। क्योंकि श्रुत को ऋष करते हैं ओर तत्त्व से विशेषों को भी किया करते हैं इस कारण से श्रुत परिदर्शन करने वाले वे श्रुतर्षि भी कहे जाते हैं ॥८६॥ अव्यक्तात्मा—महात्मा—अहङ्कारात्मा—भूतात्मा और इन्द्रियात्मा उनका यह ज्ञान कहा जाता है। इतनी ये ऋषियों की जातियाँ हैं जो नामों से पाँच हैं उन्हें सुनो ॥८७॥ भृगु—मरीचि—अत्रि—अङ्गिरा—पुलह-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रतु–मनु–दक्ष–वसिष्ठ और पुलस्य ये दश हैं। ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र हैं जो ईश्वर से स्वयं उद्भूत हुए थे ॥८८॥ जिस ऋषि से प्रवृत्त होते हैं, महान् हैं इससे महर्षि होते हैं। ये ऋषि ईश्वरों के पुत्र हैं उन्हें अब जान लो ॥८९॥ काव्य-वृहस्पति-कश्यप-उशना-उतथ्य-वामदेव-अयोज्य-ऐशिज-कर्दम-विश्रवा-शक्ति, बालखिल्य-धरा—ये ऋषि कहे गये हैं और ज्ञान से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ॥९०॥९१॥

ऋषिपुत्रानृषिकांस्तु गर्भोत्पन्नानिबोधत ।
वत्सरो नग्रहूश्चैव भारद्वाजस्तथैव च ॥९२॥

बृहदुत्थः शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव वृहदुक्थः शरद्वतः ॥९३॥

वाजश्रवाः सुवित्तश्च सुवाग्वेषपरायणः ।
दधीचः शङ्खमांश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ।
इत्येते ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषितां गताः ॥९४॥
ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥९५॥
भृगुः काव्यः प्रचेतास्तु दधीचो ह्यात्मवानपि ।
ओर्वोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा ॥९६॥
अद्विषेण ह्यरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः ।
वैन्यः पृथुर्दिवोदासः प्रश्वारोगृत्समान्नभः ।
एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥९७॥
अङ्गिरा वेधसचैव भारद्वाजोऽथ बाष्कलिः ।
तथामृतस्थता गार्ग्यः शेनी संहृतिरेव च ॥९८॥
पुरुकुत्सोऽथ मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च ।
आहार्योथाजमीढश्च ऋषभो बलिरेव च ॥९९॥
पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चैवाथ मुग्दलः ।
युवनाश्वः पोरुकुत्सस्त्रसद्दस्युः सदस्युमान् ॥१००॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि।
आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ॥१०१॥
औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतपास्तथा।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता अङ्गिरसो वराः।
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ॥१०२॥

ऋषि-पुत्र और ऋषिकों को गर्भ से उत्पन्न समझ लो। वत्सर-नग्रहू-भारद्वाज-बृहदुत्थ-शरद्वान्-अगस्त्य-ऐशिज--ऋषि-दीर्घतम--बृहदुक्थ--शरद्वत--वाज-श्रवा-सुवित्त-सुवाग्-वेषपरायण-दधीच-शङ्खमान-राजा और वैश्रयण—ये इतने सब ऋषीक कहे गये हैं और वे सत्य से ऋषिता को प्राप्त हुए थे ॥९२॥९३॥९४॥ जो इनसे अन्य हैं वे ईश्वर और ऋषीक कहे गये हैं। ये सब मन्त्रकृत हैं उन्हें पूर्ण रूप से जान लेना चाहिए ॥९५॥ भृगु-काव्य-प्रचेता-दधीच-आत्मवान्-और्व-जमदाग्नि-विद-सारस्वत--अद्विषेण-अरूप--वीतहव्य--सुमेधस-वैन्य-पृथु--दिवोदास-प्रश्वार, गृत्समान्-नभ ये उन्नीस मन्त्रवादी हैं ॥९६॥९७॥ अङ्गिरा-वेधस-भारद्वाज— वाष्कलि— अमृत—गार्ग्य--शेनी-संहृति-- पुरुकुत्स--मान्धाता—अम्बरीष—आहार्य— आजमीढ़— ऋषभ— बलि— पृषदश्व— विरूप-कण्व—मुद्गल--युवनाश्व—पौरुकुत्स—त्रसद्दस्यु—सदस्युमान्—उतथ्य—भरद्वाज—-वाजश्रवा—आयाप्य— सुवित्ति—वामदेव--औगज--बृहदुक्थ—ऋषि-दीर्घतमा—कक्षीवान्—ये तेतीस वर अङ्गिरस कहे गए हैं। ये सब मन्त्रकृत हैं। अब कश्यपों को जान लो ॥९६॥९७॥९८॥—॥९९॥१००॥१०१॥१०२॥

काश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च।
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ॥१०३॥
अत्रिरर्द्धसनश्चैव श्यामावांश्चाथ निष्ठुरः।
वल्गूतको मुनिर्द्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च यः।
इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ॥१०४॥
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः।
चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसुः ॥१०५॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

षष्ठस्तु मैत्रावरुणः कुण्डिनः सप्तमस्तथा ।
सद्युम्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पतिः ।
दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारकाः ॥१०६॥
एते चैवहि कर्तारो विधर्मध्वंसकारिणः ।
लक्षणं ब्रह्मणस्चैतद्विहितं सर्वशाखिनाम् ॥१०७॥
हेतुर्हितेः स्मृतो धातोर्यन्निहन्त्युदितम्परैः ।
अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मणः ॥१०८॥
तथा निर्वचनं ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् ।
निन्दां तामाहुराचार्या यद्दोषान्निन्द्यते वचः ॥१०९॥
प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातोः प्रशंसा गुणवत्तया ।
इदन्त्विदमिदं नेदमित्यनिश्चित्य संशयः ॥११०॥

काश्यप-वत्सार-विभ्रम-रैभ्य-असित-देवल—ये छः ब्रह्मवादी होते हैं ॥१०३॥ अत्रि-अर्चिसम-श्यामावान्-निष्ठुर-बल्गूतक-मुनि-धीमान्-पूर्वातिथि—महर्षि मन्त्रकार आत्रय कहे गए हैं ॥१०४॥ वशिष्ठ-शक्ति-पाराशर-चौथा इन्द्र प्रमति और पाँचवाँ भरद्वसु—छठा मैत्रावरुण—सातवाँ कुण्डिन—आठवाँ सुद्युम्न—नवम् बृहस्पति—दशम् भरद्वाज ये मन्त्र और ब्राह्मण के करने वाले हैं ॥१०५॥१०६॥ ये सब करने वाले और विधर्म के ध्वंस करने वाले हैं। यह ब्रह्मा का लक्षण समस्त शाखा वालों में विदित है ॥१०७॥ हिति धातु से हेतु कहा गया है जो परों के द्वारा उदित का निहनन करते हैं। अर्थ परिप्राप्ति गतिकर्म वाली हिनोत से होता है ॥१०८॥ तथा वाक्यार्थ कर अवधारण निर्वचन बोलना चाहिए। आचार्य लोग, जिस दोष से वचन की निन्दा की जाती है, उसको निन्दा कहते हैं ॥१०९॥ प्रपूर्वक शस धातु से गुणवत्ता के कारण से प्रशंसा होती है अर्थात् प्रशंसा कही जाती है। यह है—यह नहीं है ऐसा अनिश्चय करके ही संशय होता है ॥११०॥

इदमेव विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते ।
अन्यस्यान्यस चोक्तत्वादबुधैः परकृतिः स्मृता ॥१११॥
यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्पः स उच्यते ।
पुराविक्रान्तवाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना ॥११२॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः ।
अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ॥११३॥
यथा हीदं तथा तद्वै इदं वापि तथैव तत् ।
इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥११४॥
इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणं बुधः ।
तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपदं द्विजैः ॥११५॥
मन्त्राणां कल्पनं चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ।
मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ॥११६॥
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यश्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥११७॥

यही करना चाहिए, इस प्रकार से जो होती है वह विधि कही जाती है। अन्य-अन्य के कथन होने से बुधों के द्वारा परकृति कही जाती है ॥१११॥ जो अत्यन्ततर कहा गया है वह पुराकल्प कहा जाता है। पुरा विक्रान्त वाची होने से पुराकल्प की कल्पना होती है ॥११२॥ मन्त्र ब्राह्मण कल्पों के द्वारा और शुद्ध विस्तर निगमों के द्वारा अनिश्चय करके की हुई को व्यवधारण कल्पना कहते हैं ॥११३॥ जिस प्रकार से यह है वैसे ही वह है। यह अथवा उसी प्रकार से वह है, यह ब्राह्मण का दशम उपदेश है ॥१४४॥ यह आदि में ब्राह्मण का लक्षण बुधों के द्वारा किया गया है। ब्राह्मणों के द्वारा अनुपद व्याख्या भी उसकी वृत्ति उद्दिष्ट की गई है ॥११५॥ विधि दृष्ट कर्मों में मन्त्रों का कल्पन होता है। मन्त्रयति धातु से मन्त्र होता है और ब्रह्म की रक्षा करने से ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ११६॥ सूत्रों के ज्ञाता लोग अल्पाक्षर वाला—असंदिग्ध—सार वाला—विश्वतोमुख—अस्तोभ अनवद्य को सूत्र कहते हैं ।.११७॥

॥ प्रकर्ण ४२—महास्थान तीर्थ वर्णन ॥

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् ।
कथं वेदाः पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ॥१॥
द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद्वदिष्ये महामते ॥२॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातयः ।
संवृत्तां युग दोषेण सर्वे चैव यथाक्रमम् ॥३॥
भ्रश्यमानं युगवशादल्पशिष्टं हि दृश्यते ।
दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतादिदम् ॥४॥
वीर्यं तेजो बलं वाक्यं सर्वञ्चैव प्रणश्यति ।
वेदवेदा हि कार्याः स्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ॥५॥
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति ।
यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ॥६॥
आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंज्ञितः ।
पुनर्दशगुणः कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ॥७॥

ऋषियों ने इस प्रकार के वचनों को सुनकर सूतजी से सुदुस्तर वचन कहा—हे महामते ! वेद पहले किस प्रकार व्यस्त किये गये थे, इस बात को हमको आप बतलाइये ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे महामते ! द्वापर के परावृत्त हो जाने पर स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्माजी ने यह मनु से कहा, उसे मैं बतलाऊँगा ॥२॥ हे तात ! युग के परिवृत्त हो जाने पर द्विजाति लोग स्वल्प वीर्य वाले हो गये थे। सभी युग के दोष से वे यथाक्रम हीन वीर्य हो गये थे ॥३॥ युग के कारण से सब भ्रश्यमान और अल्प शिष्ट दिखलाई देता है। यह दस हजार के भाग से कृत युग से अवशिष्ट होता है ॥४॥ वीर्य-तेज-बल और वाक्य यह सभी नष्ट हो जाते हैं। वेद के ज्ञान वाले सब कार्य होवें और वेदों का विनाश न होवे ॥५॥ वेद के नाश होने पर यज्ञ भी नाश को प्राप्त हो जायगा। यज्ञ के नाश होने से देवों का नाश होगा और देवनाश हो जाने पर सब कुछ प्रनष्ट हो जाता है ॥६॥ आद्य वेद चार पाद वाला है और वह शत सहस्र संज्ञा से युक्त है। फिर वह दस गुना पूर्ण यज्ञ निश्चय ही सब कामनाओं का दोहन करने वाला हुआ है ॥७॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः ।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः ॥८॥
ब्रह्मणो वचनात्तात लोकानां हितकाम्यया ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तदिदं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम् ॥९॥
मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् ।
प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः ॥१०॥
अस्मिन् युगे कृतो व्यासः पाराशर्यः परन्तपः ।
द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ॥११॥
ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे ।
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ॥१२॥
जैमिनिश्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च ।
पैलन्तेषां चतुर्थन्तु पञ्चमं लोमहर्षणम् ॥१३॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलञ्जग्राह विधिवद्द्विजम् ।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥१४॥

इस प्रकार से कहा हुआ लोक के हित में रत रहने वाला मनु ने तथास्तु अर्थात् ऐसा ही हो—यह कहकर प्रभु ने चार पाद वाले एक वेद को चार प्रकार से विभाजित किया था ॥८॥ हे तात ! ब्रह्माजी के वचन से लोकों के हित की कामना से आपके वर्त्तमान से यह वेद का कल्पन किया था ॥९॥ अब मैं मन्वन्तर से व्यतीतों के प्रकल्पन को बताऊँगा । हे सत्तमा ! अब आप लोगों को प्रत्यक्ष से परोक्ष को जान लेना चाहिए ॥१०॥ इस युग में किया हुआ व्यास (विस्तार) परन्तप एवं पाराशर्य है । वह द्वैपायन इस नाम से ख्यात हुआ है और भगवान् विष्णु का अंश कहा गया है ॥११॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होते हुए उसने वेद के व्यस्त करने का उपक्रम किया था । इसके अनन्तर वेद के कारण से उसने चार शिष्यों को ग्रहण किया था ॥१२॥ जैमिनि—सुमन्तु—वैशम्पायन और उनमें चौथा पैल, पाँचवाँ लोमहर्षण था ॥१३॥ ऋग्वेद का श्रावक (सुनने वाला) पैल को ग्रहण किया और पैल द्विज को विधि के साथ स्वीकार किया था । यजुर्वेद के प्रवक्ता वैशम्पायन को ग्रहण किया ॥१४॥

जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत ।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ॥१५॥
इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ॥१६॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तश्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥१७॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ।
उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः ।
ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु ॥१८॥
ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं समकल्पयत् ।
होतृकं कल्प्यते तेन यज्ञवाहं जगद्धितम् ॥१९॥
सामभिः सामवेदञ्च तेनोद्गात्रमरोचयत् ।
राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ॥२०॥
आख्यानैश्चाप्युपाख्यै र्गाथाभिः कुलकर्मभिः ।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥२१॥

सामवेद के अर्थ का श्रावक उसने जैमिनि को शिष्य ग्रहण किया था। उसी प्रकार से अथर्ववेद का प्रवक्ता ऋषियों में श्रेष्ठ सुमन्तु को शिष्यत्व के रूप में ग्रहण किया था ॥१५॥ इतिहास पुराण का अच्छी प्रकार से प्रवक्ता भगवान् प्रभु ईश्वर ने मुझको ग्रहण किया था ॥१६॥ यजुर्वेद एक ही था, उसको चार प्रकार के भेदों में कल्पित किया था। उसने उसमें यज्ञ की कल्पना की जो कि चतुर्होत्र था ॥१७॥ यजु से आध्वर्यव, ऋक् से उसी प्रकार होत्र, साम से उद्गात्र और अथर्व से ब्रह्मत्व किया। अथर्व वेद से यज्ञ में ब्रह्मत्व किया था ॥१८॥ इसके अनन्तर उसमें ऋक् का उद्धार करके ऋग्वेद की कल्पना की थी। उसके द्वारा होतृक यज्ञवाह जगत-हित की कल्पना की जाती है ॥१९॥ सामों से सामवेद को और उससे उद्गात्र को रोचित किया था। राजा के अथर्व वेद से समस्त कर्मों को कराया था ॥२०॥ आख्यानों से तथा उपाख्यानों से गाथाओं के द्वारा और कुल कर्मों से पुराणों के अर्थ के विशारद ने पुराण संहिता की अर्थात् पुराण संहिता की रचना की ॥२१॥

यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमथायुजत् ।
युञ्जानः स यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चयः ॥२२॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ।
स तेनोद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।
प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते त सः ॥२३॥
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ।
द्विष्कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ॥२४॥
इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां बाष्कलाय च ।
चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः ।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ॥२५॥
बोधन्तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ।
पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥२६॥
इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तमः ।
अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ॥२७॥
सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ।
सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विज ॥२८॥

जो कुछ यजुर्वेद में शिष्ट था उससे इसके पश्चात् यज्ञ को योजित किया था । यजुर्वेद में वह युञ्जान थे यही शास्त्र का विशेष रूप से निश्चय है ॥२२॥ पदों के उद्धृत होने के कारण से यजु विषम हैं । इससे उद्धृत वीर्य उसने वेद के पारगामी ऋत्विगों के द्वारा अश्वमेध को प्रयुक्त किया अथवा वह युज्यमान किया जाता है ॥२३॥ पैल ने तो ऋचाओं को ग्रहण करके उनको दो प्रकार से विभाजित किया था । दो करके प्रभु ने संयुग में शिष्यों के लिये दे दिया था ।।२४।। एक को इन्द्रप्रमिति के लिये दिया और दूसरी को बाष्कलि के लिये दिया । द्विज श्रेष्ठ बाष्कलि ने चार संहिता करके जो सेवा में अनुराग रखने वाले और परमहित शिष्य थे उनको उनका अध्यापन कर दिया था ।।२५।। प्रथम शाखा को बोध नामक शिष्य को पढ़ाया और दूसरी शाखा को अग्नि-माठर को पढ़ाया था । तीसरी शाखा को पाराशर को और चौथी शाखा का अध्यापन याज्ञवल्क्य को करा दिया था ।।२६।। द्विजों में परम श्रेष्ठ इन्द्र प्रमिति ने एक संहिता को अति यशस्वी महान् भाग वाले मार्कण्डेय को पढ़ा दिया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था ॥२७॥ सत्यश्रवा द्विज ने जो कि महान् यश वाला था, सत्य में सत्यश्रवस अग्य पुत्र को पढ़ाया था ॥२८॥

सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयापयद्विभुः ।
सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम् ॥२९॥
अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः ।
सत्यश्रियस्तु विद्वांसः शास्त्रग्रहणतत्पराः ॥३०॥
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथ(ा)न्तरः ।
बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ॥३१॥
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहङ्कारगर्वितः ।
जनकस्य स यज्ञो वै विनाशमगमद्द्विजः ॥३२॥
कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानिगर्वितः ।
जनकस्याश्वमेधेन कथं वाद बभूव ह ॥३३॥
किमर्थञ्चाभवद्वादः केन सार्द्धमथापि वा ।
सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितन्तव ।
ऋषीणान्तु वचः श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत् ॥३४॥
जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः ।
ऋषीणान्तु सहस्राणि तत्राजग्मुरनेकशः ।
राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः ॥३५॥

उस विप्र ने भी फिर अपने सत्यतर नामक पुत्र को पढ़ाया था जो कि सत्यश्री वाला, महान आत्मा से युक्त और सत्य धर्म में परायण था ॥२९॥ उसके महान् ओज वाले तीन शिष्य हुए थे। वे सत्यप्रिय परम विद्वान् और शास्त्रों के ग्रहण करने में तत्पर थे ॥३०॥ उनमें पहिला शाकल्य था और उसमें दूसरा रथन्तर था। वाष्कलि और भरद्वाज ये शाखाओं के प्रवर्तक हुए थे ॥३१॥ देवामित्र शाकल्य तो ज्ञान के अहंकार से बड़ा ही गर्व वाला था, वह जनक के यज्ञ में विनाश को प्राप्त हुआ था ॥३२॥ शांशपायन ने कहा—वह ज्ञान के गर्व वाला मुनि किस तरह विनाश को प्राप्त

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ ? जनक के अश्वमेध में वाद कैसे हुआ था ? ॥३३॥ और वह वाद किस लिए हुआ था और किसके साथ हुआ था ? यह सब जैसा भी कुछ हुआ था वह समस्त वृतान्त वर्णन करें क्योंकि आपको सभी कुछ विदित है। ऋषियों के इस वचन को सुन कर इसके अनन्तर उसका उत्तर कहने लगे ॥३४॥ श्रीसूत जी ने कहा—जनक के अश्वमेध में बहुत बड़ा समागम हुआ था। सहस्रों की संख्या में अनेक ऋषिगण वहाँ आये थे क्योंकि राजर्षि जनक के उस यज्ञ को सभी देखने की इच्छा वाले थे ॥३५॥

आगतान् ब्राह्मणान् दृष्ट्वा जिज्ञासास्याभवत्ततः ।
को न्वेषां ब्राह्मणः श्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत् ।
इति निश्चित्य मनसाबुद्धि चक्रे जनाधिपः ॥३६॥
गवां सहस्रमादाय सुवर्ण मधिकं ततः ।
ग्रामान् रत्नानि दासांश्च मुनीन् प्राह नराधिपः ।
सर्वानिहं प्रपन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिनः ॥३७॥
यदेतदाहृतं वित्तं यो वः श्रेष्ठतमो भवेत् ।
तस्मै तदुपनीतं विद्यावित्तं द्विजोत्तमाः ॥३८॥
जनकस्य वचः श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमाः ।
दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्या जिघृक्षवः ।
श्रद्धयाञ्चक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्बणाः ॥३९॥
मनसा गतवित्तास्ते ममेदं धनमित्युत ।
ममैवैतन्न वेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते ।
इत्येवं धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः ॥४०॥
तथान्यस्तत्र वै विद्वान् ब्रह्मवाहसुतुः कविः ।
याज्ञवल्क्यो महातेजातपस्वी ब्रह्मवित्तमः ॥४१॥
ब्रह्मणोऽङ्गात् समुत्पन्नो वाक्यं प्रोवाच सुस्वरम् ।
शिष्यं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो धनमेतद्गृहाण भो ॥४२॥

आये हुए ब्राह्मणों को देख कर इसके अनन्तर इसकी जिज्ञासा हुई कि इन ब्राह्मणों में कौन सद्ब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ है—यह निश्चय मुझे कैसे होवे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मन में ऐसा निश्चय करके उस जनों के स्वामी ने बुद्धि को अर्थात् विचार किया था ।।३६।। सहस्र गौओं को लाकर और बहुत-सा सुवर्ण, ग्राम, रत्न, दासों को लाकर वह नराधिप बोला—मैं आप सब श्रेष्ठ भाग वालों को शिरसे प्रपन्न हूँ ।।३७।। जो यह सब धन लाया गया है, आप लोगों में परम श्रेष्ठ द्विज होगा हे उत्तम ब्राह्मणो ! विद्या के धन वाले को यह उपनीत किया जायगा ।।३८।। उन श्रुतिक्षम मुनियों में उस महान् सार वाले धन को देखकर धन की वृद्धि से उसे ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुए जनक के उस वचन को सुनकर वेद के ज्ञान के मद से उल्वण वे सब अन्योन्य में श्रद्धा करने लगे ।।३९।। मन से गतचित्त वाले यह मेरा धन है अथवा यह मेरा ही है या यह नहीं अथवा कोई अन्य बोले क्या विकल्प किया जाता है। इस प्रकार से धन के दोष से वहाँ अनेक प्रकार के वाद करने लगे ।।४०।। उस प्रकार से वहाँ पर अति विद्वान् ब्रह्मवाह का पुत्र कवि महान् तेज वाला, तपस्वी और ब्रह्मवित्तम याज्ञवल्क्य जो कि ब्रह्माजी के अङ्ग से समुत्पन्न हुये थे, शिष्य से सुस्वर वाक्य बोले—जो ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! आप इस धन को ग्रहण करिये ।।४२।।

नयस्व च गृहं वत्स ममैतन्नात्र संशयः ।
सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चितु मत्समः ।
यो वा न प्रीयते विप्रा स मे ह्वयत माऽचिरम् ।।४३।।
ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्धः समुद्र इव सम्प्लवे ।
तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ।।४४।।
क्रोधं माकार्षु विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः ।
वदामहे यथायुक्तं जिज्ञासन्तः परस्परम् ।।४५।।
ततोऽभ्युपागमंस्तेषां वादा जग्मुरनेकशः ।
सहस्रधा शुभैरर्थैः सूक्ष्मदर्शनसम्भवैः ।।४६।।
लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्यास्थानैरलंकृताः ।
शापोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौघपरिवर्जनाः ।
वादाः समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ।।४७।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋषयस्त्वेकतः सर्वो याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ।
सर्वोमिति होवाच वादकर्त्तारमञ्जसा ।।४९।।

हे वत्स ! इसे गृह में ले जाओ, यह सारा धन मेरा ही है, इसमें तनिक-भी संशय नहीं है । समस्त वेदों में मैं वक्ता हूँ और कोई भी मेरे समान यहाँ नहीं है । जो ब्राह्मण इस बात को पसन्द नहीं करता हो वह मेरे साथ शीघ्रता करे । इसके पश्चात् सम्प्लव के समय में समुद्र की ही भाँति उस समय वह ब्राह्मणों का सागर क्षुब्ध हो उठा था । इसके अनन्तर परम स्वस्थ याज्ञवल्क्य हँसते हुए उन सबसे बोले ।।४३।।४४।। आप सब विद्वान और सत्यवादी हैं इस समय क्रोध न करिए । परस्पर में जिज्ञासा रखने वाले हम यथायुक्त वाद करें ।।४५।। इसके अनन्तर वहाँ उपस्थित होते हुए उनके सहस्रों प्रकार के सूक्ष्म दर्शन से उत्पन्न शुभ अर्थों के द्वारा अनेकों वाद हुए ।।४६।। लोक में तथा वेद में विद्या स्थानों से विभूषित—शापोत्तम गुणों से युक्त—नृपों के समुदाय से परिवर्जन वाले महात्माओं के वहाँ अनेक वाद हुये थे ।।४७।। एक तरफ तो समस्त ऋषिगण थे और एक ओर केवल एक याज्ञवल्क्य थे । वे सब मुनिगण धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा एक-एक करके पूछे गए किन्तु कोई भी उनमें से उनका उत्तर नहीं बोला था ।।४८।। तब उस ब्रह्म की राशि महान् द्युति वाले याज्ञवल्क्य उन समस्त मुनियों को विजित करके वाद के कर्त्ता शाकल्य से अचानक बोले ।।४९।।

शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ।
पूर्णस्त्वत्वं जडमानेन वाताध्मातो यथा दृतिः ।।५०।।

एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः ।
प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं पुरुषं मुनिसन्निधौ ।।५१।।

त्वमस्मांस्तृणवत्त्यक्त्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ।
विद्याधनं महासारं स्वयंग्राहं जिघृक्षसि ।।५२।।

शाकल्येनैवमुक्तः स्याद्याज्ञवल्क्यः समब्रवीत् ।
ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्वार्थदर्शनम् ।।५३।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कामश्चार्थेन सम्बद्धस्तेनार्थं कामयामहे ।
कामप्रश्नधना विप्राः कामप्रश्नान्वदामहे ॥५४॥
पणश्चैषोऽस्य राजर्षेस्तस्मान्नीतं धनं मया ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्यः क्रोधमूर्च्छितः ।
याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थमद्वचः ॥५५॥
ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान् कामप्रश्नान् यथार्थतः ।
ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान् ॥५६॥

हे शाकल्य ! बोलो जो कुछ भी आपका वक्तव्य हो क्या ध्यान करते हुए चुपचाप खड़े हुए हैं ? आप तो जड़मात्र से पूर्ण हैं जैसे बात से आध्मात दृति होता है ॥५०॥ इस प्रकार से उसके द्वारा धर्षित होते हुए रोष से ताम्र मुख और लोचनों वाले उनने मुनियों की सन्निधि में उस याज्ञवल्क्य पुरुष से कहा ॥५१॥ आप मुझको तिनके की भाँति त्याग करके तथा इन अन्य श्रेष्ठ द्विजों का भी त्याग करके इस महान् सार वाले विद्या धन को स्वयं ही ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं ॥५२॥ शाकल्य के द्वारा इस तरह से कहे हुए याज्ञवल्क्य ने उससे कहा—विद्या के तत्वार्थ के देखने वाले ब्रह्मिष्ठों के बल को जान लो ॥५३॥ काम की अर्थ से सम्बद्धता होती है इसलिए हम अर्थ की कामना करते हैं । ब्राह्मण काम के प्रश्न धन वाले होते हैं और हम काम के प्रश्नों को बोलते हैं ॥५४॥ राजर्षि का यह पण है इससे मैंने धन को लिया है । यह उसका वचन सुनकर शाकल्य क्रोध से मूर्छित होते हुए याज्ञवल्क्य से काम प्रश्न के अर्थ वाले वचन को बोले ॥५५॥ अब मेरे द्वारा उद्दिष्ट काम-प्रश्नों को यथार्थ रूप से बोलो । इसके बाद पुनः दोनों ब्रह्म वेत्ताओं का बहुत बड़ा विवाद हुआ था ॥५६॥

साग्रं प्रश्नसहस्रन्तु शाकल्यस्तमचूवुदत् ।
याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वान् ऋषीणां शृण्वतां तदा ॥५७
शाकल्ये चापि निर्वादे यश्रवल्क्यस्तमब्रवीत् ।
प्रश्नमेकं ममापि त्वं वद शाकल्य कामिकम् ।
शापः पणोस्य वादस्य अब्रुवन् मृत्युमाव्रजेत् ॥५८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथ सन्नोदितं प्रश्नं याज्ञवल्क्येन धीमता ।
शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ।।५९
एवं मृतः स शाकल्यः प्रश्नव्याख्यानपीडितः ।
एवं वादश्च सुमहानासीत्तेषां धनार्थिभिः ।
ऋषीणां मुनिभिः सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ।।६०
सर्वैं पृष्टांस्तु सम्प्रश्नान् शतशोऽथ सहस्रशः ।
व्याख्याय गौ मुने तेषां प्रश्नसारं महागतिः ।।६१
याज्ञवल्क्यो धनं गृह्य यशो विख्याप्य चात्मनः ।
जगाम गौ गृहंस्वस्थः शिष्यैः परिवृतो वशी ।।६२
देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजात्मा द्विजसत्तमः ।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ।।६३

इसके अनन्तर शाकल्य ने पहिले एक सहस्र प्रश्न उससे किए थे और याज्ञवल्क्य ने उस समय में समस्त ऋषियों के सुनते हुए सब प्रश्नों के उत्तर दे दिए थे ।।५७।। जब शाकल्य निर्वाद हो गए तो याज्ञवल्क्य ने उससे कहा—आप मेरा भी एक प्रश्न कामिक बतलाओ । इस वाद का पण शाप बोले वह मृत्यु को जावे ।।५८।। इसके पश्चात् धीमान् याज्ञवल्क्य के द्वारा सज्जोहित उस प्रश्न को शाकल्य ने न जानकर मृत्यु को प्राप्त किया ।।५९।। इस प्रकार से वह प्रश्न के व्याख्यान से पीड़ित शाकल्य मृत हो गया । इस प्रकार से धन के अर्थी मुनियों के साथ उन ऋषियों का और याज्ञवल्क्य का बहुत ही बड़ा बाद हुआ था ।।६०।। सबके द्वारा सैंकड़ों तथा सहस्रों पूछे गए प्रश्नों की व्याख्या करके और उनके प्रश्नस्तर को समझा करके महामति याज्ञवल्क्य ने धन को ग्रहण करके और अपना यश विख्यात करके शिष्यों के द्वारा परिवृत वशी स्वस्थ होता हुआ अपने घर को चले गए ।।६१।।६२।। पदवित्तय—द्विज श्रेष्ठ—महात्मा और बुद्धिमान देवामित्र शाकल्य ने पाँच संहिता कीं ।।६३।।

तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुग्दलौ गोलकस्तथा ।
खालीयश्च तथा मत्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः ।।६४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूर्णरथीतरः ।
निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः ॥६५
तस्य शिस्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा ।
धर्मशर्मा देवशर्मा सर्गे व्रतधरा द्विजाः ॥६६
शाकल्ये तु मृते सर्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ।
तदा चिन्तां परां प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥६७
तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषितः पवने पुरे ।
तत्र गन्छत यूयं वः सद्यः पापं प्रणश्यति ॥६८
द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम् ।
एकादश तथा रुद्रान् वायुपुत्रं विशेषतः ।
कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ॥६९॥
सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागताः ।
स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम् ॥७०॥

उसके पाँच शिष्य हुए थे उनके नाम मुग्दल–गोलक–खालीय–मत्स्य–और शैशिरेय पाँचवें थे।।६४।। शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिता बोलीं और द्विज-श्रेष्ठ ने फिर चौथा निरुक्त किया ।।६५।। उसके चार शिष्य हुए थे जिनके नाम केतव–दालकि–धर्म शर्मा–देव शर्मा थे । ये सब ब्राह्मण व्रतधारी थे ।।६६।। शाकल्य के मृत हो जाने पर वे सब ब्रह्मघ्न हो गये थे । इसके पश्चात् वे सब परम चिन्तित होकर ब्रह्माजी के समीप में गए ।।६७।। ब्रह्माजी ने उनको चित्त से ही जानकर पवनपुर में प्रेषित किया । उन्होंने कहा—आप सब वहाँ जाओ वहाँ आपका सारा पाप तुरन्त नष्ट हो जायगा ।।६८।। द्वादश सूर्य को नमस्कार करके तथा वालुकेश्वर को प्रणाम करके और चारों कुण्डों में स्नान करके आप सब इस ब्रह्म हत्या से तर जाओगे ।।६९।। वे सब शीघ्रगामी होकर उस पुर में आगये । वहाँ उन्होंने विधानपूर्वक स्नान किया और देवों का दर्शन कर के पाप मुक्त हो गए ।।७०।।

॥ इति वायु-पुराण (प्रथम खण्ड) ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली धर्म-ग्रंथ

हिन्दी अनुवाद सहित

१. चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	...२४)
अथर्व वेद २ खण्ड	...१२)
यजुर्वेद १ खण्ड	...६)
सामवेद १ खण्ड	...६)

२. १०८ उपनिषदें (३ खण्डों में)

ज्ञान खण्ड	...७)
ब्रह्मविद्या खण्ड	...७)
साधना खण्ड	...७)

३. षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	...४)
सांख्य दर्शन	...४)
योग दर्शन	४)
वैशेषिक दर्शन	...४)
न्याय दर्शन	...४)
मीमांसा दर्शन	..५)

४. २० स्मृतियां २ खण्ड ...१४)

५. शिव पुराण ...१२) ७५

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली) उ०प्र०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow